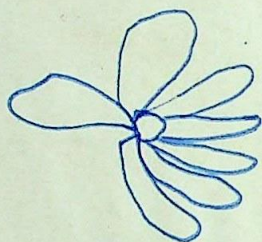
गरुड़ पुराण




Ved Mandir Library
No.
Date 22-11-73
JAMMU.

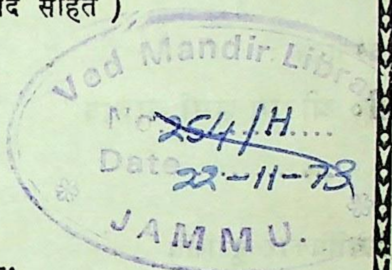

Ved Mandir Library
No. 210/H
Date 22/11/73
JAMMU.

गरुड़ पुराण

द्वितीय खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित)

*



सम्पादकः

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,

२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशकः

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

द्वितीय संस्करण
१९७०

*

मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस
मथुरा

*

सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द

'गरुड़-पुराण' की विशेषताओं पर इसकी भूमिका और उपसंहार में आवश्यक विवेचना की जा चुकी है। एक सामान्य हिन्दू-धर्म अनुयायी की दृष्टि में मरणोत्तर कर्मकाण्ड का महत्त्व बहुत अधिक है—इतना अधिक कि उसका आयोजन पूर्ण नियमानुकूल और परम्परानुसार करने के लिए वह प्रायः अपने लिए बड़ी-बड़ी कठिनाइयां पैदा कर लेता है। अनेक स्थानों और अनेक जातियों में दाह-संस्कार, तीजा, एकादशा, त्रयोदशा आदि के नाम पर और महाब्राह्मण को शैयादानादि करने के रूप में, और फिर समस्त जाति-भाइयों को भोज देने की प्रथा-पालन करके इतना व्यय-भार उठाना पड़ता है कि अनेक गरीबों की उससे कमर ही टूट जाती और उसका कुपरिणाम उन्हें बरसों भोगना पड़ता है। पाठकों ने ऐसे मृतक भोजों का भी वर्णन सुना होगा जिनमें ५-५ हजार लोग भोजन करते हैं। अगर इससे चौथाई भी भार किसी साधारण आर्थिक अवस्था वाले पर पड़ जाय तो उसे कैसी सांघातिक चोट लगेगी इसे भुक्तभोगी सहज ही में जान सकते हैं।

जन-साधारण की दृष्टि में 'गरुड़-पुराण' का महत्त्व इसी कारण अधिक है कि इसमें और्ध्वदैहिक कर्मों का विवेचन किया गया है और लोग उसे श्रद्धापूर्वक सुनते, मानते हैं। इस समय यद्यपि देश-काल के प्रभाव से लोगों के विचारों में अनेक नवीन परिवर्तन हो रहे हैं, तो भी हिन्दू-समाज में, विशेषतया ग्रामीण-जनता में ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे जो इन प्रथाओं का उल्लंघन करने का साहस कर सकें। इस कारण सब लोग अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार उन कर्मकाण्डों की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं, जिनका निर्देश 'गरुड़ पुराण' में किया गया है।

हिन्दू-धर्म में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े अटल और निश्चयात्मक रूप से पतिपादन किया गया है और सच पूछा जाय तो वर्तमान समय में धर्म का जो रूप हमारे देश के विद्वानों और उच्च श्रेणी के व्यक्तियों में भी प्रचलित है उसका आधार पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही है। उसी के प्रभाव से हिन्दू जनता में यह भाव फैला हुआ है कि हम जैसा भला-बुरा काम

करेंगे उसका वैसा ही परिणाम हमको आगामी जन्म में भोगना पड़ेगा। यह प्रभाव चाहे विभिन्न व्यक्तियों में न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है फिर भी बहुसंख्यक लोग इसके कारण किसी दुष्कर्म को करते हुए कुछ सङ्कोच करते हैं इसमें सन्देह नहीं।

हम यह कह देना भी आवश्यक समझते हैं कि इस विषय में अन्धश्रद्धा से काम लेना कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता। यह समझ लेना कि 'गरुड़-पुराण' में जिन क्रिया-कर्म के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसको अक्षरशः सत्य मान कर पूर्ण रूप से तदनुकूल आचरण करने से ही सद्गति प्राप्त हो सकेगी, हानिकारक है। ऐसे प्रसङ्गों में जन-साधारण की श्रद्धा-भक्ति को बढ़ाने की दृष्टि से बहुत सी बातों को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है और अधिकाधिक दान देने की भी विशेष रूप से प्रेरणा की जाती है। ऐसे विषय में देश-काल और अपनी परिस्थिति का ध्यान रख-कर ही कार्य करना चाहिए। धर्म-शास्त्रों में ही जगह-जगह यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि वास्तविक फल शुद्ध भावना और सात्त्विक कर्मों का होता है। बाह्य क्रियाएँ और दानदक्षिणा आदि सदैव अपनी सामर्थ और साधनों के अनुसार ही करना चाहिए जिससे बाद में किसी प्रकार की असुविधा सहन न करनी पड़े।

धर्म की गति सूक्ष्म कही गई है। जो लोग समझते हैं कि सत्-कर्म और परमार्थ के पथ पर चले बिना भी केवल कर्मकाण्डों के द्वारा परलोक में कल्याण हो सकता है, वे भूल करते हैं। अपनी श्रद्धा और परम्परा के अनुसार उपयोगी प्रथाओं का पालन करना उचित है पर उससे भी अधिक आवश्यक सत्कर्म, सदाचार, परोपकार आदि आत्म-कल्याण करने वाले गुणों की तरफ ध्यान देना है। 'गरुड़-पुराण' में यह कहा गया है कि 'ज्ञानी और सत्यव्रती व्यक्ति बिना और्द्धदैहिक कर्मकाण्ड के भी परलोक में उच्चगति प्राप्त करते हैं।' इसलिए लौकिक प्रथाओं के साथ ही आत्मिक गुणों का धारण और पालन करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इसमें पुनरावृत्तियों और लम्बी कथाओं को कम किया गया है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

श्री गरुड़पुराण (द्वितीय खण्ड)

विषय सूची

—०—

—:०:—

श्री गरुड़पुराण (उत्तरार्द्ध)

(प्रेतकल्प)

—०—

श्रीगरुड महापुराणम्

(द्वितीय खण्ड)

=(*)=

९३—राजवंश वर्णन

शतानीको ह्यश्वमेधदत्तश्चाप्यधिसोमकः ।
कृष्णोऽनिरुद्धश्चाप्युष्णस्ततश्चित्ररथो नृपः ॥१
शुचिद्रथो वृष्णिमांश्च सुषेणश्च सुनीथकः ।
नृचक्षुश्च मुखाबाणो मेधावी च नृपञ्जयः ॥२
पारिप्लवश्च सुनयो मेधावी च नृपञ्जयः ।
हरिस्तिग्मो बृहद्रथः शतानीकः सुदानकः ॥३
उदानोऽह्निनरश्चैव दण्डपाणिर्निमित्तकः ।
क्षेमकश्च ततः शूद्रः पिता पूर्वस्ततः सुतः ॥४
बृहद्बलास्तु कथ्यन्ते नृपाश्चेक्ष्वाकुवंशजाः ।
बृहद्बलादुरुक्षयो वत्सव्यूहस्ततः परः ॥५
बृहदश्वो भानुरथः प्रतीव्यश्च प्रतीतकः ।
मनुदेवः सुनक्षत्रः किन्नरश्चान्तरिक्षकः ॥६
सुपर्णः कृतजिच्चैव बृहद् भ्राजश्च धार्मिकः ।
कृतञ्जयो धनञ्जयः सञ्जयः शाक्य एव च ॥७
शुद्धोदनो बाहुलश्च सेनजित्क्षुद्रकस्तथा ।
समित्रः कुड़वश्चातः सुमित्रो मागधान् शृणु ॥८

श्री हरि ने कहा—शतानीक, अश्वमेध दत्त, अधिसोमक, कृष्ण, अनिरुद्ध, उष्ण और इसके पश्चात् चित्ररथ नृप हुए ॥१॥ शुचिद्रथ, वृष्णि-

मान्, सुषेण, सुनीथक, नृचक्षु, सुखावाण, मेत्रावी, नृपञ्जय, पारिप्लव, सुनय, मेधावी, नृपञ्जय, हरि, तिग्म, बृहद्रथ, शतानीक, सुदानक, उदान, अह्निनर, दण्डपाणि, निमित्तिक, क्षेमक, इसके अनन्तर शूद्र पिता पूर्व इसके उपरान्त सुत ये सब हुए थे ।।२-४।। ये इक्ष्वाकु के वंश में जन्म लेने वाले नृप वृहद्वल कहे जाते हैं। वृहद्वल से उरुक्षय इससे वत्सव्यूह हुआ था ।।५।। बृहद्दश्व, भानुरथ प्रतीव्य, प्रतीतक, मनुदेव, सुनक्षेत्र, किन्नर, अन्तरिक्ष, सुपर्ण, कृतजित् और धर्मनिष्ठ बृहद्भाज, कृतञ्जय, धनञ्जय, सञ्जय, शाक्य, शुद्धोदन, बाहुल, सेनजित्, क्षुद्रक, समित्र, कुडव और इससे सुमित्र ये सब हुए थे। अब मागधों का श्रवण करो ।।६-८।।

जरासन्धः सहदेवः सोमापिश्च श्रुतश्रवाः ।
अयुतायुर्निरमित्रः स्वक्षेत्रो बहुकर्मकः ।।९
श्रुतञ्जयः सेनजिच्च भूरिश्चैव शुचिस्तथा ।
क्षेम्यश्च सुव्रतो धर्मः श्मश्रुमो दृढ़सेनकः ।।१०
सुमतिः सुबलो नीतो सत्यजिद्विश्वजित्तथा ।
इषुञ्जय इत्येते नृपा बार्हद्रथाः स्मृताः ।।११
अधर्मिष्ठाश्च शूद्राश्च भविष्यन्ति नृपास्ततः ।
स्वर्गादिकृद्धि भगवान्साक्षान्नारायणोऽव्ययः ।।१२
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ।
याति भूः प्रलयञ्चाप्सु आपस्तेजसि पावकः ।।१३
वायौ वायुश्च वियति आकाशं यात्यहंकृतौ ।
अहंबुद्धौ मतिर्जीवे जीवोऽव्यक्ते तदात्मनि ।।१४
आत्मा परेश्वरो विष्णुरेको नारायणो नरः ।
अविनाश्यपरं सर्वं जगत्सर्गादि नाशि हि ।।१५
नृपादयो गता नाशमतः पापं विवर्जयेत् ।
धर्मं कुर्य्यात्स्थिरं येन पापं हित्वः हरिं व्रजेत् ।।१६

मगध देश में होने वाले नृपतियों में जरासन्ध, सहदेव, सोमापि, श्रुतश्रवा, अयुतायु, निरमित्र, स्वक्षेत्र, बहुकर्मक, श्रुतञ्जय, सेनजित्, भूरिः शुचि, क्षेम्य, सुव्रत, धर्म, श्मश्रुम, दृढ़सेनक, सुमति, सुबल, नीत, सत्यजित्'

विश्वजित्, इष्टुञ्जय, ये सब नृप बार्हद्रथ कहे गये हैं ॥६-११॥ इसके उपरान्त सब अधार्मिष्ठ और शूद्र नृपति होंगे। स्वर्ग आदि के प्रदान करने वाले अव्यय साक्षात् भगवान् नारायण ही होते हैं ॥१२॥ तीन प्रकार का लय होता है जिनके नाम नैमित्तिक, प्राकृतिक, और आत्यन्तिक होते हैं। यह भूमि जल में लय को प्राप्त हो जाती है। जल तेज में और वह तत्त्व तेज अर्थात् पावक वायु में तथा वायु आकाश में लय होता है। वह आकाश अहङ्कार में, अहङ्कार बुद्धि में, बुद्धि जीव में, जीव अव्यक्त में शौर यह अव्यक्त आत्मा में लय होता है ॥१३-१४॥ आत्मा ही पर ईश्वर विष्णु एक है—वह ही नारायण नर और विनाश रहित है। अन्य यह समस्त जगत् और सर्ग आदि नाशवान् है ॥१५॥ जितने भी बड़े २ महान् नृप आदि इस मही मण्डल पर हो गये हैं वे सभी नाश को प्राप्त हो गये हैं और यहाँ स्थायी रूप से किसी की भी स्थित नहीं हो सकी है। अतः सबका निष्कर्ष यही है कि पाप कर्मों से बचे रहो और धर्म के कर्म करो जिससे स्थिर होते हुए सम्पूर्ण पापों का नाश कर भगवान् श्री हरि के सान्निध्य में पहुंच जाओ ॥१६

६४—रामायण-सार

रामायणमतो वक्ष्ये श्रुतं पापविनाशनम्।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ॥१
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्रविस्तस्मान्मनुः स्मृतः।
मनोरिक्ष्वाकुरस्याभूद्वंशे राजा रघुः स्मृतः ॥२
रघोरजस्ततो जातो राजा दशरथो बली।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो महाबलपराक्रमाः ॥३
कौशल्यायामभूद्रामो भरतः कैकयीसुतः।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां बभूवतुः ॥४
रामो भक्तः पितुर्मातुर्विश्वामित्रादवाप्तवान्।
अस्त्रग्रामं ततो यक्षीं ताड़कां प्रजधान ह ॥५
विश्वामित्रस्य यज्ञे वै सुबाहुं न्यवधीद्बली।
जनकस्य क्रतुं गत्वा उपयेमेऽथ जानकीम् ॥६

उर्मिला लक्ष्मणो वीरो भरतो माण्डवीं सुताम् ।
शत्रुघ्नो वै कीर्त्तिमतीं कुशध्वजसुते उभे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसलिये अब हम सम्पूर्ण पापों के विनाश करने वाली रामायण का वर्णन करते हैं। भगवान् विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा हुए थे और मरीचि उनके पुत्र हुए थे ॥१॥ मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। उससे रवि की उत्पत्ति हुई और रवि से मनु का जन्म हुआ था। मनु से इक्ष्वाकु पैदा हुए थे और फिर इसके वंश में रघु नाम वाला महान् प्रतापी राजा हुआ था ॥२॥ रघु से अज की उत्पत्ति हुई और फिर अज महाराज के दशरथ नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था। यह बहुत ही बलवान् हुए थे। महाराज दशरथ के महान् बल और पराक्रम वाले चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३॥ दशरथ महाराज की सबसे बड़ी पत्नी कौशल्या के उदर से श्रीराम का जन्म हुआ था और कैकेयी के पुत्र का नाम भरत था। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन दो पुत्रों ने सुमित्रा के जन्म लिया था ॥४॥ श्री राम अपने माता-पिता के परम भक्त थे। श्रीराम ने महर्षि विश्वामित्र से सम्पूर्ण अस्त्रों की विद्या को प्राप्त किया था। वहाँ विश्वामित्र के आश्रम में ही यक्षी ताड़का का वध किया था ॥५॥ विश्वामित्र के यज्ञ में बलशाली श्रीराम ने सुबाहु का वध किया था। इसके पश्चात महाराजा जनक की यज्ञशाला में पहुँच कर धनुर्भङ्ग करके जानकी के साथ विवाह किया था ॥६॥ वीरवर लक्ष्मण ने उर्मिला का—भरत ने सुता माण्डवी का—शत्रुघ्न ने कीर्त्तिमती का पाणिग्रहण किया था। ये दोनों कुशध्वज की पुत्री थीं ॥७॥

पित्रादिभिरयोध्यायां गत्वा रामादयः स्थिताः ।
युधाजितं मातुलञ्च शत्रुघ्नभरतौ गतौ ॥८
गतयोर्नृपवर्य्योऽसौ राज्यं दातुं समुद्यतः ।
रामाय तत्सुपुत्राय कैकेय्या प्रार्थितं तदा ॥
चतुर्दश समा वासो वने रामस्य वाञ्छितः ॥९
रामः पितृहितार्थञ्च लक्ष्मणेन च सीतया ।
राज्यञ्च तृणवत्त्यक्त्वा शृङ्गवेरपुरं गतः ॥१०

रथं त्यक्त्वा प्रयागञ्च चित्रकूटगिरिं गतः ।
रामस्य तु वियोगेन राजा स्वर्गं समाश्रितः ॥११
संस्कृत्य भरतश्चागाद्राममाह बलान्वितः ।
अयोध्यां तु समागत्य राज्यं कुरु महामते ॥१२
स नैच्छत्पादुके दत्त्वा राज्याय भरताय तु ।
विसर्जितोऽथ भरतो रामराज्यमपालयत् ॥१३
नन्दिग्रामे स्थितो भक्तो ह्ययोध्यां नाविशद् व्रती ।
रामोऽपि चित्रकूटाच्च अत्रेराश्रममाययौ ॥१४

अयोध्या में आकर श्रीराम आदि सब भाई अपने माता-पिता के साथ स्थित रहे थे । भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित के पास चले गये थे ॥८॥ इन दोनों भाइयों के ननसाल चले जाने के बाद नृप श्रेष्ठ दशरथ ने श्रीराम को राज्याभिषिक्त करने का विचार किया था । उसके अति सत्पुत्र राम के लिए कैकेयी ने चौदह वर्ष पर्यन्त वन में निवास कराने का वरदान राजा से माँग कर वचन ले लिया था ॥६॥ श्रीराम ने अपने पिता के हित के लिए अपनी पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ अयोध्या के महान् विशाल राज्य वैभव को एक तिनके की भाँति त्याग कर वनवास को प्रस्थान कर दिया और शृङ्गवेर पुर में चले गये थे ॥१०॥ मार्ग में रथ का त्याग कर वह प्रयाग और चित्रकूट गिरि पर चले गये थे । प्राणाधिक प्रिय श्रीराम जैसे पुत्र के वियोग से महाराज दशरथ ने पार्थिव शरीर का त्याग कर स्वर्ग का प्रस्थान कर दिया था ।।११।। भरत ने ननसाल से आकर पिता का दाह-संस्कार आदि सम्पूर्ण कर्म किया और बल, दल सहित वन में श्रीराम के समीप पहुंच कर उनसे प्रार्थना की कि आप वापिस अयोध्या जाकर अपना राज्य–शासन स्वीकार करें ॥१२॥ श्रीराम ने पिता के वचनों का पूर्ण पालन करने के विचार से इस प्रार्थना को स्वीकृत नहीं किया था और राज्यासन पर रखने के लिए अपनी चरण-पादुकाऐं प्रदान कर भरत को विदा कर दिया था कि अपने प्रतिनिधि के स्वरूप में तब तक वह राज्य का पालन करे ॥१३॥ भरत ने वनवास जैसा पूर्ण व्रत का पालन किया था । उसने

अयोध्या में प्रवेश नहीं किया था और नन्दि ग्राम में रहने लगे। फिर श्री राम भी चित्रकूट से अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँच गये थे ॥१४॥

नत्वा सुतीक्ष्णं चागस्त्यं दण्डकारण्यमागतः ।
तत्र शूर्पणखा नाम राक्षसी चात्तुमागता ॥१५
निकृत्य कर्णौ नासे च रामेणाथापराहिता ।
तत्प्रेरितः खरश्चागाद् दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥१६
चतुर्दशसहस्रेण रक्षसां तु बलेन च ।
रामोऽपि प्रेषयामास बाणैर्यमपुरञ्च तान् ॥१७
राक्षस्या प्रेरितोऽभ्यागाद्रावणो हरणाय हि ।
मृगरूपं स मारीचं कृत्वाग्रेऽथ त्रिदण्डधृक् ॥१८
सीतया प्रेरितो रामो मारीचं निजघान ह ।
म्रियमाणः स च प्राह हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१९
सीतोक्तो लक्ष्मणोऽथागाद्रामश्चानु ददर्श तम् ।
उवाच राक्षसी माया नूनं सीता हृतेति सा ॥२०
रावणोऽन्तरमासाद्य अङ्केनादाय जानकीम् ।
जटायुषं विनिर्भिद्य ययो लङ्कां ततो बली ॥२१

वहाँ पर सुतीक्ष्ण और अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके फिर दण्डकारण्य नामक वन में आगये थे। वहाँ पर शूर्पणखा नाम वाली राक्षसी इनको खाने के लिए आ गई थी ॥१५॥ उसके दोनों कान और नाक काटकर भगवान् श्रीराम ने उसे अपराहित कर दिया था। उसने जाकर अपने दुःख और इस कुरूपता के अपमान का रोना भाई खर तथा दूषण के सामने किया तो उससे प्रेरित होकर वे खर,दूषण और त्रिशिरा चौदह हजार राक्षसों की सेना लेकर इनसे युद्ध करने को वहाँ आगये थे। श्रीराम ने अपने अमोघ बाणों से सभी को मार कर यमपुर भेज दिया था ॥१६-१७॥ फिर उस शूर्पणखा राक्षसी ने जगज्जननी जानकी की सुन्दरता बतलाते हुए अपने अपमानित होने की बात रावण से जाकर कही थी और रावण ने सीता के हरण के लिए मारीच को मृग का रूप बना कर आगे कर दिया और वह एक तीन दण्ड धारी सन्यासी का रूप धारण

कर वहाँ आ गया था ॥१८॥ सीता ने सोने के मृग की छाला प्राप्त करने को राम को प्रेरित कर उसे मारने को भेज दिया था और इधर राम ने मारीच का वध किया था। मरते समय मारीच ने "हा सीते! हा लक्ष्मण!" ये शब्द मुँह से निकाले थे। इन शब्दों को सुनकर जानकी ने लक्ष्मण को भी राम को देखने के लिये पीछे से भेज दिया था। लक्ष्मण को पीछे से आया हुआ श्रीराम ने देखकर कहा—निश्चय ही राक्षसों की माया के द्वारा सीता का हरण होगया है ॥१९-२०॥ रावण ने जानकी को गोद में उठा कर हरण किया था। मार्ग में वह राक्षस रावण जटायु का भेदन कर जानकी को लङ्कापुरी में ले पहुंचा था ॥२१॥

अशोकवृक्षच्छायायां रक्षितां तामधारयत्।
आगत्य रामः शून्याञ्च पर्णशालां ददर्श ह ॥२२
शोकं कृत्वा जानक्या मार्गणं कृतवान्प्रभुः।
जटायुषञ्च संस्कृत्य तदुक्तो दक्षिणां दिशम् ॥२३
गत्वा सख्य ततश्चक्रे सुग्रीवेण च राघवः।
सप्त तालान्विनिर्भिद्य शरेणानतपर्वणा ॥२४
वालिनञ्च विनिर्भिद्य किष्किन्धायां हरीश्वरम्।
सुग्रीवं कृतवान्नाम ऋष्यमूके स्वयं स्थितः ॥२५
सुग्रीवः प्रेषयामास वानरात्पर्वतोपमान्।
सीताया मार्गणं कर्त्तुं पूर्वाद्यैः सुमहाबलान् ॥२६
प्रतीचीमुत्तरां प्राचीं दिशं गत्वा समागताः।
दक्षिणान्त दिशं ये च मार्गन्त्योऽथ जानकीम् ॥२७
वनानि पर्वतान्द्वीपान्नदीनां पुलिनानि च।
जानकीन्ते ह्यपश्यन्तो मरणे कृतनिश्चयाः ॥२८

वहाँ रावण ने अशोक वृक्ष की छाया में उसे रख दिया था। उधर श्रीराम ने देखा था कि पर्णशाला जानकी से रहित सूनी थी ॥२२॥ श्री राम ने हृदय में बहुत शोक किया और फिर जानकी की खोज करते हुए वे इधर-उधर वन में भ्रमण करने लगे। जटायु को मृत प्रायः देखा और उसके मर जाने पर उसका संस्कार किया था। जटायु ने दक्षिण

दिशा में जानकी को ले जाने की बात बताई थी ॥२३॥ फिर श्रीराम ने ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव के साथ मित्रता की थी। सुग्रीव को अपने वाणों की अमोघता सात तालों को भेदन कर दिखलाई थी और सुग्रीव के भाई बाली को मार कर सुग्रीव को किष्किन्धा पुरी का राजा बना दिया था। इसके अनन्तर स्वयं राम ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगे थे। सुग्रीव ने सीता की खोज करने के लिए बड़े-बड़े बलवान् बानरों को भेजा था। वे बलवान् बन्दर उत्तर आदि दिशाओं से तथा पूर्व और पश्चिम सभी दिशाओं से खोज करके वापिस लौट आये थे। जो बन्दर सीता को ढूंढ़ने के लिए दक्षिण दिशा में गये थे उन्होंने वन, नदियों के पुलिन, पर्वत और द्वीपों में सर्वत्र जानकी की खोज की थी किन्तु उन्होंने कहीं पर भी जानकी को नहीं पाया तो फिर उन सबने मरने का निश्चय किया था ॥२४-२८॥

सम्पातिवचनाज्ज्ञात्वा हनूमान्कपिकुञ्जरः।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे मकरालयम् ॥२९
अपश्यज्जानकीं तत्र अशोकवनिकास्थिताम्।
भर्त्सितां राक्षसीभिश्च रावणेन च रक्षसा ॥३०
भव भार्य्येति वदता चिन्तयन्तीञ्च राघवम्।
अंगुरीयं कपिर्दत्त्वा सीतां कौशल्यमब्रवीत् ॥३१
रामस्य तस्य दूतोऽहं शोकं मा कुरु मैथिलि।
स्वाभिज्ञानञ्च मे देहि येन रामः स्मरिष्यति ॥३२
तच्छ्रुत्वा प्रददौ सीता वेणीरत्नं हनूमते।
यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा वाच्यं त्वया गते ॥३३
तथेत्युक्त्वा तु हनुमान्वनं दिव्यं बभञ्ज ह।
हत्वाक्षं राक्षसांश्चान्यान्बन्धनं स्वयमागतः ॥३४
सर्वैरिन्द्रजितो बाणैर्दृष्ट्वा रावणमब्रवीत्।
रामदूतोऽस्मि हनुमान्देहि रामाय मैथिलीम् ॥३५

जटायु के सम्पाति गृद्ध के वचन से ज्ञान प्राप्त करके वानरों में परम शिरोमणि हनुमान ने सौ योजन के विस्तार वाले समुद्र को लाँघ लिया

था ।।२९।। और फिर अशोक वाटिका के मध्य में संस्थित जानकी को लङ्कापुरी में हनुमान ने पहुँच कर देखा था। वहाँ बहुत-सी राक्षसियाँ उनको भर्त्सना दे रहीं थी और कभी-कभी रावण भी आकर भय-त्रस्त किया करता था ।।३०।। रावण बार-बार जानकी से मेरी भार्या बन जाओ—यही कहता था। सीता अहर्निश श्री राघवेन्दु का चिन्तन किया करती थीं। इसी बीच में हनुमान ने श्रीराम की दी हुई अंगूठी देकर समस्त कुशलता उन्हें सुना दी थी ।।३१।। हनुमान ने कहा—हे मैथिली ! मैं श्रीराम का दूत हूँ—अब आप कोई भी शोक न करिये। अब आप कोई अपनी पहिचान की वस्तु दे दीजिए जिसको देखकर राम स्मरण करेंगे ।।३२।। यह हनुमान की प्रार्थना का श्रवण करके सीता ने अपनी वेणी का रत्न निकाल कर हनुमान को दे दिया था और हनुमान से जानकी ने यह कहा कि श्रीराम से कहना कि मुझे शीघ्र ही निकाल कर लिवा ले जावें। हनुमान ने कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा। फिर हनुमान ने लङ्का के उद्यानको नष्ट कर दिया था जो कि बहुत ही अच्छा बना हुआ था। इस पर आए हुए अक्षयकुमार रावण के पुत्र का वध कर दिया और अन्य भी बहुत-से राक्षसों का वध कर दिया था और फिर स्वयं ही बन्धन में आ गए थे ।।३३-३४।। मेघनाद ने हनुमान को बाँधकर रावण के सामने पहुँचाया तो वहाँ हनुमान ने कहा—हे रावण ! मैं राम का दूत हूँ—अब तुझे जानकी को श्रीराम की सेवा में भेज देना चाहिए—इसी में तुम्हारा कल्याण है ।।३५।।

एतच्छ्रुत्वा प्रकुपितो दीपयामास पुच्छकम् ।
कपिर्ज्वालतलाङ्गूलो लंकां देहे महाबलः ।।३६
दग्ध्वा लंकां समायातो रामपार्श्वं स वानरः ।
जग्ध्वा फलं मधुवने दृष्टा सीतेत्यवेदयत् ।।३७
वेणीरत्नञ्च रामाय रामो लंकापुरं ययौ ।
ससुग्रीवः सहनुमान्साङ्गदाद्यः सलक्ष्मणः ।।३८
विभीषणोऽपि सम्प्राप्तः शरणं राघवं प्रति ।
लंकैश्वर्य्येऽभ्यषिञ्चद्रामस्तं रावणानुजम् ।।३९

रामो नलेन सेतुञ्च कृत्वाब्धौ चोत्ततार तम् ।
सुवेलावस्थितश्चैव पुरीं लंकां ददर्श ह ॥४०
अथ ते वानरा वीरा नीलांगदनलादयः ।
धूम्रधूम्राक्षवीरेन्द्रा जाम्बवत्प्रमुखास्तदा। ।४१
मैन्दद्विविदमुखास्ते पुरीं लंकां बभञ्जिरे ।
राक्षसांश्चमहाकायान्कालाञ्जनचयोपमान् ॥४२
रामः सलक्ष्मणो हत्वा सकपिः सर्वराक्षसान् ।
विद्युज्जिह्वञ्च धूम्राक्षं देवान्तकनरान्तकौः ॥४३
महोदरमहापार्श्वावतिकायं महाबलम् ।
कुम्भं निकुम्भं मत्तञ्च मकराक्षं ह्यकम्पनम् ॥४४
प्रहस्तं वीरमुन्मत्तं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥४५

हनुमान की ऐसी बात सुनकर रावण को बहुत क्रोध आ गया और उसने हनुमान की पूंछ में आग लगवा दी थी। जब पूँछ में आग की ज्वालाओं ने भीषण रूप धारण किया तो उस महान् बलवान् हनुमान ने लङ्कापुरी को जला दिया था ॥३६॥ उस पूरी लंकापुरी को जलाकर वह वानर शिरोमणि हनुमान वापिस श्रीराम के समीप में आ गया था, किष्किन्धा पुरी में आकर वहाँ के उद्यान में यथेष्ट रूप से फल खाकर अर्थात् मधुवन में फल खाने के पश्चात् फिर हनुमान ने जानकी के प्राप्त करने का समाचार श्रीराम को सुना दिया था ॥३७॥ इसके अनन्तर हनुमान ने जानकी के द्वारा दिया हुआ वह वेणी का रत्न जो एक अभिज्ञान के रूप में लाया था श्रीराम को दे दिया था। श्रीराम ने लक्ष्मण—सुग्रीव—अंगद प्रवृति सबके साथ लंकापुरी में चढ़ाई कर दी थी। फिर रावण का भाई विभीषण श्रीराम की शरणागति में आ गया था। रावणादि के सम्पूर्ण राज्य का स्वामी विभीषण को बनाकर उसका पहले ही अभिषेक कर दिया था। इसके उपरान्त नल नामक वानर के द्वारा समुद्र में पुल बनाकर सागर को पार कर लङ्का के पास समुद्र के तट पर अपना पड़ाव श्रीराम ने डाल दिया था। वहाँ से ही लंकापुरी का भली भाँति निरीक्षण किया था ॥३८-४०॥ इसके अनन्तर बड़े-बड़े वीर वानर जिनमें

नील—अंगद—नल—धूम—धूम्राक्ष—वीरेन्द्र—परम प्रमुख जाम्बवान् —मैन्द—द्विविद आदि सभी थे। इन सब ने लंका को नष्ट-भ्रष्ट कर बड़े वीर काले पर्वत के समान विशालकाय सभी राक्षसों का हनन करके बानरों के और लक्ष्मण के सहित राम ने भयानक युद्ध किया था। धूम्राक्ष ने विद्युज्जिह्व को—देवान्तक—नरान्तक को—महोदर—महापार्श्व—अतिकाय—महाबल—कुम्भ—निकुम्भ-मत्त--मकराक्ष-अकम्पन —प्रहस्त का वध किया था। वीर—उन्मत्त-कुम्भकर्ण महाबली का हनन किया था ॥४१-४५॥

रावणिं लक्ष्मणश्छित्वा ह्यस्त्राद्यै राघवो बली।
निकृत्य बाहुचक्राणि रावणं तु व्यपातयत् ॥४६
सीतां शुद्धां गृहीत्वाथ विमाने पुष्पके स्थितः।
सवानरः समायातो ह्ययोध्यां प्रवरां पुरीम् ॥४७
तत्र राज्यं चकाराथ पुत्रवत्पालयन्प्रजाः।
दशाश्वमेधानाहृत्य गयाशिरसि पातनम् ॥४८
पिण्डानां विधिवत्कृत्वा दत्वा दानानि राघवः।
पुत्रौ कुशलवौ दृष्ट्वा तौ राज्येऽभ्यषेचयत् ॥४९
एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्।
शत्रुघ्नो लवणं जघ्ने शैलूषो भरतः स्थितः ॥५०
अगस्त्यादीन्मुनीत्वा श्रुत्वोत्पत्तिञ्च रक्षसाम्।
स्वर्गं गतो जनैः सार्द्धमयोध्यास्थैः कृतार्थकः ॥५१

रावण के पुत्र इन्द्रजीत मेघनाथ का वध लक्ष्मण ने किया था और अतुल बलशाली श्रीराम ने अपने अस्त्रों के द्वारा रावण की भुजाओं का छेदन कर उसका हनन रणभूमि में कर दिया था ॥४६॥ इसके अनन्तर सीता की शुद्धि करके अपने साथ ले लिया और पुष्पक विमान पर समारूढ़ होकर प्रमुख परम भक्त बानरों के सहित श्रेष्ठतम अयोध्यापुरी में चले आए थे ॥४७॥ यहाँ पर आकर अपनी समस्त प्रजा को पुत्र की तरह समझकर प्रेमपूर्वक उसका पालन किया और राज्य का शासन किया था। दश अश्वमेध यज्ञ किये तथा गया तीर्थ में विधिपूर्वक पितृगणों

का पिण्डदान किया था तथा बहुत-से दान भी दिए थे। श्रीराम ने अपने दो पुत्र कुश और लव को राज्य शासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥४८॥ ग्यारह सहस्र वर्ष तक श्रीराम ने राज्य किया था और भरत ने शैलूष को समुत्पन्न किया था। अगस्त्य आदि मुनियों को प्रणिपात करके और राक्षसों की उत्पत्ति का श्रवण करके पूर्णतया कृतार्थ होकर अयोध्या में स्थित सब मनुष्यों के साथ श्रीराम स्वर्ग में चले गये थे ॥४९-५१॥

६५—हरिवंश सार

हरिवंशं प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ।
वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत् ॥१
धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये ।
कृष्णः पीत्वा स्तनौ गाढं पूतनामनयत्क्षयम् ॥२
शकटः परिवृत्तोऽथ भग्नौ च यमलार्जुनौ ।
दमितः कालियो नागो धेनुको विनिपातितः ॥३
धृतो गोवर्द्धनः शैल इन्द्रेण परिपूजितः ।
भारावतरणं चक्रे प्रतिज्ञां कृतवान्हरिः ॥४
रक्षणायार्जुनादेश्च अरिष्टादि नपातितः ।
केशी विनिहतो दैत्यो गोपाद्याः परितोषिताः ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम हरिवंश का वर्णन करते हैं। जिसमें पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य है। वसुदेव से देवकी भार्या में वासुदेव बल उत्पन्न हुए थे ॥१॥ वासुदेव की समुत्पत्ति धर्म आदि के संरक्षण करने के लिए तथा अधर्म प्रभृति के विनाश करने के लिए ही हुई थी। श्रीकृष्ण ने पूतना के खूब जोर से स्तनों को पीकर उसका क्षय कर दिया था ॥२॥ श्रीकृष्ण ने शकट को परिवृत्त कर दिया था और यमलार्जुनों को भग्न कर दिया था। कालिय नाग का दमन किया तथा धेनु ासुर का विनिपातन किया था ॥३॥ गोवर्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर धारण कर समस्त व्रज की इन्द्र के कोप से रक्षा की थी और इन्द्र के द्वारा परिपूजित हुए थे। हरि भगवान् ने प्रतिज्ञा की थी और भूमि के भार का अवतरण कर दिया था ॥४॥ अर्जुन आदि की

रक्षा करने के लिए अरिष्ट आदि का निपातन किया था। केशी नाम वाले दैत्य का वध किया था तथा गोप आदि सबको परिपुष्ट कर दिया ॥५॥

चाणूरोमुष्टिको मल्लः कंसो मञ्चान्निपातितः।
रुक्मिणीसत्यभामाद्या अष्टौ पत्न्यो हरेः पराः ॥६
षोडशस्त्रीसहस्राणि अन्याअन्यसन्महात्मनः।
तासां पुत्राश्च पौत्राद्या शतशोऽथ सहस्रशः ॥७
रुक्मिण्याञ्चैव प्रद्युम्नो न्यवधीच्छम्बरञ्च यः।
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धोऽभूदुषाबाणसुतापतिः ॥८
हरिशङ्करयोर्यत्र महायुद्धं बभूव ह।
बाणबहुसहस्रञ्च छिन्नं बाहुद्वयो ह्यभूत् ॥९
नरको निहतो येन पारिजातं जहार यः।
बलश्च शिशुपालश्च हतश्च द्विविदः कपिः ॥१०
अनिरुद्धादभूद्वज्रः स च राजा गते हरौ।
सान्दीपनिं गुरुञ्चक्रे सपुत्रञ्च चकार सः।
मथुरायाञ्चोग्रसेन पालनञ्च दिवौकसाम् ॥११

मथुरा में पहुँच कर चाणूर और मुष्टिक नाम वाले मल्लों को मार गिराया था तथा राजा को चोटी पकड़ कर मञ्च से नीचे गिरा कर हनन किया था। रुक्मिणी और सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण की आठ प्रमुख पत्नियाँ हुई थीं ॥६॥ महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण की अन्य भी सोलह सहस्र पत्नियाँ थीं। उनके पुत्र और पौत्र सैकड़ों एवं सहस्रों की संख्या में हुए थे ॥७॥ रुक्मिणी से प्रद्युम्न पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जिसने शम्बर का वध किया था। प्रद्युम्न के आत्मज का नाम अनिरुद्ध था जो वाण की पुत्री उषा के पति थे ॥८॥ जहाँ पर हरि और शङ्कर इन दोनों का महान् युद्ध हुआ था। वाण की सहस्र वाहु छिन्न होगईं थीं और दो वाहुओं वाला होगया था ॥९॥ जिसने नरकासुर का निहनन किया था जोकि पारिजातवृक्ष के हरण करने वाला था। बल और शिशुपाल हुए। द्विविद नामक कपि मारा गया था। अनिरुद्ध से वज्रनाभ हुए। वह हरि के गत होने पर राजा हुआ। श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि को अपना गुरु बनाया

था अर्थात् समस्त विद्याओं का अध्ययन सांदीपनि से किया था । गुरु दक्षिणा के रूप में उसके मृत पुत्र को लाकर दिया था जिससे पुनः पुत्र वाले होगये थे। मथुरा में उग्रसेन को राजा फिर से बनाया था और देवों का पूर्णतया पालन किया था ॥१०-११॥

९६—महाभारत सार

भारतं संप्रवक्ष्यामि भारावतरणं भुवः ।
चक्रे कृष्णो युध्यमानः पाण्डवादिनिमित्ततः ॥१
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरात्रितः ।
सोमस्ततो बुधस्तस्मादुर्वश्याञ्च पुरूरवाः ॥२
तस्यायुस्तत्र वंशेऽभूद्ययातिर्भरतः कुरुः ।
शन्तनुस्तस्य वंशेऽभूद् गङ्गायां शन्तनोः सुतः ॥३
भीष्मः सर्वगुणैर्युक्तो ब्रह्मवैवर्त्तपारगः ॥४
शन्तनोः सत्यवत्याञ्च द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
चित्राङ्गदं तु गन्धर्वः पुत्रं चित्राङ्गदोऽवधीत् ॥५
अन्यो विचित्रवीर्य्योऽभूत्काशिराजसुतापतिः ।
विचित्रवीर्य्ये स्वर्याते व्यासात्तत्क्षेत्रतोऽभवत् ॥६
धृतराष्ट्रोऽम्बिकापुत्रः पाण्डुरम्बालिकासुतः ।
भुजिष्यायान्तु विदुरो गान्धार्य्यां धृतराष्ट्रतः ॥७
दुर्य्योधनप्रधानास्तु शतसंख्या महाबलाः ।
पाण्डोः कुन्त्याञ्च माद्रयाञ्च पञ्च पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम महाभारत के विषय में वर्णन करेंगे जोकि इस भूमि पर एक अत्यन्त विशाल भार का अवतरण हुआ था। इसी मही मण्डले के भार को हटाने के लिये भारत युद्ध की पूरी भूमिका भगवान् श्रीकृष्ण ने ही की थी और अर्जुन आदि पाण्डवों को इसका निमित्त मात्र बना कर ही यह युद्ध किया गया था ॥१॥ भगवान् आदि पुरुष विष्णु की नाभि से समुत्पन्न कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई फिर ब्रह्मा के पुत्र अत्रि मुनि हुए और अत्रि से सोम समुत्पन्न हुए। सोम से बुध और बुध से उर्वशी में पुरूरवा ने जन्म ग्रहण किया था ॥२॥ पुरूरवा

का पुत्र आयु हुआ और उस वंश में ययाति-भरत और कुरु हुए थे। इनके उपरान्त राजा शन्तनु ने जन्म लिया। उस शन्तनु से गङ्गा में भीष्म (देवव्रत) नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जो समस्त गुणगण युक्त और ब्रह्मवैवर्त के पारगामी थे ॥३-४॥ राजा शन्तनु की दूसरी पत्नी जो सत्यवती एक मल्लाह की पुत्री थी उसमें दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे। एक उन दोनों में चित्राङ्गद पुत्र था जिसको चित्राङ्गद गन्धर्व ने वध कर दिया था ॥५॥ दूसरा विचित्रवीर्य नाम वाला आत्मज हुआ था जिसका विवाह काशिराज की पुत्री के साथ हुआ था। विचित्रवीर्य के स्वर्ग गमन कर जाने पर महर्षि व्यासदेव से उसके क्षेत्र अर्थात् पत्नी में अम्बिका नाम की स्त्री से धृतराष्ट्र और अम्बालिका नामधारिणी स्त्री से पाण्डु का जन्म हुआ था। भुजिष्या नाम वाली एक दासी से विदुर की उत्पत्ति हुई थी। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी थी उसमें सौ पुत्र हुए थे जो कौरव नाम से विख्यात हुए थे। इनमें दुर्योधन प्रधान था और ये सब महान् बल वाले हुए थे। पाण्डु से कुन्ती और माद्री नाम वाली दो पत्नियों में पाँच पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो पाण्डव—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥६-८॥

युधिष्ठिरो भीमसेनो ह्यर्जुनो नकुलस्तथा।
सहदेवश्च पञ्चैते महाबलपराक्रमाः ॥९
कुरुपाण्डवयोर्वैरं दैवयोगाद्बभूव ह।
दुर्य्योधनेनाधीरेण पाण्डवाः समुपद्रुताः ॥१०
दग्ध्वा जतुगृहं वीरास्ते मुक्ता स्वधियामलाः।
ततस्तदेकचक्रायां ब्राह्मणस्य विवेशने ॥११
विप्रवेशा महात्मानो निहत्य बकराक्षसम् ॥१२
ततः पाञ्चालविषये द्रोणद्यास्ते स्वयंवरम्।
विज्ञाय वीर्य्यशुल्कान्तां पाण्डवा उपयेमिरे ॥१३
द्रोणभीष्मानुमत्या तु धृतराष्ट्र समानयत्।
अर्द्ध राज्यं ततः प्राप्ता इन्द्रप्रस्थे पुरोत्तमे ॥१४

इन पाँचों पाण्डवों के नाम युधिष्ठिर-भीमसेन-अर्जुन-नकुल और सहदेव थे। ये पाँचों पुत्र महान् बल और पराक्रम से समन्वित हुए थे।

॥९॥ कुछ दैव का ऐसा योग बन गया था कि इन कौरव और पाण्डवों में बड़ा भारी आपस में वैर होगया था। अधीर दुर्योधन ने पाण्डवों को बहुत ही पीड़ित करना आरम्भ कर दिया था। वह इनका समूलोन्मूल कर स्वयं सम्पूर्ण साम्राज्य सुख का उपभोग करना चाहता था ॥१०॥ दुर्योधन ने एक लाख का महल बनवा कर उसमें इन पाण्डवों को जला देने की योजना तैयार की थी किन्तु ये परम विशुद्ध पाण्डव अपने बुद्धि-वैभव से उसमें से भी मुक्त होकर बच गये थे। ये सब बड़े ही बहादुर थे इसके उपरान्त वे एक चक्रा में ब्राह्मण के घर में विप्रवेश वाले महात्मा रहे थे। फिर वक नामकराक्षस का निहनन किया था।।११-१२।। इसके अनन्तर पाञ्चाल देश में उन्होंने द्रोपदी का स्वयम्बर होगा,यह जानकर वहाँ लक्ष्य वेध कर वीर्य के शुल्क वाली द्रोपदी के साथ विवाह किया था ॥१३॥ फिर आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की अनुमति से धृतराष्ट्र ने उनको बुला लिया था। इसके अनन्तर उत्तम नगर इन्द्रप्रस्थ में रहने लगे और आधा राज्य प्राप्त कर लिया था ॥१४॥

राजसूयं ततश्चक्रुः सभां कृत्वा यतव्रताः।
अर्जुनो द्वारवत्यन्तु सुभद्रां प्राप्तवान्प्रियाम् ॥
वासुदेवस्य भगिनीं मित्रं देवकिनन्दनम् ॥१५
नन्दिघोषं रथं दिव्यमग्नेर्धनुरनुत्तमम्।
गाण्डीवं नाम तद्दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥
अक्षयान्सायकांश्चैव तथाभेद्यञ्च दंशनम् ॥१६
स तेन धनुषा वीरः पाण्डवो जातवेदसम्।
कृष्णद्वितीयो बीभत्सुरतर्पयत वीर्य्यवान् ॥१७
नृपान्दिग्विजये जित्वा रत्नान्यादाय वै ददौ।
युधिष्ठिराय महते भ्रात्रे नीतिविदे मुदा ॥१८
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः।
जितो दुर्य्योधनेनैव मायाद्यूतेन पापिना ॥१९
कर्णदुःशासनमते स्थितेन शकुनेर्मते।
अथ द्वादश वर्षाणि वने तेपुर्महत्तपः ॥२०

सधौम्या द्रौपदीषष्ठा मुनिवृन्दाभिसंवृता।
ययुर्विराट्नगरं हि गुप्तरूपेण संश्रिताः ।।२१

इसके अनन्तर यत व्रत वाले पांडवों ने सभा करके राजसूय यज्ञ किया था। अर्जुन ने द्वारका में सुभद्रा के साथ विवाह कर लिया था जो वासुदेव की भगिनी थी। अर्जुन के देवकीनन्दन मित्र थे ।।१५।। नन्दिघोष-अग्नि का दिव्य रथ और परमोत्तम दिव्य गाण्डीव धनुष ये तीनों लोकों में विश्रुत हैं। कभी क्षय को प्राप्त न होने वाले सायक और अभेद्य दंशन है ।।१६।। उसने उस धनुष के द्वारा जातवेदा को तृप्त कर दिया था। पांडव महान् वीर पराक्रमी था और कृष्ण की सहायता से युक्त एवं वीभत्सु था ।।१७।। अर्जुन ने दिग्विजय किया था, उसमें बहुत से राजाओं पर विजय प्राप्त की थी। रत्नों की राशि लाकर नीति के ज्ञाता बड़े भाई युधिष्ठिर को प्रसन्नता पूर्वक समर्पित की थी ।।१८।। युधिष्ठिर बहुत ही धर्मात्मा थे किन्तु भाइयों से परिवारित उसको पापी दुर्योधन ने मायाद्यूत क्रीड़ा के द्वारा जीत लिया था ।।१९।। दुर्योधन ने जो द्यूत (जूआ) क्रीड़ा की योजना बनाई थी वह कर्ण-दुःशासन और शकुनि मे सम्मति करके ही की थी। द्यूत में सभी कुछ हार जाने के पश्चात् पांडवों ने बारह वर्ष तक वन में तपस्या की थी ।।२०।। द्रोपदी के साथ पाँचों पांडव धौम्य सहित मुनियों के वृन्द से अभिसंवृत होते हुए विराट् के नगर में पहुँचे थे। वहाँ जाकर गुप्त रूप से अर्थात् अपना अन्य नाम और गुण-कर्म बताकर आश्रय गृहण किया था ।।२१।।

वर्षमेकं महाप्रज्ञा गोग्रहादिमपालयन्।
ततो ज्ञाताः स्वकं राष्ट्रं प्रार्थयामासुराहृताः ।।२२
पञ्चग्रामानर्द्ध राज्याद्वीरा दुर्य्योधनं नृपम्।
नाप्तवन्तः कुरुक्षेत्रे युद्धञ्चक्रुर्बलान्विताः ।।२३
अक्षौहिणीभिर्दिव्याभिः सप्तभिः परिवारिताः।
एकादशभिरुद्युक्ता युक्ता दुर्य्योधनादयः ।।२४
आसीद्युद्धं सङ्कुलञ्च देवासुररणोपमम्।
भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्य्योधने बले ।।२५

पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह ।
शस्त्राशस्त्रि महाघोरं दशरात्रं शराशरि ।।२६
शिखण्डयर्जुनबाणैश्च भीष्मः शरशतैर्युतः ।
उत्तरायणमीक्ष्याथ ध्यात्वा देवं गदाधरम् ।।२७
उक्त्वा धर्मान्बहुविधांस्तर्पयित्वा पितृन्बहून् ।
आनन्दे तु पदे लीनो विमले मुक्तकिल्बिषे ।।२८

इस प्रकार से महान् प्राज्ञ इन पांचों पाण्डवों ने द्रौपदी के सहित एक वर्ष तक अज्ञातवास वहाँ पर गोगृहादि के पालन करते हुए किया था। इसके पश्चात् ज्ञात होते हुए आहत होकर अपने राष्ट्र प्राप्त करने की प्रार्थना की थी ।।२२।। इन्होंने पाँचों भाइयों के लिए केवल पाँच ही ग्राम अपने आधे राज्य से दुर्योधन से मांगे थे किन्तु उस प्रार्थना को भी दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया था। तब दल-बल से समन्वित होकर इन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध किया था जो महान् भारत युद्ध के नाम से प्रख्यात हुआ था ।।२३।। पाण्डवों के पास केवल सात ही अक्षौहिणी सेना थी और दुर्योधन आदि कौरव ग्यारह अक्षौहिणी सेना से समन्वित थे इस प्रकार से दोनों ओर की अठारह अक्षौहिणी सेना का युद्ध हुआ था ।।२४।। यह बड़ा संकुल युद्ध हुआ था। इस युद्ध को देवों और असुरों के समूह से होने वाले युद्ध के समान ही अति भीषण बताया गया है। आदि में दुर्योधन की सेना में भीष्म पितामह ने सेनापति के पद को संभाला था ।।२५।। पाण्डवों के दल का सेनाध्यक्ष शिखण्डी हुआ था। इस तरह दोनों दलों का महान् घोर युद्ध शस्त्रों का शस्त्रों से तथा शरों का शरों के द्वारा दश रात्रि तक चलता रहा ।।२६।। शिखण्डी को आगे कर अर्जुन के बाणों के द्वारा भीष्म सैकड़ों शरों से विद्ध कर दिये गये थे। जब भीष्म पितामह ने अपना अन्त समय समझ लिया तो प्राणत्याग के लिये उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा में देव गदाधारी का ध्यान करने लगे थे ।।२७।। उस समय में भीष्म ने बहुत प्रकार के धर्मों का वर्णन किया, अपने पितृगण को तृप्त किया और फिर मुक्त किल्वष विमल आनन्दमय पद में विलीन होगये थे ।।२८।

ततो द्रोणो ययौ योद्धुं धृष्टद्युम्नेन वीर्य्यवान् ।
दिनानि पञ्च तद्युद्धमासीत्परमदारुणम् ॥२९
यत्र ते पृथिवीपाला हताः पार्थास्त्रसागरे ।
शोकसागरमासाद्य द्रोणोऽपि स्वर्गं माप्तवान् ॥३०
ततः कर्णो ययौ योद्धुमर्जुनेन महात्मना ।
दिनद्वयं महायुद्धं कृत्वा पार्थास्त्रसागरे ॥
निमग्नः सूर्य्यलोकन्तु ततः प्राप स वीर्य्यवान् ॥३१
ततः शल्यो ययौ योद्धुं धर्मराजेन धीमता ।
दिनार्द्धेन हतः शल्यो बाणैर्ज्वलनसन्निभैः ॥३२
दुर्य्योधनोऽथ वेगेन गदामादाय वीर्य्यवान् ।
अभ्यधावत वै भीमं कालान्तकयमोपमः ॥३३
अथ भीमेन वीरेण गदया विनिपातितः ।
अश्वत्थामा गतो द्रौणिः सुप्तसैन्यं ततो निशि ॥३४
जघान बाहुवीर्य्येण पितुर्वधमनुस्मरन् ।
दृष्टद्युम्नं जघानाथ द्रौपदेयांश्च वीर्य्यवान् ॥३५

इसके अनन्तर महान् पराक्रमी आचार्य द्रोण धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने के लिये युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुए थे । पाँच दिन तक यह युद्ध परम दारुण हुआ ॥२९॥ इस युद्ध में अनेक नृपति पार्थास्त्र सागर में निहत होगये थे । फिर अन्त में द्रोणाचार्य भी शोक सागर में प्राप्त होकर स्वर्गगामी होगये थे ॥३०॥ फिर कर्ण अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए आया इसके साथ भी दो दिन पर्यन्त युद्ध होता रहा और यह भी पार्थ अर्जुन के अस्त्रों के सागर में भीषण समर करता हुआ निमग्न होगया । यह महा पराक्रमी कर्ण मरकर सूर्य-लोक में प्राप्त हुआ ॥११॥ फिर धीमान धर्मराज युधिष्ठिर के साथ युद्ध करने के लिये शल्य उपस्थित हुआ । आधे ही दिन में शल्य निहत होगया था क्योंकि अग्नि के समान बड़े तीक्ष्ण बाणों की वर्षा हुई ॥३२॥ इसके पश्चात् दुर्योधन, जो महान् वीर्य–पराक्रम से युक्त था, बड़े ही वेग से गदा लेकर कालान्तक यमराज के समान भीम पर दौड़ कर आया ॥३३॥ इसके अनन्तर वीरवर भीम ने उस दुर्योधन

को अपनी गदा के द्वारा निपातित कर दिया। इसके अनन्तर द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा रात्रि में सेना के सोने पर गया ॥३४॥ उसने अपने पिता द्रोण के वध का स्मरण करते हुए बाहुओं के पराक्रम से धृष्टद्युम्न का हनन कर दिया और द्रौपदी के पुत्रों का भी हनन किया ॥३५॥

दौपद्यां रुद्यमानायामश्वत्थाम्नः शिरोमणिम् ।
ऐषिकास्त्रेण त जित्वा जग्राहार्जु न उत्तमः ॥३६
युधिष्ठिर समाश्वास्य स्त्रीजनं शोकसङ्कुलम् ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितृनथ पितामहान् ॥२८
आश्वासितोऽथ भीमेन राज्यञ्चैवाकरोन्महत् ।
विष्णुमीजेऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥३८
राज्ये परीक्षितं स्थाप्य यादवानां विनाशनम् ।
श्रुत्वा तु मौशले राजा जप्त्वा नामसहस्रकम् ।
विष्णोः स्वर्गं जगामाथ भीमाद्यैर्भ्रातृभिर्युतः ॥३९
वासुदेवः पुनर्बुद्धः स मोहाय सुरद्विषाम् ।
देवादीनां रक्षणाय अधर्महरणाय च ॥४०
दुष्टानाञ्च बधार्थाय अवतार करोति च ।
यथा धन्वन्तरिर्विशे जातः क्षीरोदमन्थने ॥४१
देवादीनां जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह ।
विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने ॥
भारतांश्चावतारांश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नरः ॥४२

जब द्रौपदी के पुत्र की मृत्यु होगई और वह बहुत रुदन करने लगी तो अश्वत्थामा को निग्रहीत करु ऐषिकास्त्र के द्वारा अर्जुन ने उसको जीत लिया और उसकी शिरोमणि को ग्रहण कर लिया ॥३६॥ महाराज युधिष्ठिर को समाश्वासित करके परम शोक से सन्तप्त स्त्रीजनों का समझा-बुझाकर देवों तथा पितृगण को स्नान के पश्चात् सन्तृप्त किया ॥३७॥ भीम के द्वारा आश्वासित होकर युधिष्ठिर ने महान् राज्य का शासन किया और अश्वमेघ यज्ञ के द्वारा भगवान् विष्णु का यजन किया, जिसमें विध-विधान के साथ विपुल दक्षिणादि दी गई ॥३८॥ बहुत दिन पर्यन्त अपने

भाइयों सहित राज्य के सुखों का उपभोग करने के पश्चात् मौशल युद्ध में यादवों का पूर्ण विनाश सुनकर फिर युधिष्ठर ने राज्यासन पर परीक्षित को स्थापित कर दिया। भगवान् के सहस्र नाम का जाप करके भीमादि भाइयों के साथ विष्णु के स्वर्ग में गमन किया ॥३९॥ वासुदेव पुनः बुद्ध हुए। सुरों के द्वेषी लोगों के मोह के लिए और देवादि के रक्षण के वास्ते तथा अधर्म के हरण करने के निमित्त और दुष्टों के वध करने के अर्थ भगवान् अवतार ग्रहण किया करते है जिस प्रकार से क्षीर सागर के मंथन के अवसर पर भगवान् धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे। उन्होंने देवादिकों के जीवन के लिए आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश दिया और उस आयुर्वेद शास्त्र का अध्यापन विश्वामित्र महर्षि के पुत्र सुश्रुत को किया। सुश्रुत भी एक महान् आत्मा वाले महा पुरुष थे। इस तरह इन भारत अवतारों का जो मनुष्य श्रवण करता है वह स्वर्ग लोक की प्राप्ति किया करता है ।४०।४२।

९७—आयुर्वेद

सर्वरोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तत्त्वतः।
आत्रेयाद्यैर्मुनिवरैर्यथा पूर्वमुदीरितम् ॥१

रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुष्टमामयः।
यक्ष्मातङ्कगदावाधाः शब्दाः पर्य्यायवाचिनः ॥२

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥३

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः।
निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूप येन लक्ष्यते ॥४

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥५

तदेव व्यक्ततां जातं रूपमित्यभिधीयते।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥६

हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम्।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥७

विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ।
विपरीतोऽनुपशयो व्यध्यसात्म्येति संज्ञितः ॥८

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम समस्त रोगों के निदान अर्थात् मूलकारण को तुमको बतलाते हैं जिसको तत्त्व पूर्वक आत्रेय आदि मुनि श्रेष्ठों ने पहिले बतलाया था ॥१॥ यह रोग पाप होता है, ज्वर व्याधि है और किसी भी प्रकार का विकार का होना दुष्ट आमय होता है इनके यक्ष्मा, आतङ्क, गदा, वाधा ये सभी शब्द पर्याय वाचक अर्थात् समानार्थक शब्द हुआ करते हैं ॥२॥ निदान,पूर्वरूप, रूप, अर्थात् रोग का स्वरूप, उपशय, और सम्प्राप्ति इन पाँचों के द्वारा रोगों का विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से भली भाँति ज्ञान प्राप्त करना होता है ऐसे यह पाँच प्रकार का निदान ही कहा जाता है क्योंकि इन्हीं से वास्तविक रोगों का ज्ञान होता है ॥३॥ केवल निदान के भी निमित्त, हेतु आयतन, प्रत्यय उत्थान कारण इन पर्याय वाचक शब्दों के द्वारा कहा गया है जिससे कि रोगों का प्राग्रूप लक्षित हुआ करता है ॥४॥ उत्पन्न होने वाला आमय अर्थात् रोग किसी विशेष दोष से ही अधिष्ठित हुआ करता है । लिंग अर्थात् व्याधियों का चिह्न अल्प होने से अव्यक्त प्रकाश में न आने वाला और ठीक प्रकार से न जानने के योग्य होता है ॥५॥ आरम्भ में वह कुछ छिपा हुआ-सा रहता है किन्तु शनै २ अपना एक प्रकट स्पष्ट स्वरूप धारण कर लेता है तो उसी को उसका रूप कहा करते हैं । किसी दोष के होने से निदान हुआ । उसका फिर एक अव्यक्त स्वरूप बनकर पूर्व रूप हुआ और जब वह व्यक्त होकर सामने स्पष्ट होगया तो रूप होगया अर्थात् रोग सही स्वरूप आगया । इसको संस्थान, व्यञ्जन लक्षण, चिह्न और आकृति कहते हैं ॥६॥ हेतु, व्याधि से विपर्यस्त और विपर्यस्त अर्थ के करने वाले औषध-अन्न और विहारों का उपयोग सुखावह होता है उसको व्याधि का उपशय कहते हैं । इसी को सात्म्य नाम से भी कहा जाता है । इसके जो विपरीत हो अर्थात् औषध–अन्न और विहारों का उपयोग सुख देने वाला न हो वही अनुपशय कहा जाता है । इसी को व्याधि की असात्म्य यह संज्ञा दी गई है ॥७-८॥

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्यातिरागतिः ॥९
संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।
सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥१०
दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेःप्राधान्यमादिशेत् ॥११
हेत्वादिकात्स्नविययवैर्बलाबलविशेषणम् ।
नक्तं दिनर्त्तु भुक्तांशैर्व्याधिकालो यथा मलम् ॥१२
इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥१३
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।
अहितस्त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः ॥१४

जिस प्रकार से दुष्ट दोष से और जैसे अनुविसर्पण करने वाले से रोग की निवृत्ति है यह सम्प्राप्ति होती है । इसका आगमन संख्या-विकल्प-प्रधानता बल और काल की विशेषता से होता है । इन्हीं कारणों से इसके भेद भी होते हैं । अब यहाँ आठ प्रकार के ज्वर बतलाते हैं ॥९-१०॥ समवेत हुए दोषों का विकल्प और उनके अशांश की कल्पना स्वतन्त्रता से और पराधीनता से उनसे होने के अनुसार ही व्याधि के प्राधान्य को बतलाना चाहिए ॥११॥ हेतु आदि के पूर्ण अवयवों से बल और अबल की विशेषता होती है । दिन-रात और ऋतु में भुक्त अंशों से व्याधि का काल मल की भाँति होता है ॥१२॥ इस प्रकार से यह निदान का अर्थ ठीक-ठाक बता दिया गया है । व्यासदेव के द्वारा यह उपदिष्ट किया जाता है कि समस्त रोगों का आदिकारण निदान मलों का कुपित हो जाना ही होता है ॥१३॥ उसका प्रकोप अनेक प्रकार की अहित कर वस्तुओं का सेवन करने से होता है । अहित तीन प्रकार का होता है जोकि तीनों का योग है और पहिले बता दिया गया है ॥१४॥

तिक्तोणषकषायाम्लरूक्षाप्रमितभोजनैः ।
धावनोदीरणनिद्राजागरात्युच्चभाषणैः ॥१५

क्रियाभियोगभीशोकचिन्ताव्यायाममैथुनैः ।
ग्रीष्माहोरात्रभुक्तचन्ते प्रकुप्यति समीरणः ॥१६
पित्त कट्वम्लतीक्ष्णोष्णकटुक्रोधविदाहिभिः ।
शरन्मध्याहरात्र्यर्द्ध विदाहसमयेषु च ॥१७
स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यन्दिशीतलैः ।
आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नादिबृंहणैः ॥१८
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसन्तयोः ।
पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा वक्ष्यामि सङ्करान् ॥१९

तीन प्रधान दोष हैं जिनके नाम वात, पित्त, कफ हैं । इनमें भी सबसे प्रवल वायु है । अतः प्रथम वात के प्रकोप के कारणों पर प्रकाश डालते हैं वित्त–उषण–कषाय–अम्ल–रूक्ष और अप्रमित–भोजन से–दौड़ लगाना–उदीरण–निद्रा–जागरण–अधिक ऊँचे स्वर सेभाषण–क्रिया का अभियोग–भय–शोक–चिन्ता–शक्ति से अधिक व्यायाम–मैथुन से–गीष्म में तथा अहोरात्र में भोजन से अन्त में वायु प्रकुपित हो जाया करता है । उपर्युक्त कार्य अधिक मात्रा में ही प्रकोप करने वाले होते हैं ॥१५-१६॥ अब पित्त को कुपित होने के कारणों को बतलाते हैं–कटु–अम्ल (खट्टा) -तीक्ष्ण (तेज)–उष्ण (अधिक गर्म)–क्रोध और विशेष दाह करने वाले भोजन से–शरत् ऋतु के मध्य में—दिन–रात के अर्ध विदाह के समय में पित्त प्रकुपित होता है । अब कफ के प्रकोप के कारण और समय बतलाते हैं–स्वादु –अम्ल–लबण–स्निग्ध–गुरु (भारी)–अभिस्पन्दन करने वाले–शीतल भोजन से–आस्य–अस्वप्न (निद्रा न लेना)–सुख–अजीर्ण–दिन में सोना–बृंहण–अछर्दनादि के प्रयोग से–वसन्त ऋतु में–दिन के पूर्वाह्न में (दुपहर के पूर्व में) और पूर्व रात्रि में कफ प्रकुपित होता है । अब इन तीनों दोषों के मिश्रण के विषय में बतलाते हैं ॥१७-१९॥

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः ।
संकीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाद्यशनादिभिः ॥२०
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः ।
पिण्याकमृत्यवसरपूतिशुष्ककृषामिषैः ॥२१

दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्त्ततः ।
धातोर्दुष्टात्पुरो वाताद्विग्रहावेशविप्लवात् ॥२२
दुष्टामान्नैरतिश्लेष्मग्रहैर्जन्मर्क्ष पीडनात् ।
मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानाञ्च निषेवणात् ॥
स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिश्रोपचारतः ॥२३
प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगविध्यनुगामिनः ।
रसायनं प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ॥२४

वात, पित्त और कफ इन तीनों समस्तों के मिलावट से जो प्रकोप होता है उसे ही सन्निपात कहते हैं। यह सङ्कीर्ण भोजन, अजीर्ण, विषम भोजन अर्थात् ऐसे भोजन जो परस्पर में विषमता रखने वाले हैं जैसे क्षीर और दधि आदि,विरोधी भोजन से, व्यापन्नता, मद्य, पानीय, शुष्क शाकाम मूलक से, पिण्याक मृतवसर, दुर्गन्ध युक्त भोजन से, शुष्क कृष्ट आमिष से तीनों दोष प्रकुपित होजाते हैं। अन्न के परिवर्त्तन से, धातु के दोष से, पहिले वात से और विग्रह, आवेश एवं विप्लव से, दुष्टमात्र से, अति श्लेष्मा से, ग्रहों से, जन्म नक्षत्र के पीड़न से, मिथ्यायोग से और अनेक प्रकार के पापों के करने से,स्त्रियों के प्रसव के वैषम्य से तथा मिश्रित उपचार से प्रत्येक रोग में रोग विधि के अनुगमन करने वाले तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं। रसायन को प्राप्त कर ये दोष शीघ्र ही देह में विकार किया करते हैं ॥२०-२४॥

६८—ज्वर निदान

वक्ष्ये ज्वर निदानं हि सर्वज्वरविबुद्धये ।
ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युराजोऽशनोऽन्तकः ॥
क्रुद्धदक्षाध्वरध्वंसिरुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥१

तत्सन्तापो मोहमयः सन्तापात्मापचारजः ।
विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्त्तते ॥२

पाकलो गजेष्वभितापो वाजिष्वलर्कः कुक्कुरेषु ।
इन्द्रमदोजलदेष्वप्सुनीलिकाज्योतिरोषधीषुभूम्यामूषरोनाम ।

हृल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः शैत्यं त्वगादिषु ।
अङ्गेषु च सभद्भूताः पीड़काश्च कफोद्भवे ॥३।४
काले यथास्तं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतो यथापि वा ॥५
अरुचिश्चाविपाकश्च स्तम्भमालस्यमेव च ।
हृद्दाहश्च विपाकश्च तन्द्रा चालस्यमेव च ॥
वस्तिविमर्दाविनया दोषाणामप्रवर्त्तनम् ॥६
लालाप्रसेको हृल्लासः क्षुन्नाशो रसदं मुखम् ।
स्वच्छमुष्णगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता ॥
न विजीर्णं न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम् ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब समस्त प्रकार के ज्वरों के ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्वर का निदान बतलाया जाता है। यह सब रोगों का स्वामी है—पापस्वरूप है—मृत्युराज—अशन (भक्षण करने वाला) और अन्त कर देने वाला होता है। यह दक्ष प्रजापति पर क्रोध करने वाले और उसके यज्ञ को विध्वंश करने वाले भगवान् रुद्र के ऊपर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न हुआ था ॥१॥ उस ज्वर का सन्ताप मोह से परिपूर्ण होता है। यह सन्तापात्मा और अपचार से समुत्पन्न होने वाला है। यह विविध नामों से युक्त एवं अत्यन्त क्रूर और नाना योनियों में होता है ॥२॥ हाथियों में जो ज्वर का अभिताप होता है उसका नाम 'पाकल' होता है। घोड़ों में होने वाले ताप को 'अलर्क' नाम से कहा जाता है। कूकरों में जो ज्वर होता है उसको 'इन्द्रामद' कहते हैं। जलदों में जल में इसका नाम 'नीलिका' है। औषधियों में इसी को 'ज्योति' कहा करते हैं। भूमि में इसको 'ऊषर' इस नाम से पुकारते हैं ॥३॥ हृदय में वेदनाच्छर्दन अर्थात् जी की मतली—खाँसी—स्तम्भ और त्वचा आदि में शीतलता अर्थात् शरीर का ठण्डा पड़ जाना—सम्पूर्ण अङ्गों में पीड़ा का उत्पन्न होना ये सब कफ के दोष से उत्पन्न ज्वर में होते हैं ॥४॥ किसी काल में इन सबका शमन और किसी समय में प्रवृत्ति तथा बढ़ाव हुआ करता है। निदान में उक्त अनुपशय अथवा इसके विपरीत होता है ॥५॥ अरुचि—अविपाक अर्थात्

किसी भी पदार्थ की ओर रुचि का न होना और खाये हुए पदार्थ का परिपाक न होना—स्तम्भ यानी शरीर का ज्यों कि त्यों रह जाना—आलस्य (शरीर में सुस्ती का होना), हृदय में दाह अर्थात् जलन का होना, विपाक, तन्द्रा (नींद जैसी खुमारी का रहना), आलस्य, वस्ति, विमर्द इससे दोषों का प्रवर्त्तन नहीं होता है ॥६॥ मुख से लारों का गिरना-हृल्लास-क्षुधा का न रहना-मुख में पानी का आना-शरीर के अङ्गों में स्वच्छता-उष्णता और भारीपन रहना-पेशाब का अधिक आना-विशेष रूप से जीर्णता का न होना और ग्लानि का न होना ये सब पाप ज्वर के लक्षण हैं। जो खाये हुए पदार्थ का परिपाक होकर पूर्ण रस नहीं बनता है और कच्चा ही रह जाता है वह आम कहा जाता है जोकि मल के साथ चिकना-सा निकला करता है ॥७॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ।
दोषप्रवृत्तिरष्टाहान्निरामज्वरलक्षणम् ॥
यथा स्वलिङ्गं संसर्गे ज्वरसंसर्गजोऽप वि ॥८
शिरोर्त्तिमूर्च्छावमिदेहदाहकण्ठास्यशोषावपि पर्वभेदाः ।
उन्निद्रतासम्भ्रमरोमहर्षाजम्भातिवाक्त्वं पवनात्सपित्तात् ॥९
तापहान्यरुचिपर्वशिरोमगिक्षीणश्वासकासविवर्णाः ।
शीतजाड्यतिमितभ्रमिनन्द्राश्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम् ॥१०
शीतस्तम्भस्वेददाहाव्यवस्थास्तृष्णा कासःश्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः ।
मोहस्तन्द्रालिप्र्ततिक्तास्यताचज्ञेयंरूपंश्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥११
सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः ।
तद्वच्छीतं तिमिरनिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥१२
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदो हि नैव वा ।
गीतनर्त्तनहास्यादिः प्रकृतेहाप्रवर्त्तनम् ॥१३
साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी ।
अक्षिणी पिण्डकापार्श्वशिरः पर्वास्थिरुग्भ्रमः ॥१४

क्षुधा से क्षामता का होना-गात्रों की लघुता अर्थात् हलकापन-ज्वर मार्दव-दोष की प्रवृत्ति आठ दिन में होती है-यह निराम ज्वर का लक्षण

होता है। अपने चिह्न जैसे संसर्ग में हैं अथवा ज्वर के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला भी वह होता है ॥८॥ शिर में बड़ा दर्द, मूर्च्छा, उल्टी, शरीर में दाह, गले और मुख का शुष्क रहना, शरीर के जोड़ों में भेदन का होना, नींद का न आना, सम्भ्रम अर्थात् चक्कर आना, रोमाञ्चों का होना, जँभाइयों का अधिक आना और जरबक देना ये लक्षण पित्त के साथ वायु के दोष से हुआ करते हैं ॥९॥ ताप की कमी, अरुचि, गाँठों में और माथे में पीड़ा, श्वास का क्षीणता के साथ चलना, खाँसी का होना, विवर्णता, शीत का आना, जड़ता, आँखों के सामने अँधेरापन होना, तन्द्रा का रहना ये सब कफ और वात से मिश्रित होकर उत्पन्न होने वाले ज्वर का लक्षण होता है ॥१०॥ शीत, स्तम्भता, पसीने का आना, दाह का होना और इनकी कोई व्यवस्था का न रहना अर्थात् कभी पसीना आता है, दाह होता है और कभी-कभी ये नहीं होते हैं। प्यास का अधिक लगना, खाँसी का होना ये सब लक्षण हों तो समझ लेना चाहिए कि रोगी को कफ और पित्त से मिश्रत ज्वर है। जब कफ और पित्त दोनों ही दोष मिलकर कुपित होते हैं तब ऐसे ही रोगी के लक्षण हुआ करते हैं। श्लेष्मा (कफ) और पित्त से होने वाले ज्वर का यही स्वरूप होता है कि उसको मोह, तन्द्रा और मुख का लिप्त-सा होना तथा रिक्त स्वाद का रहना होता है ॥११॥ यदि ये सभी लक्षण दिखलाई देवें तो समझना चाहिए कि सभी दोषों से युक्त ज्वर है। इसमें बार-बार दाह होता है। इसी प्रकार से शीत, अँधेरा, निद्रा दिन में होना और रात्रि में जागरण होता है ॥१२॥ अथवा सदा ही निद्रा नहीं होती है या नींद ही रहा करती है। कभी-कभी बहुत अधिक पसीना आता है और कभी बिल्कुल भी नहीं होता है। गीत, नृत्य और हास्य आदि प्रकृत चेष्टाओं की प्रवृत्ति होती है ॥१३॥ नेत्रों में आँसू होते हैं और आँखें कलुषित रक्त, भुग्न, झुकी हुई पलकों वाली रहा करती हैं। पिंडलियाँ, पशवाड़े, माथा और जोड़ों में तथा हड्डियों में वेदना होती है और भ्रम होता है ॥१४॥

सस्वनौ सरुजौ कर्णौ महाशीतो हि नैव वा।
परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुस्रस्ताङ्गसन्धिता ॥१५

ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य लोठनं शिरसोऽतितृट् ।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥१६

हृद्व्यथा मलसंसर्गः प्रवृत्तिर्वाल्पशोऽति वा ।
स्निग्धास्यता बलभ्रंशः स्वरसादः प्रलापतिः ॥१७

दोषपाकश्चिरं तन्द्रा प्रततं कण्ठकूजनम् ।
सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हतौजसम् ॥१८

वायुना कण्ठरुद्धेन पित्तमन्तःसुपीडितम् ।
व्यवायित्वाच्च सौख्याच्च बहिर्मार्गं प्रपद्यते ॥
तेन हारिद्रनेत्रत्वं सन्निपातोद्भवे ज्वरे ॥१९

दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥२०
अन्यत्र सन्निपातोत्थं यत्र पित्तं पृथक् स्थितम् ।
त्वचि कोष्ठे च वा दाहं विदधाति पुरोऽनु वा ॥२१

कानों में पीड़ा, भुन-भुनाहट-सी, कभी महान् शीत होता है और कभी नहीं होता। जीभ परिदग्ध और खरखरी, अङ्गों की सन्धियों में गुरुता और स्रस्तता रहती है ॥१५॥ थूक में रक्त पित्त, शिर में लोठन, और प्यास बहुत अधिक लगती है। कोष्ठ श्याम तथा रक्त वर्ण के होते हैं और मण्डलों का दर्शन भी होता है ॥१६॥ हृदय में व्यथा, मल का कभी बहुत अधिक जाना है कभी अन्यन्त अल्प निकलना, मुख का जायका स्निग्धता और बल की क्षीणता हो जाती है। स्वर भी बिगड़ जाता और कभी-कभी प्रलाप होता है ॥१७॥ चिरकाल में दोष का परिपाक, तन्द्रा और कण्ठ में घरघराहट की आवाज तथा ओज का हनन हो जाता है ऐसा यह अभिन्यास सन्निपात है ॥१८॥ वायु के द्वारा कण्ठ के रुद्र हो जाने से अन्दर पित्त सुपीड़ित होता है। वह व्यवायो और सौख्य होने से बाहिर के मार्ग को प्राप्त होता है। सन्निपात से उत्पन्न होने वाले ज्वर में नेत्रों में हल्दी के समान नेत्रों का रङ्ग हो जाता है। सब प्रकार से पूर्ण लक्षणों वाला रोग सन्निपात ज्वर का एक असाध्य

रोग हो जाता है अथवा साध्य भी होता है तो यह बहुत कठिनाई से अच्छा होता है। दोषों के बढ़ जाने पर अग्नि नष्ट हो जाती है ॥२०॥ अन्यत्र सन्निपात से उठा हुआ जब पित्त पृथक् स्थित होता है तो त्वचा में—कोष्ठ में पहिले या पीछे दाह किया करता है ॥२१॥

तद्वद्वातकफे शीतं दाहादिर्दुस्तरस्तयोः।
शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्पन्दितशोषिते ॥२२

पित्ते शान्तेऽथ वै मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते।
दाहादौ पुनरन्तेषु तन्द्रालस्ये वमिः क्रमात् ॥२३

इसी प्रकार से वात—कफ में शीत और दुस्तर दाह आदि उन दोनों में हुआ करते हैं। उस दशा में शीत आदि में पित्त के द्वारा कफ के स्पन्दित एवं शोषित होने पर तथा पित्त के शान्त हो जाने पर मूर्च्छा—मद और तृष्णा हो जाते हैं। दाह के आदि में और फिर अन्त में तन्द्रा—आलस्य और वमन क्रम से हुआ करते हैं ॥२२-२३॥

९९—चिकित्सा के विभिन्न योग

एवं धन्वन्तरिर्विष्णुः सुश्रुतादीनुवाच ह।
हरिः पुनर्हरायाह नाना योगान्रुगर्दनान् ॥१
सर्वज्वरेषु प्रथमं कार्यं शङ्कर लङ्घनम्।
क्वथितोदकपानञ्च तथा निर्वातसेवनम् ॥२
अग्निस्वेदाज्ज्वरास्त्वेवं नाशमायान्ति हीश्वर।
वातज्वरहरः क्वाथो गुडूच्या मुस्तकस्य च ॥३
दुरालभैः कृतः क्वाथः पित्तज्वर हरः शृणु।
शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च बालकोशीरचन्दनैः ॥४
साज्यः क्वाथः श्लेष्मजन्तु सशुण्ठि सदुरालभः।
सबालकः सर्वज्वर सशुण्ठिः सहपर्पटः ॥५
क्वाथश्च तिक्तकैरण्डगुडूचीशुण्ठिमुस्तकैः।
पित्तज्वरहरः स्याच्च शृण्वन्यं योगमुत्तमम् ॥६

बालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकमुस्तकैः।
ज्वरनुच्च कृतः क्वाथस्तथा वै ज्वरदारुणः ॥७

श्री रुद्र ने कहा—इस प्रकार से विष्णु के अवतार भगवान् धन्वन्तरि ने शंकर जी को रोग के अर्दन करने वाले अनेक योग बतलाये थे। श्री हरि ने कहा—हे शंकर! सभी प्रकार के ज्वरों में सबसे प्रथम लंघन करना चाहिए अर्थात् भोजन बिल्कुल त्याग देना चाहिए। औटाया हुआ पानी का पान करना और किसी निर्वात स्थान में जहां कि हवा का संचार न हो रहना ज्वर के रोगी को हितकर होता है ॥१२॥ हे ईश्वर! इस प्रकार से अग्नि स्वेद से ज्वर नाश को प्राप्त हुआ करते हैं। यदि बात ज्वर हो अर्थात् वायु कुपित होकर ज्वर की उत्पत्ति हुई हो तो गिलोय और मुस्तक का क्वाथ (काढ़ा) देना चाहिए। इससे बात ज्वर का प्रशमन होता है ।।३।। अब पित्त के दोष से आने वाले ज्वर का हरण करने वाले काढ़े का विवरण श्रवण करो। दुरालभ शुण्टी (सौंठ)—पर्पट और मुस्त (मोथा) तथा बालकोशीर (नवीन खस) और चन्दन के द्वारा क्वाथ प्रस्तुत कर देवे ।।४-५।। श्लेष्मा (कफ) से दोष से समुत्पन्न ज्वर का शमन करने के लिए आज्य और दुरालभ के सहित शुण्ठि से युक्त काढ़ा होता है। पर्पट और सौंठ से युक्त सवालक क्वाथ समस्त प्रकार के ज्वरों के शमन करने वाला होता है ।।६।। तिक्तक—एरण्ड—गिलोय—सौंठ और मुस्तक इनके द्वारा किया हुआ क्वाथ पित्त के दोष से होने वाले ज्वर का हरण किया करता है। इसके अतिरिक्त अन्य उत्तम योग का श्रवण करो ।।६।। बालकोशीर पाठा—कण्टकारि—मुस्तक—इनसे प्रस्तुत किया हुआ क्वाथ ज्वर का नाशक होता है ।।७।।

धन्याकनिम्बमुस्तानां समधुः स तु शङ्कर।
पटोलपत्रयुक्तस्तु गुड़ूचीत्रिफलायुतः ॥
पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम् ।।८
हरीतकीपिप्पलीनामामलीचित्रकोद्भवम्।
चूर्णंज्वरञ्च क्वथितं धन्याकोशीरपर्पटैः ।।९

आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम् ।
समस्तज्वरनुच्च स्यात्सन्निपातहरं श्रृणु ॥१०
हरिद्रानिम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा ।
कषायं कटुरोहिण्या सपटोलं सपत्रकम् ॥
त्रिदोषज्वरनुच्च स्यात्पीतन्तु क्वथितं जलम् ॥
कण्टकार्य्या नागरस्य गुडूच्या पुष्करेण च ।
जग्ध्वा नागबलाचूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत् ॥१२

देवदारु—धान्याक—नीम और मुस्तक पटोल पत्र के सहित और गिलोय एवं त्रिफला से युक्त मधु से समन्वित क्वाथ हे शंकर ! पीने पर सब प्रकार के ज्वर का हरण करता है और इससे क्षुधा की भी वृद्धि होती है ॥८॥ हर्र—पीपल—आँवला और चित्रक—इनका—कूट-पीसकर बनाया हुआ चूर्ण भी ज्वर का नाशक होता है। धान्याक—उशीर और पर्पट के द्वारा औटाया हुआ काढ़ा आमलकी—गुडूची (गिलोय) के साथ जिसमें चन्दन भी ज्वर को नष्ट करने वाला होता है और सभी प्रकार के ज्वरों को उखाड़ फेंकता है। अब सन्निपात ज्वर के हरण करने वाले योग का श्रवण करो ॥९-१०॥ हरिद्रा-निम्ब—त्रिफला—मुस्तक—देवदारु—कटुरोहिणी का कषाय जोकि पटोल पत्र के सहित हो उसका काढ़ा बनाकर पिलाया जावे तो त्रिदोष के कुपित होने पर जो ज्वर होता है उसका हरण हो जाता है ॥११॥ कण्टकारि (कटेरी) —नागर-गिलोय और पुष्कर के साथ नाग बला का चूर्ण खाने पर श्वांस और खाँसी का नाश हो जाता है ॥१२॥

कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने ।
विश्वपर्पटकोशीरमुस्तचन्दनसाधितम् ॥१३
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ।
बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥१४
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूचीविश्वभेषजम् ।
वातज्वरे त्वयं क्वाथो दत्तः शान्तिकरः परः ॥
पित्तज्वरनुत्समधुः क्वाथः पर्पटनिम्बयोः ॥१५

विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते ।
पादयोस्तु ललाटे वा ददेल्लौहशलाकया ॥१६
तिक्ता पाठा पटोलश्च विशाला त्रिफला त्रिवृत् ।
सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्वज्वर विशोधनः ॥१७

कफ वात के ज्वर में पिपासु को सदा उष्ण जल ही पीने के लिये देना चाहिए । यह विश्व पर्पटक, उशीर, मुस्तक और चन्दन साधित किया होना चाहिए ॥१३॥ शीतल जल देने से तृषा, छर्दि, ज्वर और दाह का क्षय होता है । यदि वातिक ज्वर हो तो उसमें विल्वादि पञ्चमूल का काढ़ा देने से परम शान्ति होती है । पित्त ज्वर में पर्पट और निम्ब का क्वाथ मधु के साथ पीने से ज्वर का उपशमान हो जाता है । वात ज्वर में पिप्पलीमूल, गिलोय और विश्व भेज पाचन होते हैं और इनका क्वाथ शमन करने वाला होता है ॥१४-१५॥ इस प्रकार के विधान के करने पर भी यदि होश न होवै तो पैरों में अथवा ललाट में लोह की शलाका से दाह करना चाहिए ॥१६॥ तिक्ता, पाठा, पटोल, विशाला, त्रिफला, त्रिवृत् क्षीर के सहित किया हुआ क्वाथ भेदन तथा समस्त प्रकार के ज्वरों का विशेष रूप से शोधन करने वाला है ॥१७॥

१००—विविधौषधि (१)

सप्तरात्र्याः प्रजायन्ते खल्वाटस्य कचाः शुभाः ।
दग्धहस्तिदन्तलेपात्साजाक्षीर रसाञ्जनात् ॥१
भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेन साधितम् ।
केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णान्वितेन च ॥२
एलामांसीकुष्ठमुरायुक्तमभ्युद्गतं शिरः ।
गुञ्जाफलं समादेयं लेपन चन्द्रलुप्तनुत् ॥३
आम्रास्थिचूर्णलेपाद्द वै केशाः सूक्ष्मा भवन्ति च ।
करञ्जामलकैलाः सलाक्षा लेपोऽरुणापहः ॥४
आम्रास्थिमज्जामलकलेपात्केशा भवन्ति च ।
बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च ॥५

विड़ङ्गगन्धपाषाणसाधितं तैलमुत्तमम् ।
सचतुर्गुणगोमूत्रं मनसः शिलमेव वा ॥
शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्मयूकालिक्षाः क्षयं नयेत् ॥६

नवदग्धं शङ्खचूर्णं घृष्टसीसकलेपितम् ।
कचाः श्लक्ष्णा महाकृष्णा भवन्ति वृषभध्वज ॥७

श्री भगवान् ने कहा—जिसकी चाँद में बाल न हों उस मनुष्य के माथे में बहुत सुन्दर केश सात रात्रियों में आजाते हैं यदि हाथी दाँत को भस्म कर उसका लेप किया जावे और साजा के दूध रसाञ्जन से करे। भृङ्गराज के रस के साथ तैल चतुर्भाग में साधित करके गुञ्जा के चूर्ण से युक्त स्तेमाल करे तो यह केशों की वृद्धि करता है ॥१-२॥ एला, माँसी, कुष्ठ, मुरा इनका अभ्यङ्ग और गुञ्जा के फलों का लेपन करे तो चन्द्र का लोप होता है अर्थात् केशों का अभाव दूर हो जाता है ॥३॥ आम्र की अस्थियों के चूर्ण का लेप करने से केश सूक्ष्म हो जाते हैं। करञ्ज, आमलक, एला का लाक्षा के साथ लेप करने से अरुण का अपहरण होता है ॥४॥ आम्रास्थि मज्जा, आँवला के लेप से केश बद्धमूल, घने, स्निग्ध होते हैं और उनका उत्पतन नहीं होता। वायविड़ङ्ग गन्ध पाषाण के द्वारा साधित तैल भी उत्तम है। चौगुना गोमूत्र और मैनशिल का शिर में अभ्यङ्ग करे तो केशों में जूआँ लीक आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥५-६॥ हे वृषभध्वज ! नवीन त्यार किया हुआ शङ्ख की भस्म का चूरण शीशे पर घिसकर लेप करे तो बाल श्लक्ष्ण(घने)और अत्यन्त काले होजाते हैं ॥७॥

भृंगराजं लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम् ।
नीली च करवीरञ्च गुड़मेतैः समैः शृतम् ॥
पलितानीह कृष्णानि कुर्याल्लेपान्महौषधम् ॥८

आम्रास्थिमज्जा त्रिफला नीली च भृंगराजकम् ।
जीर्णं पक्वलोहचूर्णं काञ्जिकं कृष्णकेशकृत् ॥९

चक्रमर्दकबीजानि कुष्ठमेरण्डमूलकम् ।
सात्युष्णकाञ्जिकं पिष्ट्वा लेपान्मस्तकरोगनुत् ॥१०

सैन्धवञ्च वचा हिंगु कुष्ठं नागेश्वरं तथा ।
शतपुष्पा देवदारुं एभिस्तैलं तु साधितम् ॥११
गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेन संयुतम् ।
तत्कर्णभरणादुग्रकर्णशूलं क्षयं नयेत् ॥१२
मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणाच्छिव ।
कर्णयोः पूतिनाशः स्यात्कृमिस्रावादिकस्य च ॥१३
मालतीपुष्पदलयो रसेन भरणात्तथा ।
गोजलेनैव पूरेण पूयस्रावी विनश्यति ॥१४

भृङ्गराज, लोहे का बुरादा, त्रिफला, विजौरा, नील, करवीर, इन समस्त के समान ही गुड़ डाले और श्रृत करके लेप करे तो श्वेत केश पुनः काले हो जाते हैं। पलित के मिटाने की यह महौषधि है ॥८॥ आम्रास्थि, आम्र की मज्जा, त्रिफला (हर्र,बहेड़ा,आँवला) नीली भृंगराज इन सबको जीर्ण करे (पकावे) और उसमें लोहे का बुरादा काँजी डाले तो लेप करने पर केशों को काला करता है ॥९॥ चक्रमर्दक के बीज, कुष्ठ, एरण्ड की जड़, इन सबको कांजी के साथ पीसकर गर्म करे और फिर लेप करे तो मस्तक के सम्पूर्ण रोगों का हरण होता है ॥१०॥ सैंधा नमक, वच, हींग, कुष्ठ, नागेश्वर, शत पुष्पा, देवदारु इन सबको समान भाग लेकर तैल में पाक साधित कर छान कर तैयार करे। इससे भी शिर की समस्त पीड़ाऐं क्षीण होती हैं। इस तेल को गोबर के चतुर्भाग रस से युक्त कर कान में डाले तो कान का दर्द नष्ट हो जाता है ॥११-१२॥ मेष का मूत्र और सैन्धव इन दोनों को मिलाकर हे शिव ! कान में डालने से कानों की दुर्गन्धि का नाश होता है और कान में कोई कृमि हों या कान से स्राव होता हो वह भी नष्ट होजाता है ॥१३॥ मालती के पुष्प और उसके दलों का रस के डालने से अथवा गो-मूत्र डालने से भी पूय का स्राव नष्ट हो जाता है ॥१४॥

१०१—विविधौषधि (२)

शोभाञ्जनपत्ररसं मधुयुक्तं हि चक्षुषोः ।
भरणाद्रोगहरणं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥१

अशीतितिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च ।
उपनिम्बामलाशुण्ठीपिप्पलीतण्डुलीयकम् ॥२
छायाशुष्कां वटीं कुर्य्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जानात्तिमिरादिनुत् ॥३
विभीतकास्थिमज्जा तु शङ्खनाभिर्मनः शिलाः ।
निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत् ॥
पुष्पं रात्र्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा ॥४
चतुर्भागानि शङ्खस्य तदर्द्धेन मनः शिला ।
सैन्धवञ्च तदर्द्धेन एतत् पिष्ट्वोदकेन तु ॥५
छायाशुष्कां तु वटिकां कृत्वा नयनमञ्जयेत् ।
तिमिरं पटलं हन्ति पिञ्जटस्य महौषधम् ॥६
त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च ।
सैन्धवं रजनी द्वे च भृंगराजरसेन हि ॥
पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम् ॥७

श्री हरि ने कहा—शोभाञ्जन के पत्तों का रस मधु के साथ मिश्रित करके नेत्रों में डालें तो नेत्रों के रोगों का हरण हो जाता है—इसमें संशय नहीं है ॥१॥ अशीति तिल के पुष्प, उपनिम्ब, आँवला, सौंठ, पिप्पली, तण्डुलीयक, इन सबको पीस कर वटी बनावे और छाया में सुखा ले। तात्पर्य यह है कि चावलों के जल के साथ इनको पीसे और घोट कर वटी निर्मित करे। इस वटी को घिसकर शहद के साथ आँखों में अञ्जन लगावे तो आँखों की तिमिरान्धता नष्ट हो जाती है ॥२-३॥ विभीतक की अस्थि और उसकी मज्जा, शंखनाभि, मैनशिल, नीम के पत्ते, कालीमिर्च इन सबको बकरी के मूत्र के साथ पेषण करे, फिर इसका अञ्जन करे तो रात्र्यन्धता (रतौंध) का हनन होजाता है तथा आँखों के सामने जो अंधेरा सा छा जाता है उसका नाश हो जाता है ॥४॥ चार भाग शंख इससे आधा भाग मैनशिल, तथा मैनशिल का आधा भाग सैन्धव इन तीनों को जल के साथ पीसकर वटी बना ले और छाया में शुष्क कर नेत्रों में

अञ्जन करे तो तिमिर के पटल का क्षय हो जाता है। यह पिंजटक की महान् उत्तम औषध है ॥५-६॥ त्रिकुटा (सौंठ, मिर्च,पीपल) अथवा त्रिकुट त्रिफला और करञ्ज के फल सैन्धव और दोनों हल्दी इनको भंगरा के रस से पीस कर अञ्जन करे तो तिमिर आदि का नाश हो जाता है ॥७॥

अटरूषकमूलं तु काञ्जिकापिष्टमेव तु।
तेनाक्षगोभूरिलेपाच्च चक्षुः शूलं विनश्यति ॥८
शतद्रुबदरीमूलं पीतमक्षिव्यथां हरेत्।
सैन्धवं कटुतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ॥९
क्षीरकांजिकसंघृष्टं ताम्रपात्रे तु तेन च।
अञ्जनात् पिञ्जटस्यैव नाशो भवति शङ्कर॥
ॐ दद्रु सर क्रों ह्रीं ठः ठः दद्रु सर ह्रीं ह्रीं ॐउं ऊं सर क्रीं क्रीं ठः ठः आद्या वशमायान्ति मन्त्रेणानेन चाञ्जनात् ॥१०
बिल्वकं नीलिकामूलं पिष्टमभ्यञ्जनेन च।
अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि ॥११
पिप्लीतगरञ्चैव हरिद्रामलकं वचा।
खदिरैः पिष्टवर्तिश्च अञ्जनान्नेत्ररोगनुत् ॥१२
नीरपूर्णमुखो धौति जलक्षेपेण योऽक्षिणी।
प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्यं सर्वैः प्रमुच्यते ॥१३
शुल्कैरण्डस्य मूलेन पत्रेणापि प्रसाधितम्।
छागदुग्धसेकयुक्ताच्चक्षुषोर्वातरोगनुत् ॥१४

अटरूषक की जड़ को काँजी से पीसकर बहुत बार आँखों पर लेप करे तो चक्षुओं का शूल नष्ट हो जाता है ॥८॥ शतद्रू और वदरी का मूल को घोट कर पीवे तो नेत्रों की व्यथा दूर होती है। सैन्धव, कडुवा तेल और अपामार्ग मूल को क्षीर काँजी से ताम्र के पात्र में घर्षण करे और फिर अञ्जन करे तो हे शङ्कर! पिंजट का नाश हो जाता है। अञ्जन के साथ इस मन्त्र का उच्चारण करे। मन्त्र—"ॐ दद्रु सर क्रों ह्रीं ठः ठः दद्रु सर ह्रीं ह्रीं ॐ उं ऊं क्रीं क्रीं ठः"-इत्यादि मन्त्रों के द्वारा आँजने

से आद्या बश में आ जाते हैं ॥६-१०॥ विल्व–नीलिका का मूल को पीस कर अञ्जन करे तो इसके आँजने मात्र से ही तिमिरों का नाश होजाता है ॥११॥ पिप्पली (पीपर), तगर, हरिद्रा (हल्दी), आमलक, (आँवला) वच और खदिर इनको पीसकर एक वर्त्ति (वत्ती) बना लेवे। इससे अञ्जन करने से समस्त नेत्रों के रोग का हनन होजाता है ॥१२॥ प्रातःकाल उठ कर ठण्डे पानी को मुँह में भर ले और शीतल जल से नित्य-प्रति नेत्रों को छपके दे देकर धोवे तो सभी नेत्रों के रोगों से मुक्त होता हैं ॥१३॥ शुक्ल अरण्ड के मूल और पात्र से भी प्रसाधित तथा छाग के दूध से युक्त सेक से नेत्रों में वात दोष से समुत्पन्न रोग का नाश होता है ॥१४॥

चन्दनं सैन्धवं वृद्धपलाशश्च हरीतकी।
पटलं कुसुमं नीली चक्रिकां हरतेऽञ्जनात् ॥
गुञ्जामूलं छागमूत्रे घृष्टं तिर्मिरिबन्धनुत् ॥१५
रौप्यताम्रसुवर्णानां हस्तघृष्टशलाकया।
घृष्टमुद्वर्त्तनं रुद्र कायलाव्याधिनाशनम् ॥१६
घोषाफलमथाघ्रातं पीतं कामलनाशनम्।
दूर्वा दाडिमपुष्पं तु अलक्तकहरीतकी ॥
नासार्शवातरक्तनुन्नस्याद्वै स्वरसेन हि ॥१७
सुपिष्टं जिङ्गिनीमूलं तद्रसेन वृषध्वज।
नस्यादानाद्विनश्येत नासार्शो नीललोहितः ॥१८
गव्यं घृतं सर्ज्जरसं रुद्र धन्याकसैन्धवम्।
धुस्तूरकं गैरिकञ्च एतैः साधितसिक्थकम् ॥
सतैलं व्रणनुत् स्याच्च स्फुटितोच्चटिताधरे ॥१९
जातीपत्रञ्च चर्बित्वा विधृतं मुखरोगनुत्।
भक्षाणात्केशरवीजस्य दन्ताः स्युश्चलिता स्थिराः ॥२०
मुस्तकं कुष्ठमेला च याष्टिकं मधुबालकम्।
धन्याकमेतदद्नान्मुखदुर्गन्धनुद्धर ॥२१

कषायं कटुकं वापि तिक्तशाकस्य भक्षणात् ।
तैलयुक्तस्य नित्यं स्यान्मुखदुर्गन्धताक्षयः ।।
दन्तव्रणानि सर्वाणि क्षयं गच्छन्त्यनेन तु ।।२२

चन्दन-–सैन्धव—वृद्ध पलाश—हरीतकी (हर्र)–पटल कुसुम-नीली का अञ्जन करने में चक्रिका का और गुञ्जा की जड़ को बकरी के मूत्र में घर्षण कर आँजने से तिमिर के बन्ध का हनन हो जाता है ।।१५।। हे रुद्र ! चाँदी, ताम्र और सुवर्ण की सलाई से घर्षण किया उद्वर्त्तन कामला व्याधि का नाशक है ।।१६।। घोषा के फल सूंघना और पीना भी कामला रोग को नष्ट करता है । दूर्वा (दूभ), दाड़िम पुष्प, अलक्तक, हरोतकी नाक के अर्श और वातरक्त का नाश करने वाला है। इसके स्वरस से जङ्गिनी के मूल को भली भाँति पीसकर या इसके रस को नस्य ले तो नील लोहित नाक का अर्श नष्ट हो जाता है ।।१७-१८।। गौ का घृत-सर्ज रस-धन्पाक-सैन्धव-धुस्तूरक और गैरिक (गेरू) इन सबके द्वारा बनाया हुआ सिक्थक तैल से युक्त व्रण का नाशक है जोकि स्फुटित और उच्चरित अधर में होता है ।।१९।। जाती के पत्तों को चबाकर मुँह में कुछ समय तक रक्खे तो मुख के रोग का नाश होता है । केशर के बीजों के करने से जो दाँत हिलते हों तो वे भी स्थिर हो जाया करते हैं ।।२०।। मुस्तक कुष्ट—एला (इलायची)—याष्टिक—मधुवाचक—धन्याक इनके अदन करने से अर्थात् खाने से जो मुख में दुर्गन्ध आती है तो उसका नाश हो जाया करता है ।।२१।। कषाय, कटु (कड़ुआ) और तिक्त शाक के भक्षण से जो कि तैल से युक्त हो तो मुख की दुर्गन्धता का क्षय होता है । इससे सभी प्रकार के दाँतों के व्रण भी नष्ट हो जाया करते हैं ।।२२।।

काञ्जिकस्य सतैलस्य गण्डूषकवलस्थितिः ।
ताम्बूलचूर्ण दग्धस्य मुखस्य व्याधिनुच्छिव ।।२३
परित्यक्तिः श्लेष्मणश्च शुण्ठीचर्वणतो यथा ।
मातुलुंगदलान्येला यष्टीमधु च पिप्पली ।।२४

जातीपत्रमथैषाञ्च चूर्णं लीढं तथा कृतम् ।
शेफालिकाजटायाश्च चर्वणं गलशुण्ठिनुत् ।।२५

नासाशिरारक्तकर्षान्नश्येच्छंकर जिह्विका ।
रसःशिरीषबीजानां हरिद्रायाश्चतुर्गुणः ।।२६
तेन पक्वेन भूतेश नस्यं मस्तकरोगनुत् ।
गलरोगा विनश्यन्ति नस्यमात्रेण तत्क्षणात् ।।२७
दन्तकीटविनाशः स्याद् गुञ्जामूलस्य चर्वणात् ।
काकजंघास्नुहीनीलीकषायो मधुयोजितः :।
दन्ताक्रान्तं दन्तजांश्च कृमीन्नाशयते शिव ।।२८
घृतं कर्कटपादेन दुग्धमिश्रेण साधितम् ।
तेन चाभ्यर्दिता दन्ताः कुर्य्युः कटकटां न हि ।।२९
लिप्त्वा कर्कटपादेन केवलेनाथवा शिव ।
त्रिसप्ताहं वारिपिष्टा ज्योतिष्मत्याः फलानि हि ।।३०
शुक्लाभयामज्जलेपाद्दन्तस्यांककलंकनुत् ।
लोध्रकुङ्कुमञ्जिष्ठालोहकालेयकानि च ।।३१
यवतण्डुलमेतैश्च यष्टीमधुसमन्वितैः ।
वारिपिष्टैर्वक्त्रलेपः स्त्रीणां शोभनवक्त्रकृत् ।।३२

हे शिव ! तैल युक्त काञ्जिक से गण्डूष (कुल्ली) करे और मुँह में भरकर कवल स्थिति करे । दग्ध मुख का व्याधि को ताम्बूल का चूर्ण नाश कर देता है ।।२३।। जिस तरह शुण्ठी (सौंठ) के चर्बण करने से श्लेष्मा की परित्यक्ति होती है अर्थात् कफ का विकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार से मातुलुङ्ग (नीबू) के हल, एला, यष्टि, मधु, पीपल और जातीपत्र इनका चूर्ण चाटा जावे या उसी तरह लेवे तो रोकालि का जरा का नाश होता है और चर्बण (चबाने) से गल शुण्ठी का क्षय होता है ।।२४-२५।। हे शङ्कर ! नासा के शिरा के रक्त के कर्षण होने से नष्ट कर देता है । जिह्विका रस—शिरस के बीज और हरिद्रा का चतुर्गुण भाग हे भूतेश ! इससे पक्व कर बनाया हुआ नस्य माथे के रोगों का

नाशक होता है। गले के तो सभी रोग नस्य के सूंघने मात्र से ही तुरन्त नष्ट हो जाया करते हैं ॥२६-२७॥ गुञ्जा (विरमिटी) की लता के मूल को लेकर चबावे तो दाँतों के कीड़ों का नाश हो जाया करता है। हे शिव ! काकजंघा (एक बूंटी का नाम है जो कि क्षुप के रूप में प्राय: सर्वत्र प्राप्त होती है)—स्नुही (सँहुड़), नीलीका कषाय मधु से योजित करे। इससे दन्ताक्रान्त और दाँतों में समुत्पन्न कृमियों का नाश हो जाता है ॥२८॥ दुग्ध से मिश्रित कर्कट पाद से प्रस्तुत किया हुआ घृत हो इससे अभ्यर्दित दाँत कटकटाया नहीं करते हैं ॥२९॥ हे शिव ! अथवा कर्कट पाद से लिप्त करे तो भी उक्त रोग का क्षय होता है। ज्योतिष्मती के फलों को तीन हफ्ते तक जल से घर्षण करे। इससे तथा शुक्ल अभया (हर्र) के मञ्जन से या लेप से दाँतों के ऊपर जो निशान हो जाते हैं उसके कलंक को दूर कर दिया जाता है। लोध—कुङ्कुम, मजीठ, लौह का लेपक, यव, तण्डुल, यष्टी और मधु इन सबको जल से पीसकर मुख पर लेपन करे तो स्त्रियों के मुख की शोभा बढ़ जाया करती है। यह एक प्रकार का मुख पर लगाने का उबटना है ॥३०-१२॥

द्विभागं छागदुग्धेन तैलप्रस्थं तु साधितम् ।
रक्तचन्दनमंजिरोष्ठालाक्षाणां कर्षकेण वा ॥
यष्टीमधुकुङ्कुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकान्तिकृत् ॥३३
शुण्ठीञ्च पिप्पलीचूर्णं गुडूची कण्टकारिका ।
एभिश्च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति वै ॥३४
वातमूलक्षयञ्चैव करोति प्रथमेश्वर ।
करञ्जकर्कटोशीरं बृहती कटुरोहिणी ॥३५
गोक्षुरं क्वथितं त्वेभिर्वारि पीतं भ्रमापहम् ।
दाहं पित्तज्वरं शोषं मूर्च्छाञ्चैव क्षयं नयेत् ॥३६
मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं क्वथितं क्षीरसंयुतम् ।
पीतं हृद्रोगकासस्य विषमज्वरनुद्भवेत् ॥३७
क्वाथौषधीनां सर्वासां कर्षार्द्धं ग्राह्यमेव च ।
वयोऽनुरूपतो ज्ञेयो विशेषो वृषभध्वज ॥३८

दुग्धं पीतं तु संयुक्तं गोपुरीषरसेन च।
विषमज्वरनुत्स्याच्च काकजंघारसस्तथा ॥३९
सशुण्ठीक्वथितं क्षीरं विषमज्वरनुद्भवेत्।
यष्ठीमधुकमुस्तञ्च सैन्धवं बृहतीफलम् ॥४०
एतन्नस्यप्रदानाच्च निद्रा स्यात्पुरुषस्य च।
मरीचमधुयुक्तानां नस्यान्निद्रा भवेच्छिव ॥४१

दो भाग छाग का दूध और एक प्रस्थ तैल साधित करे अथवा रक्त चन्दन—मजीठ और लाख एक कर्ष यष्टी—मधु और कुङ्कुम के साथ एक सप्ताह प्रयोग करे तो मुख की कान्ति बढ़ती है ॥३॥ सौंठ—पीपल का चूर्ण गिलोय—कण्टकारी इनका क्वथित जल अर्थात् निर्माण किया हुआ काढ़ा पिया जावे तो अग्नि की वृद्धि करता है ॥३४॥ हे प्रमथेश्वर! इससे वात मूल का क्षय होता है। करञ्ज, कर्कट, उशीर (खस), बृहती, कटु रोहिणी, गोखरू, इन सबका पानी में क्वाथ पकाया जावे और उस काढ़े को पीवे तो भ्रम का अपहरण होता है। यह क्वाथ दाह,, पित्त दोष के कुपित होने वाला पित्त ज्वर, शोष और मूर्च्छा, इन सबका भी क्षय किया करता है ॥३५-३६॥ मधु, आज्य (घृत) और पीपल का चूर्ण इनको क्वाथित करके क्षीर से युक्त पीवे तो इससे हृद्रोग खांसी और विषय ज्वर होता है ॥३७॥ समस्त क्वाथ करने की औषधियों का आधा कर्ष ग्रहण क ना चाहिए। हे वृषभध्वज! विशेष अवस्था के अनुसार ही जानना चाहिये ॥३८॥ जो पारी से आने वाला विषम ज्वर हाता है उसे विनारण करने के लिए गोमय के रस से संयुक्त कर पिया हुआ दूध ही पर्याप्त है। यष्टी, मधुक, मुस्त, सैन्धव, वृहती फल, इन समस्त वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत किया हुआ नस्य देने से पुरुष को निद्रा हो जाती है। हे शिव! कालीमिर्च मधु से युक्त करके नस्य देने से निद्रा होती है ॥३९-४१॥

मूलं तु काकजङ्घाया निद्राकृत्स्याच्छिरः स्थितम्।
सिद्धं तैलं काञ्जिकेन तथा सर्ज्जरसेन च ॥४२

शतोदकसमायुक्तं लेपात्सन्तापनाशनम् ।
शोणितज्वरदाहेभ्यो जातसन्तापनुत्तथा ॥४३
शैलिशैवालाग्निमन्थः शुण्ठीपाषाणभेदकम् ।
शोभाञ्जनं गोक्षुरं वा वरुणच्छन्नमेव च ॥४४
शोभाञ्जनस्य मूलञ्च एतैः क्वथितवारि च ।
दत्त्वा हिङ्गुयवक्षारं पित्तवातविनाशनम् ॥४५
पिप्ली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिव ।
वार्येतैः क्वथितं पीतं शूलापस्मारनुद्भवेत् ॥४६
अश्वगन्धमूलकाभ्यां सिद्धा बल्मीकमृत्तिका ।
एतया मर्दनाद्रुद्र ऊरुस्तम्भः प्रशाम्यति ॥४७
बृहतीकस्य वै मूलं संपिष्टमुदकेन च ।
पीतं सङ्घातवातस्य विपादनकृदेव च ॥४८
पीतं तक्रेण मूलञ्च आर्द्रस्य तगरस्य च ।
हरेत भिञ्जिनीवातं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥४९
अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम् ।
पीतं मासरसेनापि वातनुच्चास्थिभङ्गनुत् ॥५०

काकजंघा के मूल से भी निद्रा होती है। इससे सिद्ध किया हुआ तैल शिर में लगावे जो कि काञ्जिक तथा सर्जक रस से शतोदक से समायुक्त हो। इसके लेप से सन्ताप का नाश होता है। शोणित (रक्त) ज्वर और दाह से जो सन्ताप उत्पन्न होता है उसका नोदन करने वाला है ॥४२-४३॥ शैली—शैवाल—अग्निमन्थ—शुण्ठि—पाषाण भेदक—गोखरू अथवा वरुणच्छन्न और शोभाञ्जन का मूल इन सबका जल के साथ क्वाथ करे और देवे। हींग और यवक्षार से पित्त और वात का विशेष रूप से नाश होता है ॥४४-४५॥ हे शिव ! पीपल—पीपरामूल—भल्लातक (भिलवा) इनका जल के साथ क्वाथ करे और पान करे तो शूल और अपस्मार (मृगी) का क्षय होता है ॥४६॥ हे रुद्र ! अश्वगन्ध और मलूक से सिद्ध वांवी की मिट्टी के मर्दन करने से उरु स्तम्भ का प्रश-

मन होता है ।।४७।। बृहती के मूल को जल के साथ पीसे और छानकर पान करे तो संघात वात के विपाटन करने वाला होता है ।।४८।। आर्द और तगर के मूल को घोट कर मठ्ठा के साथ पीवे तो इन्द्र के वज्र के द्वारा वृक्ष की भाँति झिञ्जिनी वात का एक दम विनाश हो जाया करता है ।।४९।। अस्थिसंहारक को एक भक्त खावे या पीवे तो वात का शमन होता है एवं अस्थिभङ्ग को भी दूर करता है। माँस रस से भी होता है। अस्थि संहारी एक तिधाराहड़जोड़ लौकिक प्रसिद्ध नाम वाली बेल जैसी होती है। इसमें पत्ते नहीं होते हैं और तीन धार तथा एक-एक वालिस्त पर एक ग्रन्थि जैसी हुआ करती है, पेड़ों का आश्रय लेकर फैली होती है ।।५०।।

घृतलिप्तं सक्तुकञ्च छागक्षीरेण संयुतम् ।
तल्लेपात्पादयोर्नश्येत्सन्तापो नात्र संशयः ।।५१
मध्वाज्यसैन्धवैः सिक्थगुडगैरिकगुग्गुलैः ।
ससर्जरससस्फुटितः क्लोमशुद्धिश्च लेपनात् ।।५२
कटुतैलेन लिप्तो वै विधूमाग्नौ प्रतापितः ।
मृत्तिकाखादितः पादः समः स्याद्वृषभध्वज ।।५३
सर्जरसः सिक्थकञ्च जीरकञ्च हरीतकी ।
तत्साधितघृताभ्यंगो ह्यग्निदग्धव्यथापनुत् ।।५४
तिलतैलं चाग्निदग्धं यवक्षस्मसमन्वितम् ।
अग्निदग्धव्रणं नश्येद्बहुशः कृतलेपतः ।।५५
नवनीतं माहिषञ्च दग्धपिष्ठतिलानि च ।
सभल्लीकं व्रणं नश्येद्वृच्छूलं नस्यलेपतः ।।५६
कर्पूरगव्यसर्पिभ्यां प्रहारः पूरितो हर ।
शस्त्रोद्भवो बन्धनञ्च शुक्लवस्त्रेण शङ्कर ।।
पाकश्च वेदना चैव न स्पृशेद्वृषभध्वज ।।५७

छाग के दूध से संयुत सक्तुक (सतुआ) घृत के साथ लेप करने से पैरों में तलों में जो सन्ताप होता है वह नष्ट हो जाया करता है—इसमें

कुछ भी संशय नहीं है ।।५१।। मधु—घृत—सैन्धव—सिक्थ—गुड—गैरिक—गूगल से सर्जर रस के सहित स्फुटित कर लेप करने से क्लोम की शुद्धि होती है ।।५२।। हे वृषभध्वज ! कड़ुवे तैल से लिप्त कर धूँआ रहित अग्नि में प्रतापित अर्थात् तपाया हुआ मृत्तिकाखादित पाद सम हो जाता है ।।५३।। सर्ज का रससिक्थक—जीरा—हर इन सबको घृत में पाक करके घृत प्रस्तुत करे और फिर उससे मर्दन करे तो आग से दग्ध होने की व्यथा दूर हो जाती है ।।५४।। यव की भस्म से युक्त तिल का तैल आग पर गर्म करके बहुत वार लेप करे तो आग से जलने के कारण उत्पन्न होने वाले गुण नष्ट हो जाते हैं ।।५५।। भैंस के दूध से निकला हुआ मक्खन और जलाकर पीसे हुए तिल भल्लाक सहित प्रयोग करे तो व्रण का नाश होता है और नस्य लेप से शुल नष्ट हो जाता है ।।५६।। हे हर ! कपूर और गाय का घी इन दोनों से प्रहार से होने वाला व्रण भर जाता है । हे शङ्कर ! शस्त्र से होने वाले प्रहार पर शुक्ल वस्त्र से बाँध देना चाहिए । हे वृषभध्वज ! इसका पकाव और इसकी वेदना का स्पर्श नहीं होता है ।।५७।।

आम्रमूलरसेनैव शस्त्रघातः प्रपूरितः ।
ढौकते शस्त्रघातः स्यान्निर्वणो घृतपूरितः ।।५८
शरपुङ्खा लज्जालुका पाठा चैषां तु मूलकम् ।
जलपिष्टं तस्य लेपाच्छस्त्रघातः प्रशाम्यति ।।५९
मूलञ्च काकजंघायास्त्रिरात्रेणैव शोषितः ।
पाकपूतिवेदनाञ्च हन्ति वै रोहिते व्रणे ।।६०
सजलं तिलतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ।
तत्सेकदानान्नश्येच्च प्रहारोद्भववेदना ।।६१
अभयां सैन्धवं शुण्ठीमेतत्पिष्ट्वोदकेन तु ।
भक्षयित्वा ह्यजीर्णस्य नाशो भवति शङ्कर ।।६२
कटिबद्धं निम्बूलमक्षिशूलहरं भवेत् ।
श.मूलं सताम्बूलं दग्धमिन्द्रियकल्पहृत् ।।६३

अन्नस्विन्नहरिद्रा च श्वेतसर्षपमूलकम् ।
बीजानि मातुलुंगस्य एषामुद्वर्त्तनं समम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण शुभदेहकरं भवेत् ॥६४
श्वेतापराजिता पत्रं निम्बपत्ररसेन तु ।
नस्यदानाड्डाकिनीनां पितृणां ब्रह्मरक्षसाम् ॥
मोक्षः स्यान्मधुसारेण नस्याच्च वृशभध्वज ॥६५

आम के वृक्ष की जड़ के रस से ही शस्त्र के द्वारा होने वाला घाव भर जाया करता है। शस्त्र का घात ढौकमान होता है और घृत से पूरित होता हुआ वह व्रण रहित हो जाया करता है ॥५८॥ शरपुंखा (लोक भाषा में सरपौंका)—लजालुका (लजवन्ती-छुई मुही)—पाठा (ग्वार-पाठा) इनकी जड़ों को जल के साथ घोटकर शस्त्र से होने वाले घाव पर प्रलेप करे तो वह प्रशमित हो जाया करता है ॥५९॥ काक जंघा की जड़ से तीन रात्रि में ही शस्त्र घाव शोषित हो जाया करता है और रोहित व्रण में पकाव आदि की वेदना का नाश कर दिया करती है ॥६०॥ जल के सहित तिल का तैल—अपामार्ग (औंघा) की जड़ इनके द्वारा दिये हुए सेक से प्रहार से उत्पन्न होने वाली वेदना का नाश हो जाता है ॥६१॥ अभया (हरीतकी)—सैन्धव (सैंधा नमक) शुण्ठी (सौंठ)—इनको जल के साथ पीस डाले और सेवन करे तो हे शङ्कर ! अजीर्ण का नाश होता है। अर्थात् भक्षित पदार्थ जो जीर्ण नहीं हो कर अपच करता है वह मिट जाया करती है ॥६२॥ नीम की जड़ को कमर में बाँध लेने से आँखों की शूल की पीड़ा का हरण हो जाता है। सन की जड़ ताम्बूल के सहित दग्ध किया हुआ इन्द्रिय कल्प का हरण करता है ॥६३॥ अन्न स्विन्न और हरिद्रा—श्वेत सर्षप (सफेद सरसों) का मूल—मातुलुङ्ग (नीबू) के बीज इन सबके समान भाग का उद्वर्त्तन (उबटना) बनावे। इस उद्वर्त्तन का सात रात्रि तक प्रयोग करे तो यह देह को शुभ करने वाला होता है ॥६४॥ श्वेत अपराजिता के पत्तों का नीम के पत्तों के रस के साथ नस्य प्रस्तुत कर देवे तो डाकिनियों का—पितरों का और

ब्रह्म राक्षसों का मोक्ष (छुटकारा) हो जाता है। मधुसार के द्वारा नस्य से भी हे वृषभध्वज ! उपर्युक्त बाधाओं से मुक्ति हो जाती है ॥६५॥

मूलं श्वेतज्जयन्त्याश्च पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् ।
श्वेतापराजितार्कस्य चित्रकस्य च मूलकम् ॥
कृत्वा तु वटिकां नारी तिलकेन वशीभवेत् ॥६६
पिप्पलीलोहचूर्णन्तु शुण्ठीश्चामलकानि च ।
समानि रुद्र जानीयात्सैन्धवं मधुशर्करा ॥६७
उदुम्बरप्रमाणेन सप्ताहभक्षणात्समम् ।
पुमांश्च बलवान्स स्यात्जीवेद्वर्षशतद्वयम् ॥
ॐ ठ ठ ठ इति सर्ववश्यप्रयोगषु प्रयुक्तः सर्वकामकृत् ॥६८
संगृह्य वृक्षात्काकस्य निलयं प्रदहेच्च तत् ।
चिताग्नौ भस्म तच्छत्रोर्दत्तं शिरसि शङ्कर ॥६९
तमुच्चाटयते रुद्र श्रृणु तद्योगमुत्तमम् ।
निक्षिप्तञ्च पुरीषं वै वनमूषिकचर्मणि ॥७०
कटितन्तुनिबद्धं वै कुर्य्यान्मलनिरोधनम् ।
कृष्णकाकस्य रक्तेन यस्य नाम प्रलिख्यते ॥७१
मध्येमध्ये च्युतदले ततो निक्षिप्यते हर ।
स खाद्यते काकवृन्दैर्नारी पुरुष एव च ॥७२

पुष्य नक्षत्र में श्वेत जयन्ती का मूल, श्वेत अपराजिता, अर्क और चित्रक का मूल लावे, इन्हें पीस कर वटी बना ले और उससे अपने मस्तक पर तिलक लगावे तो उस पुरुष को देखकर ही नारी वशीभूत हो जाती है ॥६६॥ पीपल, लोह चूर्ण, आँवला, सोंठ ये सब समभाग, सैन्धव, मधु और शर्करा इनके साथ गूलर के समान गोली बना कर बराबर एक सप्ताह तक भक्षण करने से वह पुरुष बहुत ही बलवान् हो जाता है और दो सौ वर्ष तक जीवित रहता है। "ॐ ठ ठ ठ" इस मन्त्र का समस्त वश्य के प्रयोगों में प्रयोग करने से सम्पूर्ण काम वाला होता है।६७-६८।

वृक्ष से काक का घोंसला अर्थात् रहने का स्थान संग्रहीत करके उसे जला देवे। चिताग्नि में जो भस्म हो उसे हे शङ्कर ! शत्रु के शिर में डाल देवे तो उसका उच्चाटन कर देता है। वनैले चूहे के चर्म में निक्षिप्त पुरीष को कमर में तन्तु से निबद्ध कर देने से मल का निरोध हो जाता है। काले कौए के रक्त से जिसका नाम लिखा जाता है। हे हर ! मध्य-मध्य में च्युत दल में इसके पश्चात् निक्षिप्त किया जाता है वह काक वृन्दों के द्वारा नारी हो या पुरुष खाया जाता है ॥६९-७२॥

शर्करामध्वजाक्षीरं तिलगोक्षुरकं समम् ।
स शत्रुं नाशयेद्रुद्र उच्चाटितमिदं हर ॥७३

उलूककृष्णकाकस्य बिल्वस्याथ समिच्छतम् ।
रुधिरेण समायुक्तं ययोर्नाम्ना तु हुयते ॥
तयोर्मध्ये महावैरं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥७४

भावितं ऋक्षदुग्धेन मत्स्यस्य रोहितस्य च ।
मांसं तत्साधितं तैलं तदभ्यंगाच्च रोगनुत् ॥
चन्दनोदकनस्यात्तु रोमोत्थानं भवेत्पुनः ॥७५
हस्ते लांगलिकाकन्दं गृहीतं तेन लेपितम् ।
शरीरं येन स पुमान्मृद्धे दर्पं व्यपोहति ॥७६

मयूररुधिरेणैव जीव संहरते शिव ।
ज्वलतान्तु भुजंगानां बिलस्थानामपीश्वर ॥७७
देहश्रिताग्नौ दग्धश्च सर्पस्याजगरस्य हि ।
तद् भस्म समुखे क्षिप्तं शत्रूणां भंगकृद् भवेत् ॥७८

हे रुद्र ! शर्करा, मधु, बकरी का क्षीर, तिल, गोखरू समान भाग में यह उच्चाटन शत्रु का नाश करता है ॥७३॥ उलूक—कृष्ण काक के रक्त से संयुक्त विल्व की सौ समिधा जिनके नाम से हवन की जाती हैं उन दोनों के बीच में महान् वैर हो जाता है ॥७४॥ मत्स्य रोहित का मास ऋक्ष के दुग्ध से भावित करे और उससे फिर तैल को साधित करे तथा

उस तेल से अभ्यङ्क करे तो रोग का हरण होता है। चन्दनोदक के नस्य से पुनः रोमों क उत्थान हो जाता है ॥७५॥ हाथ में लाङ्गलिका के कन्द को ग्रहण कर उस से शरीर को लेपित करे तो वह पुरुष वृद्धि के दर्प को नष्ट कर देता है ॥७६॥ हे शिव ! हे ईश्वर ! विलों में स्थित भी भुजंगो के जीव को मयूर के रुधिर से ही संहरण करता है ॥७७॥ सर्प या अजगर का शरीर चिता की अग्नि में जला कर उसका भस्म शत्रु के सामने डाल देने से उनके भंग करने वाला होता है ॥७८॥

मन्त्रेणानेन तत्क्षिप्तं महाभङ्ग करं रिपोः।
ॐ ठ ठ ठ चाहीहि चाहीहि स्वाहा ॥
ॐ उदरं पाहिहि पाहिहि स्वाहा ॥७९
सुदर्शनाया मूलं तु पुष्यर्क्षे च समाहृतम्।
निक्षिप्तं गृहमध्ये तु भुजङ्गा वर्ज्जयन्ति तत् ॥८०
अर्कमूलेन रविणा अर्काग्निज्वलिता शिव।
युक्ता सिद्धार्थतैलेन बर्त्तिर्मार्गाहिनाशिनी ॥८१
मार्जारपललं विष्ठा हरितालञ्च भावितम्।
छागमूत्रेण तल्लिप्तो मूषिका मूषिकान्हरेत् ॥८२
मुक्तो हि मन्दिरे रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा।
त्रिफलार्जुनपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम् ॥८३
लाक्षा सर्जरसश्चैव विड़ङ्गश्चैव गुग्गुलः।
एतंधूंपो मक्षिकाणां मशकानां विनाशनः ॥८४

यदि इस निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा वह सिप्त की जावे तो शत्रु के महान् भंग के करने वाला होता है। मन्त्र यह है—"ॐ ठ ठ ठ चा हाहि चाहीहि स्वाहा। ॐ उदरं याहिहि स्वाहा" ॥७९॥ सुदर्शना का मूल जोकि पुष्य नक्षत्र में लाया गया हो। यदि इस घर के मध्य में निक्षिप्त कर दे तो उस घर को भुजंग त्याग दिया करते हैं ॥८०॥ हे शिव ! अर्क से मूल से रवि के द्वारा अर्काग्नि ज्वलित हुई सिद्धार्थ तैल से युक्त हुई वर्ति मार्ग के अहियों के नाश करने वाली होती है ॥८१॥

मार्जार का पलल (मांस)—विष्ठा और हरि ताल गाय के मूत्र से भावित हो उससे लिप्त होने वाला मूषिक अन्य मूषिकों का हरण किया करता है ॥८२॥ हे रुद्र ! यदि यह मन्दिर में मुक्त हो तो इस विषय में कोई भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। त्रिफला—अर्जुन वृक्ष को पुष्प—भल्लातक (भिलावा) और शिरस—लाक्षा (लाख)—सर्ज का रस—वायविडङ्ग और गूगल—इन समस्त वस्तुओं से बनाया हुआ धूप हो तो उसके देने से भक्षिकाओं और मशकों का विनाश होता है ॥८३-८४॥

१०२—विविधौषदि [३]

हरितालं यवक्षारं पत्राङ्गं रक्तचन्दनम् ।
जातिहिंगुलकं लाक्षां पक्त्वा दन्तान्प्रलेपयेत् ॥१
हरीतकीकषायेण मृष्ट्वा दन्ताप्रलेपयेत् ।
दन्ताः स्युर्लोहिताः पुंसः श्वेता रुद्र न संशयः ॥२
मूलकं स्विद्य मन्दाग्नौ रसं तस्य प्रपूरयेत् ।
कर्णयोः पूरणात्तेन कर्णस्रावो विनश्यति ॥३
अर्कपत्रं गृहीत्वा तु मन्दाग्नौ तापयेच्छनैः ।
निष्पीड्य पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलं विनश्यति ॥४
प्रियंगुमधुकायष्टिधातक्युत्पलपंक्तिभिः ।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्वरसेन च ॥
पचेतैलं तथा स्त्रीणां नश्येत्क्लेदः प्रपूरणात् ॥

भगवान् ने कहा—हरिताल—यवक्षार—पत्रांग—रक्त चन्दन—जाति—हिंगुलक—लाक्षा इनको पका कर दाँतों पर प्रलेप करे ॥१॥ हरीतकी के कषाय से दाँतों को माँजकर प्रलेप करना चाहिए। हे रुद्र ! लोहित दाँत भी एकदम श्वेत हो जाते हैं-इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। ॥२॥ मन्द अग्नि में मूलक का स्वेदन कर उसके रस को कानों में डाल देने से कानों का बहना नष्ट हो जाता है ॥३॥ आक के पत्ते लाकर मन्द अग्नि में धीरे-धीरे तपावे और फिर निष्पीड़न कर कानों में डाले तो कान का दर्द विनष्ट हो जाता है ॥४॥ प्रियंगु—मधुका-यष्टी—धातकी—उत्पल

पङ्कि–मजीठ–लोध–लाक्षा और कपित्थ के स्वरस से सिद्ध तैल स्त्रियों के क्लेद का नाश करता है ।।५।।

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु महौषधम् ।
शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रु रसायनम् ।।६
सौवर्चलं यवक्षारं तथा सर्जकसैन्धवम् ।
तथा ग्रन्थि विड़ं मुस्तं मधुयुक्तं चतुर्गुणम् ।।७
मातुलुङ्गरसस्तद्वत्कदल्याश्च रसो हि तैः ।
पक्वतैलं हरेदाशु स्रावादींश्च न संशयः ।।८
कर्णयोः कृमिनाशः स्यात्कटुतैलस्य पूरणात् ।
हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरीचानि च ।।९
विडङ्गभद्रं मुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम् ।
गोमूत्रेण च पिष्टं वैव कृत्वा च वटिकां हर ।।
अजीर्णहृद्भवेच्चैकं द्वयं विसूचिकापहम् ।।१०
पटोलं मधुना हन्ति गोमूत्रेण तथार्बुदम् ।
एषा च शाङ्करी वर्त्तिः सर्वनेत्रामयापहा ।।११

शुष्क मूलक शुण्ठी का क्षार—हिंगु—महोषध—शत पुष्पा–वच–कुष्ठ दारु शिग्रु रसायन—सौवर्चल—यवाक्षार—सर्जक सैन्धव—ग्रन्थि—विड़—मुस्त और मधु से युक्त चौगुना मातुलुंगु (नीबू) का रस तथा इसी की भांति कदली का रस से तैल का पाक करे । यह तैल स्राव आदि का बहुत ही शीघ्र हरण किया करता है—इसमें तनिक भी संशय की बात नहीं है ।।६-७-८।। कडुऐ तैल के पूरण करने से कानों के कृमियों का नाश होता है । हल्दी—नीम के पत्ते पीपल और मिर्च काली—विडंगभद्र—मुस्त तथा सप्तम विश्व भेषज इन समस्त वस्तुओं को गोमूत्र से पीस कर हे हर ! वटिकाओं का निर्माण करे । एक के सेवन से अजीर्ण का हरण होता है और दो के सेवन करने से विसूचिका (हैजा) का अपहरण हो जाता है ।।९-१०।। मधु के साथ पटोल तथा गोमूत्र के साथ अर्बुद का हनन होता है । यह शाङ्करी वर्त्ति (वत्ती) है जो सम्पूर्ण नेत्रों के भय का अपहरण करने वाली कही जाती है ।।११।।

१०३—विविधौषधि [४]

वचा मांसी च बिल्वञ्च तगरं पद्मकेशरम् ।
नागपुष्पं प्रियंगुञ्च समभागानि चूर्णयेत् ॥
अनेन धूपितो मर्त्यः कामवद्विचरेन्महीम् ॥१
कर्पूरं देवदारुञ्च मधुना सह योजयेत् ।
लिङ्गलेपाच्च तेनैव वशीकुर्य्यात्स्त्रियं किल ॥२
मैथुन पुरुषो गच्छेद्गृह्णीयात्स्वकमिन्द्रियम् ।
वामहस्तेन वामञ्च हस्तं यस्या स्त्रिया लिहेत् ॥
आलिप्ता स्त्री वश याति नान्यं पुरुषमिच्छति ॥३
ॐ रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय आनय । ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रः फट् ।
इमं जपत्वाऽयुतं मन्त्र तिलकेन च शङ्कर ।
गोरोचनासंयुतेन स्वरक्तेन वशी भवेत् ॥४
सैन्धवं कृष्णलवणं सौवीरं मत्स्यपित्तकम् ।
मधुसर्पिःसितायुक्तं स्त्रीणां तद्भगलेपनम् ॥५
यः पुमान्मैथुनं गच्छेन्नान्यां नारीं गमिष्यति ।
शङ्खपुष्पी वचा मांसी सोमराजी च फल्गुकम् ॥६
माहिषं नवनीतञ्च गुटीकरणमुत्तमम् ।
सनलानि च पक्षाणि क्षीरेणाज्येन पेषयेत् ॥७
गुटिकां शोधितां कृत्वा नारीयोन्यां प्रवेशयेत् ।
दशवारं प्रसूतापि पुनः कन्या भविष्यति ॥८

श्रीहरि ने कहा—जटामांसी—वच—बिल्व—तगर—पद्म केशर—नाग पुष्प-प्रियंगु इन सबको समान भाग में लेकर चूर्ण बना डाले । इसकी धूप देने से मनुष्य कामदेव की भाँति विचरण किया करता है ॥१॥ कपूर और देवदारु को शहद के साथ योजित करके जननेन्द्रिय पर लेप करने से प्रसंग में स्त्री को वशीकृत कर लेता है ॥२॥ जब पुरुष मैथुन क्रिया करे तो अपनी इन्द्रिय को बांये हाथ से ग्रहण करे और बांये हाथ को जिस भी स्त्री को चाटे तो वह आलिप्ता स्त्री फिर अन्य पुरुष को नहीं चाहा

करती है ॥३॥ इस विषय का एक मन्त्र भी नीचे दिया जाता है–'ॐ रक्त चामुण्डे अमुक मे वश मानश आनय। ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लः फट्" यह मन्त्र है। इस मन्त्र का दशहजार जाप करे। हे शङ्कर ! गोरोचन से संयुक्त अपने रक्त से तिलक से वशी होता है ॥४॥ सैन्धव—कृष्णलवण (काला नमक) सौवीर मछली का पित्ता—मधु—घृत और मिश्री से युक्त करके स्त्रियों की जननेन्द्रिय का प्रलेप करे तो उसके किसी अन्य स्त्री की कभी इच्छा नहीं करेगा। शङ्ख पुष्पी, वच, जटामांसी, सोमराजी, फल्गुक, भैंस के दूध का मक्खन, इन सबकी गुटिका बना लेवे। सनाल पद्मों को क्षीर और घृत से पेषण करे। इस तरह से शोधित गुटिका बना कर नारी की योनि में प्रविष्ट कर देवे। दश बार प्रसूता भी हो फिर भी कन्या ही होगी ॥५-८॥

सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च।
मार्जारविष्ठाधुस्तूरं स्त्रीकेशेन समन्वितः ॥९
चातुर्थकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशकः।
अर्जुनस्य च पुष्पाणि भल्लातकविडङ्गके ॥१०
बाला चैव सर्जरसं सौवीरसर्षपास्तथा।
सर्पयूकामक्षिकाणां धूमो मशकनाशनः ॥११
भूलतायाश्च चूर्णेन स्तम्भः स्याद्योनिपूरणात्।
तेन लेपनतो योनौ भगस्तम्भस्तु जायते ॥१२

सर्ष पर (सरसों)—वच—मदन के फल—मार्जार (बल्ली) की विष्ठा—धुस्तूर और नारी के केश इन सब वस्तुओं की धूप लगा देने से चौथे दिन आने वाला चौथैया ज्वर शान्त हो जाया करता है और इस धूप से डाकिनी ज्वर का भी प्रशमन हो जाता है। अर्जुन नाम वाले वृक्ष के पुष्प—भल्लातक (भिलावा)—वाय विडंग—बाला—सर्ज रस—सौवीर—सर्षय इनका धूप सर्प यूका (जूँआ), मक्खियां का और मशकर (मच्छर) का नाश कर देने वाला होता है ॥९-१०-११॥ भूलता के चूर्ण से पूरण कर देने पर अर्थात् भर देने से योनि में स्तम्भता हो जाया करती है। इसका लेप कर देने से भी भगस्तम्भ होता है ॥१२॥

ताम्बूलञ्च घृतं क्षौद्रं लवणं ताम्रभाजने ।
तथा पयःसमायुक्तं चक्षु शूलहरं परम् ।।१३
हरीतकी वचा कुष्ठं व्योषं हिङ्गु मनःशिला ।
कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात्क्षौद्रं घृतप्लुतम् ।।१४
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नरः ।
नश्यते पीनसः कासः श्वासश्चः बलवत्तरः ।।१५
समूलचित्रकं भस्म पिप्पलीचूर्णकं लिहेत् ।
श्वासं काशञ्च हिक्काञ्च मधुमिश्रं वृषध्वज ।।१६
नीलोत्पलं शर्करा च मधुक पद्मकं समम् ।
तण्डुलोदकसंमिश्रं प्रशमेद्रक्तविक्रिया ।।१७

भगवान् श्री हरि ने कहा—ताम्बूल (पान), घृत, क्षौद्र, (शहत्), लवण तया पय से समन्विर ताम्र के पात्र में रक्खे तो यह प्रयोग नेत्रों के शूल को दूर करने के लिये परमोत्तम औषधि है ।।१३।। हरीतकी (हर्र), वचा (वच), कुष्ठ, व्योष, हींग, मनःशिला (मैनसिल) इन सब वस्तुओं को शहत् और घृत में प्लुत करके चाटे तो यह कास (खाँसी), श्वास (दमा) और हिक्का (हिचकी आना) में बहुत लाभदायक होता है ।।१४।। पीपल, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) का चूर्ण इनको मनुष्य यदि शहद के साथ चाटे तो उसको पीनस का रोग (पीनस वह रोग है जिसमें नाक में कृमि होकर एक प्रकार की महान् दुर्गन्धि उसमें उत्पन्न कर दिया करते हैं जो पास में स्थित आदमी को असह्य हो जाया करती है), कास (खाँसी) और श्वास चाहे ये रोग कितने ही अधिक बलवान् क्यों न हों, शीघ्र नष्ट हो जाया करते हैं ।।१५।। जड़ के सहित चित्रक की भस्म और पीपल का चूर्ण चाटने से हे वृषभध्वज ! शहद से मिश्रित करके इसको चाटा जावे तो इससे श्वास, खाँसी और हिचकियों के आने वाले रोग में आशातीत लाभ हो जाता है ।।१६।। नीलोत्पल, शक्कर, मधुक और पद्मक ये चारों वस्तुऐं समान भाग में लेकर सबको एकरस कूट-पीस कर रख लेवे और फिर चावलों को मशल कर धोये हुए जल के साथ सेवन करे तो रक्त की विक्रिया का शमन हो जाता है ।।१७।।

शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता ।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुण्डिकाभुक्तिमात्रतः ॥१८

हरितालं शङ्खचूर्णं कदलीदलभस्मना ।
एतद्द्रव्येण चोद्वर्त्य लोमशातनमुत्तमम् ॥१९

लवणं हरितालञ्च तुम्बिन्याश्च फलानि च ।
लाक्षारसमायुक्तं लोमशातनमुत्तमम् ॥२०

सुधा च हरितालञ्च शङ्खभस्म मनःशिलाः ।
सैन्धवेन सहैकत्र छागमूत्रेण पेषयेत् ।
तत्क्षणाद्वर्त्तनादेव लोमशातनमुत्तमम् ॥२१

सौंठ, शर्करा (शक्कर) को शहद के साथ संयुक्त करके खाने से कोकिल के जैसा स्वर हो जाता है और गुण्डिका मात्र चाटने से ही स्वर माधुर्य आकर सुन्दरता समुत्पन्न हो जाया करती है। निस्वरता के निवारण करने के लिये इसका सेवन हितकर होता है ॥१८॥ हरिताल, शङ्ख का चूर्ण और कदली (केला) के पत्तों की भस्म इन तीनों का उद्वर्त्तन बना कर अर्थात् उबटन करने से लोमों का शातन बहुत अच्छी रीति से हो जाता है अर्थात् बाल उड़ जाया करते हैं ॥१९॥ अन्य लोमों के शातन (नाश) करने का प्रयोग यह है जो कि परम उत्तम है—लवण (नमक), हरिताल, तुम्बिनी के फल इन तीनों चीजों को लाक्षारस से समन्वित करके उपयोग में लावे तो बालों का शातन होता है ॥२०॥ तुरन्त ही लोमों का शातन करना हो तो सुधा, हरिताल, शङ्ख की भस्म मैनसिल इन चारों चीजों को सैन्धव अर्थात् सैंधे नमक के साथ मिलाकर बकरी के पेशाब के साथ घोटे। जब भली-भाँति घुटकर सब वस्तुएँ एक-रस एवं बारीक हो जावें तो इसका उबटना वहाँ पर लगावे जहाँ के रोमों का शातन करना अभिष्ट हो तो उसी क्षण में अर्थात् लगाने के साथ ही लोमों का क्षय हो जाया करता है। यह सर्वोत्तम लोम शातन करने का नुस्खा है ।२१॥

———

१०४—शक्तिवर्धक योग

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् ।
हेमन्ते शिशरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ॥१
भुक्ते तु शर्करा पीता नवनीतेन बुद्धिकृत् ।
गुड़स्य तु पुराणस्य पलमेकन्तु भक्षयेत् ।
स्त्रीसहस्रञ्च गच्छेच्च पुमान्बलयुतो हर ॥२
कुष्ठं संकूर्णितं कृत्वा घृतमाक्षिकसंयुतम् ।
भक्षयेत्स्वप्नवेलायां बलीपलितनाशनम् ॥३

अतसीमाषगोधूमचूर्णं कृत्वा तु पिप्पलीम् ।
घृतेन लेपयेद्गात्रमेभिः सार्द्धं विचक्षणः ।
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो नित्य भवति शङ्कर ॥४
यवास्तिलाश्वगन्धा च मुषली सरला गुड़म् ।
एभिश्च रचितां जग्ध्वा तरुणो बलवान्भवेत् ॥५
हिंगुं सौवर्चलं शुण्ठीं पीत्वा तु क्वथितोदकैः ।
परिणामाख्यशूलञ्च अजीर्णञ्चैव नश्यति ॥३
धातकीसोमराजीञ्च क्षीरेण सह पेषयेत् ।
दुर्बलश्च भवेत्स्थूलो नात्र कार्य्या विचारणा ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा— शरद्, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में बहुधा दही गर्हित होता है। दधि का सेवन शिशिर, हेमन्त और वर्षा ऋतुओं में प्रशस्त माना जाता है ॥१॥ भोजन करने के पश्चात् नवनीत के साथ पी हुई शर्करा बुद्धि का वृद्धि करने वाली होती है । जो ताजा मठ्ठा से मक्खन निकाला जाता है उसे ही नवनीत कहते हैं। भोजन करने के पीछे एक पल परिमाण का पुराना गुड़ खाना चाहिए। इसके सेवन से पुरुष में अत्यधिक पुंस्त्व हो जाता है। इसके नियम से सेवन करने वाला पुरुष एक सहस्र नारियों के साथ अभिगमन करने का बल प्राप्त कर लिया करता है ॥२॥ कुष्ठ को भली-भाँति चूर्ण करके घृत और शहद के साथ मिश्रित करे और शयन करने के समय में इसका भक्षण किया करे

तो बली और पलित का नाश हो जाता है अर्थात् वृद्धावस्था के कारण जो शरीर के अंगों में तथा चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और बालों में सफेदी आ जाती है, इन सबका निवारण हो जाया करता है ॥३॥ हे शंकर! अतसी (अलसी), माष (उर्द), गोधूम (गेहूँ) इनका चूर्ण करके अर्थात् इन तीनों का चून और पीपल इन सबको घृत के साथ विचक्षण पुरुष शरीर पर लेप करे तो शरीर के अंगों में सौंदर्य की छटा फूट निकलती है। नित्य-प्रति इस प्रकार से उपर्युक्त लेपन करने से मनुष्य कामदेव के समान हो जाया करता है ॥४॥ यव (जौ), तिल, अश्वगन्ध, मुषली, सरला, गुड़ इन सबको एकत्रित कर विरचित पदार्थ को खाने से मनुष्य तरुण एवं बलशाली हो जाया करता है ॥५॥ हींग, सौवर्चल, सौंठ इनका क्वाथ (काढ़ा) करके पीने से परिणाम नाम वाला जो शूल होता है वह और भोजन का परिपाक न होने से अजीर्ण ये दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। भोजन के करने के कुछ ही पश्चात् जैसे ही उसका परिणाम अर्थात् परिपाक होना आरम्भ होता है वैसे ही एक प्रकार का शूल (दर्द) उदर में होना शुरू हो जाया करता है इसे ही परिणाम शूल कहा जाता है ॥६॥ धातकी और सोमराजी इन दोनों को क्षीर के साथ पीसे। इसके सेवन से जो बहुत दुर्बल और दुबला-पतला हो वह भी स्थूल अर्थात् मोटा ताजा, हृष्ट-पुष्ट हो जाया करता है—इसमें तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए ॥७॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं बली लिहेत्।
क्षीराशी च क्षयी पुष्टिं मेधाञ्चैवातुलां लभेत् ॥८

कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतञ्च क्षयरोगनुत्।
भल्लातकं विडङ्गञ्च यवक्षारञ्च सैन्धवम् ॥९

मनःशिलाशंखचूर्णं तैलपक्वं तथैव च।
लोमानि शातयत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥१०

मालूरस्य रसं गृह्य जलौकां तत्र पेषयेत्।
हस्तौ संलेपयेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥११

शाल्मलीरसमादाय खरमूत्रे निधाय तम् ।
अग्न्यादौ विक्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ।।१२
वायस्या उदरं गृह्य मण्डूकवसया सह ।
गुटिकां कारयेत्तेन ततोऽग्नौ संक्षिपेत्सुधीः ।
एवमेतत्प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ।।१३
मुण्डीतकवचामुस्तं मरिचं तगरं तथा ।
चर्बित्वा च इमं सद्यो जिह्वया ज्वलनं लिहेत् ।।१४

शर्करा और मधु (शहद) से समन्वित नवनीत को बली को चाटना चाहिए । क्षीर का अशन करे अर्थात् दूध का पान करे तो क्षय वाला पुष्टि को प्राप्त किया करता है अर्थात् इससे अनुपम बुद्धि भी बढ़ती है ।।८।। कुलीर का चूर्ण क्षीर के सहित पीवे तो क्षय रोग का नाश होता है । जिसकी शारीरिक धातु असमय में क्षीण होने लगती हैं उस रोग का नाम क्षय रोग है । भल्लातक, वायविड़ङ्ग, यवक्षार, सैन्धव, मैनसिल, शंख का चूर्ण इन सबको तैल में पक्व करके प्रस्तुत करे । इससे लोमों का लगाने पर निशातन हो जाता है—इसमें कोई भी विचारणा अर्थात् सन्देह नहीं करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि यह निश्चित एवं सफल प्रयोग है ।।१०।। मालूर के रस को ग्रहण करके उससे जलौका को पेषण करे अर्थात् पीस डाले, फिर उससे दानों हाथों का लेपन करे । इसका यह प्रभाव होता है कि अग्नि-स्तम्भ हो जाता है और यह उत्तम अग्नि स्तम्भ है । अर्थात् फिर अग्नि से भी हाथ नहीं जला करते हैं ।।११।। शाल्मली का रस लाकर उसे गधे के पेशाव में रख देवे और अग्नि आदि में विक्षिप्त कर देवे । इससे उत्तम अग्नि-स्तम्भ होता है ।।१२।। वायसी का उदर लेकर मेंढ़क की वसा के साथ उसकी गुटिका बना लेवे । इसके पश्चात् उससे अग्नि में क्षिप्त कर देवे । सुधी पुरुष के इस प्रकार के करने पर इस प्रयोग से उत्तम अग्नि का स्तम्भन होता है ।।१३।। मुण्डी तक वच और मुस्त—मरिच तथा तगर इन सबको लेकर खूब चर्वण करे और फिर तुरन्त ही जीभ से अग्नि का लेहन करे अर्थात् अग्नि को मुँह में रख लेवे ।।१४।।

गोरोचनां भृङ्गराजं चूर्णीकृत्य घृतं समम् ।
दिव्याम्भसः स्तम्भनं स्यान्मन्त्रेणानेन वै तथा ।
ॐ अग्निस्तम्भनं कुरु कुरु ॥१५
ॐ नमो भगवते जलं स्तम्भय सं सं सं केक केक चर चर ।
जलस्तम्भनमन्त्रोऽयं जलं स्तम्भयते शिव ॥१६
गृध्रास्थिञ्च गवास्थिञ्च तथा निर्माल्यमेव च ।
अरेर्यो निखनेद्द्वारे पञ्चत्वमुपयाति सः ॥१७
पञ्चरक्तानि पुष्पाणि पृथग्जात्याः समालभेत् ।
कुंकुमेन समायुक्तमात्मरक्तसमन्वितम् ॥१८
पुष्पेण तु समं पिष्टवा रोचनायाः पलैकतः ।
स्त्रिया पुंसा कृतो रुद्र तिलकोऽयं वशीकरः ॥१९
ब्रह्मदण्डी तु पुष्येण भक्ष्ये पाने वशीकरः ।
यष्टीमधुपलैकेन पक्वमुष्णोदकं पिबेत् ॥२०
विष्टम्भिकाञ्च हृच्छूलं परत्येव महेश्वर ।
ॐ ह्रूं जः मन्त्रोऽयं हरते रुद्र सर्पवृश्चिकजं विषम् ॥२१

गोरोचन और भृंगराज का चूर्ण करके इसके समान भाग घृत लेवे तो दिव्य अम्भ अर्थात् जल का स्तम्भन होता है। स्तम्भन के लिए निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र–'ॐ अग्नि स्तम्भनं कुरु कुरु।" यह तो अग्नि के स्तम्भन की औषधि के साथ मन्त्र बोलते रहना चाहिए। अब जल के स्तम्भन का मन्त्र यह है—"ओम नमो भगवते जल स्तम्भय सं सं सं केक केक चर चर" यह जल के स्तम्भन का मन्त्र हे शिव ! जल का स्तम्भन किया करता है ॥१५-१६॥ गृद्ध की अस्थि (हड्डी) और गौ की अस्थि तथा निर्माल्य को जो कोई अपने शत्रु के द्वार पर निक्षिप्त कर दे अर्थात् डाल दे वह पञ्चत्व (मृत्यु) को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ पांच रक्त वर्ण के पुष्प अर्थात् विभिन्न पाँच लाल रङ्ग के फूल और जाती के पृथक् पुष्प समालब्ध करे, कुंकुम से समायुक्त कर अपने रक्त से समन्वित करे फिर पुष्प के समान पीसकर रोचना के मलैक से तिलक करे तो हे रुद्र ! स्त्री के द्वारा पुरुष और

पुरुष के द्वारा स्त्री का यह तिलक वश्य करने वाला होता है ॥१६॥ ब्रह्मदण्डी (एक बूँटी का नाम है) को पुष्य नक्षत्र में लाकर खाने पर या पीने पर वशीकरण करने वाली होती है। यष्टीमधु एक पल पकाकर उष्ण उदक (जल) का पान करे तो विष्टम्भिका-हृदय शूल को हे हर ! यह हरण करता है। "ॐ ह्रूँ जः" यह मन्त्र हे रुद्र ! सर्प और बिच्छू के विष का हरण कर देता है ॥२१॥

पिप्पली नवनीतञ्च शृंगवेरञ्च सैन्धवम् ।
मरिचं दधि कुष्ठञ्च नस्ये पाने विषं हरेत् ॥२२
त्रिफलार्द्रककुष्ठञ्च चन्दनं घृतसंयुतम् ।
एतत्पलाच्च लेपाच्च विषनाशो भवेच्छिव ॥२३
पारावतस्य चाक्षीणि हरितालं मनःशिला ।
एतद्योगाद्विषं हन्ति वैनतेय इवोरगान् ॥२४
सैन्धवं त्र्यूषणं चूर्णं दधिमध्वाज्यसंयुतम् ।
वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपोऽयं वृषभध्वज ॥२५
ब्रह्मदण्डी तिलान्क्वाथ्य चूर्णं त्रिकटुकं पिबेत् ।
नाशयेद्रुद्र गुल्मानि निरुद्धं रक्तमेव च ॥२६
पीत्वा क्षीरं क्षौद्रयुतं नाशयेदसृजः श्रुतिम् ।
अटरूषकमूलेन भगं नाभिञ्च लेपयेत् ।
सुखं प्रसूयते नारी नात्र कार्या विचारणा ॥२७
शर्करां मधुसंयुक्तां पीत्वा तण्डुलवारिणा ।
रक्तातिसारशमनं भवतीति वृषध्वज ॥२८

पीपल, नवनीत, शृंगवेर, सैन्धव, काली मिर्च, दधि, कुष्ठ इनको नस्य में तथा पान में उपयुक्त करने से विष का हरण होता है ॥२२॥ हे शिव ! त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), आर्द्रक (अदरख), कुष्ठ, चन्दन को घृत से संयुत करे। इसके लेप और पान से विष का नाश होता है ॥२३॥ पारावत (कबूतर) की आँखें, हरिताल, मनःशिला (मैनसिल) इन सब वस्तुओं के योग से विष का हनन गरुड़ के द्वारा सर्पों को हो जाता है ॥२४॥ सैन्धव (सेंधा नमक), त्र्यूषण चूर्ण, दधि, मधु और घृत से

संयुत करके हे वृषभध्वज ! इसका प्रलेप विच्छू के विष को मार दिया करता है ॥२५॥ ब्रह्मदण्डी (एक रूखड़ी का नाम) और तिलों का क्वाथ (काढ़ा) करके त्रिकुटका चूर्ण के साथ पीवे तो हे रुद्र ! गुल्मों का नाश हो जाता है और निरुद्ध रक्त को भी नष्ट कर देता है ॥२६॥ क्षौद्र (शहद) से युक्त क्षीर पीकर रक्त की श्रुति का नाश किया जाता है। अटरूषक की जड़ को पीस कर नाभि और भग पर लेप करने मे नारी सुख पूर्वक प्रसव किया करती हैं—इसमें कुछ भी विचारणा अर्थात् संशय करने की आवश्यकता नहीं है ॥२७॥ मधु (शहद) से संयुक्त शर्करा को तण्डुलों (चावलों) के पानी के साथ पान करने से हे वृषभध्वज ! रक्तातिसार अर्थात् खून के दस्तों में शमन हो जाता है ॥२८॥

॥ १०५—नारायण-भक्ति कथन ॥

मुक्तिहेतुमनाद्यन्तमजमव्ययमक्षयम् ।
यो नमेत् सर्वलोकस्य मनस्यो जायते नरः ॥१
विष्णुमानन्दमद्वैतं विज्ञानं सर्वगं प्रभुम् ।
प्रणमामि सदा भक्त्या चेतसा हृदयालयम् ॥२
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् ।
तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं नमस्ये परमेश्वरम् ॥३
शक्तौ नापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये ।
संसारतृणवर्णानामुद्वेजनकरो हि सः ॥४
कृष्णे स्फुरज्जलधरोदरचारुकृष्णे
लोकाधिकारपुरुषे परमप्रमेये ।
एको हि भावगुणमात्रदृढप्रणामः
सद्यः श्वपाकमपि साधयितुं प्रशक्तः ॥५
प्रणम्य दण्डवद्भूमो नमस्कारेण योऽर्चयेत ।
स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥६
दुर्गसंसारकान्तारकूपारामेऽपि धावतम् ।
एकः कृष्णे नमस्कारो मुक्त्या तांस्तारयिष्यति ॥७

सूतजी ने कहा—मुक्ति के कारण स्वरूप आदि एवं अन्त से रहित, अजन्मा, अव्यय प्रभु को जो नमन करता है वह सम्पूर्ण लोकों का नमन करने के योग्य होजाता है ॥१॥ आनन्द स्वरूप-द्वैत से रहित, विज्ञानमय, सर्वत्र गमन करने वाले परम प्रभु विष्णु को मैं सदा भक्ति पूर्वक हृदय से प्रणाम करता हूँ जो मेरे हृदय में ही विराजमान रहने वाले हैं ॥२॥ जो अन्तःकरण में संस्थित होकर सबके शुभ एवं अशुभ कर्मों को बराबर देखते रहते हैं उन सबके साक्षी परमेश्वर भगवान् विष्णु को मैं नमन करता हूँ ॥३॥ भगवान् चक्रपाणि के लिये प्रयुक्त किया हुआ नमस्कार उनकी सर्व-क्षम शक्ति के लिये है। वह प्रभु इस सम्पूर्ण संसार के तृण वर्गों के उद्वे-जन करने वाले हैं ॥४॥ उमड़ते हुए महामेघ की घटा के मध्य भाग के समान परम सुन्दर कृष्ण वर्ण वाले,समस्तलोकों पर पूर्ण प्रभुत्व रखनेवाले पुरुष एवं परम प्रमा के करने योग्य भगवान् श्री कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव पूर्वक किया हुआ केवल एक बार का दृढ़ प्रणाम श्वपच को भी तुरन्त ही साधित करने के लिये पूर्ण समर्थ होता है ॥५॥ भूमि में पड़े हुए दण्ड की भाँति प्रणाम करके जो कोई श्रीकृष्ण की अर्चना किया करता है वह जो परमोत्तम गति प्राप्त करता है, उसे सैकड़ों यज्ञ करने वाला भी कभी प्राप्त नहीं करता ॥६॥ अत्यन्त दुर्गम इस संसार के गहन वन के कूपा राम में धावन करने वाले प्राणियों को श्री कृष्ण के प्रति किया हुआ एक ही प्रणाम मुक्ति दान के द्वारा उनको तार देगा ॥७॥

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् यत्र तत्र वा।
नमो नारायणायेति मन्त्रै कशरणो भवेत् ॥८

नारायणेति शब्दऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी।
तथापि नरके मूढ़ाः पतन्तीति किमद्भुतम् ॥९

चतुर्मुखो वा यदि कोटिवक्त्रो भवेन्नरः कोऽपि विमुद्धचेताः।
स वै गुणानामयुतैकदेशं वदेन्न वा देववरस्य विष्णोः ॥१०

व्यासाद्या मुनयः सर्वे स्तुवन्तो मधुसूदनम्।
मतिक्षयान्निवर्त्तन्ते न गोविन्दगुणक्षमात् ॥११

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहहस्तैर्मृगो यथा ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।१२

स्वप्नेऽपि नाम स्पृशतोऽपि पुंसः क्षयं करोत्यक्षयपापराशिम् ।
प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र पुंसा प्रकीर्त्तिते नाम्नि जनार्दनस्य ।।१३

नमः कृष्णाच्युतानन्तवासुदेवेत्युदीरितम् ।
यैर्भावभावितैर्विप्र न ते यमपुरं ययुः ।।१४

बैठा हुआ, शयन करता हुआ, या स्थित जहाँ-कहीं भी किसी भी स्थिति में क्यों न हो, जो कोई एक ही वार 'नमो नारायण' इस मन्त्र द्वारा उनकी शरणागति गहण किया करता है उसका कल्याण हो जाता है ।।८।। नारायण—यह शब्द वाणी को वशवर्त्तिनी करता है—ऐसा इसका अद्भुत् चमत्कार है तो भी मूढ़ जीव नरक में पतित होते हैं—यह कितनी आश्चर्य की बात है ।।९।। चार मुखों वाला हो या एक करोड़ मुखों वाला क्यों न हो—कोई भी विशुद्ध चित्त वाला हो और देवों में परम श्रेष्ठ विष्णु से सहस्रों गुणों के एक देश को मुख से उच्चारण करे अथवा न करे ।।१०।। व्यास आदि समस्त मुनिगण मधुसूदन भगवान् की स्तुति करते हुए मति के क्षय से निवृत्त हो जाया करते हैं, गोविन्द के गुण क्षम से नहीं होते हैं ।।११।। अवशता में रहने वाले के द्वारा भी भगवान् के कीर्त्तन करने पर पुरुष समस्त पातकों से सिंह के हाथों से मृग की भाँति तुरन्त ही विमुक्त हो जाता है तथा मोक्ष के लिये गमन करने के प्रति बद्धपरिकर होता है ।।१२।। स्वप्न में भी भगवान् के नाम का स्पर्श करने से अक्षय पापों का क्षय हो जाता है—ऐसा इस भगवन्नाम का माहात्म्य है यदि प्रत्यक्ष रूप से इस लोक में भगवान् जनार्दन के नाम का कीर्त्तन करने पर तो इसके महत्त्व का कहना ही क्या है ।।१३।। हे विप्र ! हे कृष्ण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है—ऐसा भक्ति-भाव से भावित जो पुरुष भगवन्नाम को कहते हैं वे कभी भी यमपुर को नहीं जाते हैं ।।१४।।

क्षयो भवेद्यथा वह्नेस्तमासो भास्करोदये ।
तथैव कलुषौघस्य नामसंकीर्त्तनाद्धरेः ॥१५
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरायाति न क्षयम् ।
गच्छतां दूरमध्वानं कृष्णमूर्च्छितचेतसाम् ॥१६
पाथेयं पुण्डरीकाक्षनाम संकीर्त्तनं हरेः ।
संसारसर्पसंदष्टविषचेष्टैकभेषजम् ।
कृष्णेति वैष्णवं नाम जप्त्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥१७
ध्यायन्कृते जपेन्मन्त्रैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संस्मृत्य केशवम् ॥१८
छिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
संसारसागरं तीर्त्वा स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥१९
विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमावृतोऽपि
श्रेयः परं तु परिशुद्धिमभीप्समानः ।
स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भवं स पश्ये
न्नारायणस्तुतिकथा परमो मनुष्यः ॥२०

सूर्य के उदय होने पर अग्नि की भाँति अन्धकार का क्षय हो जाता है उसी प्रकार से पापों के समूह का क्षय हरि भगवान् के शुभ नाम एवं गुणों की संकीर्त्तन से हो जाया करता है ॥१५॥ स्वर्ग में गमन करना क्या है जहाँ पुण्यों के क्षीए हो जाने पर पुनः मानव यहाँ इस लोक में आता है अर्थात् स्वर्गवास सावधिक ही हुआ करता है चिरस्थायी नहीं होता है। भगवान् श्री कृष्ण के नामोच्चारण करने से भावावेश में मूर्छित चित्त वाले और दूर मार्ग में जाने वाले भक्तों का कभी क्षय नहीं होता ॥१६॥ भक्ति मार्ग में चलने वालों का पाथेय (मार्ग का आहार) पुण्डरीकाक्ष भगवान् हरि के नामों का सङ्कीर्त्तन ही हुआ करता है अर्थात् नाम–सङ्कीर्त्तन के बल पर ही भक्त लोग आगे बढ़ते चले जाया करते हैं। भगवान् के नामों का सङ्कीर्तन संसार रूपी सर्प दंशन के विष की चेष्टा की एक मात्र महोषध है। मनुष्य 'कृष्ण' नाम का जाप करके मुक्त होजाता है।१७।

कृतयुग में ध्यान से—त्रेता में मन्त्रों के जाप से—द्वापर में भगवान् के अर्चन से जो भी फल प्राप्त होता था वही फल इस कलियुग में भगवान् केशव के शुभ परम मंगलमय नाम के कीर्त्तन एवं स्मरण से होता है ॥१८॥ जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर 'हरि'–ये भगवान् के दो अक्षर विद्यमान रहा करते हैं अर्थात् जो रात-दिन 'हरि-हरि'–यह रटता रहता है वह इस अथाह संसार के सागर को पारकर अन्त में भगवान् विष्णु के गृह अर्थात् लोक की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥ सहस्रों विज्ञातदुष्कृत्यों से घिरा हुआ भी परिशुद्धि की इच्छा रखने वाला मानव परं श्रेय को भगवन्नाम के प्रभाव से प्राप्त कर लेता है। भगवान् नारायण की स्तुति तथा कथा में अहर्निश परायण रहने वाला मनुष्य स्वप्नान्तर में भी फिर इस संसार को नहीं देखा करता है ॥२०॥

१०६—विष्णु पूजादि कथन

अशेषलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ॥१
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्।
यो न पूजयते विष्णुं तं विद्याद् ब्रह्मघातकम् ॥२
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
तं यो न ध्यायते विष्णुं स विष्ठायां क्रिमिर्भवेत् ॥२
नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः।
किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥४
उदकेनाप्यभावेन द्रव्याणामर्चितः प्रभुः।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न चार्चितः ॥५
न तत्करोति सा माता न पिता नापि बान्धवः।
यत्करोति हृषीकेषः सन्तुष्टः श्रद्धयार्चितः ॥६
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥७
न दानैर्विविधैर्दत्तैर्न पुष्पैर्नानुलेपनैः।
तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥८

सूतजी ने कहा—समस्त लोकों के स्वामी भगवान् हरि की आराधना करना ही इस संसार में परम सार वस्तु है । जो हरि को पुरुष सूक्त मन्त्रों के द्वारा जल तथा पुष्पों को समर्पित करता है वह हरि का परमाराधक पुरुष है ॥१॥ केवल एक श्री हरि की समर्चना करने से यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अर्चित हो जाता है । जो पुरुष भगवान् विष्णु का पूजन नहीं किया करता है उसको ब्रह्म घातक ही समझना चाहिए अर्थात् ब्रह्म घाती के तुल्य पाप का भागी होता है ॥२॥ जिससे समस्त भूतों की प्रवृत्ति होती है और जिसके द्वारा ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ करता है उन भगवान् विष्णु को जो ध्यान में नहीं लाता है वह निश्चय ही विष्ठा में रहने वाला कृमि हुआ करता है ॥३॥ नरक में घोर यातनाएं सहन करते हुए मनुष्य से यमराज के द्वारा पूछा जाता है कि क्या तूने सब क्लेशों के नाश करने वाले देव केशव भगवान् की कभी अर्चना नहीं की थी ? ॥४॥ भगवान् केशव तो इतने कृपालु हैं कि यदि पूजा के अन्य समस्त उपचार द्रव्यों का भी अभाव हो तो केवल जल से ही उनकी अर्चना भक्ति के साथ करने से वे इतने सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करते हैं कि उस अर्चना करने वाले जीव को अपना लोक प्रदान कर देते हैं । ऐसे सहज दयालु प्रभु की तूने अर्चना क्यों नहीं की थी ॥५॥ फिर यमराज ने कहा—अपने गर्भ से उत्पन्न करने वाली वह माता जिस काम को नहीं किया करती है—न पिता ही करता है और न कोई बान्धव करता है उसको परम श्रद्धा के भाव से अर्चित किये हुए हृषी केश प्रभु पूर्ण सन्तुष्ट होकर अपने भक्त के परत कल्याण को कर दिया करते हैं ॥६॥ वर्णों और आश्रमों के शास्त्रोक्त आधार वाले पुरुष के द्वारा परमाराध्य पुरुष भगवान् विष्णु समाराधित किये जाते हैं। उनकी आराधना के अतिरिक्त अन्य उनको सन्तुष्ट करने का कोई भी मार्ग नहीं है ॥७॥ अनेक प्रकार के दोनों से जो कि दिये जाया करते हैं—पुष्पों से और अनुलेपनों से यह महान् आतमा वाले भगवान् तोष को प्राप्त नहीं होते हैं जैसे कि जनार्दन प्रभु भक्ति के द्वारा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥८॥

———

१०७—विष्णु माहात्म्य कथन

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥१
किं तस्य दानैः किं यीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥२
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च ।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्माणि यानि वै ।
यानि येषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥४
कृतपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरेः संस्मरणं परम् ॥५
मुहूर्त्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः ।
सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः ॥६
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु योगस्थस्य च योगिनः ।
या काचिन्मनसो वृत्तिः सा भवत्यच्युताश्रया ॥७

श्री सूतजी ने कहा—समस्त शास्त्रों का अवलोकन करके और बारम्बार भली-भाँति विचार करके यह एक ही सिद्धान्त निष्पन्न हुआ है कि सर्वदा भगवान् नारायण का ही ध्यान करना चाहिए ॥१॥ जो परम देव भगवान् नारायण का अनन्य बुद्धि के द्वारा नित्य ध्यान किया करता है, उसको दानों के देने, तीर्थों के अटन, तपश्चर्या और यज्ञों के यजन करने से क्या प्रयोजन है अर्थात् इन सबके करने की नारायण के उपासक को कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥२॥ साठ हजार और साठ सौ तीर्थ भी नारायण को किये हुए एक प्रणाम की सोलहवीं कला के समान नहीं होते हैं। भगवान् नारायण के लिये किये हुए प्रणाम का इतना अधिक महत्त्व है ॥३॥ सम्पूर्ण प्रायश्चित्त और समस्त तपश्चर्या के कर्म-कलाप जो भी हैं ये सब उतना महत्त्व नहीं रखते हैं जितना श्री कृष्ण नाम के स्मरण का होता है । कृष्ण का अनुस्मरण इन सबसे परमाधिक होता है ॥४॥ जिस

पुरुष को किए हुए पाप में अनुरक्ति हो जाती है उसका एक ही श्री हरि का संस्मरण करना परमोत्तम प्रायश्चित है ।।५।। जो कोई व्यक्ति तन्द्रा रहित होकर एक मुहूर्त्त मात्र भी नारायण का ध्यान करता है वह भी स्वर्ग को गमन करता है उसके विषय में तो क्या कहा जावे, जो अहर्निश नारायण के ध्यान में ही परायण रहा करता है ।।६।। जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था में और योग में स्थित योगी की दशा में जो कुछ भी मन की वृत्ति होती है वह मनोवृत्ति भगवान् के समाश्रय प्राप्त करने वाली हुआ करती है ।।७।।

उत्तिष्ठन्निपतन्विष्णुं प्रलपन्विविशंस्तथा ।
भुञ्जन् जाग्रच्च गोविंदं माधवं यश्च संस्मरेत् ।।८
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्याच्चित्तं जनार्दने ।
एषा शास्त्रानुसारोक्तिः किमन्यैर्बहुभाषितैः ।। ९
ध्यानमेव परो धर्मो ध्यानमेव परं तपः ।
ध्यानमेव परं शौचं तस्माद् ध्यानपरो भवेत् ।।१०
नास्ति विष्णोः परं ध्येयं तपो नानशनात्परम् ।
तस्मात्प्रधानमंत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनम् ।।११
यद् दुर्लभं परं प्राप्यं मनसो यन्न गोचरम् ।
तदप्यप्रार्थितं ध्यातो ददाति मधुसूदनः ।।१२
प्रमादात्कुर्वतां पुंसां प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।।१३
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ।
आगामिदेहहेतूनां दाहको योगपावकः ।।१४

उठते हुए, पड़ते हुए तथा विवश होकर बैठते हुए, भोजन करते हुए और जागते हुए जो भगवान् हरि के नाम का उच्चारण करता रहता है तथा गोविन्द माधव का संस्मरण किया करता है। अपने-अपने कर्मों में रत रहते हुए जो भगवान् जनार्दन में अपना चित्त लगाता रहता है, यह शास्त्र के अनुसार ही उक्ति है, अन्य बहुत कुछ कथनों से क्या लाभ है। ।।८-९।। भगवान् का ध्यान करना ही सब से परम धर्म है और भगवद्-

ध्यान ही सब से बड़ा तप होता है। ध्यान का करना ही सर्वोत्तम शुचिता है। इसलिये सर्वदा भगवान् के ध्यान में ही परायण रहना जाहिए ॥१०॥ भगवान् विष्णु से अधिक अन्य कोई भी ध्येय अर्थात् ध्यान करने के योग्य नहीं है और अनशन करने से बड़ा अन्य कोई तप नहीं होता है। अतएव प्रधान मन्त्र द्वारा कथित भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन होता है ॥११॥ जो प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ है और जो मन में भी कभी आने वाला नहीं है उसको भी बिना ही प्रार्थना किये हुए ध्यान में आने वाले भगवान् मधुसूदन प्रदान कर दिया करते हैं ॥१२॥ प्रमाद पूर्वक करने वाले पुरुषों का जो कुछ भी यज्ञों में छूट जाता है वह सभी विष्णु के स्मरण करने से ही सम्पूर्णता को प्राप्त हो जाया करता है, यह श्रुति प्रतिपादन करती है। ॥१३। पाप कर्मों के शोधन करने के लिए ध्यान के समान अन्य कोई भी उत्तम साधन नहीं है। आने वाले देह के हेतुओं को दाह करने वाला योग ही एक पावक होता है ॥१४॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिमत्रैव जन्मनि।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मा च योऽचिरात् ॥१५

यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति वानिलः।
तथा चित्तस्थिते विष्णौ योगिनां सर्वकिल्बिषम् ॥१६

यथाग्नियोगात्कनकममलं संप्रजायते।
सप्लुष्टो वासुदेवेम मनुष्याणां सदा मलः ॥१७

गङ्गास्नानसहस्रेयु पुष्करस्नानकोटिषु।
यत्पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥१८

प्राणायामसहस्रैस्तु यत्पापं नश्यति ध्रुवम्।
क्षणमात्रेण तत्पापं हरेर्ध्यानात्प्रणश्यति ॥१९
कलिप्रभावो दुष्टोक्तिः पाषण्डानां तथोक्तयः।
न क्रामेन्मानसं तस्य यस्य चेतसि केशवः ॥२०
सा तिथिस्तदहोरात्रं स योगः स च चन्द्रमाः।
लग्नं तदेव विख्यातं यत्र प्रस्मर्य्यते हरिः ॥२१

विशेष रूप से निष्पन्न समाधि वाला योगी इसी जन्म में मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है क्योंकि वह योग की अग्नि के द्वारा अपने समस्त कर्मों का शीघ्र ही दाह कर दिया करता है ॥१५॥ जिस प्रकार से उठी हुई ज्वाला वाला आनि कक्ष को दग्ध कर दिया करता है उसी भाँति विष्णु के चित्त में स्थित होने पर योगियों के सम्पूर्ण पापों को अनिल दग्ध कर दिया करता है ॥१६॥ जिस तरह अग्नि के ताप के सम्पर्क को प्राप्त करके सुवर्ण विशुद्ध एवं मल रहित हो जाया करता है उसी तरह से भगवान् वासुदेव के सम्पर्क होने से मनुष्यों के मन का मल भी सदा संनुष्ट हो जाता है ॥१७॥ जो महापाप सहस्रों बार भागीरथी गंगा में स्नान करने से तथा करोड़ों बार पुष्कर में स्नान करने से क्षीण हुआ करता है वह भगवान् श्री हरि के स्मरण करने मात्र से नष्ट हो जाया करता है।१८।सहस्रों बारप्र ाणायाम करने से जो पाप का निश्चय रूप से नाश होता है वही पाप एक क्षण मात्र के श्री हरि के ध्यान करने से नष्ट हो जाया करता है ॥१९॥ इस घोर एवं महान् दारुण कलियुग का प्रभाव दुष्टों को उक्ति तथा पाखण्डियों की उक्तियाँ उस पुरुष के हृदय को क्रोमण नहीं किया करती है जिसके हृदय में भगवान् केशव विद्यमान रहा करते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् के ध्यान करने वाले के हृदय पर कोई भी दूषित प्रभाव नहीं होता है ॥२०॥ वही उत्तम तिथि है—वही श्रेष्ठ अहोरात्र है—वह ही अच्छा योग और चन्द्रमा है तथा उत्तम लग्न कही गई है जिसमें श्री हरि का स्मरण किया जाता है ॥२१॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चार्थजड़मूकता ।
यन्मुहूर्त्तं क्षणो वापि वासुदेवं न चिन्तते ॥२२
कलौ कृतयुगस्तस्य कलिस्तस्य कृते युगे ।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः ॥२३
यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा ।
गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः ॥२४
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥२५

असंत्यज्य च गार्हस्थ्यं स सप्त्वा च महत्तपः ।
छिनत्ति पौरुषीं मायां केशवार्पितमानसः ॥२६
क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः ।
मुदञ्च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते ॥२७
ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानदानादिकर्मसु ।
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषतः ॥२८

वही सबसे बड़ी हानि है और वही महान छिद्र है तथा वही अर्थ जड़ता एवं मूकता है, जो घड़ी और क्षण भगवान् वासुदेव के चिन्तन के बिना यों ही नष्ट हो जाया करते हैं। इस महा दुर्लभ मनुष्य जीवन का समय भगवान् के ध्यान, चिन्तन और स्मरण के बिना नष्ट कर देने के समान महान् हानि अन्य कुछ भी नहीं है ॥१२॥ जिसके हृदय में गोविन्द का ध्यान है और वह विराजमान रहते हैं उसके लिए इस कलियुग में भी सतयुग ही होता है और जिसके हृदय में गोविन्द का ध्यान-स्मरण और चिन्तन नहीं है उसकी कृतयुग में भी घोर कलियुग ही रहा करता है ॥२३॥ जिसके आगे-पीछे जाते हुए और स्थित होते हुए चित्त में नियत रूप से गोविन्द का ध्यान एवं स्मरण रहता है वह पुरुष सदा ही कृत-कृत्य समझना चाहिए ॥२४॥ जप, होम और अर्चन आदि में जिसका मन भगवान् वासुदेव में स्थित रहा करता है। हे मैत्रेय! उसके उस निरन्तर भगवच्चिन्तन में देवेन्द्र के पदादि के प्राप्ति का फल ही महान् विघ्न हुआ करता है ॥१२॥ गृहस्थाश्रम का त्याग करके महान् तप करते हुए केशव भगवान् में अपने मन को लगा देने वाला पुरुष पौरुषी माया का छेदन कर दिया करता है ॥२६॥ भगवान् गोविन्द जब हृदय में विराजमान रहते हैं तो मनुष्य क्रुद्धों पर क्षमा, मूर्खों पर दया और धर्मशीलों पर प्रसन्नता किया करते हैं ॥१७॥ स्नान आदि सब कर्मों में, समस्त प्रायश्चित्तों में और विशेष रूप से दुष्कृतों में देववर नारायण का ही ध्यान करना चाहिए ॥२८॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥२९

कीटपक्षिगणानाञ्च हरौ संन्यस्तचेतसाम् ।
ऊर्ध्वा एव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम् ॥३०

वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा ।
नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते ॥३१

न च दुर्वासस: शापो राज्यञ्चापि शचीपते: ।
हन्तुं समर्थं हि सखे हृत्कृते मधुसूदने ॥३२

वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वत: ।
नापयाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम् ॥३३

ध्येय: सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्तो
नारायण: सरसिजासनसन्निविष्ट: ।
केयूरवान्कनककुण्डलवान्किरोटी
हारी हिरण्मयवपुधृतशंखचक्र: ॥३४

न हि ध्यानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
श्वपचान्नानि भुञ्जानो पापी नैवात्र लिप्यते ॥३५

जिन पुरुषों के हृदय में इन्दीवर के सदृश श्याम वर्ण वाले भगवान् जनार्दन विराजमान रहते हैं अर्थात् जो जनार्दन प्रभु का निरन्तर चिन्तन एवं स्मरण किया करते हैं उनको सदा लाभ ही होता है और उनकी सर्वदा विजय होती है । उनका पराभव तो कभी होता ही नहीं है ॥२६॥ जिन कीट और पक्षीगणों ने भी हरि में अपने चित्त की वृत्ति लगा दी है उनकी ऊर्ध्व ही गति होती है । जो ज्ञान वाले मनुष्य हैं उनकी चित्त वृत्ति हरि में संलग्न हो जावे तो उनके कल्याण के विषय में तो कहना ही क्या है ? ॥३०॥ भगवान् वासुदेव के चरण की शरणागति एक तरुवर की छाया के समान ही है, जो न अत्यन्त शीत देने वाली है और न अधिक ताप ही प्रदान करने वाली होती है । वह तो नरकों के द्वारों का शमन करने वाली होती है । ऐसी वासुदेव तरु की छाया का सेवन क्यों नहीं किया जाता है ? तात्पर्य यह है कि उसका सेवन अवश्य हर एक को करना ही चाहिए ॥३१॥ भगवान् मधुसूदन को अपने हृदय में

स्थित कर लेने पर अर्थात् हृदय में उनका चिन्तन-स्मरण करने पर हे सखे ! दुर्वासा ऋषि का शाप और शची के पति इन्द्रदेव का राज्य भी हनन करने को समर्थ नहीं होता है ।।६२।। बोलते हुए, स्थित रहते हुए अथवा स्वेच्छा से अन्य कोई कर्म करते हुए भी जिस समय में भगवान का चिन्तन हृदय से दूर नहीं रहता है उसको ही सिद्ध धारणा मानना चाहिए ।।३३।। सूर्य-मण्डल के मध्य में स्थित, कमल के आसन पर सन्निविष्ट केयूर धारण करने वाले, सुवर्ण के कुण्डल पहिने हुए तथा किरीट और हार धारे हुए, सुवर्ण सदृश शरीर वाले एवं शंख और चक्र को धारण करने वाले भगवान नारायण का सदा ध्यान करना चाहिए ।।३४।। भगवान् के ध्यान के तुल्य इस लोक में अन्य कुछ भी पवित्र नहीं है। श्वपच के अन्नों को खाने वाला पापी इसमें लिप्त नहीं होता है ।।३५।।

सदा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे ।
यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बन्धनात् ।।३६

विष्णुभक्तिर्यस्य चित्ते तं वा जीवो नमेत्सदा ।
स तारयति चात्मानं तथैव दूरितावर्णवात् ।।३७

तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः स कथा यत्र केशवः ।
तत्कम यत्तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।३८

स जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम् ।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ।।३९

प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदुस्तदर्चनं पाणिफलं दिवौकसः ।
मनः फलं तद्गुणकर्मचिन्तनं वचस्तु गोविन्दगुणस्तुतिः
फलम् ।।४०

मेरुमन्दारमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ।
केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति ।।४१

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म पुरुषः साध्वसाधु वा ।
सर्वं नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।४२

तृणादिचतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रसुप्तं मायया तव ।।८३

जीवों का चित्त सांसारिक विषयों में सदा आसक्त रहा करता है। जैसी आसक्ति उसकी विषयों में होती है वैसी ही यदि नारायण के चरणों में हो तो इस जन्म-मरण के आवागमन के सांसारिक बन्धनों से कौन मुक्ति नहीं पा जाता ।।३६।। सूतजी ने कहा—जिसके चित्त में सदा विष्णु की भक्ति रहती है अथवा विष्णु का जो नमन किया करता है वह दुरितों (पापों) के समुद्र से अपने आप को पार कर ले जाया करता है ।।३७।। वह ही ज्ञान चर्चा है जिसमें गोविन्द के गुणों का वर्णन हो और वही कथा है जिसमें भगवान् केशव की लीला का वर्णन हो तथा वही कर्म है जो भगवान् की सेवा से सम्बन्धित होता है अर्थात् भगवान् के निमित्त ही किया जाता है। विशेष कथन करने से क्या लाभ है ।।३८।। वही वस्तुतः जिह्वा सफल एवं सार्थक है जो हरि का स्तवन किया करती है। वही चित्त प्रशंसनीय है जो भगवान् में लगा दिया गया हो। वे ही दोनों हाथ श्लाघा करने के योग्य होते हैं जो भगवान् की पूजा करने में लगे रहते हैं ।।३९।। ईश्वर को प्रणाम करना ही शिर को प्राप्त करने का फल होता है। जो शिर भगवान् के आगे झुक जाता है वही सफल शिर होता है। देवगणों की पूजा-अर्चा का करना ही हाथों का फल होता है। भगवान् के गुण-गणों का चिन्तन करने से ही मन की सफलता हुआ करती है। वाणी की सफलता तभी होती है जब श्री गोविन्द के गुणों का वर्णन करे या उनकी स्तुति किया करती है ।।४०।। मेरु एवं मन्दार पर्वत के समान भी पाप कर्मों का समूह भगवान् केशव के स्मरण से ही वह महान् पापों की राशि सम्पूर्ण विनष्ट हो जाया करती है ।।४१।। तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त चार प्रकार का भूतों का समुदाय होता है। यह समस्त चर—अचर स्वरूप जगत् आपकी माया से प्रसुप्त है। जो कुछ भी सत् या असत् कर्म पुरुष किया करता है उस सबको नारायण में न्यस्त कर देने पर वह कुछ भी करता हुआ भी लिप्त नहीं हुआ करता है ।।४२-४३।।

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र न वेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिञ्चेतसि संस्थितोजड़धियांपुंसां ददात्यव्ययः ।
किञ्चित्तं यदयं प्रयाति विलयं तत्राच्युतो कीर्त्तिते ।।४४

अग्निकार्य्यं जपः स्नानं विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम् ।
गन्तुं दुःखोदधेः कुर्य्युर्ये च तत्र तरन्ति ते ।।४५
राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च ।
धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः ।।४६

ये नमन्ति जगद्योनिं दासुदेवं सनातनम् ।
न तेभ्यो विद्यते तीर्थमधिकं मुनिसत्तम ।।३७

अनर्घ्यरत्नपूजाञ्च कुर्य्यात्स्वाध्यायमेव च ।
तमेवोद्दिश्य गोविन्द ध्यानं नित्यमतन्द्रितः ।।४८

जिस भगवान् में अपनी मति को न्यस्त कर देने वाला पुरुष नरक में कभी नहीं जाया करता है और जिसके चिन्तन करने में स्वर्ग में प्राप्त होता है । जिसमें अपनी आत्मा और मन को निवेशित कर देने वाले को कभी ब्रह्म का लोक भी बड़ी वस्तु नहीं होता है । चित्त में संस्थित होकर जो जड़ बुद्धि वालों को भी पुरुषों को अव्यय अविनाशी भगवान् मुक्ति प्रदान कर दिया करते हैं तो क्या आश्चर्य की बात है कि अच्युत-भगवान् का सङ्कीर्त्तन करने पर यह पुरुष विलय को प्राप्त हो जाता है ।।४४।। अग्नि कार्य अर्थात् होम करना–जप–स्नान–विष्णु का ध्यान तथा भगवान् विष्णु का अर्चन दुःख के सागर से पार होने के लिये करने चाहिए जिस में वे तर जाते हैं ।।४५।। राष्ट्र का रक्षक राजा होता है—बाल्यावस्था में बालक के रक्षा करने वाले उसके माता-पिता होते हैं—समस्त मनुष्यों का शरण अर्थात् रक्षा करने वाला धर्म हुआ करता है और सभी का शरण भगवान् श्री हरि होते हैं ।।४६।। जो इस जगत् योनि अर्थात् उद्भव स्थान सनातन भगवान् वासुदेव का नमन किया करते हैं हे मुनि श्रेष्ठ ! उनसे विशेष अधिक तीर्थ नहीं होता है । तात्पर्य यह है कि भगवान् को नमन

करने वाले भक्त तीर्थं स्वरूप ही हुआ करते हैं ।।४७।। नित्य ही तन्द्रा से रहित होकर अनर्घ्य रत्न—पूजा और स्वाध्याय उसी गोविन्द के उद्देश्य रख कर ध्यान करना चाहिए ।।४८।।

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा ।
द्विजजातिं सम मन्ये न याति नरकं नरः ।।४९

आदरेण सदा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया ।
तथा विश्वस्य कर्त्तारं को न मुच्येत बन्धनात् ।।५०
यथा जातवनो वह्निर्दहत्यार्द्रमपीन्धनम् ।
तथाविधः स्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम् ।।५१

आदीप्तं पर्वतं यद्वन्नाश्रयन्ति मृगादयः ।
तद्वत्पापानि सर्वाणि योगाभ्यासरतो नरः ।।५२
यस्य यावांश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ।
एतावानेव कृष्णस्य प्रभावः परिमीयते ।।५३

विद्वेषादपि गोविन्दं दमघोषात्मजः स्मरन् ।
शिशुपालो गतस्तत्त्वं किं पुनस्तत्परायणः ।।५४

भगवान् का भक्त शूद्र–निषाद, श्वपच अथवा द्विज जाति हो सबको समान मानना चाहिए ऐसा पुरुष कभी नरक में नहीं जाया करता है ।।४९।। जिस प्रकार से बहुत ही आदर के साथ धन की इच्छा से धनवान् पुरुषों की स्तुति किया करते हैं उसी भाँति इस सम्पूर्ण विश्व के कर्त्ता भगवान् का स्तवन किया जावे तो कौन पुरुष है जो सांसारिक बन्धन से मुक्ति न पावे अर्थात् सर्व मुक्त हो जाया करते हैं ।।५०।। जिस तरह वन में वृक्षों के ही संघर्ष से समुत्पन्न दावानल गीले भी ईंधन को दग्ध कर दिया करता है उसी भाँति योगियों के हृदय में स्थित भगवान् विष्णु उनके सम्पूर्ण किल्विषों को जला कर नष्ट कर दिया करते हैं ।।५१।। जैसे चारों ओर से अग्नि से दीप्त पर्वत को मृग आदि पशुगण अपना आश्रय नहीं बनाया करते हैं उसी तरह योग के अभ्यास में रति रखने वाले पुरुष समस्त पापों को अपने अन्दर आश्रय नहीं दिया करते हैं ।।५२।। जिस

पुरुष का जितना विश्वास भगवान् पर होता है उसको उतनी ही सिद्धि हुआ करती है। भगवान् श्री कृष्ण का इतना ही प्रभाव परिमाणित होता है। दमघोस का पुत्र शिशुपाल विद्वेष के भाव से भी श्री कृष्ण का अहर्निश स्मरण करता हुआ मुक्ति को प्राप्त होगया था फिर जो श्रीकृष्ण के ध्यान-स्मरण में भक्ति भाव से परायण रहने वाले हैं उनके कल्याण के विषय में क्या कहा जा सकता है ॥५३-५४॥

———

१०८—नृसिंह स्तोत्र

नारसिंहस्तुतिं वक्ष्ये शिवोक्तं शौनकाधुना।
पूर्वंमातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ॥१
भगवन् भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषम्।
त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः।
तस्माद्घोरतरप्रायं मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ॥३
इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य तु तद्वचः।
भक्षयामासुरव्यग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै।
नृसिंहरूपिणं देवंप्र दध्यौ भगवान् शिवः ॥५
अनादिनिधनं देवं सर्वभूतभवोद्भवम्।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केशरमालिनम् ॥६
रत्नाङ्गदं सुमुकुटं हेमकेशरभूषितम्।
श्रोणिसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब मैं शिव के द्वारा वर्णित नरसिंह भगवान् की स्तुति को बतलाता हूँ। पहिले सब मातृगण ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहे थे ॥१॥ हे भगवन् ! आपके प्रसाद से हम इस देव-असुर और मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण जगत् को भक्षण कर जायेंगे। आप हमको अपनी आज्ञा दे दीजिये ॥२॥ शंकर ने कहा—आप सबके द्वारा

इन समस्त प्रजाजनों की रक्षा करनी चाहिए-इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इनके विषय में जो तुम्हारा अत्यन्त घोरतर मन है उसे शीघ्र ही निवृत्त कर डालो ॥३॥ भगवान् शंकर ने यही कहा था किन्तु उन ने शंकर के वचनों को न मान कर अव्यग्र होते हुए चराचर इस त्रिलोकी को भक्षण करना आरम्भ कर दिया था ॥४॥इस प्रकार से मातृगण के द्वारा त्रैलोक्य के भक्ष्यमाण होजाने पर भगवान् शिव ने नृसिंह रूप वाले देव का ध्यान किया था ॥५॥ नृसिंह देव के ध्यान में स्वरूप का वर्णन किया जाता है-आदि और अन्त से रहित देव—समस्त प्राणियों के उत्पत्ति स्थान-विद्युत् के तुल्य जीभ वाले-महान् दाढ़ों से युक्त-स्फुरमाण केसरी की माला वाला उनका दिव्य रूप है ॥६॥ रत्नों से जटित अङ्गदों को भुजाओं में धारण करने वाले-सुन्दर मुकुट मस्तक पर पहिने हुए-सुनहले केसरों से अलंकृत तथा विशाल सुवर्ण की करधनी से विभूषित हैं ॥७॥

नीलोत्पलदलश्यामं रत्ननूपुरभूषितम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डोदरमण्डपम् ॥८

आवर्त्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहरोमभिः ।
सर्वत्रपुष्पविचित्राञ्च धारयंश्च महास्रजम् ॥९
स ध्यातमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम् ।
यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रैस्तु भक्तितः ॥१०

तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्षेण दैवतैः ।
प्रणिपत्य तु देवेशं तदौ तुष्टाव शङ्करः ॥११
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर ।
दैत्येश्वरेन्द्र सहारनखशुक्तिविराजित ॥१२

नखकमलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो ।
कल्पान्तेऽम्भोदनिर्घोष सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥१३

नील कमल के दलों के समान श्याम वर्ण वाले—रत्नों से निर्मित, नूपुरों से भूषित और अपने अतुल तेज से समस्त ब्रह्माण्ड के उदर मण्डप

को आक्रान्त किये हुए हैं ।।८।। आवर्त (भँवर) के समान आकार वाले शरीर के रोमों से समन्वित आपका देह है । समस्त प्रकार के पुष्पों से सुनिर्मित एवं अति अद्भुत विशाल माला को धारण किये हुए हैं ।।९।। इस प्रकार के अत्यद्भुत स्वरूप वाले भगवान् का जैसे ही शंकर ने ध्यान किया था वैसे ही नृसिंह भगवान् ने ध्यान करने ही से तुरन्त शिव को दर्शन दिया था । भक्ति भाव पूर्वक जिस प्रकार के स्वरूप का घन शियव ने किया था उसी प्रकार के रूप से जोकि देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था नृसिंह देव ने दर्शन प्रदान किया था । उस समय शंकर ने देवेश नृसिंह को प्रणाम करके फिर उनकी स्तुति की थी ।।१०-११।। शंकर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । दैत्यों के स्वामी हिरण्यकशिपु के संहार करने वाले नखरूपी शक्तियों से आप सुशोभित हैं । नखरूपी कमलों में संलग्न हेम के समान पिङ्गल वर्ण के विग्रह से युक्त हैं । हे जगत् के गुरु ! परम शोभन पद्म-नाभ आपके लिये मेरा प्रणाम है । आप कल्प के अन्त में मेघों के समान निर्घोष(गर्जना)वाले हैं और करोड़ों सूर्यों के तुल्य प्रभासे युक्त हैं।१२-१३।

सहस्रयमसंत्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम
सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक ।।१४
सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम ।
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ।।१५
सहस्ररुद्रसंजप्त सहस्राक्षनिरीक्षण ।
सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन ।।१६
सहस्रवायुवेगाग्र सहस्राक्ष कृपाकर ।
स्तुत्वैवं देवदेवेशं नृसिंहवपुषं हरिम् ।।
विज्ञापयामास पुनर्विनयावनतः शिवः ।।१७
अन्धकस्य विनाशाय या सृष्टा मातरो मया ।
अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्यद्भुताः प्रजाः ।।१८
सृष्ट्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजितः ।
पूर्वं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिरोचये ।।१९

एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंवपुर्हरिः ।
सहस्रदेवीर्जिह्वाग्रात्तदा वागीश्वरो हरिः ॥२०
तथा सुरगणान्सर्वान्रौद्रान्मातृगणान्विभुः ।
संहृत्य जगतः शर्म कृत्वा चान्तरधीयत ॥२१

हे नृसिंह देव ! आप सहस्रों यमों को संत्रास देने वाले हैं और सहस्र इन्द्रों के समान पराक्रम से युक्त हैं । आप सहस्र कुवलों के तुल्य स्फोत हैं तथा सहस्र चरणों के स्वरूप वाले हैं ॥१४॥ सहस्र चन्द्रों के प्रतिभा के सदृश हैं—और सहश्रांशु (सूर्य) के हरि (अंगों) के समान क्रम वाले हैं । सहस्र रुद्रों के समान तेज वाले हैं और आप सहस्रों ब्रह्माओं से संस्तुत हैं ॥१५॥ सहस्र रुद्रों से भली भाँति जर किए हुए हैं और सहस्राक्ष (इन्द्र) के समान निरीक्षण करने वाले हैं । आप सहस्र जन्मों के मथन करने वाले तथा सहस्रों के बन्धों को मोचन करने वाले हैं ॥१६॥ सहस्र वायु के वेग के समान अग्रगामी हैं । आप सहस्राक्ष हैं तथा कृपा के करने वाले हैं । इस तरह से शिव ने देवों के हेतु नृसिंह वपुधारण करने वाले हरि भगवान् की स्तुति की थी और फिर बहुत नम्रता के साथ अवनत होकर शंकर ने उनको विज्ञापित किया था ॥१७॥ अन्धक दैत्य के विनाश करने के लिए जो मैंने मातृगण का सृजन किया था वे मेरे वाक्य का अनादर करके अद्भुत प्रजाओं का भक्षण करती हैं ॥१८॥ उनका सृजन करके अपराजित मैं उनका संहार करने में असमर्थ हूँ क्योंकि पहिले मैंने उनका सृजन किया था अब उसका विनाश करना कैसे अच्छा लगता है ? ॥१९॥ इस प्रकार से जब रुद्र ने कहा तो नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् हरि ने जो वागीश्वर थे अपनी जिह्वा के अग्रभाग से सहस्र देवी—सुरगण—रौद्रगण और मातृगणों को विभु ने संहार करके सम्पूर्ण जगत् का कल्याण कर दिया था तथा उसी समय वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥२०-२१॥

नारसिंहमिदं स्तोत्रं यः पठेन्नियतेन्द्रियः ।
मनोरथप्रदस्तस्य रुद्रस्येव न संशयः ॥२२

ध्यायेन्नृसिहं तरुणार्कनेत्रं सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम् ।
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं परावरेशं जगतां निधानम् ।।२३

जपेदिदं सन्ततदुःखजालं जहाति नीहारमिवांशुमाली ।
समातृवर्गस्य करोति मूर्त्ति यदा यदा तिष्ठति तत्समीपे ।।२४

देवेश्वरस्यापि नृसिहमूर्त्तेः पूजां विधातुं त्रिपुरान्तकारी ।
प्रसाद्य तं देववरं स लब्ध्वा अव्याज्जगन्मातृगणेभ्य एव ।।२५

इस नरसिंह स्तोत्र को अपनी सब इन्द्रियों को नियत करके जो पुरुष नित्य पढ़ेगा उसके समस्त मनोरथों को रुद्र की ही भाँति यह स्तोत्र प्रदान कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।२२।। तरुण सूर्य के सदृश नेत्रों वाले—श्वेत कमल के समान वर्ण वाले—जलती हुई अग्नि के तुल्य मुख वाले—आदि-मध्य तथा अन्त से रहित—अजन्मा परावर के स्वामी—जगतों के निधान—परम पुराण पुरुष नृसिह भगवान् का ध्यान करता हूँ ।।२३।। जो इसका जाप करता है वह सूर्य के द्वारा नीहार (कुहरा) की भाँति सन्तत रहने वाले दुःखों के समुदाय को त्याग देता है अर्थात् उस जप करने वाले के दुःखों का जाल नष्ट हो जाता है। मातृ वर्ग के सहित की मूर्त्ति बनावे जब-जब उसके समीप में स्थित होवे। देवेश्वर नृसिह मूर्त्ति की पूजा करने के लिये त्रिपुर दैत्य के विनाश करने वाले शंकर ने देवों में श्रेष्ठ नृसिंह भगवान् को प्राप्त कर उन्हें प्रसन्न किया और मातृगण से ही जग की रक्षा की ।।२४-२५।।

१०९—कुलामृत स्तोत्र

कुलामृतं प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं यत्तु हरोऽब्रवीत् ।
पृष्टः श्रीनारदेनैव नारदाय तथा श्रृणु ।।१

यः संसारे सदा द्वन्द्वैः कामक्रोधैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः स दुर्मतिः ।।२

क्षणं विमुच्यते जन्तुर्मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो हि त्रिपुरान्तक ।।३

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः ।
उवाच तमृषिं शम्भुः प्रसन्नवदनो हरः ॥४

ज्ञानामृतं परं गुह्य रहस्यमृषिसत्तम ।
वक्ष्यामि शृणु दुखघ्न भवबन्धभयापहम् ॥५

तृणादिचतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत् सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥६

तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यति ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥७

सूत जी ने कहा—श्री नारद ने शिव से पूछा था तब नारद के द्वारा पूछे गये शिव ने नारद से जो कहा था उस कुलामृत स्तोत्र को मैं अब कहता हूँ। उसका तुम श्रवण करो ॥१॥ नारद जी ने कहा—जो संसार में सदा शुभ और अशुभ द्वन्द्व काम और क्रोध तथा शब्द आदि अनेक विषयों से बद्ध रहा है और वह दुष्ट मति वाला पीड्यमान रहता है। ऐसा व्यक्ति इस मृत्यु संसार रूपी सागर से क्षण मात्र में ही विमुक्त हो जावे इस प्रकार का प्रयोग हे त्रिपुरान्तक शिव ! मैं आपसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूं ।।२-३।। त्रिलोचन भगवान् शंकर ने नारद के वचन को सुनकर परम प्रसन्न मुख होकर हर शम्भु उस ऋषि से बोले—॥४॥ महेश्वर ने कहा—हे ऋषियों में परम श्रेष्ठ ! ज्ञानामृत अत्यन्त गोपनीय वस्तु है और परम गुह्य रहस्य है। यह दुःखों के हनन करने वाला तथा सांसारिक बन्धन के भय का अपहरण करने वाला है—इसको मैं तुमको बतलाता हूँ तुम समाहित होकर इसका श्रवण करो ॥५॥ जिस परमात्मा की माया से तृण जैसी तुच्छ वस्तु से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त चारों प्रकार का यह भूतों का चर-अचर समुदाय व सम्पूर्ण जगत् प्रसुप्त हो रहा है उस प्रभु विष्णु के प्रसाद से यदि कोई जन्तु प्रबुद्ध हो जाता है तो वह देवों के द्वारा भी दुस्तर इस संसार-सागर से पार चला जाता है। तात्पर्य है संसार के जन्म-मरण द्वारा निरन्तर आवागमन महान् बन्धन से निस्तार प्राप्त कर लिया करता है ॥६-७॥

भोगेश्वर्य्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः।
पुत्रदारकुटुम्बेषु मत्ताः सीदन्ति जन्तवः ॥८
सर्वं एकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव।
यस्त्वाननं निबध्नाति दुर्मतिः कोषकारवत्।
तस्य मुक्ति न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥९
तस्मान्नारद सर्वेषां देवानां देवमव्ययम्।
आराधयेत् सदा सम्यग्ध्यायेद्विष्णुं मुदान्वितः ॥१०
यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञमचलं विष्णुं सदा ध्यायेत् स मुच्यते ॥११
देवं गर्भोचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते।
अशरीरं विधातारं सर्वज्ञानमनोरतिम्।
अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१२
निर्विकल्पं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरामयम्।
वासुदेवं गुरुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१३
सर्वात्मकस्य यावन्तमात्मचैतन्यरूपकम्।
शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१४

सांसारिक भोगों के अति विशाल जाल और ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त तथा तत्त्व-ज्ञान से विमुख जन्तु-गण अपने पुत्र और दास एवं कुटुम्ब-परिवार में ही मत्त होकर अनेक दुःखों एवं अवसादों को भोगते रहा करते हैं ॥८॥ सभी जन्तु इसी एक महा विशाल सागरमें डूबे हुए हैं और वन के हाथियों की भांति जीर्ण हो रहे हैं। कोषकार के समान जो आनन को निबद्ध कर लेता है वह दुर्मति है और उस ऐसे पुरुष की करोड़ों जन्मों के पश्चात् भी मैं मुक्ति नहीं देखता हूँ ॥९॥ इसलिये हे नारद ! समस्त देवों के भी देव परम प्रभु अव्यय, अविनाशी भगवान् विष्णु की सदा आराधना अवश्य ही करनी चाहिए। परम आनन्द से युक्त होकर विष्णु की भली भांति समाराधना करे ॥१०॥ जो प्राणी विश्व स्वरूप आदि और अन्त से रहित, अजन्मा सर्वज्ञ, अचल और अपनी ही आत्मा में अन्तर्यामी रूप से विराजमान भगवान् विष्णु

का ध्यान सदा किया करता है वह अवश्य ही इस संसार से मुक्त हो जाता है ॥११॥ गर्भोचित देव विष्णु का सर्वदा ध्यान करने वाला पुरुष विमुक्ति प्राप्त कर लिया करता है। शरीर से रहित, त्रिधाता, सबके ज्ञान और मन को रति प्रदान करने वाले, सर्वत्र गमन करने वाला अर्थात् सबमें व्यापक एवं अचल भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहने वाला पुरुष संसार से विमुक्त हो जाया करता है ॥१२॥ विकल्पों से सहित, आभास शून्य, बिना प्रपञ्चों वाला एवं निरामय परम गुरु भगवान् वासुदेव विष्णु का सर्वदा ध्यान करने वाला व्यक्ति इस संसार से मुक्त हो जाता है ॥१३॥ सर्वात्मा का जितना भी आत्म चैतन्य स्वरूप है ऐसे परम शुभ, एकाक्षर भगवान् विष्णु का सर्वदा निरन्तर ध्यान करते रहने वाला पुरुष इस संसार के विशाल बन्धन से छुटकारा पा जाता है ॥१४॥

वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं विश्वेशं लोकसाक्षिणम् ।
सर्वस्माद्ुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१५
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः ।
योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१६
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन्लोको ह्यशेषतः ।
स्तुत्वैवं वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१७
संसारबन्धनात्कोऽपि मुक्तिमिच्छन्समाहितः ।
अनन्तमव्ययं देवं विष्णुं विश्वे प्रतिष्ठितम् ।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सदा ध्यायन्विमुच्यते ॥१८
नारदेन पुरा पृष्ट एव न वृषभध्वजः ।
यत्तेन तस्मै व्याख्यातं तन्मया कथित तव ॥१९

वचनों से भी परे, तीनों कालों के ज्ञाता, विश्व के स्वामी, समस्त लोकों के साक्षी तथा सबसे उत्तम भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहने वाला जन्तु अवश्य ही विमुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ ब्रह्मा से आदि लेकर देवों और गन्धर्वों के द्वारा, महामुनियों से, सिद्ध तथा चारणों के द्वारा एवं योगियों से जो सेवित हैं ऐसे भगवान् विष्णु का निरन्तर

ध्यान करने वाला पुरुष निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥१६॥ इस अत्यन्त दुस्तर और महाविशाल संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष समाहित होकर सम्पूर्ण लोक से छुटकारा पाने की चाह रखता हुआ वरद विष्णु की इस प्रकार स्तुति करके उनका ही सर्वदा ध्यान करता हुआ इससे छुटकारा पा जाता है ॥१७॥ संसार के बन्धन से मुक्ति की इच्छा करने वाला कोई भी सावधान होकर अनन्त, अव्यय विष्णुदेव को जो इस विश्व में प्रतिष्ठित हैं तथा विश्व के ईश्वर एवं अजन्मा हैं उनका सर्वदा निरन्तर ध्यान करके अवश्य ही विमुक्त हो जाता है ॥१८॥ श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से पहिले देवर्षि नारद के द्वारा पूछे गये भगवान् वृषभध्वज ने जो व्याख्या करके बतलाया था वही मैंने सब तुमको बतला दिया है ॥१९॥

तमेव सततं ध्यायन्निर्व्ययं ब्रह्म निष्कलम् ।
अवाप्स्यमि ध्रुव तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥२०
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
क्षणमेकाग्रचित्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२१
श्रुत्वा सुरऋषिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् ।
हृ विष्णु सम्यगाराध्य सिद्धेः पदमवाप्तवान् ॥२२
यः पठेच्छृणयाद्वापि नित्यमेव स्तवोत्तमम् ।
कोटिजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ॥२३
विष्णोः स्तवमिदं दिव्य महादेवेन कीर्त्तितम् ।
प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्व स गच्छति ॥२४

हे तात ! इसलिये निर्व्यय, निष्फल उसी ब्रह्म का निरन्तर ध्यान करते हुए तुम सब निश्चय ही अव्यय एवं शाश्वत पद को प्राप्त कर लोगे ॥२०॥ सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी एक क्षण भर एकाग्र चित्त करके भगवान् विष्णु के ध्यान करने की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं। ऐसे विष्णु के ध्यान का माहात्म्य है ॥२१॥ इस तरह से देवर्षि नारद जो ने ईश्वर शिव से भगवान् विष्णु के ध्यान का परम प्राधान्य श्रवण किया था और फिर उनने विष्णु की

भली-भाँति आराधना की तथा सिद्धि के परम पद को प्राप्त किया था ॥२०॥ जो कोई भी पुरुष इस परमोत्तम स्तव का नित्य ही पाठ करता है अथवा इसका श्रवण किया करता है उसके करोड़ों जन्मों में किये हुए भी पाप पूर्ण रूप से नष्ट हो जाया करते हैं ॥२३॥ इस भगवान् विष्णु के स्तव को जो कि अत्यन्त दिव्य एवं परम उत्तम है, महादेव ने इसका कीर्त्तन किया था। जो भी कोई प्रयत्न पूर्वक इसका नित्य ही पाठ करता है वह अमृतत्त्व को प्राप्त हो जाता है ॥२४॥

११०—मृत्यवष्टक स्तोत्र

स्तोत्रं सर्वं प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयेन भाषितम् ।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥१
शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥२
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम् ।
माधवञ्च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥३
पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम् ।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥४
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥५
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥६

श्री सूतजी ने कहा—मार्कण्डेय के द्वारा भाषित मैं सर्व स्तोत्र को बतलाता हूं। अब मैं भगवान् दामोदर की शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। यह मृत्यु हमारा क्या बिगाड़ करेगा ? ॥१॥ शंख, चक्र आयुधों के धारण करने वाले व्यक्त रूप से संयुत एवं परम अव्यक्त देव अधोक्षज विष्णु की शरणागति में पहुंच गया हूँ अब मेरा यह मृत्यु क्या कर सकेगा ? ॥२॥ वराह, वामन, नृसिंह, माधव, जनार्दन भगवान् विष्णु की प्रपत्ति में मैं प्राप्त हो गया हूँ। अब यह मृत्यु हमारी क्या हानि

करेगा ? ॥३॥ पुष्करक्षेत्र के बीज, जगतों के स्वामी, पुण्य स्वरूप, लोकों के नाथ परम पुरुष विष्णु का मैं प्रपन्न हो चुका हूँ, मेरा अब यह मृत्यु क्या बुरा करेगा ? ॥४॥ सहस्र शिरों वाले, व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप से समन्वित, सनातन एवं महान् योग वाले विष्णुदेव की प्रपत्ति मैंने ग्रहण कर ली है, अब यह परम दारुण मृत्यु प्राप्त होकर भी क्या हानि कर सकेगा ? ॥५॥ समस्त भूतों की आत्मा, महान् आत्मा यज्ञों की योनि, विश्व रूप वाले तथा अयोनिज भगवान् विष्णु की मैं शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। अब यह विचारा मृत्यु हमारा क्या कर सकेगा ? ॥६॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तवं तस्य महात्मनः ।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीड़ितः ॥७
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कंण्डेयेन धीमता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥८
मृत्य्वष्टकमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुर्वाच ह ॥९
इदं यः पठते भक्त्या त्रिकालं नियतं शुचिः ।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः ॥१०
हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं नारायणं शाश्वतमप्रमेयम् ।
विचिन्त्यसूर्य्यादतिराजमानंमृत्युं सयोगीजितवांस्तथैव ॥११

इस प्रकार से कहे हुए महान् आत्मा वाले भगवान के स्तव का श्रवण कर मृत्यु वहां से चला गया था और वह विष्णु के दूतों के द्वारा बहुत ही प्रपीड़ित किया गया था ॥७॥ इस प्रकार से परम धीमान् मार्कंण्डेय मुनि ने उस मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले भगवान् नृसिंह के प्रसन्न हो जाने पर यहाँ फिर कुछ भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहा करती है ॥८॥ यह मृत्यु का अष्टक परम पुण्यमय है। यह अत्यन्त शुभ है और मृत्यु का प्रशमन करने वाला है। इसको मार्कण्डेय मुनि के हित-सम्पादन करने के लिये ही विष्णु भगवान् ने स्वयं ही अपने मुखारविन्द से कहा था ॥९॥ इस मृत्यु के अष्टक को जो

नित्य ही नियम पूर्वक भक्ति-भाव के साथ तीनों कालों में नियत एवं पवित्र होकर पढ़ता है उस अच्युत भगवान् में चित्त को लगाने वाले मनुष्य की अकाल में कभी भी मृत्यु नही होगी ॥१०॥ अपने हृदय रूपी पद्म में सर्वदा संस्थित, परम पुराण पुरुष, शाश्वत, प्रमान करने के योग्य भगवान् नारायण का विशेष रूप से चिन्तन करे जो कि सूर्यदेव से भी अत्यधिक दीप्ति वाले हैं। ऐसा ध्यान करने वाला योगी मृत्यु को उसी प्रकार से मार्कण्डेय की भाँति ही जीत लेता है ॥११॥

१११—अच्युत् स्तोत्र

वक्ष्येऽहमच्युतस्तोत्रं श्रृणु शौनक सर्वदम् ।
ब्रह्मा पृष्टो नारदाय यथोवाच तथापरम् ॥१
यथाऽक्षयोऽव्ययो विष्णुः स्तोतव्यो वरदो मया ।
प्रत्यहं चार्चनाकाले तथा त्वं वक्तुमर्हसि ॥२
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्ते हि सर्वसुखप्रदाः ।
सफलं जीवितं तेषां ये स्तुवन्ति सदाच्युतम् ॥३
मुने स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि वासुदेवस्य मुक्तिदम् ।
श्रृणु येन स्तुतः सम्यक्पूजाकाले प्रसीदति ॥४
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः सर्वपापहारिणे ।
नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर ॥३
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक ।
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब हम भगवान् अच्युन के स्तोत्र कहेंगे जो कि समस्त पदार्थों के प्रदान करने वाला है। अब तुम उसका श्रवण करो। एक बार देवर्षि नारद जी ने ब्रह्मा जी से इसको पूछा था तब जैसा भी उन्होंने नारदजी से कहा था वही मैं तुमको बता रहा हूँ ॥१॥ नारद जी ने कहा—जिस विध-विधान से अक्षय और अव्यय तथा वरदान देने वाले भगवान् विष्णु का स्तवन मुझे करना चाहिए और प्रतिदिन अर्चना करने के समय में उनकी स्तुति जिस प्रकार से करनी

चाहिए–यह मुझे आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ।।२।। वे पुरुष इस लोक में परम धन्य हैं तथा उनका जन्म धारण करना भी बहुत ही शुभ है एवं वे अत्यन्त सुख के प्रदान करने वाले हैं और उनका जीवन ही पूर्णतः सफल एवं साथक है जो सदा भगवान अच्युत् स्तवन किया करते हैं ।।३।। ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिवर ! मैं भगवान् वासुदेव के मुक्ति प्रदान कर देने वाले स्तोत्र का वर्णन करता हूँ, तुम उसका श्रवण करो। पूजन करने के अवसर पर इस स्तोत्र के द्वारा स्तवन किये जाने पर भगवान् परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ।।४।। स्तोत्र यह है–भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है। समस्त पापों के अपहरण करने वाले भगवान् के लिये नमस्कार है। यज्ञ वराह स्वरूप भगवान् के लिये नमस्कार है और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है ।।५।। परम आनन्द स्वरूप वाले भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है। हे परमाक्षर ! आपकी सन्निधि में मेरा नमस्कार है ।।६।। आप ज्ञान के सद्भाव हैं आपके लिये नमस्कार है। हे ज्ञान के प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। आप परम अद्वैत स्वरूप वाले हैं और पुरुषों में सर्वोत्तम हैं आपके लिये मेरा सविनय प्रणाम है ।।७।।

नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण ।।८
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक ।
नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन ।।९
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुड़ध्वज ।
नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुड़ासन ।।१०
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन ।
नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्ते दितिनन्दन ।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय ।।११
जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय ।
जय गोवर्द्धनाधार जय गोकुलवर्द्धन ।।१२
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन ।

जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन ॥१३
जय सत्यजगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक ।
जय वेदान्तविद्वैद्य जय सर्वद माधव ॥१४

हे विश्व की रचना करने वाले देव ! आप तो इस समस्त विश्व का पूर्णतया पालन एवं रक्षण करने वाले हैं। आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं और विश्व की रचना के कारण स्वरूप हैं। आपकी सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥८॥ हे मधु नामक दैत्य के हनन करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। रावण राक्षस के अन्त करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है। कंस और केशी के वध करने वाले तथा कैटभ के हनन करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥९॥ हे गरुड़ध्वज ! कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। हे गरुड़ के ऊपर आसीन रहने वाले ! आपने काकनेमि का हनन किया था। आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है ॥१०॥ हे देवकी के पुत्र ! हे वृष्णि नन्दन ! आपको मेरा नमस्कार है। हे रुक्मिणी के कान्त ! हे अदिति को आनन्द देने वाले ! आपको मेरा नमस्कार है। आपका आवास गोकुल ग्राम में है और आप गोकुल के परम प्रिय हैं, आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है ॥११॥ हे कृष्ण ! आपने एक गोप का शरीर धारण करके भूमण्डल पर अवतार लिया है और गोपीजनों के परम प्रिय हैं, आपकी जय हो। आप गोवर्धन को आधार बनाकर गिरिराज का सब भोग ग्रहण करने वाले हैं और गायों के कुल को बढ़ाने वाले हैं, आपकी सदा जय हो ॥१२॥ आपने रावण जैसे महावीर का हनन किया था और चाणूर मल्ल का विनाश करने वाले हैं, आपकी सदा जय जयकार होवे। आपने जन्म लेकर विश्व में वृष्णि कुल को प्रकाशित कर दिया था। आपने महा विषधर कालीय नाग का मर्दन कर दिया था, आपकी सदा जय हो ॥१३॥ हे जगत् के सच्चे साक्षी प्रभो ! हे सम्पूर्ण अर्थों के साधन करने वाले ! आपकी सर्वदा जय हो। हे माधव ! आप वेदान्त के वेत्ता मनीषियों के वैद्य हैं और सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं, आपकी सदा जय हो ॥१४॥

जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वद माधव ।
जय सूक्ष्मचिदानन्द जप चित्तनिरञ्जन ॥१५
जयस्तेस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन ।
जय नाथ जगत्पुष्ट जप विष्णो नमोऽस्तु ते ॥१६
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम् ।
त्वं न्यासमुद्रासमयस्त्वञ्च पुष्पादि साधनम् ॥१७
त्वमाधारस्त्वमनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराम्बुजः ।
धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः ॥१८
त्वं प्रभो छलभृद्रामस्त्वं पुनः संवरान्तकः ।
त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णः सत्यपराक्रमः ॥१९
त्वं नृसिहः परानन्दो वराहस्त्वं धराधरः ।
त्वं सुवर्णस्तथा चक्रस्त्वं गदा शङ्ख एव च ॥२०
त्वं श्रीः प्रभो पुष्टिस्त्वं त्वं माला देव शाश्वती ।
श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वञ्च तथेषुधिः ॥२१

हे लक्ष्मी के पति देव ! आप सबके अव्यक्त रूप से आश्रय हैं और समस्त अर्थों के प्रदान करने वाले हैं आपको सदा जय हो । हे भगवन् ! आपका स्वरूप परम सूक्ष्मचित् अर्थात् ज्ञानमय और आनन्द रूप है। आप सबके चित्त के रञ्जन करने वाले हैं । आपकी सदा जय हो ॥१५॥ आप स्वयं विना अवलम्ब वाले, शान्त स्वरूप, सनातन तथा सदा रहने वाले हैं, आपकी सदा जय हो । हे नाथ ! आप से ही यह समस्त जगत् पोषण प्राप्त कर पुष्ट होता है । हे विष्णो ! आपकी जय हो और आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१६॥ हे हरे ! आप ही सबके अज्ञान के नाश करने वाले गुरु, और दीक्षा देने वाले मन्त्रों के मण्डल हैं— आप न्यास, मुद्रा और समय हैं तथा पुष्प आदि की अर्चना के साधन भी आप ही हैं ॥१७॥ हे प्रभो ! आप ही सब के आधार और अनन्त हैं । आप ही भूमि का आधार कूर्म हैं, आप ही धरा और आप ही ब्रह्मा हैं । जो धर्म और ज्ञान आदि हैं वे सभी आपका ही रूप है । वेदि मण्डल और शक्तियां भी आप ही हैं ॥१८॥ हे प्रभो ! आप ही छल

मृत राम हैं और फिर आप ही सवरान्तक हैं। आप ही ब्रह्मर्षि देव हैं और सत्य पराक्रम वाले विष्णु रूप भी आप ही हैं ॥१९॥ परम आनन्द स्वरूप नृसिंह भी आप हैं और इस धरा मण्डल को धारण कर पाताल से लाने वाले वाराह भी आप ही हैं। आप सुन्दर वर्ण वाले हैं तथा शङ्ख—चक्र और गदा जो आयुध हैं वे भी सब आप के ही स्वरूप हैं ॥२०॥ हे प्रभो ! आप ही श्री, पुष्टि, और बनमाला हैं। हे देव ! आप ही श्री वत्स हैं—आप ही कौस्तुभ शार्ङ्ग धनुष हैं ॥२१॥

त्वं खड्गचर्मणा सार्द्धं त्वं दिक्पालस्तथा प्रभो।
त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः ॥२२
आदित्या वसवो रुद्रास्त्वश्विन्यौ मरुद्गणाः।
त्वं दैत्या दानवानाचास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः ॥२३
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महामराः।
भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तेन्द्रियाणि च ॥२४
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वरः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशः ॥२५
त्वं वेदी त्वं हरे दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः।
त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्यः पशुयाजकः ॥२६
त्वमध्वर्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञ पुरुषोत्तमः।
दिक्पातालमही व्योम द्यौस्त्वं नक्षत्रकारकः ॥२७
देवतिर्य्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम्।
यत्किञ्चिद्दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत् ॥२८
तव रूपमिदं सर्वं दृष्टयर्थं संप्रकाशितम्।
नाथ यत्ते परं ब्रह्म देवैरपि दुरासदम् ॥२९

चर्म के साथ खंग भी आप हैं और हे प्रभो ! समस्त दिशाओं के पालक दिक्पाल भी आप ही हैं। आप राक्षसों के अधिपति हैं। आप ही साध्य हैं तथा वायु और निशाकर चन्द्र भी आप ही हैं ॥२२॥ द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—दोनों अश्विनी कुमार एवं

मरुद्गण आप ही हैं अर्थात् आपके ही ये सब विभिन्न रूप हैं। आप ही दैत्यों के रूप में रहते हैं–आप ही दानव हैं–नाग, यक्ष, राक्षस, खग, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध और पितृगण तथा महान् अमर गण भी आप ही हैं अर्थात् ये सब आपके ही स्वरूप हैं। तात्पर्य यह है कि आपके अतिरिक्त अन्य कहीं भी कुछ नहीं है सर्वत्र सभी रूपों में आप ही विराजमान हैं। समस्त भूत और विषय आप ही हैं। आप ही अव्यक्त हैं और समस्त इन्द्रियाँ भी आपका स्वरूप हैं ॥२३-२४॥ मन-बुद्धि-अहकार और हृदय में क्षेत्रज्ञ ईश्वर भी आप ही हैं। आप ही यज्ञ हैं-आप ही वषट्कार और ओंकार भी हैं तथा कुश एवं समित् भी आपका स्वरूप हैं ॥२५॥ हे हरे ! आप ही वेदी–दीक्षा–यूप और हुताशन हैं। आप ही होता हैं और आप ही यजमान हैं। आप ही धान्य तथा पशुयाजक हैं ॥२६॥ आप ही अध्वर्यु हैं और आप ही उद्गाता हैं। आप ही पुरषोत्तम एवं यज्ञ भी आप ही हैं। दिशाऐं–पाताल-मही—व्योम--द्यौ और नक्षत्र आदि सब आप ही के स्वरूप हैं ॥२७॥ देवगण—त्रियक् योनि के जन्तु तथा मनुष्य के स्वरूप में जो यह चर एवं अचर जगत् है तथा हे देव ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जगत् जो कुछ भी दिखलाई देता है यह सब आप ही का रूप है और दृष्टि के लिये ही ये सब सम्प्रकाशित हुए हैं। हे नाथ ! आपका जो परात्पर स्वरूप है जिसे ब्रह्म कहा जाता है वह तो देवों के द्वारा भी दुष्प्राप्त होने वाला है साधारण जन्तु तो प्राप्त ही कैसे कर सकता है ? ॥२८-२९॥

कस्तज्जानाति विमलं योगिगम्यमतीन्द्रियम् ।
अव्ययं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम् ॥३०

प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम् ॥३१

बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षयम् ।
अवतारेषु या मूर्त्तिर्विहरेद्देव दृश्यते ॥३२
परं भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः ।

कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम ॥३३

पुष्पधूपादिभिर्यत्तत्तव सर्वविभूतयः ।

सङ्कर्षणादि हे देव तव यत्पूजितो मया ॥३४

क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृतं मया ।

न शक्नोमि विभो सम्यक्तव पूजां यथोदिताम् ॥३५

आपके उस ब्रह्म स्वरूप को कौन जानता है ? वह तो अत्यन्त विमल—योगियों के द्वारा जानने के योग्य होता है और वह इन्द्रियों से भी परे की वस्तु है। ब्रह्म का स्वरूप अव्यय पुरुष है—नित्य—अव्यक्त—अज और नाश रहित है ॥३०॥ ब्रह्म प्रलय तथा उत्पत्ति से रहित है—सर्वत्र व्याप्त रहने वाला और सबका ईश्वर है। वह सर्वज्ञ अर्थात् सभी कुछ के ज्ञाता हैं। ब्रह्म में कोई भी गुण नहीं है अर्थात् गुणों से शून्य निर्गुण हैं। उस ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप होता है। जरा से (वार्धका से) रहित परात्पर और आनन्दमय वह होता है ॥३१॥ ब्रह्म बोध अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला है—ध्रुव है—शान्त है—पूर्ण है तथा क्षय से शून्य एवं द्वैतभाव से विहीन होता है। जो उसी ब्रह्म की मूर्त्ति अवतीर्ण होकर इस लोक में अवतार धारण किया करती है वह सर्वत्र विचरण किया करती है और हे देव ! वह सबके द्वारा दिखलाई देती है ॥३२॥ हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! उस आपके ब्रह्म स्वरूप के परम भाव का ज्ञान न रखने वाले देवगण आपका भजन एवं सेवन किया करते हैं। आपके इस प्रकार के सूक्ष्म स्वरूप को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ॥३६॥ गन्धाक्षत पुष्प धूप दीपादि पूजनोपचारों के द्वारा मैंने जो संकर्षण आदि की प्रतिमाओं का अर्चन किया है वे सब आप ही की विभूतियाँ हैं। उन आपकी विभूतियों का पूजन भी आप का ही पूजन है ॥३४॥ हे विभो ! मैंने जो कुछ भी आपकी अर्चना आदि की है और जो कुछ भी नहीं किया है अर्थात् मुझसे जो त्रुटि रह गई है उन सबको आप क्षमा करने के योग्य होते हैं। हे प्रभो ! जिस प्रकार से आपकी पूजा बताई गई है उसे ठीक तरह से मैं नहीं कर सकता हूँ ॥३५॥

यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम ।
विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम् ।।३६
दिवारात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः ।
अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम ।।३७
शरीरेण तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च ।
यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम ।।३८
किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम् ।
यस्य विष्णौ दृढ़ा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे ।।३६
पूजां कर्त्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युत ।
स्तुतं तु पूजितं मेऽद्य तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ।।४०
इति चक्रधरस्तोत्रं मया सम्यगुदाहृतम् ।
स्तौहि विष्णुं मुने भक्त्या यदीच्छसि परं पदम् ।।४१

हे पुरुषोत्तम ! मैंने जो कुछ भी साधना के अयोग्य जप, होम आदि को विशेष रूप से निष्पादित करने के लिये भक्तिभाव पूर्वक किया है, उनमें बहुत-सी त्रुटियाँ रही होंगी। अतएव मैं आप से उन सब के लिये क्षमायाचना करता हूँ ।।३६।। दिन और रात्रि में तथा दोनों सन्धि कालों में एवं सभी प्रकार की अवस्थाओं में स्थित रहकर चेष्टाऐं करते हुए मेरी हे हरि ! आपके चरणों में अचल भक्ति है ।।३७।। हे जगत् के नाथ ! धर्म आदि अन्य कार्यों में मेरी शरीर के द्वारा उस प्रकार की प्रीति नहीं है जैसी कि आपके चरण कमल में रहती है ।।३८।। उस पुरुष ने स्वर्ग और मोक्ष आदि का कौन-सा साधन नहीं कर लिया है, जिसकी समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान कर देने वाले भगवान् विष्णु के चरणारविन्द में परम सुदृढ़ भक्ति होती है। विष्णु की भक्ति ही समस्त कर्मों के फलों को प्रदान करने वाली है। इसके करने के बाद फिर अन्य किसी भी धर्मादि साधन करने की आवश्यकता नहीं रहती ।।३६।। हे अच्युत ! आपकी उस प्रकार की विधि विधान पूर्वक अर्चना तथा आपके स्तोत्र का पाठ कौन पुरुष करने में समर्थ होता है ?

अर्थात् कोई भी कर नहीं सकता है। हे भगवन् ! आज मैंने आपका स्तवन किया है और आपका अर्चन भी किया है। इसमें बहुत-सी त्रुटियाँ जो हो गईं हैं उन्हें आप कृपाकर क्षमा कर देवें। आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥४०॥ यह भगवान् चक्रधारी का स्तोत्र मैंने भली भाँति वर्णन करके तुमको बता दिया है। हे मुने ! यदि आप परम पद के प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो भक्ति की भावना से भगवान् विष्णु का स्तवन करो। एकमात्र इसी से तुमको सर्वोत्तम पद की प्राप्ति हो जायगी और पूर्ण कल्याण होगा ॥४१॥

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति पूजाकाले जगद्गुरुम् ।
अचिराल्लभते मोक्षं छित्वा संसारबन्धनम् ॥४२
कल्येऽपि यो जपेद्भक्त्या त्रिसन्ध्यं नियतः शुचिः ।
इद स्तोत्रं मुने सोऽपि सर्वकाममवाप्नुयात् ॥४३
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्बद्धो मुच्येत् बन्धनात् ।
रोगाद्विमुच्यते रोगी निर्धनो लभते धनम् ॥४४
विद्यार्थी लभते विद्यां यशः कीर्त्तिञ्च विन्दति ।
जातिस्मरत्वं मेधावी यद्यदिच्छति चेतसा ॥४५
अधन्यः सर्ववित्प्राज्ञस्त्वसाधुः सर्वकर्मकृत् ।
सत्यवाक्यः शुचिर्दाता यः स्तौति पुरुषोत्तमम् ॥४६
साधुशीला हि ते सर्वे सर्वधर्मबहिष्कृताः ।
येषां प्रवर्त्तनं नास्ति हरिमुद्दिश्य सत्क्रियाः ॥४७
नाशौचं विद्यते तस्य मनो वाक् च दुरात्मनः ।
यस्य सर्वार्थदे विष्णौ भक्तिर्नाव्यभिचारिणी ॥४८
आराध्य विधिवद्देवं हरिं सर्वसुखप्रदम् ।
प्राप्नोति पुरुषः सम्यग्यद्यत्प्रार्थयते फलम् ॥४९

इस स्तोत्र के द्वारा विष्णु के अर्चन के समय सम्पूर्ण जगत् के गुरु भगवान् विष्णु का जो कोई स्तवन किया करता है वह बहुत ही शीघ्र संसार के सम्पूर्ण विशाल बन्धनों का छेदन करके अवश्य

ही मोक्ष पाने का लाभ प्राप्त कर लिया करता है ॥४२॥ जो पुरुष प्रातः काल में भी भक्ति भाव पूर्वक नियत रूप से पवित्र होकर तीनों सन्ध्याओं में इस स्तोत्र का जाप किया करता है हे मुनिश्वर ! वह पुरुष भी अपनी सभी कामनाओं के फलों को प्राप्त कर लिया करता है ॥४३॥ जो पुत्र प्राप्ति की कामना से इस स्तोत्र का जाप करता है वह पुत्रों की प्राप्ति किया करता है और जो साँसारिक बन्धनों में बँधा हुआ उन सबसे छुटकारा पाने के लिए इस स्तव को जपता है वह उन सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जो कोई रोगी इस विष्णु के स्तोत्र का जाप करता है वह रोग से छुटकारा पा जाता है और धन रहित पुरुष धन की प्राप्ति कर लेता है ॥४४॥ विद्या की चाह रखने वाला पुरुष पूर्ण विद्या का लाभ प्राप्त कर लेता है तथा इसी प्रकार से यश और कीर्ति की भी प्राप्ति किया करता है। अपनी जाति में प्रमुखता का भी इस स्तोत्र के पाठ एवं जाप के प्रभाव से मनुष्य प्राप्त कर लेता है। मेधावी पुरुष जो-जो भी चित से चाहता है उसी का लाभ निश्चय ही उसको हो जाया करता है। जो अधन्य है वह इस स्तव के प्रभाव से सबका वेत्ता परम प्राज्ञ हो जाता है और जो असाधु है वह समस्त कर्मों के करने वाला बन जाया करता है। जो सत्य वचनों के बोलने वाला—परम पवित्र होकर तथा दान शील रहते हुए इस स्तोत्र के द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम का स्तवन करता है उसका सर्वतोभाव से पूर्ण कल्याण हो जाता है ॥४५-४६॥ जो चाहे साधु शील भी हों किन्तु वे सब समस्त धर्मों से बहिष्कृत होते हैं जिनकी प्रवृत्ति भगवान् विष्णु की सान्निधि प्राप्त करने के उद्देश्य को लेकर नहीं होती है ॥४७॥ उस दुरात्म्य के मन तथा वाणी में कभी शुचिता नहीं रहा करती है जिसकी सब अर्थों के प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु में अव्यभिचारिणी भक्ति नहीं होती है ॥४८॥ सब सुखों के प्रदान करने वाले हरिदेव का विधिपूर्वक आराधन करके मनुष्य जिस-जिस भी फल के पाने की प्रार्थना करता है उसी-उसी फल का लाभ वह अवश्य ही कर लेता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥४९॥

११२—रोग नाशन वैष्णव कवचम्

श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतदीपं नयत्वजः ।
सर्वान्शत्रून्सूदयतु मधुकैटभसूदनः ॥१
विष्णुः सदा चाकर्षतु किल्बिषं मम विग्रहात् ।
हंसो मत्स्यतथा कूर्मः पातु मां सवतो दिशम् ॥२
त्रिविक्रमस्तु मे देवः सर्वान्पापान्निगृह्णतु ।
तथा नारायणो देवो बुद्धि पालयतां मम ॥३
शेषो मे निर्मलं ज्ञानं करोत्वज्ञाननाशनम् ।
वड़वामृखो नाशयतु कल्मषं यत्कृतं मया ॥४
पद्भ्यां ददातु परमं सुखं मूर्ध्नि मम प्रभुः ।
दत्तात्रेयः कलयतु सपुत्रपशुबान्धवम् ॥५
सर्वानरीन्नाशयतु रामः परशुना मम ।
रक्षोघ्नस्तु दाशरथिः पातु नित्यं महाभुजः ॥६
शत्रून्हलेन मे हन्याद्रमो यादवनन्दनः ।
प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकंसनाशनः ॥
कृष्णस्य यो बालभावः स मे कामान् प्रयच्छतु ॥७

वैष्णव कवच का कथन है—श्वेत द्वीप के निवास करने वाले अज श्वेत द्वीप को प्राप्त करावें । मधु और कैटभ के संहार करने वाले भगवान् मेरे समस्त शत्रुओं का संहार करें ॥१॥ भगवान् विष्णु सदा मेरे शरीर किल्विषों का आकर्षण करें । हंस मत्स्य तथा कूर्म के अवतार धारण करने वाले भगवान् विष्णु मेरी दिशाओं में रक्षा करें ॥२॥ भगवान् त्रिविक्रम देव मेरे समस्त पापों का निग्रह करें । नारायण देव मेरी बुद्धि की रक्षा करें ॥३॥ भगवान् शेष मेरे लिए निर्मल ज्ञान प्रदान करें और मेरे अज्ञान का नाश करें । बड़वासुख देव मैंने जो भी कल्मष किया है उसका समूलय नाश कर देवें ॥४॥ प्रभु अपने चरणों से मेरे मस्तक पर परम सुख प्रदान करें । दत्तात्रेय भगवान् मुझे पुत्र, पशु और वान्धवों के सहित सुख प्रदान करें ॥५॥ भगवान् परशुराम अपने

परशु से मेरे सभी शत्रुओं का नाश कर देवें। सम्पूर्ण राक्षसों के संहार करने वाले भगवान् दाशरथि श्री राम जिनकी बड़ी-बड़ी भुजाऐं हैं मेरी नित्य ही रक्षा करें ॥६॥ भगवान् बलराम जो कि यादव कुल में अवतीर्ण हुए हैं अपने हल से मेरे समस्त शत्रुओं का हनन करें। प्रलम्ब–केशी—चाणूर—पूतना और कंस के नाश करने वाला जो भगवान् श्री कृष्ण का बाल भाव है वह मेरी समस्त कामनाओं को आदान करें ॥७॥

अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णपिंगलम्।
पश्यामि भयसंत्रस्तः पाशहस्तमिवान्तकम् ॥८
ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरणं गतः।
धन्योऽहं निर्भयो नित्यं यस्य मे भगवान्हरिः ॥९
ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपद्रवनाशनम्।
वैष्णवं कवच वद्ध्वा विचरामि महीतले ॥१०
अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम्।
स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥११
सिद्धिर्भवतु मे नित्यं यथा मन्त्रमुदाहृतम्।
यो मां पश्यति चक्षुर्भ्यां यञ्च पश्यामि चक्षुषा ॥
सर्वेषां पापदुष्टानां विष्णुर्बध्नाति चक्षुषी ॥१२
वासुदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य ये त्वराः।
ते हि छिन्दन्तु पापानि मत हिंसन्तु हिंसकान् ॥१३

अन्धकार तम से परम घोर कृष्ण और पिंगल वर्ण वाले पुरुष को जिसके हाथों में पाश है साक्षात् यम के समान मैं जब देखता हूँ तो भय से एकदम संत्रस्त हो जाता हूँ। तब मैं पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले भगवान् अच्युत के शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ। मैं परम धन्य एवं भाग्यशाली हूँ कि फिर मैं निर्भय हो जाता हूँ क्योंकि मैं नित्य ही भगवान् हरि के सन्निकट में स्थित रहता हूँ ॥८-९॥ सम्पूर्ण उपद्रवों के नाश करने वाले देव नारायण का ध्यान करके और इस वैष्णु सम्बन्धी वैष्णव कवच को बाँधकर मैं निर्भय इस मही मण्डल में विचरण करता हूँ

॥१०॥ मैं भूतों के प्रवर्षण करने के अयोग्य हूँ और मैं सब देवों से परिपूर्ण हूँ। अमित तेज वाले भगवान् विष्णु जो देवों के भी देव हैं उनके स्मरण का ही यह प्रभाव है ॥११॥ जैसे ही मैंने मन्त्र का उच्चारण किया वैसे ही मुझे नित्य सिद्धि होवे। जो मुझको नेत्रों से देखता है और जिसको मैं नेत्र से देखता हूँ, भगवान् विष्णु समस्त दुष्ट पापियों के नेत्र को बाँध देते हैं ॥१२॥ भगवान् वासुदेव के चक्र की जो त्वराऐं हैं वे पापों का छेदन करें और मेरे हिंसकों की हिंसा कर देवें ॥१३॥

राक्षसेषु पिशाचेषु कान्तारेष्वटवीषु च।
विवादे राजमार्गेषु द्यूतेषु कलहेषु च ॥१४
नदीसन्तारणे घोरे संप्राप्ते प्राणसंशये।
अग्निचौरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे ॥१५
विद्युत्सर्पविषोद्वेगे रोगे च विघ्नसंकटे।
जप्यमेतज्जपेन्नित्यं शरीरे भयमागते ॥१६
अयं भगवतो मन्त्रो मन्त्राणां परमो महान्।
विख्यातं कवच गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
स्वमायाकृतनिर्माणकल्पान्तगहनं महत् ॥१७
ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ॥१८

राक्षसों में—पिशाचों में—घोर वनों में—अटवियों में—विवाद के अवसर पर—राजमार्गों में—द्यूतों में और कलहों में—नदी के सन्तरण में— घोर प्राणों के संशय के अवसर पर—अग्नि, चोरों के नियातों में—सब ग्रहों के निवारण में—विद्युत्–सर्पविष—उद्वेग में—रोग में—विघ्नों के संकट में इस कवच का जाप नित्य ही करना चाहिए और जिस समय में भी शरीर पर कोई भय उपस्थित हो इसका जाप करे। यह भगवान् का मन्त्र है। समस्त मन्त्रों में वह परम महान् है। यह वैष्णव कवच अति विख्यात है और अत्यन्त गोपनीय है। यह समस्त पापों का नाशक है। अपनी माया से किये गये निर्माण और कल्यान्त के समान महान् गहन है ॥१४-१७॥ मन्त्र—"ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तुते"—अर्थात आप आदि और अन्त से रहित हैं—इस जगत् के

बीज स्वरूप अर्थात् कारण हैं—आपकी नाभि में पद्म है ऐसे आपके लिए प्रणाम है ।।१८।।

११३—सर्वकामद विद्या कथन

सर्व कामप्रदां विद्यां सप्तरात्रेण तां शृणु ।
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।।१
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ।
नमो विज्ञानदात्रे च परमानन्दमूर्त्तये ।।२
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ।
त्वं रूपाणि च सर्वाणि तस्मात्तुभ्यं नमो नमः ।।३
हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्त्तये ।
यस्मिमिन्निदं यतश्चैतत्तिष्ठत्यन्योऽपि जायते ।।४
मृन्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ।
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।।
अन्तर्बहिश्चरसि त्वं व्योमतुल्यं नमाम्यहम् ।।५
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्त्वभावि-
व्रीड़निकरकमलरेणूत्पलनिभधर्माख्यविद्यया चरणारविन्दऽ
युगल परमेष्ठिन्नमस्ते अवापविद्याधरतां चित्रकेतोश्च
त्रिद्यया ।।६

श्री हरि ने कहा—समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाली उस विद्या को सात रात्रि पर्यन्त श्रवण करो । भगवान आपके लिए नमस्कार है । वासुदेव भगवान् का ध्यान करते हैं ।।१।। प्रद्युम्न–अनिरुद्ध और संकर्षण भगवान् के लिए नमस्कार है । विज्ञान के दाता के लिए और परम आनन्द की मूर्त्ति के लिए नमस्कार है ।।२।। अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले—शान्त स्वरूप और द्वैत दृष्टि के निवृत हो जाने वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है । आप ही समस्त रूपों में विद्यमान हैं । इसलिए आपको बारम्बार नमस्कार है ।।३।। भगवान् हृषीकेश और

महान् अनन्तमूर्ति के लिए मेरा नमस्कार है। जिसके स्वरूप में यह सम्पूर्ण जगत है और जिससे इसकी उत्पत्ति होती है तथा जिसमें यह स्थिति प्राप्त किया करता है एवं अन्य भी समुत्पन्न होता है, उन भगवान के लिए मेरा नमस्कार है। जो इस मृत्तिकामयी पृथ्वी का वहन करते हैं उन ब्रह्म के लिये नमस्कार है। जिसका मन—बुद्धि—इन्द्रिय और प्राण स्पर्श नहीं किया करते हैं और न जानते ही हैं। हे भगवन्! आप बाहिर और भीतर सर्वत्र विचरण किया करते हैं और व्योम के समान हैं। मैं ऐसे आपके लिए नमस्कार करता हूँ ॥४-५॥ मन्त्र—'ॐ नमो भगवते···चित्रकेतोश्च विद्यया"—अर्थात् महाभूतों के पति महापुरुष भगवान् के लिए नमस्कार है। समस्त सत्त्वों के, भाविक्रीड के, समुदाय के, कमल रेणु के, उत्पल के तुल्य धर्म नाम वाली विद्या से चरणारविन्द युगल परमेष्ठी आपके लिए नमस्कार है। चित्रकेतु की विद्या से आपने विद्याधरता को प्राप्त किया था ऐसे आपके लिए नमस्कार है ॥६॥

११४—व्याकरण कथन

अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासतः।
सिद्धशब्दविवेकाय बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥१
सुप्तिङन्तं पदं ख्यातं सुपः सप्त विभक्तयः।
स्वौजसः प्रथमा प्रोक्तासा प्रातिपदिकात्मके ॥२
सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्त्तरि।
अर्थवत्प्रातिपदिकं धातुप्रत्ययवर्जितम् ॥३
अमौशसा द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत्।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्ताऽन्तरान्तरेण संयुते ॥४
टाभ्यांभिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्त्तरीरिता।
येन क्रियते तत्करणं कर्त्ता यश्च करोति सः ॥५
ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके।
यस्मै दित्सा धारयते रोचते सम्प्रदानकम् ॥६

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके।
यतोऽपैति समादत्ते अपादत्ते भयं यतः ॥७

कुमार ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं व्याकरण के विषय में बतलाता हूँ। हे कात्यायन ! बालकों की व्युत्पत्ति के निमित्त सिद्ध शब्दों के विवेक के लिए संक्षेप में इसका वर्णन किया जाता है ॥१॥ सुबन्त और तिङन्त दो प्रकार के पद कहे गये हैं। सुप ये सात विभक्तियां होती हैं। सु–औ–जस् नाम वाली प्रातिपदिक रूप शब्द में तीन, एक वचन, द्विवचन और बहुवचन में विभक्तियाँ प्रथमा कही जाती हैं ॥२॥ यह प्रथमा विभक्ति सम्बोधन में–लिङ्गादि में, उक्त कर्म में अर्थात् वहाँ जहाँ कर्म की ही प्रधानता कथित हो और कर्त्ता में होती है। जो शब्द अर्थ वाला हो और धातु एवं प्रत्यय से रहित हो वही प्रातिपदिक कहा जाता है ॥३॥ अम्–औ–शस्–ये तीनों वचनों में कर्म की विभक्तियाँ होती हैं। अन्तरा और अन्तरेण से संयुत में और कर्म में द्वितीया विभक्त होती है ॥४॥ टा–भ्याम्—भिस्—ये तीनों वचनों में करण की विभक्तियाँ होती हैं। ये उक्त कर्म जहाँ होता है वहाँ कर्त्ता में भी होती हैं। जिसके द्वारा किया जाता है वह करण कहा जाता है, और जो क्रिया को करता है वह कर्त्ता होता है ॥५॥ ङे—भ्याम् भ्यस्—ये तीन वचनों में तीन विभक्तियाँ चतुर्थी कही जाती हैं और सम्प्रदान कारक में होती हैं। जिसके लिये देने की इच्छा होती है और जो रुचि का पात्र होता है वह सम्प्रदान कहा जाता है ॥६॥ ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ये तीन वचनों में पञ्चमी विभक्ति होती है जो आपदान कारक में होती है। जहाँ से अपगमन होता है, समादान होता है या आपदान एवं भय जिससे होता है वहाँ यह अपादान कारक हुआ करता है ।७।

ङसोमामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके।
ङ्योःसुपश्च सप्तमी स्यात् सा चाधिकरणे भवेत् ॥८
आधारश्चाधिकरणो रक्षार्थानां प्रयोगतः।
ईप्सितञ्चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥९
पञ्चमी पर्य्यपाङ्योगे इतरर्त्तेऽन्तदिङ्मुखे।
एनयोगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकैः ॥१०

वीप्सेत्थम्भावचिह्नेऽभिर्भागे चैव परिप्रती ।
अनुरेषु सहार्थे च हीनेऽनूपश्च कथ्यते ॥११

द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि ।
अप्राणे हि विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे ॥१२

नमः स्वस्ति स्वधा स्वाहालं वषड् योग ईरिता ।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥१३

तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे ।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगेऽपि षष्ठ्यपि ॥१४

ङस्, ओस्, आम्— ये तीनों वचनों में षष्ठी विभक्ति के रूप होते हैं। यह षष्ठी विभक्ति मुख्यतय स्वामी के सम्बन्ध में ही हुआ करती है। ङि, ओस्, सुप्,— ये तीनों वचनों में सप्तमी विभक्ति के रूप होते हैं। यह अधिकरण में होती है ॥८॥ जो क्रिया का होना जिस स्थान, समय आदि में होता है वही उसका आधार होता है उसे ही अधिकरण कहा जाता है। रक्षार्थों के प्रयोग से ईप्सित और अनीप्सित ही अपादान कहा गया है। परि अप् और आङ् के योग में तथा इतरत्, ऋते और अन्य दिशा के मुख में भी पञ्चमी होती है। एन के योग में द्वितीया होती है तथा कर्म प्रवचनीय नामक संज्ञा के योग में द्वितीया विभक्ति हुआ करती है। ॥८-९-१०॥ वीप्सा में, इत्थंभाव चिह्न में अभिभाग में परि और प्रति के योग में सहार्थ में अनु और हीन में अनूप कहा जाता है। ॥११॥ इनमें द्वितीया विभक्ति होती है। चेष्टा में, गतिकर्म में और अप्राण में, मन्य कर्म में और अनादर में द्वितीया तथा चतुर्थी दोनों विभक्तयाँ होती हैं ॥१२॥ नमः—स्वस्ति, स्वधा, स्वाहा, अलं, वषट्, इनके योग में भी चतुर्थी विभक्ति कही गई है। तादर्थ्य में और भाववाची तुमर्थ में अर्थात् तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में भी चतुर्थी विभक्ति हुआ करती है। ॥१३॥ सह और सहार्थक अन्य भी किसी शब्द से योग में एवं कुत्सित अङ्ग के विशेषण के होने पर तृतीया विभक्ति होती है। काल में और भाव में सप्तमी होती है और इनके योग में षष्ठी भी होती है ॥१४॥

स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षाद्दायादसूतकैः ।
निर्द्धारणे द्वे विभक्ति षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५

स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके ।
हिंसार्थानां प्रयोगे च प्रतिकर्मणि कर्त्तरि ॥१६

न कर्त्तृ कर्मणोः षष्ठीनिष्ठयोः प्रातिपादिके ।
द्विविधं प्रातिपदिकं नाम धातुस्तथैव च ॥१७

भुवादिभ्यस्तिङो लःस्याल्लकारा दश वै स्मृताः ।
तिप्तसन्ति प्रथमो मध्यः भिप्थसथोत्तमपुरुषः ॥१८

मिब्वस्मस्परस्मै तु पादानाञ्चत्मनेपदम् ।
त आत अन्ते प्रथमो स आथे ध्वे च मध्यमः ॥१९

स्वामी, ईश्वर, अधिपति और साक्षात् दायाद तथा सूतकों के साथ निर्धारण करने में दो विभक्तियाँ होती हैं । हेतु के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हुआ करती है ॥१५॥ स्मृति के अर्थ कर्म में तथा कृञ् धातु के प्रति यत्न में और हिंसार्थकों के प्रयोग में प्रतिकर्म कर्त्ता में षष्ठी होती है ॥१६॥ प्रातिपदिक में निष्ठ कर्त्ता और कर्म में षष्ठी नहीं होती है । प्रातिपादक दो प्रकार का होता है । एक नाम है और दूसरा धातु है ॥१७॥ भू आदि से तिङ् होते हैं । तिङों से लाकर होते हैं । वे लकार दश कहे गये हैं । तिप्, तस् भि (अन्त) ये तीन तिङ् प्रत्यय प्रथम पुरुष में होते हैं । मध्यम पुरुष में सिप्, थस् और थ—ये तीन प्रत्यय एक वचन, द्विवचन और बहुवचन में होते हैं । उत्तम पुरुष के इसी क्रम से तीनों वचनों में मिप्, वस् और मस्—ये तिङ प्रत्यय होते हैं । ये तीनों पुरुषों और तीन-तीन वचनों के तिङ् प्रत्यय परस्मै पद में हुआ करते हैं । दूसरे के लिये जो क्रिया का प्रयोग किया जाता है वह परस्मैपद कहा जाता है । अब आत्मनेपद बतलाते हैं जो अपने अर्थ प्रयुक्त होता है । ते, आताम् भ (आताम् और भ का परिणत रूप 'आते', 'अन्ते' है) ये तीनों वचनों के आत्मनेपद में प्रथम पुरुष के तिङ् प्रत्यय होते हैं । स—आथे—ध्वे—ये तीन मध्यम पुरुष में होते हैं ॥१८-१९॥

ए वहे मह उत्तमः पुरुषो हि निरूप्यते ।
नाम्नि प्रयुज्यमानेऽपि प्रथमः पुरुषो भवेत् ॥२०
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि ।
भूराद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः ॥२१
लडीरिते वर्त्तमाने स्मेनातीते च धातुतः ।
भूतेऽनद्यतने लङ् वा लुङाशिषि च धातुतः ॥२२
विध्यादावेवानुमतौ लोङ् वाच्यो मन्त्रणे भवेत् ।
निमन्त्रणाधीष्टसंप्रश्ने प्रार्थनेषु तथाशिषि ॥२३
लिडतीते परोक्षे स्यादुद्भूते लुङ् भविष्यति ।
धातोर्लृट्क्रियातिपत्तौ लिडर्थे लोट् प्रकीर्त्तितः ॥२४
कृतस्त्रिष्वपि वर्त्तन्ते भावे कर्मणि कर्त्तरि ।
तृणतव्यवङ्नीयः स्यात् शतृङाद्याश्च धातुतः ॥२५

ए—वहे—महे ये तीन उत्तम पुरुष में होते हैं। नाम के प्रयोग किये जाने पर प्रथम पुरुष होता है। युष्मद् शब्द के प्रयोग में मध्यम पुरुष होता है और अस्मद् शब्द के प्रयोग में उत्तम पुरुष होता है। भू आदि धातुएँ कही जाती हैं उनसे फिर सनादि प्रत्यय भी होते हैं ॥२०-२१॥ लट् लकार वर्त्तमान काल में होता है। लट् लकार में धातु के आगे 'स्म' लगा देने से भूतकाल का अर्थ हो जाता है। अनद्यतन भूतकाल में लङ् लकार होता है। चौबीस घण्टों से पहिले के काल को अनद्यतन काल कहते हैं। धातु से आशीर्वाद के अर्थ में लिङ् लकार होता है। आशिषि लिङ् और विधि लिङ् ऐसे लिङ् लकार दो प्रकार का होता है। विधि आदि के अर्थ में और अनुमति में भी लिङ् होता है। मन्त्रण में लोट् लकार होता है। निमन्त्रण—अधीष्ट संप्रश्न—प्रार्थना में और आशिषि में लिङ् लकार होता है। परोक्ष में लिट् लकार होता है और उद्भूत लुङ् होता है। भविष्यदर्थ में धातु से लृट् लकार होता है। क्रियातिपत्ति में लिट् के अर्थ में लोट् लकार बताया गया है। तीनों कालों में भाव, कर्म और कर्त्ता में कृदन्त प्रत्यय हुआ करते हैं। केवल धातु के अर्थ मात्र का जहाँ द्योतन

होता है उसे भान कहते हैं। तृण, तव्य, अनीपर, शतृ, शानच् आदि कृत्प्रत्यय धातु से हुआ करते हैं ॥२२-२५॥

११५—सदाचार कथन

हरेः श्रुत्वाऽब्रवीद् ब्रह्मा यथा व्यासाय शौनक ।
ब्राह्मणादिसमाचारं सर्वदं ते यथा वदे ॥१
श्रुतिस्मृती तु विज्ञाय श्रौतं कर्म समाचरेत् ।
श्रौतं कर्म न चेदुक्तं तदा स्मार्त्तं समाचरेत् ॥२
तत्राप्यशक्तः करणे सदाचारं चरेद् बुधः ।
श्रुतिस्मृतीह विप्राणां लोचने कर्मदर्शने ॥३
श्रुत्युक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः ।
शिष्टाचारेण शिष्टानां त्रयो धर्माः सनातनाः ॥४
सत्यं दानं दया लोभो विद्येज्या पूजनं दमः ।
अष्टौ तानि पवित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥५
तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणीन्द्रियाणि च ।
न च लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६
निवासमुख्या वर्णानां धर्माचाराः प्रकीर्त्तिताः ।
सप्यं यज्ञस्तपो दानमेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! भगवान् हरि से श्रवण करके ब्रह्माजी ने जिस तरह से व्यास महर्षि से कहा था वह सब देने वाला ब्राह्मणादि का समाचार तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ श्रुति और स्मृति का ज्ञान प्राप्त करके जो श्रौत (वैदिक) कर्म है उसका समाचरण करना चाहिए। यदि श्रौत कर्म न कहा गया है तो फिर स्मार्त्त कर्म अर्थात् स्मृतियों के द्वारा प्रदिपादित कर्म करना चाहिए। वैदिक कर्म को प्राथमिकता देनी चाहिए ॥२॥ यदि स्मार्त्त कर्मों के करने में भी असमर्थता किसी कारण से हो तो फिर बुध पुरुष को सत्पुरुषों का आचार ही करना चाहिए। श्रुति और स्मृति ये दोनों विप्रों के नेत्र होते हैं। जिनके द्वारा कर्मों का दर्शन हुआ करता है ॥३॥ श्रुति के द्वारा जो धर्म प्रतिपादित किया गया है वह धर्म

होता है। स्मृति शास्त्रों के द्वारा जो कहा गया है वह दूसरी श्रेणी का अपर धर्म होता है। शिष्ट पुरुषों के शिष्टाचार के द्वारा जिस धर्म का बोध होता है वह भी तीसरी श्रेणी का धर्म होता है। इस प्रकार से ये तीन सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) धर्म होते हैं ।।४।। सत्य, दान, दया, लाभ, विद्या, इज्या, पूजन और दम ये आठ पवित्र अर्थात् शुद्ध धर्म के स्वरूप हैं जो कि शिष्टाचार के लक्षण हैं ।।५।। पूर्व पुरुषों के शरीर और इन्द्रियाँ तेजोमय थे और वे पाप से लिप्त नहीं हुआ करते थे जिस तरह पद्म के पत्र जल से कभी लिप्त नहीं होते हैं और वे जल में ही रहा करते हैं ।।३।। वर्णों के धर्म तथा आचार निवास की मुख्यता वाले बताये गये हैं। सत्य, यज्ञ, तप और दान ये धर्म के लक्षण हैं ।।७।।

अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तपः ।
विद्या वित्तं तपः शौर्य्यं कुले जन्म त्वरोगिता ।।८
संसारोच्छित्तिहेतुश्च धर्मादेव प्रवर्त्तते ।
धर्मात् सुखञ्च ज्ञानञ्च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ।।९
इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्रं सनातनः ।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां सामान्यो धर्म उच्यते ।।१०
याजनाध्ययने शुद्धे विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ।
वृत्तित्रयमिदं प्राहुर्मुनयः श्रेष्ठवर्णिनः ।।११
शस्त्रेणाजीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् ।
पाशुपाल्यं कृषिः पण्यं वैश्यस्य जीवनं स्मृतम् ।।१२
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वशः ।
गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो ब्रह्मचारिणः ।।१३
त्रिस्नाता स्नापिता भैक्ष्यं गुरौ प्राणान्तिकी स्थितिः ।
समेखले जटा दण्डी मुण्डो वा गुरुसंश्रयः ।।१४

न दिये हुए का अनुपादन, दान, अध्ययन, तप, विद्या, वित्त, शौर्य, अच्छे कुल में जन्म, नीरोगता और संसार के उच्छेदन के हेतु यह धर्म से

ही प्रवृत्त होता है। धर्म से ही सुख की प्राप्ति और धर्म से ही ज्ञान का लाभ भी हुआ करता है। ज्ञान जब हो जाता है तो उससे संसार के जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करती है ।।८-९।। इज्या (यज्ञादि का करना, कराना), अध्ययन (वेदवेदाङ्गादि शास्त्रों का पढ़ना)—दान शास्त्र के अनुसार और सदा से चला आनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों का साधारण धर्म कहा जाता है।।१०।। मुनि-गण श्रेष्ठ वर्ण वाले की शुद्ध याजन और अध्ययन तथा विशुद्ध से प्रतिग्रह लेना वृत्ति अर्थात् तीन प्रकार की रोजी बतलाते हैं ।।११।। क्षत्रिय का कर्म शस्त्र के द्वारा जोवन निर्वाह करना और प्राणिमात्र की अभिरक्षा करना है। पशुओं का पालन, कृषि तथा दूकानदारी का व्यवसाय यही जीवन निर्वाह का साधन वैश्यों को बताया गया है ।।१२।। शूद्र का कर्म द्विजा-तियों की सेवा करना है जो कि द्विजों की आनुपूर्व शुश्रूषा करनी चाहिए अर्थात् सबसे प्रथम विप्र फिर क्षत्रिय और इसके पश्चात् वैश्य की सेवा करे। अब चारों वर्णों के धर्मों के अनन्तर चारों आश्रमों के धर्म बतलाते हैं-ब्रह्मचर्य की अवस्था का पालन करने वाले ब्रह्मचारी का कर्म है अपने गुरुवर्य के निकट गुरुकुल में घर छोड़कर निवास करना, अग्निहोत्र नित्य नियम से करना और वेद एवं वेद के अङ्ग शास्त्रों का समयानुसार अध्य-यन करना होता है ।।१३।। ब्रह्मचारी को तीनों कालों में स्नान, त्रिषवण तथा स्नापन करना चाहिए—भिक्षाचरण करे, गुरु की सन्निधि में प्राणों के अन्त तक स्थिति रक्खे, मेखला, जटा दण्ड धारण करे, मुण्डन और गुरु का संश्रय रक्खे। यही उसके कर्म-धर्म हैं ।।१४।।

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः।
धर्मदारेषु कल्पेत पर्ववर्जं रतिक्रियाः ।।१५
देवपित्रतिथिभ्यश्च पूजादिष्वनुकल्पनम्।
श्रुतिस्मृत्यर्थसंस्थानं धर्मोऽयं गृहमेधिनः ।।१६
जयित्वमग्निहोतृत्वं भूशय्याजिनधारणम्।
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ।।१७

प्रतिषिद्धे निवृत्तिश्च त्रिःस्नानं व्रतधारिता ।
देवतातिथिपूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ।।१८

सर्वारम्भपरित्यागो भैक्ष्यान्नं वृक्षमूलता ।
निष्परिग्रहता द्रोहः समता सर्वजन्तुषु ।।१९

प्रियाप्रियपरिष्वङ्गे सुखदुःखाधिकारिता ।
सबाह्याभ्यन्तरं शौचं वाग्यमो ध्यान चारिता ।।२०

सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणध्याननित्यता ।
भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड्धर्म उच्यते ।।२१

गृहस्थ आश्रम में उसका कर्म होता है नित्य अग्निहोत्र करना—अपने शास्त्रोक्त कर्मों के द्वारा जीवन का निर्वाह करना तथा वैदिक पद्धति से परिणीत सवर्ण पत्नी के साथ पर्वों का त्याग कर रति क्रिया करे ।।१५।। देवता, पितृगण और अतिथियों का पूजन—सत्कार करना चाहिए तथा श्रुति स्मृति के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का संस्थान रक्खे यही एक गृहमेधी (गृहस्थी) का धर्म एवं कार्य होता है। गृहस्थ धर्म का पूर्ण निर्वाह कर लेने के अनन्तर वन में निवास करके वानप्रस्थ आश्रम में जब प्रवेश करे उस समय उसका धर्म है कि इन्द्रियों पर संयम करे—नित्य अग्नि होत्र करे—भूमि पर शयन करे—मृग चर्म धारण करे। उस दशा में वन में निवास करे। वहाँ जो सुविधा से जल, मूल, निबार और फल आदि प्राप्त हों उनसे ही निर्वाह करे ।।१६-१७।। जो शास्त्र द्वारा प्रतिषेध किया गया हो उसे निवृत्त रहे—तीन बार स्नान करे—व्रतों को धारण करे और देव एवं समागत अतिथियों का अर्चन करे यही धर्म एक बनवासी आश्रयचारी का है ।।१८।। अब चौथा आश्रम संन्यास है उस के धर्म बताये जाते हैं—सब प्रकार के आरम्भों का परित्याग सन्यासी को सबसे प्रथम करना चाहिए—भिक्षावृत्ति से जो अन्न प्राप्त हो उस से अपनी शरीर यात्रा पूरी करे। वृक्ष के मूल में निवास करे। अपने पास कुछ भी साधन सञ्चित न रक्खे—किसी से द्रोह न करे। समस्त जन्तुओं में समता का भाव रक्खे ।।१९।। किसी को भी प्रिय तथा अप्रिय न समझे। सुख और दुःख में

समान रहे। वाहिर और भीतर शुद्ध रहे-मौन रहे या वहुत कम बोले। ध्यान में मग्न रहे ।।२०।। समस्त इन्द्रियों का नियन्त्रित करे, नित्य ध्यान एवं धारणा करे। सर्वदा अपने हृदय की भावनाओं को शुद्ध रक्खे—यही एक परिव्राड् (संन्यासी) का धर्म कहा जाता है ।।२१।।

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया।
वर्णिना लिंगिनाञ्चैव समान्यो धर्म उच्यते ।।२२
यथोक्तकारिणः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्।
आबोधात् स्वपनं यावत गृहस्थधर्मं वच्मि ते ।।२३
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत वर्माथौं चानुचिन्तयेत्।
शर्व्य्यन्ते समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ।।२४
स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम्।
प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधवनपूर्विकाम् ।।२५
उभे मूत्रपुरीषे च दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः।
रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा ।।२६
छायायामन्धकारे वा रात्रौ वाहिन वा द्विजः।
यथा तु सुमुखः कुर्य्यात् प्राणाबाधभयेषु च ।।२७
गोमयाङ्गारवल्मीकफालाकृष्टे जले शुभे।
मार्गोपजीव्यच्छायासु न मूत्रञ्च पुरीषकम् ।।२८

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना अर्थात् किसी भाँति से न सताना सत्य एवं सुप्रिय वाणी बोलना-सत्य व्यवहार मन-वचन और कर्म से करना-पवित्रता रखना-क्षमा रखना-सब पर दया भाव रखना ये सब वर्णों के लोगों का और समस्त आश्रमों में रहने वालों का सामान्य धर्म है जो सामान्यतया सभी में होना चाहिए ।।२२।। जैसा शास्त्र ने बताया है उसी का पूर्णतया पालन करने वाले सभी को परम गति प्राप्त हुआ करती है। जब से प्रातःकाल है शय्या से उठे और रात्रि में जिस समय तक शयन करे उस पूरे समय का एक ग्रहस्थ धर्म को मैं अब तुमको बतलाता हूँ ।।२३।। एक गृहस्थ को प्रातःकाल में ब्राह्म मुहूर्त्त में शय्या का त्याग कर

उठ जाना चाहिए। अरुणोदय और उषा काल से पूर्व का समय ब्राह्म मुहूर्त्त कहा जाता है। शय्या का त्याग करके सब से प्रथम धर्म और अर्थ का चिन्तन करे। रात्रि के अन्त में उठकर फिर शौचादि क्रिया मे निवृत्त हो और पूर्णतया सावधान हो जावे।२४। स्नान,सन्ध्या वन्दन करे। स्नान क्रिया के पूर्व ही दन्त धावन आदि शुद्धि कर लेनी चाहिए। प्रातःकाल की सन्ध्या तभी करे जब पहिले दाँतुन आदि की पूर्ण शुद्धि कर लेवे ।।२५।। मूत्र त्याग और मल का त्याग ये दोनों कार्य दिन में उत्तर दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए। यदि रात्रि के समय में ये दोनों कार्य करे तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे। दोनों दिन-रात के सन्धि-काल में इन मल मूत्रों का त्याग करना हो तो दिन की जो दिशा बताई गई है उसी ओर मुख करके करना चाहिए ।।२६।। छाया में—अन्धकार में-रात्रि में अथवा दिन में द्विज को जैसे भी सुमुख हो वैसे ही करे। प्राणों की यदि वाधा होने का भय उपस्थित हो तो भी जैसे भी हो मल-मूत्र का का त्याग करे ।।२७।। गोमय (गोबर)—आग का अँगारा—वल्मीक(वाँवी)—हल से जुता हुआ भू-भाग—शुभ स्थान—जल—मार्ग उपजीव्य छाया में कभी भी मल और मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।।२८।।

अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ।
परेषां शौचशिष्टाच्च श्मशानाच्च मृदं त्यजेत् ।।२९
एकां लिंगे मृदं दद्याद्वामहस्ते मृदं द्वयम् ।
उभयोर्द्वे च दातव्ये मूत्रशौच प्रचक्षते ।।३०
एकां लिंगे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।
पञ्च पादे दशैकस्मिन् करयोः सप्त मृत्तिकाः ।।३१
अर्द्ध प्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।
द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्त्तिता ।।३२
उपविष्टस्तु विण्मूत्रं कर्त्तुं यस्तु न विन्दति ।
स कुर्य्यादर्द्धशौचं तु अस्य शौचस्य सर्वदा ।।३३

दिवा शौचस्य रात्र्यर्द्धं यद्वा पादो विधीयते ।
स्वस्थस्य तु यथोद्दिष्टमार्त्तः कुर्याद्यथाबलम् ॥३४

वसाशुक्रमसृङ् मज्जालालांविण्मूत्रकर्णगुत् ।
श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥३५

जल के अन्दर से—देवगृह से—वाल्मीक से—चूहों के रहने के स्थल से पर पुरुषों के शौच से, शिष्ट स्थल से और श्मशान से मिट्टी का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन उक्त स्थलों से मिट्टी नहीं लेनी चाहिए ॥२९॥ मूत्र त्याग करने के पश्चात् एक बार मिट्टी मूत्रेन्द्रिय पर लगावें-बायें हाथ में दो बार मिट्टी लगावे और फिर दोनों हाथों में दो बार मिट्टी लगा कर मूत्र त्याग के अनन्तर शुद्धि करे ॥३०॥ मल के त्याग करने के पश्चात् एक बार लिङ्ग पर-तीन बार गुदा पर—दशबार बाँये हाथ में पाँच बार पैर में-एक कर में दशबार और दोनों हाथों में मिलाकर सातबार मृत्तिका लगा कर शुद्धि शौच जाने के बाद करना चाहिए ॥३१॥ आधी पस मिट्टी पहिली बताई गई है—दूसरी बार और तीसरी बार उससे आधी-आधी कही गई है ॥३२॥ जो उपविष्ट होता हुआ मल-मूत्र का त्याग नहीं कर पाता उसे (आधी शुद्धि) ही करनी चाहिए ॥३३॥ दिन में जो शुद्धि का विधान कहा गया है रात्रि में उसका आधा अथवा चौथाई भाग ही का विधान होता है । यह सम्पूर्ण विधान स्वस्थ व्यक्ति के लिये ही कहा गया है । जो आर्त हो उसे तो अपनी शक्ति और बल के ही अनुसार शारीरिक शुद्धि करनी चाहिए ॥३४॥ मनुष्यों के निकलने वाले मल बारह प्रकार के हुआ करते हैं । उनके नाम निम्नलिखित हैं —वसा—शुक्र—रक्त—मज्जा—लाला (लार)—विष्ठा—मूत्र—कर्ण—गुत्—आँसू—श्लेष्मा (कफ)—स्वेद (पसीना) हैं ॥३५॥

यावता शुद्धिर्मन्येत तावच्छौचं समाचरेत् ।
प्रमाणं शौचसंख्याया नादिष्टैरवशिष्यते ॥३६

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्थान्तरम् ॥३७

त्रिराचापमेद: पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
संमृज्यांगुष्ठमूलेन त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ।।३८

अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ।
अंगुष्टानामिकाभ्याञ्च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ।।३९

कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभि हृदय तु तलेन वै ।
सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ।।४०

ऋचो यजूंषि सामानि त्रिः पठन् प्रीणयेत्क्रमात् ।
अथर्वाङ्गिरसौ पूर्वं द्विःप्रमाष्टचाथ षण्मुखम् ।।४१

इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि यथाक्रमम् ।
खं मुखे नासिके वायुं नेत्रे सूर्य्यः श्रुतिर्दिशः ।।४२

प्राणग्रन्थिमथो नाभि ब्रह्माणं हृदये स्पृशेत् ।
रुद्रं मूर्घ्ना समालभ्य प्रीणात्यर्थशिखामृषीन् ।।४३

जहाँ तक मन में शुद्धि हो जाने की बात ठीक बैठे वहाँ तक उसकी शुद्धि करनी चाहिए । शौच की संख्या का प्रमाण जो आदिष्ट किया है, वह अवशिष्ट नहीं रहता ।।३६।। यह शौच (शुद्धि) बाह्य और आभ्यन्तर दो तरह की बताई गई है । मिट्टी और जल से बाहिरी शारीरिक शुद्धि होती है, परन्तु जब तक मन की अन्तर्भावना शुद्ध नहीं होगी तब तक आन्तरिक शुद्धि नहीं हो सकती । बाहिरी शुद्धि के साथ आन्तरिक शुद्धि का होना भी परम आवश्यक होता है ।।३७।। सबसे पूर्व तीन बार जल का आचमन करे फिर दो बार मुख का प्रमार्जन करे फिर अगुठे के मूल से तीन बार मुख का उपस्पर्शन करना चाहिए ।।३८।। अगुष्ट और प्रदेशिनी से पीछे नासिका का स्पर्श करे । इसके उपरान्त अंगूठा और अनामिका से बार-बार नेत्र तथा श्रोत्र का स्पर्श करना चाहिए ।।३९।। कनिष्ठिका और अंगुष्ठ से नाभि का और तले से हृदय का स्पर्श करे । सम्पूर्ण अंगुलियों से शिर का स्पर्श करे और अग्रभाग से बाहुओं का स्पर्श करना चाहिए । ।।४०।। ऋग्वेद, यजुर्वेद और समावेद का क्रम से पाठ करता हुआ प्रीणन करे । इसके पूर्व अथर्व और आङ्गिरस करे और दोनों से षण्मुख का

प्रमार्जन करे ।।४१।। इसके उपरान्त इतिहास, पुराण तथा यथाक्रम वेदों के अगों का पारायण करे। मुख में आकाश—नासिका में वायु—नेत्र में सूर्य—कानों में दिशा—नाभि में प्राण ग्रन्थि और हृदय में ब्रह्मा का स्पर्श करे। मस्तक से रुद्र का सम्यक् प्रकार से लाभ करके फिर शिखा के स्पर्श से ऋषियों को प्रसन्न करे ।।४२-४३।।

बाहू यमेन्द्रवरुणे कुबेरवसुधानलान् ।
अभ्युक्ष्य चरणौ विष्णुमिन्द्रं विष्णुं करद्वयम् ।।४४
अग्निर्वायुश्च सूर्य्यन्दुगिरयोऽङ्गुलिपर्वसु ।
गङ्गाद्याः सरितस्तासु या रेखाः करमध्यगाः ।।४५
उषःकाले तु सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ।।४६
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्य्याद्वै दन्तधावनम् ।।४७
कदम्बबिल्वखदिरकरवीरवटार्जुनाः ।
यूथी च बृहती जाती करञ्जार्कातिमुक्तकाः ।।४८
जम्बूमधूकापामार्गशिरीषोदुम्बरशनाः ।
क्षीरिकण्टकिवृक्षाद्याः प्रशस्ता दन्तधावने ।।४९

दोनों बाहुओं में यम—इन्द्र और वरुण का—चरणों में कुबेर, वसुधा और अनल का तथा दोनों हाथों में विष्णु और इन्द्र का अभ्युक्षण करे ।।४४।। अग्नि—वायु—सूर्य—चन्द्र गिरि अंगुलियों के पर्वों में तथा कर के मध्य में जो सब रेखायें हैं वे सब गंगा आदि सम्पूर्ण नदियाँ हैं ।।४५।। प्रातः काल यथार्थ रीति से शौच करके फिर दन्त धावन के पश्चात् स्नान करे ।।४६।। मुख के वासी बने रहने पर सर्वदा मनुष्य अप्रयत रहा करता है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक दाँतुन अवश्य करे ।।४७।। दन्त धावन के लिये जिन वृक्षों की दातुन अच्छी मानी गई हैं उन वृक्षों के नाम ये हैं—कदम्ब—विल्व—खदिर—करवीर—वट—अर्जुन—करञ्ज—

जाती—यूथी—बृहती—अर्क—अति मुक्तक—जामुन—मधूक—अपामार्ग—शिरीष—उदुम्बर (गूलर)—अशन और जो वृक्ष दूध वाले तथा काँटेदार हैं वे भी प्रशस्त माने जाते हैं।।४८-४९।।

कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदाः ।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा च शुचौ देशे त्यक्त्वा तदाचमेत् ।।५०
अमावस्यां तथा षष्ठ्यां नवम्यां प्रतिपद्यपि ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु तथैवार्कस्य वासरे ।।५१
अभावे दन्तकाष्ठस्य निषिद्धायां तथा तिथौ ।
अपां द्वादशगुण्डूषैः कुर्वीत मुखशोधनम् ।।५२
प्रातः स्नात्वाः प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हितम् ।
सर्वं मर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायो जपादिकम् ।।५३
अत्यन्तमलिनः कायो नरश्छिद्रसमन्वितः ।
श्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ।।५४

कटु—तिक्त और कषाय (कसैले) स्वाद वाली दाँतुन—धन—आरोग्य तथा सुख के प्रदान करने वाली हैं। दाँतुनों को धोकर फिर उन से दाँत साफ करे दन्त धावन करके किसी शुद्ध स्थान पर डाल दे और आचमन (कुल्ली) करे ।।५०।। अमावस्या—षष्ठी—नवमी और प्रतिपदा तिथियों में तथा रविवार के दिन काष्ठ से दाँतों को स्वच्छ करना वर्जित होता है ।।५१।। दाँतुन के अभाव में तथा जो तिथियाँ ऊपर निषिद्ध बताई गयी हैं उनमें, जल के बाहर कुल्ले करके मुख का शोधन करना परम आवश्यक है ।।५२।। प्रातः काल में दृष्ट तथा अदृष्ट हित करने वाले हित स्नान करके ही प्रशस्त होते हैं। प्रातः काल में स्नान करने वाला शुद्ध आत्मा से युक्त पुरुष ही जप आदि सम्पूर्ण कार्य करने के योग्य होता है ।।५३।। शरीर के अनेक छिद्रों से युक्त यह मानव अत्यन्त मलिन देह वाला होता है। इस शरीर से रात-दिन अनेक मलिनता करने वाले मलों का स्राव बराबर होता ही रहता है। प्रातः काल में जो

सर्वाङ्ग स्नान किया जाता है उससे सब देह का पूर्ण शोधन हो जाता है। अत: प्रात: स्नान परम आवश्यक शुद्धि के लिये माना गया है ।।५४।।

मन:प्रसादजननं रूपसौभाग्यवर्द्धनम् ।
शोकदु:खप्रशमनं गङ्गास्नानवदाचरेत् ।।५५

अद्य हस्ते तु नक्षत्रे दशम्यां ज्यैष्ठके सिते ।
दशपापहरायाञ्च अदत्त्वा दानकल्मषम् ।।५६

विरुद्धाचरणं हिंसा परदारोपसेवनम् ।
पारुष्यानृतपैशून्यमसम्बद्धाभिभाषणम् ।।५७

परद्रव्याभिधानञ्च मनसानिष्टचिन्तनम् ।
एतद्दशाघघातार्थं गङ्गास्नानं करोम्यहम् ।।५८
प्रात: संक्षेपत: स्नानं वाणप्रस्थगृहस्थयो: ।।५९

प्रात: काल में किये हुए स्नान से मन में एक प्रकार की प्रसन्नता और रूप तथा सौभाग्य की उत्पत्ति हुआ करती है। यह स्नान शोक और दु:ख शमन करने वाला है। इसे गंगा स्नान की भाँति परम पुण्यमय समझ कर करना चाहिए ।५५। आज हस्त नक्षत्र में और ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि में अर्थात् दशहरा में जो कि दशमी तिथि दश पाप का अपहरण करने वाली होती है—कुछ भी दान न देकर कल्मष रहित यह गंगा स्नान करता हूँ ।।५६।। यह स्नान किसी के विरुद्ध आचरण करना—हिंसा—पराई स्त्री का सेवन करना—पारुष वचन एवं कठोर व्यवहार करना—मिथ्या भाषण—पिशुनता (चुगली)—असम्बद्ध भाषण करना—पराये द्रव्य का अपहरण—अभिधान तथा मन से किसी के अनिष्ट का चिन्तन करना इन दश पापों के घात करने के लिये किया जाता है। यह वाणप्रस्थ और गृहस्थ को प्रात: काल में संक्षेप से करना चाहिए ।।५७-५८-५९।।

यतेस्त्रिषवणं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिण: ।
आचम्य तीर्थमावाह्य स्नायात्स्मृत्वाव्ययं हरिम् ।।६०

तिस्रः कटयद्ध विज्ञेया मन्देहा नाम राक्षसाः ।
उदयन्तं दुरात्मानः सूर्य्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥६१
स हन्ति सूर्य्यं सन्ध्यायां नोपास्ति कुरुते तु यः ।
दह्यन्ति मन्त्रपूतेन तोयेनानलरूपिणा ॥६२
अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा सन्ध्या भवतीति ह ।
दिनाड़िका भवेत्सन्ध्या यावद्‌भवति दर्शनम् ॥६३
सन्ध्याकर्मविसाने तु स्वयंहोमो विधीयते ।
स्वयंहोमफलं यत्त तदन्येन न जायते ॥६४
ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्‌पतिः ।
एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि ॥६५
ब्रह्मा वै गार्हपत्याग्निर्दक्षिणाग्निस्त्रिलोचनः ।
विष्णुराहवनीयोऽग्निः कुमारः सत्य उच्यते ॥६६

यति को तीन बार स्नान और सन्ध्या करनी चाहिए और ब्रह्मचारी को एक बार ही स्नान पर्याप्त होता है । आचमन करके तथा तीर्थ का आवाहन करके, अव्यय भगवान् हरि का स्मरण करके स्नान करना चाहिए ॥६०॥ मन्देह नामवाले साढ़े तीन करोड़ राक्षस हैं जो दुष्ट आत्मा वाले उदय होने वाले सूर्य को भक्षण कर जाना चाहते हैं ॥६१॥ जो सन्ध्या के समय में उपासना नहीं करता है वह सूर्य का हनन किया करता है । मन्त्रों से पूत अनलरूप जल से जलते हैं ॥६२॥ दिन और रात की जो सन्धि होती है वही सन्ध्या हुआ करती है । दो नाड़िका के समय पर्यन्त सन्ध्या होती है जब तक कि दर्शन होता है ॥६३॥ सन्ध्या कर्म के अन्त में स्वयं होम करने का विधान है । जो स्वयं होम का फल होता है, वह अन्य किसी से भी नहीं होता है ॥६४॥ ऋत्विक् पुत्र, गुरु भ्राता—भागिनेय (भानजा) और विट् पति इन के द्वारा जो होम किया गया है वह स्वयं ही हुत समझना चाहिए ॥६५॥ गार्हपत्याग्नि ब्रह्मा है—दक्षिणाग्नि त्रिलोचन शिव हैं—आहवनीय अग्नि विष्णु है तथा सत्य कुमार कहे जाते हैं ॥६६॥

कृत्वा होमं यथाकालं सौरान्मन्त्राञ्जपेत्ततः ।
समाहितात्मा सावित्रीं प्रणवञ्च यथोदितम् ॥६७

प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु ।
त्रिपदायाञ्च सावित्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥६८

गायत्रीं यो जपेन्नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६९

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा ।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥७०

आवाह्य यजुषाऽनेन तेजोऽसीति विधानतः ।
एतद्यजुः पुरा देवैर्दृष्टिदर्शनकांक्षिभिः ॥७१

आदित्यमण्डलान्तःस्थां ब्रह्मलोकस्थितामपि ।
तत्रावाह्य जपित्वातो नमस्काराद्विसर्जयेत् ॥७२

पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ।
न विष्णोः परमो देवस्तस्मात्तं पूजयेत्सदा ॥७३

यथा समय होम करके सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का जाप करे और समाहित आत्मा होकर प्रणव और सावित्री का जाप करे ॥६७॥ नित्य प्रणव में और सात व्याहृतियों तथा त्रिपदा सावित्री में जो युक्त रहता है उसको कहीं भी भय नहीं होता ॥६८॥ जो मनुष्य प्रातः काल उठ कर नित्य नियम से गायत्री मन्त्र का जप करता है वह कभी पापों से जल से कमल के पत्र की भाँति लिप्त नहीं हुआ करता है ॥६९॥ गायत्री देवी के स्वरूप का ध्यान बतलाते हैं—गायत्री का वर्ण श्वेत है, वह रेशमी वस्त्रों को धारण करती और पद्म के आसन पर विराजमान हैं ॥७०॥ "तेजोऽसि"—इस यजुर्वेद के मन्त्र के द्वारा विधान से आवाहन करे। यह मन्त्र पहिले दृष्टि से दर्शन करने की इच्छा वाले देवों ने पढ़ा था ॥७१॥ आदित्य मण्डल के अन्दर विनाश करने वाली और ब्रह्मलोक में विराजमान देवीसावित्री का वहां अवाहन,जाप और अभिवादन कर विसर्जन करे।७२।

दो पहर के पूर्व ही देवताओं और परमदेव भगवान् विष्णु का सदा अर्चन करना चाहिए ।।७३

ब्रह्मविष्णुशिवान्देवान्न पृथग्भावयेत्सुधीः ।
लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।।७४
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ।
एतानि सततं पश्येदर्चयेच्च प्रदक्षिणम् ।।७५
वेदस्याध्ययनं पूर्वं सर्वदाभ्यसनं चरेत् ।
तद्दानञ्चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ।।७६
वेदार्थं यज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
मूल्येन लेखयित्वा यो दद्याद्याति स वैदिकम् ।।७७
इतिहासपुराणानि लिखित्वा यः प्रयच्छति ।
ब्रह्मदानसमं पुण्यं प्राप्नोति द्विगुणीकृतम् ।।७८
तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम् ।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीनाः समाश्रिताः ।।७९
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृताः ।
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ।।८०

सुधी पुरुष ब्रह्मा, विष्णु और शिव को पृथक् न समझे । इस लोक में ये आठ मङ्गल मय वस्तु हैं—ब्राह्मण, गौ, हुताशन, हिरण्य, घृत, सूर्य, जल तथा आठवाँ राजा है । इनको सदा देखे और अर्चना एवं प्रदक्षिणा करे ।।७४-७५।। वेद का पाँच प्रकार का अभ्यास होता है—प्रथम अध्ययन, सदा अभ्यास और वेद का दान अर्थात् अध्यापन जो कि शिष्यों को कराना चाहिए ।।७६।। वेदार्थ—यज्ञ करने—कराने का शास्त्र—धर्म शास्त्र इनको मूल्य देकर लिखवा कर जो किसी वैदिक ब्राह्मण को दान करता है और इतिहास—पुराणों को लिखकर देता है वह ब्रह्मदान के समान दुगना पुण्य प्राप्त किया करता है ।।७७-७८।। तीसरे भाग में जो पोष्य (पोषण करने के योग्य हों) वर्ग के अर्थ का साधन करे जैसे— माता—पिता—गुरु—भ्राता—प्रजा—दीन और

आश्रय में रहने वाले हों—अभ्यागत—अथिति और अग्नि ये सब पोष्य कहे गये हैं। पोष्य वर्ग का भरण करना परम प्रशस्त और स्वर्ग का साधन है ॥७६-८०॥

भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत् ।
स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति ॥८१
जीवन्तो भृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः ।
स्वकीयोदरपूर्णञ्च कुक्कुरस्यापि विद्यते ॥८२
अर्थेभ्योऽपि विवृद्धेभ्यः सम्भूतेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥८३
सर्वरत्नाकरा भूमिर्धान्यानि पशवः स्त्रियः ।
अथस्य कार्य्ययोगत्वादर्थ इत्यभिधीयते ॥८४
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥८५
धनं तु त्रिविधं ज्ञेय शुक्लं शबलमेव च ।
कृष्णञ्च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पृथक् ॥८६
क्रमायत्तं प्रीतिदत्तं प्राप्तञ्च सह भार्य्यया ।
अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम् ॥८७

अतएव पोष्य वर्ग का भरण-पोषण यत्नपूर्वक करे। उस एक पुरुष का परम प्रशस्त जीवन होता है जिसके सहारे बहुतों का उपजीवन होता है ॥८१॥ जो अपने ही उदर को भरते हुए जीवन बिताते हैं वे जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हैं। अपने पेट को तो कुत्ता भी किसी प्रकार भर लिया करता है ॥८२॥ अर्थों के विशेष रूप से बढ़ने तथा चारों ओर से आने पर फिर उन्हीं से पर्वतों से नदियों की भाँति समस्त क्रियाऐं प्रवृत्त हुआ करती हैं ॥८३॥ यह भूमि समस्त प्रकार के रत्नों की खान है। धान्य, पशु, स्त्रियाँ ये सब अर्थ के कार्यों के योग ही हैं अतएव इनको अर्थ ही कहा जाता है ॥८४॥ समस्त प्राणियों के साथ किसी भी प्रकार का द्रोह न हो अथवा द्रोह कुछ हो भी तो बहुत ही कम

हो, इस प्रकार की वृत्ति में विप्र को अनापत्ति काल में स्थित रह कर जीवनयापन करना चाहिए।।८५।।यह धन तीन प्रकार का जानना चाहिए—शुक्ल, शवल और कृष्ण ये तीन वर्ण होते हैं। उस धन का सात प्रकार से पृथक् विभाग होता है ।।८६।। यह धन एक तो पितृ-परम्परा के क्रम से आया हुआ होता है—दूसरा किसी के द्वारा प्रीति से प्रदान किया हुआ होता है। तीसरे प्रकार का धन ऐसा होता है जो भार्य्या के साथ प्राप्त होने वाला होता है। विशेषता के बिना प्रायः समस्त वर्णों का यह तीन ही प्रकार का धन हुआ करता है ।।८७।।

वैशेषिकं धनं दृष्टं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् ।
याजनाध्यापने नित्यं विशुद्धश्च प्रतिग्रहः।।८८
त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिकं धनम् ।
शुद्धार्थं लब्धकरजं दण्डाप्तं जयजं तथा ।।८९
वैशेषिकं धनं दृष्टं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात् :।९०
कुषीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीत स्वयं कृतम् ।
आपत्काले स्वयं कुर्वन्नैनसा युज्यते द्विजः ।।९१
बह्वो वर्त्तनोपाया ऋषिभिः परिकीर्त्तिताः ।
सर्वेषामपि चैवैषां कुषीदमधिकं विदुः ।।९२
अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्यैरुपद्रवैः।
कृष्यादिके भवेद्बाधा सा कुषीदे न विद्यते ।।९३
देशं गतानां या वृद्धिर्नानापण्योपजीविनाम् ।
कुषीद कुर्वतः सम्यक्संस्थितस्यैव जायते ।।९४
लब्धलाभः पितॄन्देवान्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेत् ।
ते तृप्तास्तस्य तद्दोषं शमयन्ति न संशयः ।।९५

विशेषता से युक्त ब्राह्मण का धन तीन प्रकार के लक्षणों से युक्त देखा गया है—याजन से प्राप्त, अध्यापन से प्राप्त और विशुद्ध प्रतिग्रह से प्राप्त होने वाला धन होता है ।।८८।। इसी प्रकार से क्षत्रिय का भी धन तीन

प्रकार का होता है जो कि वैशेषिक धन कहलाता है। शुद्ध धन वह है जो करों के द्वारा न्यायोचित रूप से प्राप्त किया जाता है। दूसरा दण्डों द्वारा जो धन राजा के पास आया करता है। तीसरा वह धन है जो विजय करके प्राप्त होता है ।।८९।। इसी तरह विशेषता से संयुत वैश्य का धन भी तीन प्रकार का हुआ करता है। कृषि के द्वारा लब्ध धन, पशु-पालन से आने वाला धन और वाणिज्य-व्यवसाय से मिलने वाले मुनाफे का धन तीसरी तरह का वैशेषिक धन है। शूद्रों के पास जो होता है वह तो इन तीन वर्ण वालों के अनुग्रह से ही प्राप्त हुआ करता है ।।९०।। ब्राह्मण भी आपत्ति काल उपस्थित होने कुसीद, गोरक्षण और वाणिज्य यदि स्वयं भी करे तो उसे कोई पाप नहीं लगता है ।।९१।। ऋषियों ने बहुत से जीवन निर्वाह के उपाय बतलाये हैं किन्तु इन सभी उपायों में कुसीद (ब्याज)को सबसे अधिक बताया है ।।९२।। कृषि कर्म में अनावृष्टि से, राजा के भय से और मूषिका आदि के अन्य अनेकों उपद्रवों से बाधा उपस्थित हो जाया करती है किन्तु कुसीद वृत्ति में यह कुछ भी बाधाऐं नहीं हैं ।।९३।। दूसरे देशों में जाने वाले अनेक पुण्य पदार्थों का विक्रय कर रोजी कमाने वालों की जो वृद्धि होती है वह कुसीद के काम करने वालों को एक ही स्थान पर स्थित रहते हुए ही हो जाया करती है ।।९४।। जो लाभ प्राप्त होता है उससे मनुष्य को चाहिए कि पितृगण, देवता और ब्राह्मणों का पूजन करे। ये सब तृप्त होकर उसका जो भी कुछ दोष होता है उसका शमन कर दिया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।९५।।

कृषीबलोऽन्नपानादियान शय्यासनानिच ।
राजभ्यो विंशतिदत्वा पशुस्वर्णादिकं शतम् ।।९७
विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः ।
वृत्तिर्भैक्ष्यं कुषीदञ्च दश जीवन हेतवः ।।९७
प्रतिग्रहार्जिता विप्रे क्षत्रिये शस्त्रनिर्जिताः ।
वैश्ये न्यायार्जिताः स्वार्थाः शूद्रे शुश्रूषयार्जिताः ।।९८
नदी बहूदका शाकपर्णानि च समित्कुशाः ।
आग्नेयो ब्रह्मघोषश्च विप्राणां धनमुत्तमम् ।।९९

अयाचितोपपन्ने तु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे ।
अमृतं तद्विदुर्देवास्तस्मात्तन्नैव वर्जयेत् ॥१००

गुरुद्रव्यांश्चोज्जिहीर्षुर्नार्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्यत्तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥१०१

साधुतः प्रतिगृह्णीयादथवाऽसाधुतो द्विजः ।
गुणवानल्पदोषश्च निर्गुणो हि निमज्जति ॥१०२

कृषीवल (किसान) अन्न पान आदि शय्या, आसन और पशु स्वर्णादिक शत तथा विंशति राजाओं को देते हैं ॥६६॥ विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, दूकानदारी, खेती, वृत्ति, भैक्ष्य और कुशीद ये दश जीवन निर्वाह के हेतु होते हैं ॥६७॥ ब्राह्मण में प्रतिग्रह से अर्जित, क्षत्रिय में शस्त्रों के द्वारा निर्जित और वैश्य में न्याय से उपार्जित तथा शूद्र में सेवा से अर्जित स्वार्थ होते हैं । ब्राह्मणों का उत्तम धन तो बहुत जल वाली नदी, शाकपत्र,समिधा, कुशा, आग्नेय और ब्रह्म घोष होता है ॥६८-६६॥ बिना याचना किये हुए जो उतपन्न हो ऐसे प्रतिग्रह में कोई भी दोष नहीं होता है । देवगण उसे अमृत कहते हैं इसलिये उसे वर्जित नहीं करे॥१००॥ गुरुगण के द्रव्यों का हरण करने की इच्छा वाला और देवता तथा अतिथियों का अर्चन न करता हुआ जो सभी ओर से प्रतिग्रह लेता है और स्वयं ही उससे तृप्ति किया करता है ॥१०१॥ अतएव प्रतिग्रह के विषय में यह बताया जाता है कि दान साधु पुरुष से ही ले, असाधु पुरुष से दान लेने का विचार द्विज को न करना चाहिए। कौनसा दान गुण वाला है और कौनसा अल्प दोषों से युक्त है–यह भी विचार करे । जो गुणहीन होता है वह निमज्जित होजाता है ॥१०२॥

एवं त्वक्षरवृत्तया वा कृत्वा भरणमात्मनः ।
कुर्य्याद्विशुद्धिं परतः प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ॥१०३

चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
तिलपुष्पकुशादीनि स्नानञ्चाकृत्रिमे जले ॥१०४

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।
मार्जनाचमावगाहाश्चाष्टस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥१०५
अस्नातस्तु पुमान्नार्हो जपाग्निहवनादिषु ।
प्रातःस्नानं तदर्थन्तु नित्यस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥१०६
चाण्डालशवविष्ठाद्यान् स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ।
स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नानं नैमित्तिकं हि तत् ॥१०७
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥१०८
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
स्नानं समाचरेद्यत्तु क्रियाङ्गं तच्च कीर्त्तितम् ॥१०९

इस प्रकार से अक्षर वृत्ति के द्वारा अपना भरण करके द्विजोत्तम को बाद में प्रायश्चित्त करके विशुद्धि कर लेनी चाहिए ॥१०३॥ तथा चतुर्थ भाग में स्नान के लिए मृतिका का आहरण करे और तिल, पुष्प तथा कुशा आदि लावे । प्राकृतिक भरे हुए जल में स्नान करे । स्नान आठ प्रकार के होते हैं । नित्यस्नान, निमित्त से सम्बन्धित स्नान, काम्य अर्थात् किसी कामना से किया जाने वाला स्नान, किसी क्रिया का अङ्ग स्वरूप स्नान, मल को साफ करने वाला स्नान, मार्जन, आचमन और अवगाहन ये आठों के नाम हैं ॥१०४-१०५॥ जो मनुष्य स्नान न किया हुआ हो वह जप, अग्नि और हवन आदि कर्मों के करने के योग्य नहीं होता । जो प्रातःकाल किया जाने वाला स्नान होता है वह नित्य स्नान कहा गया है ॥१०६॥ किसी चाण्डाल, शव और विष्ठा आदि का स्पर्श करके या किसी रजस्वला का स्नान जो स्नान के योग्य होकर स्नान किया करता है वह नैमित्तिक स्नान है ॥१०७॥ ज्योतिषियों के द्वारा बताई विधि से प्रेरित होकर जो पुण्य स्नान आदि के विधान में स्नान होता है वह काम्य स्नान है । इसे बिना कामना वाला कभी नहीं करता है ॥१०८॥ जाप करने की इच्छा वाला देवता तथा अतिथियों की अर्चना करने के लिए पवित्रता के अर्थ स्नान किया जाता है वह स्नान क्रिया का अ ग स्नान कहा गया है ॥१०९॥

मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तत्र नान्यथा ।
सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥११०
स्नानमेव क्रिया यस्मात्क्रियास्नानमतःपरम् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थ स्नानात्फलं लभेत् ॥१११
मार्जनान्मज्जनैर्मन्त्रै पापमाशु प्रणश्यति ।
नित्यं नैमित्तिकञ्चापि क्रियान्नं मलकर्षणम् ।
तीर्थाभावे तु कर्त्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥११२
भूमिष्ठादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणादिकम् ।
ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥११३
तीर्थतोय ततः पुण्यं गांगं पुण्यन्तु सर्वतः ।
गांगं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम् ॥११४
गयायाञ्च कुरुक्षेत्रे यत्तोयं समुपस्थितम् ।
तस्मात्तु तांगमपरं जानीयात्तोयमुत्तमम् ॥११५
पुत्रजन्मनि योगेषु तथा संक्रमणे रवेः ।
राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं निशि नान्यथा ॥११६
उषस्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥११७

केवल शरीर के मल का प्रक्षालन करने के ही निमित्त जो स्नान होता है वह मलापकर्षण स्नान कहा गया है क्योंकि अन्य कोई हेतु उसका नहीं होता है। उसकी प्रवृत्ति ही मल का अपकर्षण ही होती है। सरोवरों में—देवताओं में, तीर्थों में और नदियों में जो स्नान है वही एक क्रिया है, इसलिए इसे क्रिया स्नान कहते हैं। इसके पश्चात् जल से शरीर के अंगों की शुद्धि होती है और तीर्थों के स्नान से फल का लाभ होता है ॥११०-१११॥ मञ्जन मन्त्रों के द्वारा मार्जन करने से पापों का बहुत ही शीघ्र प्रणाश हो जाता है। नित्य, नैमित्तिक, क्रियान्न, मलकर्षण स्नान तीर्थ के अभाव में उष्णोदक तथा परोदक से करना चाहिये ॥१२॥ भूमि से जो उद्धृत जल होता है वह पुण्य है। इससे भी अधिक पुण्य प्रस्रवण आदि का होता है। इससे ज्यादा सरोवर का जल

पवित्र है। सरोवर से भी अधिक पुण्य नदी का जल है—ऐसा कहा जाता है ॥११६॥ तीर्थ का जल विशेष पुण्य होता है। गङ्गा का जल तो सभी प्रकार से पुण्य है जो शीघ्र ही पवित्र करता और आमरणान्तिक पापों को नष्ट कर देता है ॥११४॥ गया में, कुरुक्षेत्र में जो जल उपस्थित है उससे भी उत्तम दूसरा गंगाजल को ही समझें ॥११५॥ पुत्र के जन्म में, योग विशेषों में, रवि के संक्रमण की वेला में, राहु-दर्शन अर्थात् ग्रहण के समय रात्रि में स्नान प्रशस्त माना गया है, अन्यथा निशा वेला में स्नान अच्छा नहीं कहा गया है ॥११६॥ सुबह रवि के उदय होने की सन्धि में जो स्नान होता है वह प्राजापत्य व्रत के समान महापातकों का नाश करने वाला होता है ॥११७॥

यत्फलं द्वादशाब्दानि प्राजापत्ये कृते भवेत् ।
प्रातःस्नायी तदाप्नोति वर्षेण श्रद्धयान्वितः ॥११८
य इच्छेद्विपुलान्भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।
प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मासौ द्वौ माघफाल्गुनौ ॥११९
यस्तु माघं समासाद्य प्रातःस्नायी हविष्यभुक् ।
अतिपापं महाघोरं मासादेव व्यपोहति ॥१२०
मातरं पितरञ्चापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ।
यदुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत्तु सः ॥१२१
तुष्यत्यमलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः ।
श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः ॥१२२
सन्तापः कीर्त्तिरल्पायुर्धनं निधनमेव च ।
आरोग्य सर्वकामाप्तिरभ्यङ्गाद्भास्करादिषु ॥१२३
उपोषितस्य व्रतिनः कृत्ताकेशस्य नापितैः ।
तावच्छ्रीस्तिष्ठति प्रीता यावत्तैलं न संस्पृशेत् ॥१२४

बारह वर्ष तक प्राजापत्य व्रत के करने से जो फल होता है उसे श्रद्धा से समन्वित होकर नित्य प्रातः काल स्नान करने वाला एक वर्ष ही में पा लेता है ॥११८॥ जो पुरुष चन्द्र और सूर्य ग्रहों के तुल्य बहुत अधिक भोगों के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे माघ और फाल्गुन

इन दो मासों में नित्य ही प्रातःकाल स्नान करना चाहिए ॥११९॥ जो पुरुष माघ मास को प्राप्त कर नित्य प्रातःकाल स्नान करता और हविष्य का भोजन करता है वह अत्यन्त उग्र महान पाप को भी एक ही मास में नष्ट करके विशुद्ध हो जाता है ॥१२०॥ माता, पिता, भ्राता, सुहृद, गुरु इनमें जिस किसी का उद्देश्य लेकर निमज्जन किया करता है उसका बारहवाँ अंश वह प्राप्त किया करता है ॥१२१॥ भगवान् विष्णु विशेषकर एकादशी तिथि में आमलकों से बहुत सन्तुष्ट हुआ करते हैं। जो श्री की कामना रखता हो उस मनुष्य को सर्वदा आँवलों से स्नान करना चाहिए ॥१२२॥ भास्कर आदि दिनों में अभ्यंग करने से सन्ताप, कीर्त्ति, अल्पायु, धन, निधन और आरोग्य इन सम्पूर्ण कामों की प्राप्ति होती है ॥१२३॥ उपोषित, व्रती और नापित के द्वारा केशों के कर्त्तन कराने वालों की श्री प्रसन्न होकर तभी तक स्थित रहा करती है जब तक तैल का स्पर्श नहीं किया करता है ॥१२४॥

एवं स्नात्वा पितृन्देवान्मनुष्यांस्तर्पयेन्नरः ।
नाभिमात्रे जले स्थित्वा चिन्तयेदूर्ध्वमानसः ॥१२५
आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम् ।
त्रींस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादाकाशे दक्षिणे तथा ॥१२६
वसित्वा वसनं शुष्कं स्थलस्थातीर्णवर्हिषि ।
विधिज्ञास्तर्पणं कुर्युर्न पात्रे तु कदाचन ॥१२७
यदहां क्रूरमांसात्तु यदमेध्यं तु किंचन ।
अशान्तं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छतु ॥१२८
गृहीत्वानेन मन्त्रेण तोयं सव्येन पाणिना ।
प्रक्षिपेद्दिदशि नैऋत्यां रक्षोऽपहतये तु तत् ॥१२९
निषिद्धभक्षणाद्यत्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहम् ।
दुष्कृतं यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥१३०
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुणः सबृहस्पतिः ।
सविता च भगश्चैव मुनयः सनकादयः ॥१३१

इस प्रकार स्नान करके पितृगण, देवता और मनुष्यों को तृप्त करे। नाभि मात्र जल में स्थित होकर ऊर्ध्व मन वाला होते हुए चिन्तन करे ॥१२५॥ चिन्तन इस प्रकार से करे--हे मेरे पितृगण! आप लोग आइये और मेरी इस दी हुई जलांजलि को ग्रहण कीजिये। दक्षिण दिशा में तीन-तीन अञ्जलियाँ आकाश में है। फिर विधिज्ञाता सूखे हुए वस्त्रों को पहिन कर स्थल पर बिछे हुए वर्हि पर बैठकर तर्पण करे, किन्तु पात्र में कभी तर्पण न करे ॥१२६-१२७॥ क्रूर माँस से जो कुछ भी जल में असेव्य हो और अशान्त एवं मलिन हो वह सब अभगत हो जावे ॥१२८॥ इस मन्त्र से सव्य हाथ से जल ग्रहण करके नैर्ऋत्य दिशा में राक्षसों के अपहनन करने के लिए उस जल को प्रक्षिप्त कर दे ॥१२९॥ निषिद्ध पदार्थ के भक्षण करने के पाप से और प्रतिग्रह के लेने से जो भी कुछ दुष्कृत मन—वाणी—शरीर के कर्म के द्वारा मेरा हुआ हो उसे इन्द्र, वरुण, वृहस्पति, सविता, भग और सनकादि मुनि गण पवित्र करें ॥१३०-१३१॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं जपंस्तृप्यन्निति ब्रुवन्।
क्षिपेदपोऽञ्जलींस्त्रींस्तु कुर्वन्संक्षेपतर्पणम् ॥१३२
सुराणामर्चनं कुर्य्याद् ब्रह्मादीनाममत्सरी।
ब्राह्मवैष्णवरौद्रैश्च सावित्रैर्मैत्रवारुणैः ॥१३३
तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्नमस्य च।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेत्तु पृथक्पृथक् ॥१३४
सर्वदेवमयं विष्णुं भास्करञ्चाथ चार्चयेत्।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन य पुष्पाण्यप एव वा ॥१३५
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्।
अन्यैश्च तान्त्रिकैर्मन्त्रैः पूजयेच्च जनार्दनम् ॥१३६

'आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्तम्"—इस मन्त्र का जप एवं उच्चारण करे। संक्षेप से तर्पण करता हुआ तीन-तीन जल की अञ्जलियों का प्रक्षेप करे ॥१३२॥ फिर ब्रह्मादि सुरों का मत्सरता-रहित होकर अर्चन करना

चाहिए। ब्राह्म-वैष्णव—रौद्र-सावित्र—मैत्रवारुण तत् तल् लिंगों वाले मन्त्रों के द्वारा सम्पूर्ण देवों का अर्चन करे फिर सब देवताओं को नमस्कार करके पृथक्-पृथक् नमस्कार द्वारा ही पुष्पों का विन्यास करे ॥१३३-१३४॥ समस्त देवों के परिपूर्ण भगवान् विष्णु और भुवन भास्कर की अर्चना करे। पुरुष सूक्त के द्वारा जो पुरुषों को एवं जल को समर्पित करता है उसने इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की ही अर्चना करली है। इसके अतिरिक्त तांत्रिक मन्त्रों के द्वारा भी जनार्दन की पूजा करे ॥१३५-१३६॥

आदावर्घ्यं प्रदातव्यं ततः पश्चाद्विलेपनम् ।
ततः पुष्पांजलिं धूप उपहारफलानि च ॥१३७
स्नानमन्तर्जले चैव मार्जनाचमनं तथा ।
जलाभिमन्त्रणं यच्च तीर्थस्य परिकल्पनम् ॥
अघमर्षणसूक्तेन त्रिवारं त्वेव नित्यशः ॥१३८
स्नाने चरितमित्येतत्समुद्दिष्टं महात्मभिः ।
ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते ।
तूष्णीमेव तु शूद्रस्य सनमस्कारकं स्मृतम् ॥१३९
अध्यापन ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु सर्पणम् ।
होमो दैवो वलिभौंतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥१४०
गवां गोष्ठे दशगुणं अग्न्यागारे शताधिकम् ।
सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥
सहस्रशतकोटीनामनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥१४१
पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथार्थतः ।
पितृदेव मनुष्याणां कोटीनाञ्चोपदिश्यते ॥१४२
ब्राह्मणेभ्यः प्रदायाग्रं यः सुहृद्भिः सहाश्नुते ।
स प्रेत्य लभते स्वर्गमन्नदानं समाचरन् ॥१४३

सर्व प्रथम अर्चा का आरम्भ कर देव को अर्घ्य देना चाहिए। इसके अनन्तर विलेपन देवे। इसके पश्चात् पुष्पांजलि देवे और क्रमशः धूप और उपहार के लिए फल आदि समर्पित करने चाहिए। इसके उपरान्त

जल के अन्दर स्नान करावे—मार्जन तथा आचमन करावे। जल को अभिमन्त्रित करे तथा तीर्थ का परिकल्पन करना चाहिए। इस तरह से अघमर्षण सूक्त से नित्य ही तीन बार करना चाहिए ॥१३७-१३८॥ महान् आतमा वालों ने स्नान में यह इतना चरित कहा है। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों को मन्त्रवत स्नान करना चाहिए। केवत शूद्र को चुप चाप ही नमस्कार के साथ स्नान बताया गया है ॥१३९॥ अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है और तर्पण करना पितृ यज्ञ होता है। होम करना दैवयज्ञ होता है तथा बलि देना भौत यज्ञ है। अतिथियों का अर्चा-संस्कार करना नृयज्ञ होता है ॥१४०॥ गौओं के गोष्ठ में इस सबका करना दशगुना फल वाला होता है। अग्न्यागार में यदि यह सब किया जावे तो शत गुना फल प्रद होता है। जो सिद्ध क्षेत्र हैं—तीर्थ हैं तथा देवतायतन हैं उनमें देवार्चन आदि करने से सहस्र शत कोटि गुना फल प्रद होता है एवं भगवान् विष्णु की सन्निधि में किया जावे तो अनन्त गुना फल देने वाला हुआ करता है ॥१४१॥ तथा पञ्चम भाग में यथार्थ रूप से पितृ-देव-मनुष्य और कीटियों का विभाग करे—ऐसा उपदेश दिया जाता है ॥१४२॥ सबसे पूर्व ब्राह्मणों को प्रदान कर के जो अपने सुहृदों के साथ अशन किया करता है वह इस तरह अन्न का दान करने वाला मनुष्य मर कर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ॥१४३॥

पूर्वं मधुरमश्नीयाल्लवणाम्लौ च मध्यतः।
कटुतिक्तकषायांश्च पयश्चैव तथान्ततः ॥१४४
शाकञ्च रात्रौ भूमिष्ठमत्यन्तञ्च विवर्जयेत्।
न चैकरससेवायां प्रसह्येत कदाचन ॥१४५
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ।१४६
अमावसी वसेद्यत्र एकहायनमेव वा।
तत्र श्रीश्चैव लक्ष्मीश्च वसते नात्र संशयः ॥१४७
उदरे गार्हपत्याग्निः पृष्ठदेशे तु दक्षिणः।
आस्ये आहवनीयोऽग्नि सत्ये सर्वञ्च मूर्द्धनि ॥४४८

यः पञ्चाग्नीनिमान्वेद आहिताग्निः स उच्यते ।
शरीरमापः सोमञ्च विविधञ्चान्नमुच्यते ॥१४९

प्राणो ह्यग्निस्तथादित्यस्त्रिभोक्ता एक एव तु ।
अन्नं बलाय ने भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ॥१५०

भवत्येतत्परिणतौ समाप्तव्याहतं सुखम् ।
हस्तेन परिमार्ज्याथ कुर्य्यात्ताम्बूलभक्षणम् ॥१५१

श्रवणञ्चेतिहासस्य तत्कुर्य्यात्सुसमाहितः ।
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमके नयेत् ॥१५२

ततःसन्ध्यामुपासीत स्नात्वा वै पश्चिमां नरः ।
एतद्वा द्विवसे प्रोक्तमनुष्ठानं मया द्विज ॥१५३

आचारं यः पठेद्विद्वान्शृणुयात्स दिवं व्रजेत् ।
आचारादिधर्मकर्त्ता केशवो हि स्मृतो द्विज ॥१५४

सबसे पूर्व जो मधुर पदार्थ हो उसका अशन करे और मध्य में लवणान्नों का भोजन करे। जो कटु—तिक्त तथा कषाय स्वाद वाले हों उन्हें बाद में खावे और सबसे अन्त में पय का पान करे ॥१४४॥ रात्रि में शाक का अशन और जो भूमिष्ठ हो उसका विशेष रूप से वर्जन कर दे कभी भी एक ही रस का सेवन नहीं करना चाहिए ॥१४५॥ ब्राह्मण का अन्न अमृत के तुल्य माना गया है—क्षत्रिय का अन्न दुग्ध के समान और वैश्य का जो अन्न होता है वह अन्न ही होता है तथा शूद्र का अन्न रुधिर के तुल्य कहा गया है ॥१४६॥ जहाँ पर अमावासी वास करता है अथवा एक हायन निवास करता है वहाँ पर श्री और लक्ष्मी नित्य निवास किया करती हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१४७॥ उदर में गार्हपत्याग्नि है और पृष्ठ देश में दक्षिणाग्नि है मुख में आवाहनीय अग्नि का तथा सत्य में मूर्द्धा में सबका निवास रहता है ॥१४८॥ जो इन पाँच अग्नियों को जानता है वह आहिताग्नि कहा जाता है। शरीर-आप और सोम विविध अन्न कहा जाता है ॥१४९॥ प्राण—

अग्नि तथा आदित्य ये तीन भोक्त एक ही होता है। भूमि का अन्न मेरे बल के लिए है। जलों का अग्नि और अविल का भी बल के लिए होता है ॥१५०॥ यह समाप्त और व्याहत सुख परिणत (परिपाक) में होता है। हाथ से परिमार्जन करके ताम्बूल का भक्षण करना चाहिए ॥१५१॥ इसके उपरान्त पूर्णतया सावधान होते हुए इतिहास श्रवण करना चाहिए। षष्ठ और सप्तम भाग को इतिहास-पुराणादि के श्रवण-पठन आदि के द्वारा व्यतीत करना चाहिए ॥१५२॥ इसके अनन्तर अर्थात् दिवस के जो सात भाग बताये गये हैं उनका ऊपर में बताए हुए क्रम से उपयोग किये जाने पर पश्चिम सन्ध्या की वन्दना स्नान करके करनी चाहिए। हे द्विज ! इस प्रकार से मैंने दिवस का पूरा अनुष्ठान बता दिया है। जो विद्वान् इस दिन भर के अनुष्ठान को पढ़ता है या श्रवण करता है वह दिव्य लोक को जाया करता है। हे द्विज ! इस आचार आदि धर्म का करने वाला तो केशव ही बतलाया गया है ॥१५३-१५४॥

११६—धर्म-सार कथन

धर्मसारमहं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सूक्ष्मं सर्वपापविनाशनम् ॥१

श्रुतं धर्मं बलं धैर्य्यं सुखमुत्साहमेव च।
शोको हरति वै नृणां तस्माच्छोकं परित्यजेत् ॥२

कर्मदाराः कर्मलोकाः कर्मसम्बन्धिबान्धवाः।
कर्माणि प्रेरयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयो ॥३

दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते।
दान स्वर्गञ्च राज्यञ्च दद्याद्दानं ततो नरः ॥४

एकतो दानमेवाहुः समग्रवरदक्षिणम्।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥५
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैः स्नानेव वा पुनः।
धर्मस्य नाशका ये च ते वै निरयगामिनः ॥६

ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्पराः ।
सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नराः सर्वगामिनः ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे शङ्कर ! अब मैं संक्षेप में धर्म का सार बतलाता हूँ इसका तुम श्रवण करो । यह धर्म का सार अत्यन्त सूक्ष्म है और भुक्ति तथा मुक्ति के प्रदान करने वाला एवं सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला होता है ।।१।। शोक बहुत ही बुरी वस्तु है, इससे श्रुत, धर्म बल, धैर्य्य और सुख एवं उत्साह इन सबका हरण हो जाया करता है अर्थात् शोक से ये सब नष्ट हो जाते हैं । अतएव शोक का परित्याग कर देना चाहिये । तात्पर्य यह है कि शोक को कभी भी न करे ।।२।। ये कर्म ही पत्नियाँ हैं, कर्म ही लोक है कर्म ही सम्बन्धी और बान्धव हैं । इस संसार में सुख तथा दुःख में पुरुष को कर्म ही प्रेरित किया करते हैं ।।३।। दान करना सबसे बड़ा परम धर्म होता है । दान करने से संसार में सभी कुछ की प्राप्ति की जाया करती है । दान ही स्वर्ग है और दान ही राज्य है अर्थात् दान से स्वर्ग तथा राज्य की प्राप्ति हुआ करती है । अतएव मनुष्य को दान अवश्य ही देना चाहिये ।।४।। एक ओर तो समग्र श्रेष्ठ दक्षिणा से युक्त दान है और एक ओर भय से भीति (डरा हुआ) प्राणी के प्राणों का रक्षण है ।।५।। तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और स्नान के त्यागने से जो धर्म के नाश करने वाले हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरक के गामी हुआ करते हैं ।।६।। जो मनुष्य होम, जप, स्नान, देवों का अर्चन इन सत्कर्मों में सदा परायण रहा करते हैं और सत्य, क्षमा और दया से युक्त होते हैं वे मनुष्य अवश्य ही स्वर्ग के गमन करने वाले होते हैं ।।७।।

न दाता सुखदुःखानां न च हर्त्तास्ति कश्चन ।
स्वकृतान्येव भुञ्जन्ते दुःखानि च सुखानि च ।।८
धर्मार्थि जीवितं येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्त्तितुम् ।।९
सर्व एव हि सौख्येन संकटान्यवगाहते ।
इदमेव हि लोभस्य कार्य्यं स्यादतिदुष्करम् ।।१०

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभाद्द्रोहः प्रवर्त्तते ।
लोभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर एव च ॥११

रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्भितः ।
यः स शान्तः परं लोकं याति पापविवर्जितः ॥१२

देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर ।
धार्मिकं पूजयन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम् ॥१३

अनन्तबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण वा ।
अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिवेदना ॥१४

सुख, दुःख का देने वाला या इनके हरण करने वाला कोई भी नहीं है । मनुष्य अपने ही किये हुए कर्मों के अनुसार, चाहे वे पहिले जन्मान्तरों में किये हों या इसी जन्म के हों—सुख-दुःखों का भोग करते हैं ॥८॥ जिनका जीवन ही धर्म के लिये होता है वे सभी दुःखों का नाश कर देते हैं । कौन सन्तुष्ट पुरुष फल-मूलों के द्वारा जीवन निर्वाह नहीं कर सकता ? ।६।सभी सुख से सङ्कटों का अवगाहन करते हैं । यह ही लोभ का अत्यन्त कठिन कार्य है ॥१०॥ लोभ से क्रोध, और लोभ से ही द्रोह प्रवृत्त हुआ करता है । लोभ ही एक ऐसा महान् दोष है जिससे मोह, माया, मान, मत्सर उत्पन्न होते हैं ॥११॥ जो पुरुष राग, द्वेष, मिथ्या, क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहता है तथा जो शान्ति से सम्पन्न होता है, वह पाप से रहित होकर परलोक में सद्गति प्राप्त किया करता है ॥१२॥ हे हर ! देवता, मुनिगण, नाग, गन्धर्व और गुह्यक ये सभी यहाँ इस लोक में धर्मनिष्ठ पुरुष का ही पूजन किया करते हैं, धन से सम्पन्न तथा कामी पुरुष की कोई भी पूजा नहीं करता ॥१३॥ अपने अनन्त बल-वीर्य्य से, प्रज्ञा से अथवा पुरुषार्थ से मनुष्य अलभ्य पदार्थ को प्राप्त करता है । इसमें फिर परिवेदना क्या है ? ॥१४॥

सर्वसत्त्वदयात्यर्थं सर्वेद्रियविनिग्रहः ।
सर्वत्रानित्यबुद्धित्वं श्रेयः परमिदं स्मृतम् ॥१५

पश्यन्निवाग्रतो मृत्युं यो धर्मं नाचरेन्नरः।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१६

भ्रूणहा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः।
भूमिं सर्वगुणोपेतां दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१७
न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीह मे मतिः।
या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ॥१८

नान्नदानात्परं दानं किञ्चिदस्ति वृषभध्वज।
अन्नेन धार्य्यते सर्वं चराचरमिदं जगत् ॥१९

समस्त प्राणियों पर अत्यन्त दया करना, सम्पूर्ण इन्द्रियों का नियन्त्रण रखना और सभी में अनित्यता की बुद्धि का रखना ही परम श्रेय बताया गया है ॥१५॥ अपने सामने मृत्यु को खड़ी हुई तय्यार देखकर भी जो मनुष्य धर्म का आचरण नहीं किया करता है उसका यहाँ इस लोक में जन्म ग्रहण करना भी बकरी के गले में होने वाले दूध-हीन स्तन की भाँति ही बिल्कुल व्यर्थ होता है ॥१६॥ जो भ्रूण (गर्भस्थ बालक) की हत्या करने वाला है, ब्राह्मण की हत्या करने वाला है, गौ का हनन करने वाला, पिता के मारने वाला और गुरु की पत्नी के साथ गमन करने वाला है वह समस्त गुणों से सम्पन्न भूमि का दान करके पापों से छुटकारा पाया करता है ॥१७॥ इस संसार में गोदान से उत्तम अन्य कोई भी दान नहीं होता है—ऐसी मेरी मति है। जो न्याय से अर्जित की हुई गौ का दान किया जाता है वह गो दान पूर्ण कुल का उद्धार कर दिया करता है ॥१८॥ अन्न के दान का भी बड़ा माहात्म्य है। इससे बड़ा भी अन्य कोई दान नहीं होता है। हे वृषभध्वज! अन्न से ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् धारण किया जाता है ॥१९॥

कन्यादानं वृषोत्सर्गस्तीर्थसेवा श्रुतं तथा।
हस्त्यश्वरथदानानि मणिरत्नवसुन्धराः ॥२०

अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
अन्नात्प्राणा बलं तेजश्चान्नाद्वीर्य्यं धृतिः स्मृतिः ॥२१

कूपवापीतड़ागादि आरामाणि च कारयेत् ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२२

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥२३

सत्यं दमस्तपः शौच सन्तोषश्च क्षमार्जवम् ।
ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः ॥२४

कन्या का दान देना, वृषोत्सर्ग तीर्थों का सेवन करना, श्रुत, हाथी, घोड़ा, रथ, मणि, रत्न एवं भूमि का दान देना ये सभी महान् दान भी अन्न के दान की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं। अन्न से प्राणों की रक्षा होती है, बल की वृद्धि होती है, तेज बढ़ता है और अन्न से ही वीर्याघृति तथा स्मृति हुआ करते हैं अतएव यह दान परम महत्त्वशाली होता है ॥२०-२१॥ कुआ, बावड़ी, तालाब आदि का निर्माण एवं उद्यान की रचना भी अवश्य ही करानी चाहिए। इनसे मनुष्य अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके अन्त में विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२२॥ साधु-सन्त पुरुषों का दर्शन परम पुण्यप्रद एवं तीर्थों के सेवन से भी अधिक कहा है। तीर्थों का सेवन तो समय आने पर ही फल देता है किन्तु साधु पुरुषों का समागम तुरन्त ही फल दिया करता है ॥२३॥ सत्य, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, आर्जव (सीधा भाव), ज्ञान, शम, दया और दान ये सब सनातन धर्म कहे गये हैं ॥२४॥

११७—युग-धर्म कथन

मुनिभिश्चरिता धर्मा भक्त्या व्यास मयोदिताः ।
यैर्विष्णुस्तुष्यते चैत्र सुखादिपरिचारकाः ॥१

तर्पणेन च होमेन सन्ध्याया वन्दनेन च ।
प्राप्यते भगवान् विष्णुर्धर्मकामार्थ मोक्षदः ॥२

धर्मो हि भगवान् विष्णुः पूजाविष्णुस्तु तर्पणम् ।
होमः सन्ध्या तथा ध्यान धारणा सकलं हरिः ॥३

प्रलयं जगतो वक्ष्ये तत्सर्वं शृणु शौनक ।
चतुर्युगसहस्रन्तु कल्पैकाब्जदिनं स्मृतम् ॥४
कृतत्रेताद्वापरादियुगावस्थां निबोध मे ।
कृते धर्मश्चतुष्पाच्च सत्यं दानं तपो दया ॥५

धर्मपाता हरिश्चेति सन्तुष्टा ज्ञानिनो नराः ।
चतुर्वर्षसहस्राणि नरा जीवन्ति वै तदा ॥६
कृतान्ते क्षत्रियैर्विप्रा विट्शूद्राश्चजिता द्विजैः ।
शूरश्चातिबलो विष्णु रक्षांसि च जघान ह ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! भक्तिभाव ने मुनियों के द्वारा समाचरण किये गये धर्म मैंने बतलाये हैं, जो भगवान् विष्णु की तृप्ति वाले और सुखादि के परिचारक होते हैं ॥१॥ तर्पण, होम और सन्ध्या-वन्दन करने से धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष के प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु प्राप्त किये जाते हैं ॥२॥ भगवान् विष्णु का ही स्वरूप धर्म है । पूजा विष्णु है और तर्पण भी विष्णु है । होम, सन्ध्या-वन्दन एवं ध्यान और धारणा ये सभी हरि के स्वरूप हैं ॥३॥ श्री सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब हम इस जगत् की प्रलय का वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो । एक सहस्र सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग इन चारों युगों का एक कल्प होता है जो कि ब्रह्म का एक दिन ॥४॥ अब कृतयुग, त्रेता, द्वापर आदि युगों की अवस्था मुझसे सुन-समझ लो । कृतयुग में धर्म के चारों पाद होते हैं । वे चार पाद सत्य, दान, तप और दया ये ही होते हैं ॥५॥ धर्म का पालन करने वाले हरि हैं । ज्ञानी मनुष्य सन्तुष्ट रहा करते हैं । उस समय कृतयुग में मनुष्यों की आयु चार सहस्र वर्ष की हुआ करती है ॥६॥ कृतयुग के अन्त में क्षत्रियों के द्वारा विप्र, वैश्य और शूद्र जीत लिये गये । द्विजों से अति बलवान् शूर विष्णु ने राक्षसों का हनन किया था ॥७॥

त्रेतायुगे त्रिपाद्धर्मः सत्यदानदयात्मकः ।
नरा यज्ञपरास्तस्मिस्तथा क्षत्रोद्भवं जगत् ॥८

रक्तो हरिर्नरैः पूज्यो नरा दशशतायुषः ।
तत्र विष्णुर्भीमरथः क्षत्रिया राक्षसानहन् ।।९
द्विपादविग्रहो धर्मः पीताताञ्चाच्युते गते ।
चतुःशतायुषो लोका द्विजक्षत्रोद्भवाः प्रजाः ।।१०
तत्र दृष्ट्वाल्पबुद्धींश्च विष्णुर्व्यासस्वरूपधृक् ।
तदेकं तु चतुर्वेदं चतुर्द्धा व्यभजत् पुनः ।।११
शिष्यानध्यापयामास समस्तान् तान् निबोध मे ।
ऋग्वेदमथ पैलन्तु सामवेदञ्च जैमिनिम् ।।१२
अथर्वाणं सुमन्तुं तु यजुर्वेदं महामुनिम् ।
वैशम्पायनसञ्ज्ञन्तु पुराणं सूतमेव च ।
अष्टादश पुराणानि यो वेत्ति हरिरेव हि ।।१३
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।१४

त्रेता युग में धर्म के तीन ही पाद रह गये जो सत्य, दान और दया थे। उस समय मनुष्य यज्ञों के करने में तत्पर रहते थे तथा यह सम्पूर्ण जगत् क्षत्रोद्भव हो गया था ।।८।। हरि का रक्त वर्ण था जो कि मनुष्यों के द्वारा पूजा के योग्य थे। मनुष्यों की आयु इस युग में एक सहस्र वर्ष की होती थी। उस समय में भीमरथ विष्णु थे और क्षत्रियों ने राक्षसों का हनन किया था ।।९।। द्वापर युग में धर्म दो पादों वाला था। भगवान् अच्युत् उस समय में पीत वर्ण के थे। मनुष्यों की आयु उस युग में चारसौ वर्ष की थी और प्रजा, द्विज तथा क्षत्रियों से उद्भव प्राप्त करने वाली थी ।।१०।। उस समय में मनुष्यों को अल्प बुद्धि वाले देखकर भगवान् विष्णु ने महर्षि व्यास के स्वरूप को धारण किया था। उस देव ने चारों वेदों के रूप में वेद का विभाजन किया और सम्पूर्ण रूप में शिष्यों को पढ़ाया था। उनको भी अब तुम समझ लो। ऋग्वेद को पैल को पढ़ाया, सामवेद जैमिनि को पढ़ाया, अथर्व वेद सुमन्तु को पढ़ाया तथा यजुर्वेद महामुनि को पढ़ाया

था। वैशम्पायन के साथ सूतजी को पुराण का अध्यापन कराया था। जो अठारह पुराणों का ज्ञान रखता है वह साक्षात् हरि ही है ॥१२-१३॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं—उसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तरों का वर्णन और वंशानुचरित होते हैं ॥१५॥

ब्राह्मं पद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।
भविष्यन्नारदीयञ्च स्कान्दं लिङ्गं वराहकम् ॥१५
मार्कण्डेयं तथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च।
कौर्मं मात्स्यं गारुड़ञ्च वायवीयमनन्तरम् ॥
अष्टादशसमुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ॥१६
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ॥१७
तृतीयं स्कन्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं स्यान्दीश्वरभाषितम् ॥१८
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्।
कपिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम् ॥१९
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चाथ कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बमेवं सर्वार्थसञ्चयम् ॥
पराशरोक्तमपरं मारीचे भार्गवाह्वयम् ॥२०
पुराण धर्मशास्त्रञ्च वेदस्त्वङ्गानि यन्मुने।
न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ॥
गन्धर्वश्च धनुर्वेदो विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥२१

पुराणों के नाम ये हैं—ब्राह्म (ब्रह्मपुराण)—पाद्म (पद्मपुराण)—वैष्णव(विष्णुपुराण)—शैव(शिवपुराण)—भागवत—भविष्यत्—नारदीय-स्कान्द(स्कन्दपुराण)—लिङ्ग—बराहक—मार्कण्डेय—आग्नेय(अग्नि पुराण)—कौर्म (कूर्म पुराण)—मत्स्य—गरुड़—वायनीय (वायु पुराण) ये अष्टादश पुराण हैं जिनमें अठ्ठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है ॥१५-१६॥ इनके अतिरिक्त भी उपपुराण हैं जो मुनियों के द्वारा कहे गये हैं। सबसे आदि का नारसिंह

पुराण है जिसको सनत्कुमारों ने कहा है,वह भी दूसरा पुराण है। तीसरा स्कन्द पुराण कुमार के द्वारा कथित है। चौथा शिव धर्म नाम वाला पुराण नन्दीश्वर के द्वारा भाषित हुआ है ।।१७-१८।। दुर्वासा के द्वारा कथित आश्चर्य और इसके अनन्तर नारद के द्वारा उक्त पुराण है। कपिल—वामन और उशना के द्वारा कथित पुराण है ।।१९।। ब्रह्माण्ड-वारुण और कालिका नामक पुराण है। माहेश्वर—साम्ब-सर्वार्थसञ्चय—पराशर के द्वारा कथित पुराण—मारीच और भार्गव नाम वाला पुराण है ।।२०।। पुराण—धर्मशास्त्र—वेद के अङ्ग हे शौनक मुने ! न्याय-मीमांसा और आयुर्वेदार्थ शास्त्र—गन्धर्व शास्त्र—धनुर्वेद ये सब मिल कर अठारह विद्याऐं बताई गई हैं ।।२१।।

द्वापरान्तेन च हरिर्गुरुभारमपाहरत् ।
एकपादस्थिते धर्मे कृष्णत्वञ्चाच्युते गते ।।२२
जनास्तदा दुराचारा भविष्यन्तिच निर्दयाः ।
सत्त्वं रजस्तम् इति दृष्यन्ते पुरुषे गुणाः ।।
कालसञ्चोदितास्तेऽपि परिवर्त्तन्त आत्मनि ।।२३
प्रभूतञ्च यदा सत्त्वं मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रतः ।।२४
यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यशसि देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजभूतिरिति जानीहि शौनक ।।२५
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भश्च मत्सरः ।
कर्मणाञ्चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ।।२७
यदा सदानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसादिसाधनम् ।
शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तमसि स्मृतः ।।२७
यस्मिन् जनाः कामिनः स्युः शश्वत् कटुकभाषिणः ।
दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ।।२८

द्वापर युग के अन्त में भूमि के बहुत भारी भार को भगवान् हरि ने दूर किया जब धर्म का केवल एक ही पाद यहाँ स्थित रहा था उस

समय भगवान् अच्युत् ने कृष्णावतार धारण किया ।।२२।। उस समय मनुष्यों के आचार बहुत दूषित हो गये । दया नहीं रहती और सत्व—रज और तम ये गुण सभी काल से सम्प्रेरित होकर आत्मा में परिवर्त्तित हो जाते हैं ।।२३।। जिस समय सत्त्व का बाहुल्य रहता है और मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ उसी प्रकार के होते हैं उस समय कृतयुग जानना चाहिए मनुष्य उस समय ज्ञान तथा तपस्या में रत रहा करते हैं ।।२४।। जिस समय देहधारियों की रति काम्य कर्मों में शक्ति यश में हुआ करती है उस समय त्रेतायुग होता है । हे शौनक ! इसे रजोगुण की उत्पत्ति या वैभव ही समझे ।।२५।। जिस समय लोभ—असन्तोष—मान—दम्भ—मत्सर और केवल कामना से युक्त कर्म होते हैं उसे द्वापरयुग समझो । इसमें रजोगुण और तमोगुण की ही प्रधानता रहती है ।।२६।। जिस समय सदा मिथ्या—तन्द्रा—निद्रा और हिंसा आदि के साधन होते हैं तथा शोक—मोह—भय—दैन्य हुआ करते हैं वह कलियुग कहा गया है इसमें केवल तमोगुण ही रहा करता हैं ।।२७।। मनुष्य कामी और कटुभाषी हो जाते हैं जन पद दस्युओं के द्वारा होते हैं और वेद पाषण्ड के द्वारा दूषित हो जाते हैं ये सब कलियुग का प्रभाव है ।।२८।।

राजानश्च प्रजाभिक्षाः शिश्नोदरपराजिताः ।
अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।।२९

तपस्विनो ग्रामवासाः न्यासिनो ह्यर्थ लोलुपाः ।
ह्रस्वकाया महाहाराश्चौर्य्यास्तु साधवः स्मृताः ।।३०

त्यक्ष्यन्ति भृत्याश्च पति तापसस्त्क्ष्यति व्रतम् ।
शूद्राः प्रतिग्रहिष्यन्ति वैश्यस्तपपरायणः।।३१

उद्विग्नाः सन्ति च जनाः पिशाचसदृशाः प्रजाः ।
अन्यायभोजनेनाग्निदेवतातिथिपूजनम् ।।३२

करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पित्र्युदकक्रियाम् ।
स्त्रीपराश्च जनाः सर्वे शूद्रप्रायाश्च शौनक ।।३३

बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ।
शिरःकण्डूयनपरा आज्ञां भेत्स्यन्ति भर्त्सिताः ।।३४
विष्णुं न पूजयिष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः ।
कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः ।।३५
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत् ।
कृते यज्ञादिना विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम् ।।३६
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ।
तस्माद् ध्येयो हरिर्नित्यं ध्येयः पूज्यश्च शौनक ।।३७

कलियुग में राजा गण प्रजाजनों से भिक्षा की याचना करते हैं और ये सभी शिश्न तथा उदर की पूर्ति में ही परायण रहने वाले होते हैं। ब्रह्मचारी व्रत-रहित, शौच-विहीन, भिक्षु और कुटुम्बी होंगे ।।२९।। जो तपस्वी नामधारी पुरुष होंगे वे ग्रामों के अन्दर निवास करने वाले हो जायेंगे। संन्यास धारण करने वाले लोग महान् धन के लालची हो जायेंगे। साधुगण वे ही कहलायेंगे जिनके शरीर का आकार छोटा होगा—अधिक आहार करने वाले और चोरी करने वाले होंगे ।।३०।। भृत्य अपने स्वामियों को उस समय त्याग कर दिया करेंगे। तापसगण अपने व्रतों को छोड़ दिया करेंगे। शूद्र लोग दान ग्रहण किया करेंगे। वैश्य लोग तपस्या में परायण होंगे ।।३१।। सभी मनुष्य उद्वेग से युक्त रहेंगे और सारी प्रजा पिशाचों के तुल्य हो जायगी। अन्याय के भोजन द्वारा लोग अग्नि—देवता और अतिथियों का पूजन करेंगे। जब कलियुग प्राप्त होगा तो पितृगण की कोई भी उदक क्रिया नहीं करेगा। हे शौनक ! कलियुग में सभी मनुष्य स्त्रियों में ही परायण और शूद्र प्रायः हो जायेंगे ।।३२-३३।। लोगों के सन्तान अत्यधिक होंगी और वे सब भाग्यहीन हुआ करेंगे। स्त्रियाँ ऐसी अभागिनी होंगी कि अपने सिरों को खुजलाने में तत्पर रहेंगी और भर्त्सित होकर बड़ों की आज्ञा का खण्डन किया करेंगी ।।३४।। लोगों में पाखण्ड इतना हो जायगा कि उससे उपहत होकर वे विष्णु का पूजन नहीं किया

करेंगे। हे विप्रगण! इन दोषों से दूषित कलियुग में एक ही महान् गुण होता है और वह यह है कि केवल भगवान् श्री कृष्ण के कीर्त्तन से ही इस कलियुग में महान् बन्धन का त्याग हो जाता है। सत्ययुग में यज्ञादि के द्वारा, त्रेता में जपादि के द्वारा तथा द्वापर में परिचर्या के द्वारा जो पुण्य—फल होता है वह पूरा फल इस कलियुग में केवल भगवान् हरि के नाम संकीर्त्तन से हो जाता है। हे शौनक! इसीलिए भगवान् हरि का नित्य ही ध्यान एवं पूजन करना चाहिए ॥३५-३७॥

११८—नैमित्तिक प्रलय कथन

चतुर्युगसहस्रान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः।
अनावृष्टिश्च कल्पान्ते जायते शतवार्षिकी ॥१
उत्तिष्ठन्ति तदा रौद्रा दिवि सप्त दिवाकराः।
ते तु पीत्वा जलं सर्वं शोषयन्ति जगत्त्रयम् ॥२
भूर्भुवःस्वर्महर्लोकं चराचरं जनं तथा।
रुद्रो भूत्वासौ विष्णुश्च पातालानि दहायथ ॥३
विष्णुर्दहेत्त्रिलोकञ्च मुखान्मेघान् सृजत्यलम्।
वर्षन्ते च वर्षशतं नानामोहमहाघनाः ॥४
विष्णुरेकार्णवे भूते वर्षे ब्रह्मस्वरूपधृक्।
शेतेऽनन्तासने विष्णु र्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥५
सुप्त्वा वर्षसहस्रं स जगद्भूयोऽसृजद्धरिः।
अथ प्राकृतिकं वक्ष्ये प्रलयं शृणु शौनक ॥६

श्री सूतजी ने कहा—चारों के एक सहस्र समाप्त हो जाने पर ब्राह्म नैमित्तिक लय हुआ करती है। कल्प के अन्त में एक सौ वर्ष तक अनावृष्टि हुआ करती है ॥१॥ उस समय दिन में महान् रौद्र स्वरूप वाले सात सूर्य उठते हैं अर्थात् उदित हो जाया करते हैं। वे सूर्य समस्त जल का पान कर जाते हैं और अपनी प्रखर किरणों द्वारा जल को पीकर इस जगतीत्रय तो एकदम शोषित बना दिया करते

हैं ।।२।। भूः—भुवः—स्वः—महर्लोक—जनलोक तथा समस्त चराचर को और पाताल आदि लोकों को यह विष्णु रुद्र होकर दग्ध किया करते हैं। पहिले विष्णु तीनों लोकों का दाह करते हैं, फिर प्रमुख मेघों का सृजन किया करते हैं। वे अनेक मोहमय महाघन सौ वर्ष पर्य्यन्त वर्षा करते हैं ।।३-४।। समस्त चराचर के एक समुद्र के स्वरूप में हो जाने पर और स्थावर-जंगम सबके नष्ट होने पर भगवान् विष्णु अनन्तासन पर शयन करते हैं।।५।। एक सहस्र वर्ष तक शयन करने के अनन्तर भगवान् हरि पुनः इस जगत् का सृजन करते हैं। अथ हे शौनक ! हम प्राकृतिक प्रलय का वर्णन करते हैं, उसे सुनो ।।६।।

पूर्णे संवत्सरशते संहृत्य सकलं जगत् ।
ब्राह्मणं न्यस्य देहे हि मुक्तो योगबलैर्हरिः ।।७
अनावृष्टयकसम्पन्ना आसन् मेघास्तथा द्विज ।
शतं वर्षाणि वर्षद्भिर्मेघैरण्डं प्रपूर्य्यते ।।८
अन्तर्गतेन तोयेन भिन्नमण्डं जगत्पतेः ।
पूर्ण ब्रह्मायुषि गते भिद्यतेऽम्भसि लीयते ।।९
एवं सा जगदाधारा तोये चोर्वी प्रलीयते ।
आपस्तेजसि लीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते ।।१०
वायुः खे खञ्च भूतादौ विशते च तदा महान् ।
महान् प्रपद्यते व्यक्तौ प्रकृतिः पुरुषे नरे ।।११
शतवर्ष हरिः शेते सृजतेऽथ दिनागमे ।
अव्यक्तादिक्रमेणैव व्यक्तीभूतं चराचरम् ।।१२

सौ वर्षों के पूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् का संहार करके देह में ब्राह्मण का न्यास करके हरि योगबल से मुक्त हो जाते हैं ।।७।। हे द्विज ! अनावृष्टि और सूर्य से सम्पन्न मेघ होते हैं। सौ वर्ष तक बरसते हुए मेघों से यह अण्ड प्रपूरित कर दिया जाता है ।।८।। जल के अन्तर्गत हो जाने से जगत्पति का अण्ड भिन्न हो जाता है। ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाने पर वह विद्यमान होता है और जल में लीन हो जाता है ।।९।। इस प्रकार से इस जगत् की आधार स्वरूप यह उर्वी (भूमि) जल

में लय हो जाती है। जल तेज में लीन होते हैं और वह तेज फिर वायु में लय हो जाता है। वायु आकाश में और आकाश भूतादि में प्रविष्ट हो जाता है तब यह सब भूतादि महान् में और महान् प्रकृति पुरुष में लय हो जाती है। इस प्रकार से फिर भगवान् हरि सौ वर्ष पर्यन्त शयन किया करते हैं पुनः दिन के आगम हो जाने पर सृजन कार्य किया करते हैं। इसी अव्यक्त आदि के क्रम से यह सब चराचर व्यक्त हो जाता है ।।१०-१२।।

११९— पाप परिणाम कथन

आध्यात्मिकादितापांस्त्रीन् ज्ञात्वा संसारचक्रवित् ।
उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ।।१
संसारचक्रं वक्ष्येऽहमादावुत्क्रान्तिकालतः ।
यद्विना पुरुषार्थो न लीनः स्यात्परमात्मनि ।।२
उर्ध्ववासो नरस्त्यक्त्वा देहमन्यत् प्रपद्यते ।
नीयते द्वादशाहेन यमस्य यमपूरुषैः ।।३
तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छिन्त तिलैः सह ।
यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति यमलोके तदश्नुते ।।४
गतश्च नरकं पापात् स्वर्गं याति स्वपुण्यतः ।
पापकृद् याति नरकं पुण्यकृद् याति वै दिवम् ।।५
स्वर्गाच्च नरकात् त्यक्तः स्त्रीणां गर्भे भवत्यपि ।
नाभिभूतश्च तस्यैव याति बीजद्वयं हि तत् ।।६
कललं बुद्बुदमयं आदौ ततः शोणितमेव च ।
पेश्या पलसमोऽण्डः स्यादंकुरं तत उच्यते ।।७

सूतजी ने कहा—इस संसार चक्र का ज्ञाता पुरुष आध्यात्मिक—आधि भौतिक और आधि वैदिक—इन तीन प्रकार के तापों का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञान और वैराग्य के उत्पन्न हो जाने वाला पुरुष अत्यन्तिक लय को प्राप्त किया करता है ।।१।। नब मैं इस संसार के चक्र का आदि उत्क्रान्ति काल से लेकर वर्णन करता हूँ। इसके बिना कुछ भी

पुरुषार्थ नहीं होता है और न परमात्मा में ही लीन हुआ करता है ।।२।। ऊर्ध्व में वास करने वाला मनुष्य उसे त्याग कर अन्य देह को प्राप्त करता है । बारह दिन में यमराज के यम पुरुषों के द्वारा वह ले जाया करता है ।।३।। वहाँ बान्धवगण जो तिलों के साथ जल दिया करते हैं और जो पिण्ड दान किया करते हैं वह इस यमलोक में उसी का भोजन किया करता है ।।४।। पाप से नरक का गमन होता है और अपने पुण्य कर्मों से स्वर्ग का गमन हुआ करता है । पापों के करने वाला ही नरक में जाता है तथा पुण्य कर्म करने वाला प्राणी स्वर्ग में चला जाता है ।।५।। स्वर्ग और नरक के भोगों के भोगने की छोटी-बड़ी एक अवधि होती है । पाप क्षय के बाद नरक से और पुण्यों के क्षीण होने पर स्वर्ग से वह प्राणी पुनः यहाँ आकर स्त्रियों के गर्भ में प्रवेश किया करता है । उसके अनभिभूत रज और वीर्य ये दो बीज होते हैं ।।६।। आरम्भ में कलल फिर एक बुलबुला जैसा होता है । इसके अनन्तर शोणित होता है । पेशी से युक्त पलसम अण्ड होता है और फिर अंकुर होता है ।।७।।

उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनासान्यग्रबलानि च ।
आवह याति चांगेभ्यस्तत्परं तु नखादिकम् ।।८

त्वचो रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् ।
नरश्चाधोमुखः स्थित्वा दशमे च स जायते ।।९

ततस्तु वैष्णवी मायाऽऽवृणोत्यत्यमोहिनी ।
बालत्वं तु कुमारत्वं यौवनं वृद्धतामपि ।।१०

ततश्च मरणं तत्तद्धर्ममाप्नोति मानवः ।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ।।११
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु पापयोनिषु जायते ।
पतितात्प्रतिगृह्याथ अधोयोनिं व्रजेद् बुध ।।१२
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिर्भवति याचकः ।
उपाध्यायव्यलीकस्तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ।।१३

तज्जायां मनसा वाञ्छंस्तद्द्रव्यं वाप्यसंशयः ।
गर्दभो जायते जन्तुर्मित्रस्यैवापमानकृत् ॥१४

फिर अंगुली—नेत्र—नासिका—अग्र बल आदि उपांग प्रकट होते हैं जो अंगों से उत्पन्न हुआ करते हैं। पश्चात नख आदि की उत्पत्ति तथा निर्माण हो जाता है ॥८॥ त्वचा—रोम और फिर केश उत्पन्न होते हैं। इन सबके निर्माण हो जाने पर मनुष्य नीचे की ओर मुख वाला होकर स्थित रहा करता है। जब दशम मास आरम्भ होता है तो वह उत्पन्न होता है ॥६॥ जैसे ही वह जीवात्मा यहाँ लोक में देह धारण कर उत्पन्न होता है वैसे ही वैष्णवी माया जो कि अत्यन्त मोहन करने वाली है उसे आवृत कर लिया करती है। यह प्राणी इस लोक में आकर बचपन—कुमारावस्था—यौवन और वृद्धता को क्रम से प्राप्त करके पूर्ण उम्र समाप्त कर देता है और इसके पश्चात् उसको मृत्यु प्राप्त होती है। इस प्रकार से यह मानव तत्-तत् धर्म को प्राप्त किया करता है। इस प्रकार का एक चक्र है जिसमें जीवात्मा घड़ी के यन्त्र की भांति भ्रमित होता रहता है। उत्पन्न हुआ—उम्र भोगी—मर गया—कर्म फल भोगे भले-बुरे जैसे भी हों और फिर जन्म लिया—यही चक्र गति है ॥१०-११॥ नरकों से कर्मानुसार भोग भोग लेने के पश्चात् अपनी अवधि समाप्त करके यह जीवात्मा फिर यहाँ पापयोनियों में जन्म ग्रहण किया करता है। हे बुध ! पतित पुरुष से प्रतिग्रह लेकर यह अधो योनियों में जाया करता है ॥१२॥ याचक नरक से प्रति मुक्त होकर कृमि होता है। जो द्विज उपाध्याय होकर व्यलीक किया करता है वह कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करता है ॥१३॥ उसकी जाया को मन से इच्छा करता है या उसके द्रव्य को मन में प्राप्त करने की चाह रखता है तो बिना किसी संशय के गधे की योनि में जन्म लेता है जो जन्तु अपने मित्र का अपमान करता है वह भी गधा होता है ॥१४॥

पितरौ पीडयित्वा तु कच्छपत्वञ्च जायते ।
भर्त्तुः पिण्डमुपाश्वस्तो वञ्चयित्वा तमेव यः ॥१५

सोऽपि मोहसमापन्ने जायते वानरो मृतः ।
न्यासोपहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः ।।१६
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ।
विश्वासहर्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ।।१७
यवधान्यानि संहृत्य जायते मूषको मृतः ।
परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते ।।१८
भ्रातृभार्य्याप्रसंगत्वे कोकिलो जायते नरः ।
गुर्वादिभार्य्यागमनाच्छूकरो जायते नरः ।।१९
यज्ञदान विवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः ।
देवतापितृविप्राणामदत्त्वा यो समश्नुते ।।२०
प्रमुक्तो नरकाद्वापि वायसः सम्प्रजायते ।
ज्येष्ठभ्रात्रपमानाच्च कौञ्चयोनौ प्रजायते ।।२१

जो अपने माता-पिता को उत्पीड़ित किया करता है वह कछुआ होकर जन्म लिया करता है । स्वामी के पिण्ड से उपाश्वस्त होकर उसी को जो वञ्चित किया करता है वह भी मोह के समापन्न होने पर मृत होने के पश्चात् वानर की योनि में उत्पन्न हुआ करता है । जो किसी के न्यास (धरोहर) का अपहरण करने वाला है वह पहिले नरक की पीड़ा को भोगकर फिर शेष भोग को भोगने के लिये कृमि होकर इस लोक में जन्म लिया करता है ।।१५-१६।। जो असूया (निन्दा) करने वाला पुरुष है वह नरक की यातना भोगकर फिर शेष कर्मों के फल की पीड़ा भोगने के लिये राक्षस होता है । जो किसी को विश्वास देकर फिर उसका घात करता है वह मछली की योनि प्राप्त करता है ।।१७।। जो किसी के यव तथा धान्यों का संहार करता है वह मरकर चूहा हुआ करता है । जो पराई स्त्री के साथ अभिमर्ष करता है वर घोर वृक (भेड़िया) होकर उत्पन्न होता है ।।१८।। अपने भाई की भार्या के साथ प्रसंग करने पर मनुष्य कोकिल की योनि में जन्म लेता है । गुरु आदि की पूजनीय भार्या के गमन करने से शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ।।१९।। यज्ञ, दान और विवाहों में जो विघ्न उपस्थित

किया करता है वह कृमि होता है । जो देवता, पितृगण और विप्रों को समर्पण न करके स्वयं ही पहिले खा लिया करता है वह नरक की यातना भोगकर कौआ होता है । अपने ज्येष्ठ भाई के अपमान करने से यह मनुष्य क्रौञ्च की योनि में जन्म लेता है ।।२०-२१।।

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ।
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तःकीटको भवेत् ।।२२
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतंगो वृश्चिकस्तथा ।
अशस्त्रं पुरुषं हर्त्ता नरः सञ्जायते खरः ।।२३
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते ।
भोजनञ्चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ।।२४
हृत्वान्नञ्चैव मार्जारस्तिलहृच्चैव मूषिकः ।
घृतं हृत्वा च नकुलः काको मद्गुरमामिषम् ।।२५
मधु हृत्वा नरो दंशः पूप हृत्वा पिपीलिकः ।
अपो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते ।।२६
हृते काष्ठे च हारीतः कपोतो वा प्रजायते ।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ।।२७
कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वह्निहर्त्ता वकस्तथा ।
मयूरो वर्णकं हृत्वा शाकपत्रश्च जायते ।।२८

जो कोई शूद्र वर्ण का हो और किसी ब्राह्मणी के साथ गमन करता है तो उस पाप का फल भोगने के लिये वह किसी की योनि में जन्म लिया करता है । उस योनि सन्तति का उत्पादन कर फिर काष्ठ के अन्दर रहने वाला कीट (कीड़ा) हुआ करता है ।।२२।। जो कोई कृतघ्न अर्थात् किये हुये उपकार को मटियामेट कर देता है वह कृमि, कीट-पतंग और बिच्छू को योनि प्राप्त किया करता है । जो बिना शस्त्र वाले पुरुष का हनन किया करता है वह खर (गधे) की योनि में जन्म धारण करता है ।।२३।। स्त्री के वध को करने वाला, बालक का हनन करने वाला भी कृमि की योनि प्राप्त किया करता है । जो कोई भोजन की चोरी करता है वह मक्षिका (मक्खी) की योनि में उत्पन्न होता है ।।२४।।

अन्न का हरण करने वाला मार्जार (बिलाव) और तिलों का हर्त्ता मूषिक होता है। घृत की चोरी करने वाला नकुल (न्यौला) तथा मुद्ध्र और अमिष्ठ का चोर काक (कौआ) हुआ करता है ॥२५॥ मधु (शहद) का हरण करने वाला दंश और पूप (पूऔं) का हर्त्ता पिपीलक (चींटा) होता है। जल का हर्त्ता बड़ा पापी होता है और वह वायस (कौआ) होकर जन्म ग्रहण किया करता है। ॥२६॥ कांष्ठ की चोरी से हारीत (एक पक्षी का नाम) अथवा कपोत (कबूतर) होता है। जो कोई सुवर्ण के पात्र की चोरी करता है वह कृमि की योनि में उत्पन्न होता है ॥२७॥ कार्पासिक अर्थात् कपास की वस्तु हरण करने से क्रौञ्च और वह्नि के हरण से वक (बगुला)– वर्णक के हरण से मयूरी तथा शाक पत्र के हरण से भी मोरनी होता है ॥२८॥

जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्वपहृन्नरः।
छुछुन्दरिः शुभान्गन्धान् शशं हृत्वा शशो भवेत् ॥२६
षण्ढः कलापहरणे काष्ठहृत्तृणकीटकः।
पुष्पं हृत्वा दरिद्रस्तु पंगुर्यविकहृन्नरः ॥३०
शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः।
गृहहृन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान् ॥३१
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्हृा च तरुतां व्रजेत्।
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम् ॥३२
विद्यापहारी मूकश्च गत्त्वा च नरकान्बहून् ॥
असमिद्ध हुते चाग्नौ मन्दाग्निः समजायत ॥३३
परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्य्यादघातनम्।
नैष्ठुर्य्यं नैर्घृणत्वञ्च परदारोपसेविनाम् ॥३४
परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम्।
निकृत्य वञ्चनं नृणां कार्पण्यञ्च नृणां नरः
उपलक्षणादि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥३५
दया भूतेषु संवादः परलोकं प्रतिक्रिया।
सत्यं हितार्थमुक्तिश्च वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥३६

गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिसेवनं साधुसंयमः ।
सत्क्रियाव्यसनं मैत्री स्वर्गस्य लक्षणं विदुः ।
अष्टाङ्गयोगविज्ञानात्प्राप्नोत्यात्यन्तिकं फलम् ।।३७

रक्त वस्तु का व्युपहर्त्ता नर जीता हुआ जीवकता को प्राप्त होता है । शुभ गन्ध युक्त पदार्थों का अपहरण करने से छँछूदर होता है और शश के हरण से शश ही होता है ।।२९।। कला के अपहरण से मनुष्य षण्ढ, तथा काष्ठ के हरण से तृण का कीट हुआ करता है । जो पुष्पों की चोरी करता है वह दरिद्री होता है । यावक का हरण करने वाला पँगु होता है ।।३०।। शाक के हरण करने वाला हारीत और जल के हरण करने वाला चातक पक्षी होता है । जो किसी के गृह का हरण करता है वह रौरव आदि महान् दारुण नरकों में जाकर घोर यातना भोगता है । तृण, गुल्म, लता, वल्ली के त्वक् का हर्त्ता या हनन करने वाला मानव जड़ वृक्ष की योनि को प्राप्त होता है । यही गौ और स्वर्ण आदि को हरण करने वालों को देखा गया है ।।३१-३२।। विद्या का अपहरण करने वाला मूक (गूंगा) होता है जो पहिले बहुत से नरकों की यातनाऐं भोग लेता है । बिना समिधाओं वाली अग्नि में हवन करने पर मन्दाग्नि का रोग उत्पन्न हो जाता है ।।३३।। पराई स्त्रीयों का सेवन और पराई निन्दा करने वाले कृतघ्न, तथा पराई मर्यादा के घातक निष्ठुर और जिनमें विघृणत्व होता है—जो पराये धन के हरण करने से अपवित्र हैं—जो देवताओं की बुराई किया करते हैं । निकृत्तन करके मनुष्य का जो वञ्चन किया करते हैं तथा जिन मनुष्यों में कृपणता होती है, इन सबको इस बात का उपलक्षण समझ लेना चाहिए कि पापों का फल भोगने के लिए ऐसे ये लोग पहिले नरकों की यातनाऐं भोगकर फिर शेष रहे पाप फल को भोगने के लिये बाद में यहाँ लोक में उत्पन्न हुए हैं ।।३४-३५।। प्राणियों पर दया, सम्वाद, परलोक के लिए प्रतिक्रिया का करना, सत्य भाषण तथा सत्य व्यवहार, हित के सम्पादन करने वाली उक्ति, वेदों के प्रामाण्य का दर्शन, गुरु, देव, ऋषि, सिद्धों का सेवन, साधु संयम, अच्छे कर्मों के करने का व्यसन,

मित्र भावना, ये सब स्वर्ग के उपलक्षण हैं अर्थात् इनसे यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे प्राणी स्वर्ग के सुख की अवधि समाप्त करके ही यहाँ शेष सुख भोगने को और पर जन्म के लिये सत्कर्म करने को उत्पन्न हुए हैं। आठ अंगों वाले योग के विशेष ज्ञान होने से आत्यन्तिक फल मनुष्य प्राप्त करता है ॥३६-३७॥

१२०—अष्टाङ्ग योग कथन

वक्ष्ये साङ्गं महायोगं भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
सर्वपापप्रशमनं भक्त्यानुपठितं शृणु ॥१
ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति निवर्त्तते ।
दत्तात्रेयो ह्यलर्काय इममाह महामतिः ॥२
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्राश्च शाखाश्च यत्र दाराभिपल्लवः ॥३
धनधान्ये महापात्रे पापमूलोऽतिदुर्गमः ।
विधिवत्सुखशान्त्यर्थं जातो ज्ञानमहातरुः ॥४
छिन्नो विद्याकुठारेण ते गता लयमीश्वरे ।
प्राप्य ब्रह्मरसं पीतं नीरजस्कमकण्टकम् ॥५
प्राप्नुवन्ति पराः प्राज्ञाः सुखनिर्वृ तिमेव च ।
मूर्त्तेन्द्रियलयं नूनं न त्वं राजन् न चाप्यहम् ॥६
न तन्मात्रादिकं वाचा नेवान्तःकरणं तथा ।
कं वा पश्यसि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं अंगों के सहित महायोग को बतलाया हूँ जो परम भुक्ति और मुक्ति का देने वाला और समस्त पापों को शान्त करने वाला है इसे मैं अनुपठित करता हूँ, तुम भक्ति के साथ इसे सुनो ॥१॥ यह मेरा है—यही सम्पूर्ण दुःखों का मूल है। मेरा कुछ नहीं है—यही भाव निवृत्ति का मूल होता है। महान् मति वाले धीमान् दत्तात्रेय ने अलर्क के लिए इसी को बतलाया था ॥२॥ अहम् (मैं) इस अंकुर से यह आरम्भ में उत्पन्न एक वृक्ष जैसा ही है। अहं के अंकुर

से उत्पन्न वृक्ष का 'मम' अर्थात् मेरा यह स्कन्ध अर्थात् तना होता है। गृह और क्षेत्र आदि इसकी शाखाएँ हैं और दारा आदि इस वृक्ष के पत्ते हैं ।।३।। धन और धान्य रूपी महान् पात्र में यह पाप मूल अर्थात् जिसकी जड़ पाप ही होता है, अत्यन्त दुर्गम होता है। विधि पूर्वक सुख और शान्ति के लिये यहाँ ज्ञान का एक महान् वृक्ष भी उत्पन्न हो गया है ।।४।। वह पाप मूल महा वृक्ष विद्या रूपी कुठार से छिन्न हो जाता है फिर वे मनुष्य रजोगुण से रहित अकारक पीत ब्रह्मरस को प्राप्त करके ईश्वर में लय को प्राप्त हो गये हैं ।।५।। परम प्राज्ञ जो पुरुष हैं वे सुख निर्वृति को (परमानन्दमयसुख) प्राप्त किया करते हैं। हे राजन् मूर्त्त इन्द्रियों के लय को न तो प्राप्त हो सकते और न मैं भी उसे पा सकता हूँ ।।६।। वाणी से तन्मात्रादिक और अन्तः-करण का लय नहीं है। हे राजेन्द्र ! अथवा किसको देखते हो। हम दोनों में यह प्रधान है ।।७।।

मृतः परेऽह्नि क्षेत्रज्ञः संजातोऽयं गुणात्मकः।
एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मको नृप ।।८
ज्ञानपूर्ववियोगोऽसौ ज्ञाने नष्टे च योगिनः।
सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्य पुत्र ते गुणैः
तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति ।
यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानाज्ञानेन चान्यथा ।।१०
भवभोगेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव ।
कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानां क्षयं त्वकरणात्तथा ।।११
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्म चर्य्यापरिग्रहौ ।
यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं द्विविधमीरितम् ।।१२
सन्तोषस्तपसा शान्तिर्वासुदेवार्चन दमः ।
आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः ।।१३
प्रत्येकं त्रिविधः सोऽपि पूरकुम्भकरेचकैः ।
लघुर्यो दशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः ।।१४

मृत दूसरे दिन में यह क्षेत्रज्ञ गुणात्मक हो गया। हे नृप ! एकत्व होने पर भी क्षेत्रात्मा का पृथग्भाव होता है ॥८॥ यह वियोग ज्ञान पूर्वक होता है। ज्ञान नष्ट हो जाने पर योगी की वही मुक्ति होती है। हे पुत्र ! गुणों के द्वारा तेरा ब्रह्म के साथ ऐक्य और अनैक्य होता है ॥९॥ वही गृह है जहाँ पर वास करता है और वही भोज्य है जिसके द्वारा जीवित रहता है। मुक्ति के लिये वही कहा गया है जो ज्ञानाज्ञान से अन्यथा है ॥१०॥ हे पार्थिव ! संसार के भोग से पुण्यों, अपुण्यों, और कर्त्तव्यों का जो नित्य है न करने से क्षय होता है ॥११॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच नियम हैं। शौच दो प्रकार की होती है ॥१२॥ सन्तोष—तप के द्वारा शान्ति–भगवान् वासुदेव का अर्चन ये दम कहे जाते हैं। पद्मक आदि आसन बताये गये हैं और वायु का जय प्राप्त करना ही प्राणायाम है॥ ॥१३॥ प्रत्येक प्राणायाम पूरक–कुम्भक और रेचक के भेद से तीन प्रकार का होता है। जो प्राणायाम लघु होता है वह दश मात्रा वाला होता है। इससे जो दुगुना होता है वह मध्यम है ॥१४॥

त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः स उदाहृतः।
जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतत्वभक्षकः ॥१५

प्रथमे जनयेत्स्वप्नं मध्यमेन च वेपथुः।
विपाकं हि तृतीयेन जाता दोषास्त्वनुक्रमात् ॥१६

आसनस्थं तु युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि।
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणौ स्पर्शन्नेकाग्रमानसः ॥१७

रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा।
निरुध्य निश्चलो वृत्तिं स्थितो युञ्जीत योगवित् ॥१८
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च।
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमात् ॥१९
प्राणायामा दशाष्टौ च धारणा सा विधीयते।
द्वे धारणे स्मृतो योगो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२०

प्राङ्नाड्यां हृदये चात्र तृतीया च तथोरसि ।
कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रे भ्रूमध्यमूर्धसु ॥२१
किञ्चित्तस्मात्परस्मिंश्च धारणा दशधा स्मृता ।
दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षररूपताम् ॥२२

जिनमें लघु से तिगुनी मात्राएँ होती हैं वह उत्तम प्राणायाम कहा गया है । इस प्राणायाम के गर्भ अर्थात् मध्य में जप तथा ध्यान होना चाहिये, इस प्रकार से जप एवं ध्यान युक्त गर्भ वाला प्राणायाम विपरीत तत्व के भक्षण करने वाला होता है ॥१५॥ प्रथम प्राणायाम में स्वप्न का जनन होता है मध्यम प्राणायाम के द्वारा वेपथु अर्थात् कम्प होता है । तृतीय प्राणायाम से विपाक होता है । इस अनुक्रम से ये दोष हुआ करते हैं ॥१६॥ हृदय में प्रणव का ध्यान करके, आसन पर स्थित होकर योग करे । दोनों पार्ष्णियों से जननेन्द्रिय एवं वृष्णों का स्पर्श करते हुए आसन पर अपनी स्थिति करे और मन को पूर्णतया एकाग्र कर लेवे ॥१७॥ रजोगुण के द्वारा तमोगुण की वृत्ति को और सत्त्वगुण के द्वारा तमोगुण को निरुद्ध करके अपनी वृत्ति को पूर्णतया निश्चल करके योग के वेत्ता पुरुष को अपनी स्थिति बना कर ही योग साधन करना चाहिये ॥१८॥ अपनी समस्त इन्द्रियों को उन इन्द्रियों के विषयों से—प्राणादि को एवं मन को पूर्णतया निगृहीत करके समवाय के द्वारा प्रत्याहार क्रम से करना चाहिए ॥१९॥ इस तरह से अठारह प्राणायाम जब किये जाते हैं तो वह धारणा विहित होती है । तत्त्व के जानने वाले योगियों के द्वारा इस प्रकार से दो धारणाओं को ही योग कहा गया है ॥२०॥ पहले नाड़ी में फिर हृदय में और तीसरी उरःस्थल में—कण्ठ में—मुख में—नासिका के अग्र भाग में—नेत्र में—भ्रू मध्य और मूर्धा में कुछ उससे परे में इस प्रकार से धारणा दश प्रकार की हैं, जिनसे योगाभ्यास करने वाला अक्षर रूपता को प्राप्त होता है ॥२१-२२॥

यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तस्तथात्मा परमात्मनि ।
ब्रह्मरूपं महापुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् ॥२३

अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् ।
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ॥२४
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थूलदेहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ॥२५
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्या मलवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ॥२६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सूक्ष्मदेहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थानास्थानविवर्जितम् ॥२७
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्गन्धमात्रविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्परिवर्जितम् ॥२८

जिस तरह से अग्नि अग्नि में संक्षिप्त होता है वैसे ही आत्मा परमात्मा में सक्षिप्त होता है। इस प्रकार से महान् पुण्यमय ब्रह्म रूप "ओम्"—इस एक अक्षर का जाप करना चाहिए ॥२३॥ इस 'ओम्' में उकार और मकार ये तीन अक्षर होते है। इन तीनों अक्षरों से मिलकर 'ओम्'—इस एक अक्षर की रचना होती है जो ब्रह्म स्वरूप परम ओंकार संज्ञा वाला होता है ॥२४॥ मैं ब्रह्म स्वरूप पर ज्योति हूँ और इस स्थूल देह से विशेष रूप से वर्जित हूँ। मैं परब्रह्म ज्योति स्वरूप जरा (वृद्धता) और मरण से रहित हूँ ॥२५॥ मैं ज्योति स्वरूप परब्रह्म पृथिवी के मल से वर्जित हूँ तथा वायु, आकाश आदि से भी रहित हूँ ॥२६॥ मैं ज्योति-स्वरूप परब्रह्म सूक्ष्म देह से भी रहित और स्थानास्थान से वर्जित हूँ। मैं ज्योति स्वरूप परब्रह्म गन्ध मात्र से वर्जित तथा श्रोत्र एवं त्वचा से वर्जित हूँ ॥२७-२८॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् ॥२९
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरज्ञानपरिवर्जितम् ॥३०
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्त्रीष्वग्र्यं परमं पदम् ।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ॥३१

नित्यशुद्धबुद्धयुक्तमहमानन्दमद्वयम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ज्ञानरूपो विमुक्तये ।।३२
इत्यष्टाङ्गो मया योग उक्तः शौनक मुक्तिदः ।
नित्यनैमित्तिकं प्राप्त्वा लयं प्राकृतबन्धनाः ।।३३
उत्पद्यन्ते हि संसारे नैकं प्राप्त्वा परात्मनाम् ।
विमुच्यते विमुक्तश्च ज्ञानादज्ञानमोहितः ३४
ततो न म्रियते दुःखी न रोगी न च बन्धवान् ।
न पापैर्युज्यते योगी नरके न विपच्यते ।।३५

मैं परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप जिह्वा और घ्राण से रहित तथा प्राण एवं अपान से भी वर्जित हूँ ।।२६।। मैं ब्रह्म हूं और ज्योतिःस्वरूप वाला हूँ तथा व्यान-उदान एवं अज्ञान से परिवर्जित हूं ।३०।। उस समय में ऐसा ही ध्यान करना चाहिए कि मैं नित्य शुद्ध एवं बुद्ध तथा अद्वय आनन्द स्वरूप हूँ और मैं ज्योति रूप परब्रह्म ज्ञान के स्वरूप वाला हूँ जो विमुक्ति के योग्य पात्र हूँ । मैं परब्रह्म ज्योति के रूप वाला देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से वर्जित हूँ और परम पद को प्राप्त होने वाला हूँ ।।३१-३२।। सूतजी ने कहा—यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि आठ अंगों वाला यह योग हे शौनक ! मैंने तुम्हारे सामने भली-भाँति वर्णन कर दिया है, यह मुक्ति के प्रदान करने वाला है । प्राकृत बन्धन नित्य तथा नैमित्तिक लय को प्राप्त कर संसार में उत्पन्न होते हैं । एक परमात्मा को प्राप्त करके यह अज्ञान से मोहित जीवात्मा ज्ञान से अज्ञान-विमुक्त होकर विमुक्ति प्राप्त किया करता है ।।३३-३४।। अतएव योगी न मरता है, न दुःखित होता है, न रोगयुक्त होता है तथा न बान्धवों को पापों से युक्त किया करता है और न नरक में ही विपच्यमान होता है ।।३५।।

गर्भवासे स नो दुःखी स स्यान्नारायणोऽव्ययः ।
भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो भगवान्भुक्तिमुक्तिदः ।।३६
ध्यानेन पूजया जप्यैः सम्यक्स्तोत्रैर्यतव्रतैः ।
यज्ञैर्दानैश्चित्तशुद्धिस्तयग्रा ज्ञानञ्च लभ्यते ।।३७

प्रणवादिकमन्त्रैश्च जप्यैर्मुक्तिं गया द्विजाः ।
इन्द्रोऽपि परमं स्थानं गन्धर्वाप्सरसो वराः ॥३८
प्राप्ता देवाश्च देवत्व मुनित्वं मुनयो गताः ।
गन्धर्वत्वञ्च गन्धर्वा राजत्वञ्च नृपादयः ॥३९

योगी पुरुष कभी अपनी माता के गर्भवास में दुःख नहीं भोगता । उसे तो अव्यय भगवान् नारायण प्राप्त हो जाते हैं जो अनन्य भक्ति के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं जो भुक्ति-मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं ॥३६॥ ध्यान, पूजा, जाप, स्तोत्र, पाठ, यतव्रत, यज्ञ, दान इनके द्वारा चित्त की शुद्धि होती है और भक्ति के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है ॥३७॥ द्विजगण प्रणव आदि के मन्त्र जपों के द्वारा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं । इन्द्र ने भी परम पद प्राप्त किया है तथा परम श्रेष्ठ गन्धर्व एवं अप्सरायें प्राप्त की हैं । देवगण ने इसी के बल से देवत्व की प्राप्ति की है एवं मुनियों ने मुनित्व को, गन्धर्वों ने गन्धर्वत्व तथा नृपगण ने राजत्व को प्राप्त किया है ॥३८-३९॥

१२१–विष्णु भक्ति कीर्त्तन

विष्णुभक्ति प्रवक्ष्यामि यया सर्वमवाप्यते ।
यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत्तथा नान्येन केनचित् ॥१
महतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसन्ततेः ।
जीवितस्य फलं स्वादु नियतिस्मरणं हरेः ॥२
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसी ।
ते भक्त्या लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्त्तने ॥३
मुञ्चन्त्यश्रूणि संहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहाः ।
जगद्धातुर्महेशस्य ज्ञानदं चरणद्वयम् ॥४
इह नित्यक्रियाः कुर्युः स्निग्धा ये वैष्णवास्तु ते ।
ब्रह्माक्षरं न सृण्वन्वै तथा भगवतेरितम् ॥५
प्रणामपूर्वकं भक्त्या यो वदेद्वैष्णवो हि सः ।
तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजयंश्चानुमोदनम् ॥६

तत्कथा श्रवणे प्रीतिः श्रवणां सफलं भवेत् ।
येन सर्वात्मना विष्णौ भक्तया भावो निवेशितः ।।७
विश्वेश्वरकृमाद्विप्रान्महाभागवतो हि सः ।
स्वयमभ्यर्चनञ्चैव यो विष्णुश्चोपजीवति ।।८

श्री सूतजी ने कहा— अब हम भगवान् विष्णु की भक्ति के विषय में वर्णन करते हैं जिसके द्वारा सभी कुछ प्राप्त किया जाया करता है। भगवान् हरि जितने भक्त के द्वारा संतुष्ट हुआ करते हैं वैसे अन्य किसी से भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न नहीं होते हैं ।।१।। निरन्तर नियत रूप श्री हरि का स्मरण करना महान् श्रेय का मूल– पुण्य सन्तति का प्रसव और जीवन का स्वाद युक्त फल होता हैं ।।२।। अतएव बुध पुरुषों के द्वारा भक्ति के साधनों से सम्पन्न सेवा बतलाई गई है। वे भक्त लोग समस्त लोकों के स्वामी भगवान् के नाम तथा कर्मों के कीर्त्तन में अपने आँसुओं का भावावेश में मग्न होकर त्याग किया करते हैं। गुणगान करने में तथा नाम–संकीर्त्तन में भगवान के भक्तों का नहुत अधिक हर्षोद्गम होता है और उसमें उस समय उनका शरीर पुलकायमान हो जाया करता है। जगती तल के धाता महेश के दोनों चरण ज्ञान के प्रदान करने वाले हैं ।।३-४।। जो परम स्निग्ध विष्णु के भक्त हैं वे ब्रह्माक्षर का श्रवण न करते हुए यहाँ इसी प्रकार से नित्य क्रिया करते हैं जैसा कि भगवान् के द्वारा कहा गया है ।।५।। जो प्रणाम पूर्वक बोलता है वही विष्णु का भक्त वैष्णव है। जो इस तरह से पूजन किया करता है उनका भगवान् अनुमोदन करते हैं और उन भक्तों पर भगवान् का परम वात्सल्य होता है ।।६।। भगवत्कथा के श्रवण करने में जो पूर्णतया प्रीति होती है तो वह श्रवण करना सफल हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि प्रेम के बिना भगवत्कथा के केवल सुन लेने मात्र से वह फल नहीं मिलता है जोकि वास्तव में उससे मिलना चाहिए। जिसने सर्वात्म स्वरूप से भक्ति-भाव पूर्वक भगवान् विष्णु में अपना भाव निवेशित कर दिया है वह विश्वेश्वर कृत विप्र से महाभागवत् होता जो स्वयं अभ्यर्चन करके विष्णु को उपजीवित किया करता है ।।७-८।।

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्तते ।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम् ॥६
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः ।
पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यदृच्छया ॥१०
दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः ॥११
मन्त्रयाजिसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः ।
सर्ववेदान्तवित्कोटया विष्णुभक्तो विदिष्यते ॥१२
एकान्तिनः स्ववपुषा गच्छन्ति परमं पदम् ।
एकान्तेन समो विष्णुस्तमादेषां परायणः ॥१३
यस्मादेकान्तिनः प्रोक्तास्तद्भागवतचेतसः ।
प्रियाणामिपि सर्वेषां देवदेवस्य सुप्रियः ॥१४

भगवान् की भक्ति आठ प्रकार की है जिसमें म्लेचछ भी भाग लिया करता है अर्थात् भक्ति करने वाला म्लेचछ भी विप्रों का शिरोमणि—मुनि और श्रीमान् है तथा परम गति को प्राप्त करता है ॥६॥ उसको जो भी कुछ दिया जाता है वह ग्राह्य होता है अथवा उससे भी ग्रहण करने के योग्य सभी कुछ हुआ करता है । चाहे वह चाण्डाल ही क्यों न हो यदि भगवान् का भक्त है तो वह यदृच्छा से पवित्र कर दिया करता है क्योंकि उसमें भगवान् की भक्ति की विशेषता होती है ॥१०॥ जो भगवत्प्रपन्न है उस पर दया करो । जो 'मैं तेरा ही हूं'—ऐसा बोलता है उन समस्त प्राणियों को भगवान् अभय प्रदान करते हैं—ऐसा हरि का व्रत है ॥११॥ सहस्रों मन्त्रों द्वारा यजन करने वालों से और जो सम्पूर्ण वेदान्त के पारगामी विद्वान् हैं उनसे तथा समस्त वेदान्त के ज्ञाता से विष्णु भक्त करोड़ गुना विशिष्ट होता है ॥१२॥ जो एकान्त में रहते हैं वे अपने ही शरीर से परमपद को जाया करते हैं । एकान्त के समान विष्णु होते हैं इसलिए एकान्त निवास में परायण होना चाहिए ॥१३॥ जो एकान्त में रहने वाले हैं वे भगवान् में चित्त को संलग्न रखने वाले हुआ करते हैं । वे लोग जो नितान्त एकान्त निवास करके भगवद्भजन—स्मरण और

नाम—संकीर्त्तन किया करते हैं वे सभी के प्रिय होकर भी देवों के देव भगवान् विष्णु के तो अत्यन्त ही सुप्रिय हुआ करते हैं ।।१४।।

आपत्स्वपि सदा यस्य भक्तिरव्यभिचारिणी ।
या प्रीतिरधिका विष्णौ विषयेष्वनपायिनी ।।१५
विष्णुं संस्मरतः सा मे हृदयान्नोपसर्पति ।
दृढ़भक्तोऽपि वेदादिसर्वशास्त्राथपारग. ।।१६
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्तं विद्यात् पुरुषाधमम् ।
नाधीतवेदशास्त्रोऽपि न कृतोऽध्वरसम्भवः ।
यो भक्ति वहते विष्णौ तेन सर्वं कृतं भवेत् ।।१७
यज्वनः क्रतुमुख्यानां वेदानां पारगा अपि ।
न तां यान्ति गतिं भक्ता यां यान्ति मुनिसत्तमाः ।।१८
यः कश्चिद् वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी ।
पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः ।।१९
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररतास्तथा ।
येऽपि यान्ति परं स्थानं नारायणपरायणाः ।।२०
दृढ़ा जनार्दने भक्तिर्यदैवाव्यभिचारिणी ।
तदा कियत् स्वर्गसुखं सैव निर्वाण हेतुकी ।।२१

जिस की आपत्तियों के समयों में भी अव्यभिचारिणी भक्ति हुआ करती है और जो प्रीति भगवान् में अधिक होती है वह विषयों में अनपायिनी होती है। जो भगवान् को छोड़कर कभी अन्यत्र चित्त की वृत्ति नहीं जाती है वही अव्यभिचारिणी भक्ति कहलाती है। विष्णु का संस्मरण करने वाले की यह मेरी भक्ति ऐसी ही होती है कि कभी भी हृदय से अन्यत्र कहीं भी नहीं जाया करती है। जो भगवान् विष्णु का परम दृढ़ भक्त होता है वही वेद आदि समस्त शास्त्रों के अर्थों का पारगामी हुआ करता है ।।१५-१६।। जो पुरुष भगवान् सर्वेश्वर में भक्ति नहीं रखने वाला है उसको मनुष्यों में सबसे अधम ही समझना चाहिए। ऐसा पुरुष भले ही वेदशास्त्र आदि सब कुछ पढ़ा हुआ भी क्यों न हो किन्तु उसे कुछ भी वेदादि के पढ़ने वाला नहीं समझना चाहिए। ऐसा पुरुष अध्व-

रादि करने पर भी यज्ञादि के नहीं करने वाले के ही तुल्य होता है। जिसने भगवान् विष्णु में भक्तिकी है उसने सभी कुछ वेदादि का अध्ययन और यज्ञादि का यजन पूरा कर लिया है—यही समझना चाहिए ।।१७।। प्रमुख ऋतुओं के करने वाले और वेदों के पारगामी पुरुष भी उस उत्तम गति की प्राप्ति नहीं किया करते हैं जिस परमोगति को भक्त मुनिगण प्राप्त किया करते हैं ।।१८।। जो कोई वैष्णव अर्थात् भगवान् विष्णु का भक्त लोक में होता है वह चाहे मिथ्याचारी भी हो और किसी भी उचित आश्रम में रहने वाला हो तो भी वह विष्णु का भक्त उदित होने वाले सूर्य की भाँति समस्त लोकों को पवित्र किया करता है ।।१९।। जो परम नृशंस (क्रूर) दुष्ट आत्मा वाले तथा पापों के आचरण करने वाले और नारायण में परायण रहने वाले हों तो वे भी नारायण की भक्ति भाव के प्रभाव के कारण परम पद को प्राप्त किया करते हैं ।।२०।। जब भगवान् जनार्दन में सुदृढ़ भक्ति होती है तो वही भक्ति अव्यभिचारिणी भक्ति कही जाती है। जब ऐसी भगवान् विष्णु में दृढ़ भक्ति हो जाती है तो उसके लिए स्वर्ग का सुख क्या वस्तु है और कितना महत्व रखने वाला है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है। विष्णु की व्यभिचरित न होने वाली एक मात्र भक्ति ही निर्वाण (मोक्ष) पद को प्रदान करने वाली होती है ।।२१।।

भ्राम्यतां तत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे ।
हस्तावलम्बने ह्येको दृष्टस्तुष्टो जनार्दनः ।।२२
न शृणोति गुणान् दिव्यान् देवदेवस्य चक्रिणः ।
स नरो बधिरो ज्ञेयो सर्वधर्मबहिष्कृतः ।।२३
नाम्नि संकीर्त्तिते विष्णोर्यस्य पुंसो न जायते ।
शरीरं पुलकोद्भासि तद्भवेत्कुणपोपमम् ।।२४
यस्मिन् भक्तिर्द्विजश्रेष्ठ मुक्तिरप्यचिराद्भवेत् ।
निविष्टमनसां पुंसां सर्वथा वृजिनक्षयम् ।।२५
स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहरमधुसूदनप्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणांनवैष्णवानाम् ।।२६

अपि चेत् सुदुराचारो भजत मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥२७
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति स गच्छति ।
विप्रेन्द्र प्रतिजानीहि विष्णुभक्तो न नश्यति ॥२८

मनुष्यों के कर्मों के दुर्गम इस संसार में भ्रमण करने वाले पुरुषों को हाथ का अवलम्बन देने में परम प्रसन्न होने वाले भगवान् जब कृपा करते हैं तो अपने हाथ का अवलम्बन प्रदान करके कर्मों के इस गहन संसार से भी उद्धार कर दिया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा नहीं होता ॥२२॥ जो मनुष्य देवों के देव भगवान् विष्णु के दिव्य गुणों का श्रवण नहीं करता उस मनुष्य को समस्त धर्मों से बहिष्कृत होने वाला वधिर ही जानना चाहिए ॥२३॥ भगवान् विष्णु के शुभ नामों के संकीर्त्तन से जिसका शरीर रोमाञ्चित नहीं होता, वही कुणप के समान होता है ॥२४॥ हे द्विजों में श्रेष्ठ ! जिस में विष्णु की सुदृढ़ भक्ति होती है उसकी मुक्ति तुरन्त हो जाती है । भगवान् में निविष्ट मन वाले पुरुषों के सर्वथा पापों का क्षय हो जाता है ॥२५॥ कर्मों के दण्ड की व्यवस्था करने वाले यमराज जिस समय अपने दूतों को पाश हाथ में लेकर जीवात्माओं के लाने के लिये प्रस्तुत होते हुए देखते हैं उस समय वह अपने दूतों के कान में चुपचाप कहा करते हैं कि देखो, तुम उस बात को अच्छी तरह से समझ लेना मैं अन्य सभी मनुष्यों को दण्ड देने का स्वामी हूँ किन्तु जो वैष्णव हैं उन पर मेरा कुछ भी प्रभुत्व नहीं है अतएव तुम लोग उनको बिल्कुल ही छोड़ देना, जो भगवान् मधुसूदन की प्रपत्ति प्राप्त कर चुके हों अर्थात् वैष्णव बन गये हों । तुम विष्णुभक्तों को बिल्कुल भी मत छेड़ना ॥२६॥ वह दुराचरण करने वाला भी है और मेरा फिर अनन्य भक्त बन कर भजन करने लगा है तो उसे भी दुष्ट, दुराचारी न समझ कर पूर्ण साधु ही मानना चाहिए क्योंकि भले ही मेरी भक्ति करने के पूर्व उसने चाहे जितना दुराचरण किया हो किन्तु ज्योंही उसने मेरे भजन का अनन्य भाव से समाश्रय ग्रहण किया है वैसे ही वह

भली भाँति व्यवसित हो गया है ॥२७॥ भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि मेरी अनन्य भाव से भक्ति करने वाला पुरुष शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाया करता है और उसका यह फल होता है कि उसे शाश्वत (सर्वदा रहने वाली) शान्ति प्राप्त हुआ करती है। हे विप्रेन्द्र ! भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि यह प्रतिज्ञा है कि विष्णु का भक्त कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है ॥२८॥

धर्मार्थकामः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्त जगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा हरौ ॥२९
दैवी ह्येषा गुणमयो हरैर्माया दुरत्यया ।
तमेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥३०
किं यज्ञाराधने पुंसां सिध्यते हरिमेधसः ।
भक्त्यैवाराध्यते विष्णुर्नान्यत्तत्रापि कारणम् ॥३१
न दानैर्विविधैर्दत्तैः पुष्पैर्नैवानुलेपनैः ।
तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥३२
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः ॥३३
पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वकष्टलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्तचैकलभ्येपुरुषेपुराणेमुक्तयचैकलाभेक्रियतेप्रयत्नः ॥३४
आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः ।
वैष्णवो मत्कुले जातः स न सन्तारयिष्यति ॥३५

धर्म–अर्थ और काम ये प्राप्त कर लेना उसके लिये क्या बड़ी बात है ? उसके हाथ में तो मुक्ति भी स्थित ही रहा करती है। जिसके हृदय में भगवान् हरि में स्थिर रहने वाली भक्ति होती है जोकि इस समस्त जगतों का मूल है वह मोक्ष प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी बन जाया करता है ॥२९॥ यह हरि की दैवी माया गुणमयी अर्थात् त्रिगुणात्मिका है और बहुत ही दुरत्यय होती है अर्थात् इसको जान लेना और त्याग देना बहुत ही कठिन है। जो लोग उन्हीं भगवान् हरि की शरण ग्रहण किया करते हैं वे ही इस दैवी माया से तर जाया करते हैं अन्यथा इससे

छूटना महान् दुस्तर कार्य है ।।३०।। यज्ञों के यजन द्वारा आराधना करने में पुरुषों को कुछ भी सिद्धि नहीं होती है। जो भगवान् हरि की ही भक्ति किया करते हैं और उनके चरणों में ही अपनी बुद्धि को लगा देते हैं उनका ही कल्याण होता है क्योंकि भगवद्भक्ति ही के द्वारा भगवान् की आराधना की जाया करती है इसके अतिरिक्त उनकी आराधना करने का तथा संतुष्ट करने का अन्य कोई भी कारण नहीं है ।।३१।। बहुत से अतुल दानों के द्वारा– पुष्पों के समर्पण से और अनुलेपनों से भगवान् जनार्दन कभी भी तोष को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं जैसे कि यह महान् आत्मा वाले प्रभु अनन्य भक्ति से प्रसन्न होते हैं ।।३२।। इस संसार रूपी विष वृक्ष के दो फल अमृत के तुल्य हुआ करते हैं उनमें एक तो भगवान् केशव में सुदृष्ट भक्ति है और दूसरा भगवान् के भक्तों के साथ समागम प्राप्त करना है। अन्यथा यह संसार सम्पूर्णतया विषैला एक वृक्ष के ही समान होता है जो सर्वनाश किया करता है भगवद्भक्ति और सन्तों का सत्संग ये दो ही इसमें आकर उत्तम श्रेय के सम्पादक फल प्राप्त किये जा सकते हैं ।।३३।। पत्र, पुष्प, फल और तोय में तथा अष्टक लभ्य तथा सत्पुरुषों में भक्ति के द्वारा प्राप्त करने के योग्य पुराण पुरुष में मुक्ति से एक के लाभ प्रयत्न किया जाता है ।।३४।। जिस कुल में कोई भी भगवान् विष्णु का भक्त वैष्णव उत्पन्न हो जाता है उसके पितृगण बहुत ही प्रसन्न होते हैं और उसके पितामह आदि सब हर्ष से नृत्य किया करते हैं कि हमारे वंश में वैष्णव पैदा हो गया है व हम सबका उद्धार कर देगा ।।३५।।

अज्ञानिनः सुरवरं समधिक्षिपन्तो यत्पापिनोऽपि
शिशुपालसुयोधनाद्याः ।
मुक्तिं गताः स्मरणमात्रविधूतपापाः कः संशयः
परमभक्तिमतां जनानाम् ।।३६
सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि सिद्धो निखिलहृदि
निविष्टं वेत्ति यः सर्वसाक्षी ।
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि त्वभयमरणहीनं
नित्यमानन्दरूपम् ।।३७

निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं अतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः ।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा ।।३८

एवं मयोक्तं परमप्रभावमाद्यन्तहीनस्य परस्य विष्णोः ।
तस्माद्विचिन्त्यःपरमेश्वरोऽसौविमुक्तिमार्गेणनरेणसम्यक् ।।३९

बोधस्वरूपं पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं विमलं विशुद्धम् ।
सञ्चिन्त्यविष्णुंपरमद्वितीयंकस्तत्रयोगी न लयंप्रयाति ।।४०

अज्ञानी पुरुष भी केवल विष्णुभक्ति के प्रभाव से सुरवर के भी ऊपर पहुंच जाते हैं। जो महापापी शिशुपाल और सुयोधन आदि थे वे भी भगवान् के स्मरण मात्र से पापों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त हो गये। जो भगवान् विष्णु की परम भक्ति करने वाले भक्तजन हैं उनके मोक्ष प्राप्त करने में क्या संशय है ? ।।३६।। जो भगवान् का चिन्तन करता है वह समस्त मुनियों में प्रथम है और वह सिद्ध है, जो सबके हृदयों में विराजमान् प्रभु सभी कुछ को जानता है वह सबका साक्षी है उस अज- अमृत-ईश भगवान् वासुदेव को प्रणाम करता हूँ जो भय और मरण से रहित है-नित्य एवं आनन्द स्वरूप हैं ।।३७।। वह समस्त भुवनों का स्वामी है-निरन्तर रहने वाला है-सुप्रसन्न स्वरूप वाला है-अत्यन्त विमल-विशुद्ध और निर्गुण है। वह सुखरूप और सबके उदित करने वाला है उसकी मैं भावरूपी पुष्पों के द्वारा पूजा करता हूं। वह सबका साक्षी-ज्ञान स्वरूप मेरे हृदय में प्रवेश करें ।।३८।। इस प्रकार से आदि एवं अन्त से हीन परात्पद भगवान् विष्णु के परम प्रभाव को मैंने बतला दिया है। अतएव विमुक्ति के मार्ग प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को भली भांति ऐसे परमेश्बर का सदा चिन्तन करना चाहिए ३९।। ज्ञान के स्वरूप वाले- सूर्य के तुल्य तेज एवं वर्ण वाले-विमल-विशुद्ध-पुराण पुरुष-परम एवं अद्वितीय भगवान् का चिन्तन करके कौन-

सा ऐसा योगी है जो लय को प्राप्त नही होता है ? अर्थात् सभी को मोक्ष प्राप्त हो जाया करता है ।।४०।।

इमं स्तवं यः सततं मनुष्यः पठेच्च तद्वत्प्रयतः प्रशान्तः।
स धौतपाप्मावितत‌प्रभावा प्रयाति लोकं विततं मुरारेः ।।४१
यः प्रार्थयत्यर्थमशेषसौख्यं धर्मञ्च कामञ्च तथैव मोक्षम् ।
ससर्वसुत्सृज्यपरंपुराणं प्रयातिविष्णुं शरणं वरेण्यम् ।।४२
विभुं प्रभुं विश्वधरं विशुद्धमशेषसंसारविनाशहेतुम् ।
योवासुदेवंविमलंप्रपन्नःसमोक्षमाप्नोतिविमुक्तसङ्गः ।।४३

इस स्तव को जो मनुष्य पूर्णतया प्रयत्न और शान्त होकर निरन्तर पढ़ता है वह अपने सम्पूर्ण पापों को धो डालने वाला तथा वितत प्रभाव वाला हो जाता है एवं मुरारि के विशद लोक की प्राप्ति किया करता है ।।४१।। जो अत्यन्त एवं सम्पूर्ण सुखों की प्रार्थना करता है तथा धर्म-अर्थ काम और मोक्ष की चाह करता है वह इन सबका त्याग कर परम पुराण—वरेण्य शरण (रक्षक) भगवान् की सन्निधि में प्राप्त हो जाता है ।।४२।। विभु (सर्वत्र व्यापक—प्रभु (करने न करने और अन्यथा करने में समर्थ सबके स्वामी)—विश्व को धारण करने वाले विशुद्ध स्वरूप और इस सम्पूर्ण संसार की रचना के विनाश करने के कारण स्वरूप एवं विमल भगवान् वासुदेव की शरणागति प्राप्त कर लेता है वह सङ्ग से विमुक्त होकर मोक्ष (संसार के जीवन—मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा पाकर भगवान् के स्वरूप में लय हो जाना) को प्राप्त कर लेता है ।।४३।।

१२२—वेदान्त सांख्य सिद्धान्त ब्रह्मज्ञान

वेदान्तसाङ्ख्यसिद्धान्तब्रह्मज्ञानं वदाम्यहम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विष्णुरित्येव चिन्तयन् ।।१
सूर्य्यन्दुव्योम्नि बह्नौ च ज्योतिरेकं त्रिधा स्थितम् ।
यथा सर्पिः शरीरस्थं गवां न कुरुते बलम् ।

निर्गतं कर्मसंयुक्तं दत्तं तासां महाबलम् ॥२
तथा विष्णुः शरीरस्थो न करोति हितं नृणाम् ।
विनाराधनया देवः सर्वगः परमेश्वरः ॥३
आरुरुक्षुमतीनां तु कर्मज्ञानमुदाहृतम् ।
आरूढ़योगवृक्षाणां ज्ञानं त्यागं परं मतम् ॥४
ज्ञातुमिच्छति शब्दादीन्रागद्वेषोऽथ जायते ।
लोभमोहः क्रोध एतैर्युक्तः पापं नरश्चरेत् ॥५
हस्तावुपस्थमुदरं वाक्चतुर्थी चतुष्टयम् ।
एतत्सुसंयतं यस्य स विप्रः कथ्यते बुधः ॥६
परवित्तं न गृह्णाति न हिंसां कुरुते तथा ।
नाक्षक्रीडारतो यस्तु हस्तौ तस्य सुसंयतौ ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब हम आप सब लोगों को वेदान्त और सांख्य दर्शनों के सिद्धान्त बतलाते हैं। मनुष्य को ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि मैं ही परम ज्योतिस्वरूप ब्रह्म एवं विष्णु हूं ॥१॥ सूर्य, चन्द्र व्योम और वह्नि में एक ही तेज है जो तीन प्रकार का होकर स्थित हो रहा है। जैसे घृत दूध में रहते हुए गौओं के शरीर में ही रहा करता है किन्तु गौओं को बल नहीं दिया करता है। शरीर से दुग्ध के रूप में निकल कर और घृत के सच्चे स्वरूप में प्राप्त होकर वही जब गौओं को दिया जाता है तो महान् बल प्रदान करता है ॥२॥ इसी तरह सबके शरीरों में रहने वाला भगवान् विष्णु जो कि अन्तर्यामी स्वरूप से सर्वज्ञ चराचर में विद्यमान है, कोई भी मनुष्य का हित नहीं किया करता है। वह देवदेव सबमें गमन करने वाला अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है तो भी वह परमेश्वर बिना आराधना के किये मानवों की भलाई नहीं करता। जब उस सर्वत्र व्यापक प्रभु की आराधना भक्ति-भाव से अनन्य होकर की जाया करती है तो इस जीवात्मा का पूर्ण कल्याण वह किया करते हैं ॥३॥ जिनकी मति आरुरुक्ष होती है उनके लिये कर्मज्ञान बतलाया गया है और जो योग के वृक्ष पर समारूढ़ हैं उन

मानवों के लिये त्याग और ज्ञान का सबसे परम माना गया है ।४।। जो शब्दादि इन्द्रियों के विषयों को जानना चाहता है अर्थात् विषयों में लिप्त रहता है उसे राग और द्वेष समुत्पन्न हो जाया करते हैं और फिर वह लोभ, मोह तथा क्रोध—इनसे युक्त होकर मनुष्य पाप का आचरण किया करता है ।।५।। मनुष्य की चार इन्द्रियाँ बहुत ही प्रबल हैं—दोनों हाथ, उपस्थ(जननेन्द्रिय), उदर और चौथी वाणी। जिसकी ये चारों सुसंयत होती हैं वही बुध वस्तुतः विप्र कहा जाया करता है ।।६।। जो कभी भी पराये धन को ग्रहण नहीं किया करता है तथा किसी भी समय में हिंसा का कर्म भी नहीं किया करता है और अक्ष—क्रीड़ा अर्थात् जूआ के खेल में रति नहीं रखता है अर्थात् जूआ नहीं खेलता है उस पुरुष के दोनों हाथों को भली-भांति संयत यानी संयम में रहने वाले माने जाते हैं ।।७।।

परस्त्रीवर्जनरतस्तस्योपस्थं सुसंयतम् ।
अलोलुपमिद भुङ्क्ते जठरं तस्य संयतम् ।।८

सत्य हितं मितं ब्रूते यस्माद्वाक्तस्य संयता ।
यस्य संयतान्येतानि तस्य किं तपसाध्वरै। ।।९

भ्रुवोर्मध्ये स्थितां बुद्धिं विषयेषु युनक्ति यः ।
जीवो जाग्रदवस्थायामेवमाहुर्विपश्चितः ।।१०

हृदि स्थितः स तमसा मोहितो न सरत्यपि ।
यदा तस्य कुतो वेति सुषुप्तिरिति कथ्यते ।।११

जाग्रतो तस्य न स्त्री न मोहो न भ्रमस्तथा ।
उत्पद्यते न जानाति शब्दार्थविषयान्वशी ।।१२

इन्द्रियाणि समाहृत्य विषयेभ्यो मनस्तथा ।
बुद्ध्यऽहङ्कारमपि च प्रकृत्या बुद्धिमेव च ।।१३

संयम्य प्रकृतिश्चापि चिच्छक्त्या केवले स्थितः ।
पश्यत्यात्मनि चात्मानमात्मानमुपकारकम् ।।१४

चिद्रूपममृतं शुद्धं निष्क्रियं व्यापकं शिवम् ।
तुरीयायामवस्थायामास्थितोऽसौ न संशयः ।।१५

पराई स्त्री के संयोग से सर्वदा वर्जित है उस पुरुष का उपस्थ सुसंयत होता है । जो लोलुप न होकर शरीर की रक्षा के लिये ही खाता है उसका उदर सुसंयत कहा जाता है ।।८।। जो सदा सत्य, हित और मित बोला करता है उसकी वाणी सुसंयत होती है । जिसकी ये चारों सुसंयत हों उसे यज्ञ-योगादि और तपश्चर्या करने की क्या आवश्यकता है ? ।।९।। जो भ्रूओं के मध्य में स्थित बुद्धि को विषयों में युक्त किया करता है वह जीव जाग्रत् अवस्था में ही होता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ।।१०।। जब हृदय में स्थित होकर वह तम से मोहित होता हुआ कहीं भी नहीं जाता है उस समय में उसकी सुषुप्ति की अवस्था होती है ।।११।। जाग्रत् दशा में भी उसे न स्त्री का ज्ञान रहता है—न कोई मोह ही होता है तथा किसी भी प्रकार का भ्रम भी नहीं होता है । उस दशा में अपने ही वश में ऐसा रहता है कि शब्दार्थ विषयों का भी उसे कुछ ज्ञान नहीं रहा करता है । अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को भी सब ओर से खींचकर बुद्धि से अहंकार को और प्रकृति से बुद्धि को संयत करके एवं अपनी चित् शक्ति के द्वारा प्रकृति को संयमित करके केवल आत्मा में स्थित होकर अपनी आत्मा में उपकार करने वाली आत्मा का दर्शन करता है, वह चिद्रथ, अमृत, शुद्ध, निष्क्रय, व्यापक और शिव स्वरूप वाला है । उस समय यह निःसंदेह तुरीय अवस्था में ही आस्थित होता है ।।१२-१५।।

पुर्य्यष्टकस्य पद्मस्य पत्राण्यष्टौ च तानि हि ।
साम्यावस्था गुणकृता प्रकृतिस्तत्र कर्णिका ।।१६
कर्णिकायां स्थितोदेवो देहे चिद्रूप एव हि ।
पुर्य्यष्टकं परित्यज्य प्रकृतिश्च गुणात्मिकाम् ।
यदा याति तदा जीवो याति मुक्ति न संशयः ।।१७
प्राणायामो जपश्चैव प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
ध्यानं सभाधिरित्येते षड्योगस्य प्रसाधकाः ।।१८

पापक्षये देवतानां प्रीतिरिन्द्रियसंयमः ।
जपध्यानयुतो गर्भे विपरीतस्त्वगर्भकः ॥१९
षट्त्रिंशन्मातृकः श्रेष्टश्चतुर्विंशतिमातृकः ।
मध्यो द्वादशमात्रं तु ओङ्कारं सततं जपेत् ॥२०
वाचके प्रणवे ज्ञाते वाच्य ब्रह्म प्रसीदति ।
ॐनमोविष्णवे ! षष्ठाक्षरश्च जप्तव्योगायत्रीद्वादशाक्षरा ॥२१

अष्ट दल वाले पद्म की पुरी में वे आठ पत्र ही गुणों की की हुई साम्य अवस्था होती है। उसमें प्रकृति ही कर्णिका है ॥१६॥ उसमें कर्णिका देव स्थित हैं और देह चिद्रूप ही है। उस पुर्यष्टक का परित्याग करके जिस समय में गुणात्मिक प्रकृति को प्राप्त करता है उस समय में जीव मुक्ति को प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी संसय नहीं है ॥१७॥ प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये छैं योग के प्रसाधक होते हैं ॥१८॥ पापों के क्षय होने पर देवताओं में प्रीति होती है। यह इन्द्रियों का सयम है। गर्भ में जप और ध्यान से युक्त होता है। अगर्भक इसके विपरीत होता है ॥१९॥ छत्तीस मात्रा वाला श्रेष्ठ होता है—चौबीस मातृक मध्यम होता है और बारह मात्रा वाला तीसरी श्रेणी का होता है। निरन्तर ओंकार का जप करना चाहिए ॥२०॥ ब्रह्म के वाचक प्रणव के ज्ञात हो जाने पर उसका वाच्य ब्रह्म प्रसन्न होता है। "ओं नमो विष्णवे"—इस छै अक्षर वाले मन्त्र का जप करना चाहिए। गायत्री बारह की होती है ॥२१॥

सर्वेषामिन्द्रियाणां तु प्रवृत्तिर्विषयेषु च ।
निवृत्तिर्मनसां तस्यां प्रत्याहारः प्रकीर्त्तितः ॥२२
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः समाहृत्य हितो हि सः ।
सहसा सह बुद्धया च प्रत्याहारेषु संस्थितः ॥२३
प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालकृतो भवेत् ।
यस्तावत्कालपर्य्यन्तं मनो ब्रह्मणि धारयेत् ॥२४
तस्यैव ब्रह्मणा प्रोक्तं ध्यानं द्वादश धारणाः ।
तुष्येत नियतो युक्तः समाधिः सोऽभिधीयते ॥२५

ध्यायन्न चलते यस्य मनोभिर्ध्यायते भृशम् ।
प्राप्तयावधिकृतं कालं यावत्सा धारणा स्मृता ॥२६
ध्येये सक्तं नमो यस्य ध्येयमेवानुपश्यति ।
नान्यं पदार्थं जानाति ध्यानमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥२७
ध्येये मनो निश्चलतां याति ध्येयं विचिन्तयन् ।
यत्तद्ध्यान परं प्रोक्तं मुनिभिर्ध्यानचिन्तकैः ॥२८

समस्त इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति होती हैं उसमें मन और इन्द्रियों की जो निवृत्ति होती है उसी को प्रत्याहार कहा गया है। विषयों से इन्द्रियों तथा मन का प्रत्याहरण अर्थात् निवृत्त कर लेना यानी हटा लेना ही इसका शब्दार्थ होता है ।।२२।। इन्द्रियों को इन्द्रियों के अर्थों से यानी विषयों से समाहरण करके स्थित रहने वाला वह सहसा बुद्धि के साथ प्रत्याहारों में संस्थित होता है ।।२३।। बारह प्राणायामों के द्वारा जितने समय तक वह स्थित रहता है उतने समय तक मन को ब्रह्म में धारण करे ।।२४।। उसी अवस्था को ब्रह्म का ध्यान बताया गया है। बारह धारणा हैं। जब नियत एवं युक्त पुष्टि प्राप्त करता है तो उसको ही समाधि कहा जाता है ।।२५।। इस प्रकार से ब्रह्म का ध्यान करते हुए जिसका मन चलित नहीं होता है और मन के द्वारा खूब अच्छी तरह ध्यान किया करता है। जब तक प्राप्तव्य की अवधि का काल होता है तब तक ध्यान का बना चले जाना ही धारणा कही जाती है ।।२६।। ध्यान करने के योग्य जो लक्ष्य होता है वह ध्येय कहा जाता है, उस ध्येय में जिसका मन सक्त होता है और जो मन केवल ध्येय को ही देखा करता है, उस अपने ध्येय के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं जानता है उसको ही ध्यान कहते हैं ।।२७।। अपने ध्येय का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए जब उस ध्येय में मन निश्चलता अर्थात् स्थिर भाव को प्राप्त हो जाता है तो उस ध्यान को ध्यान के चिन्तन करने वाले मुनियों ने परमोत्तम ध्यान बतलाया है ।।२८।।

ध्येयमेव हि सर्वत्र ध्येयस्तन्मयतां गतः ।
पश्यति द्वैतरहितं समाधिः सोऽभिधीयते ॥२९

मनः सङ्कल्परहितमिन्द्रियार्थान्न चिन्तयन् ।
यस्य ब्रह्मणि संलीन समाधिस्थस्त्वशुच्यसे ॥३०
ध्यायतः परमात्मानमात्मस्थं यस्य योगिनः ।
मनस्तन्मयतां याति समाधिस्थः स कीर्त्तितः ॥३१
चित्तस्य स्थिरता भ्रान्तिर्द्दौर्मनस्यं प्रमादता ।
योगिनां कथिता दोषा योगविघ्नप्रवर्त्तकाः ॥३२
स्थित्यर्थं मनसः सर्वं स्थूलरूपं विचिन्तयेत् ।
तद्व्रतं निश्चलीभूत सूर्य्यस्थं स्थिरतां व्रजेत् ॥३३
न विना परमात्मान किञ्चज्जगति विद्यते ।
विश्वरूपं तमेवेह इति ज्ञात्वा विमुञ्चति ॥३४
ओङ्कारं परमं ब्रह्म ध्यायेदब्जस्थितं विभूम् ।
क्षेत्राक्षेत्रज्ञरहितं जपेन्मन्त्रद्वयान्वितम् ॥३५

सर्वत्र केवल एक मात्र ध्येय ही है, उसके अतिरिक्त अन्य कहीं भी कुछ है ही नहीं, ऐसा ध्यान करते हुए ध्येय तन्मयता की दशा को प्राप्त हो जाता है जिस समय द्वैत से रहित सर्वत्र देखता है अर्थात् ध्येय को छोड़ कर दूसरा कोई नहीं है ऐसा प्रतीत होता है, उसी योग की अन्तिम अवस्था को समाधि कहते हैं ॥२६॥ जब योग के अभ्यासी व्यक्ति का मन संकल्प से रहित हो जाता है और इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन बिल्कुल नहीं करता तथा जिसका मन ब्रह्म में भली-भाँति लीन होता है उसी दशा को समाधिस्थता कहा जाता है ॥३०॥ परमात्मा का ध्यान करने वाले जिस योगी का आत्मा में स्थित मन तन्मय हो जाता है वह पुरुष समाधि में स्थित रहने वाला कहा गया है ॥३१॥ चित्त की अस्थिरता, भ्रान्ति, मन का बुरी ओर जाना-प्रमादता ये योगियों के लिये दोष बताये गये हैं जो कि योगाभ्यास के कार्य में विघ्न करने वाले होते हैं ॥३२॥ मन की स्थिरता के लिये सब स्थूल रूप का विशेषतः चिन्तन करना चाहिए। निश्चली भूत वह व्रत सूर्य में स्थित होकर स्थिरता को प्राप्त होता है ॥३३॥ परमात्मा के बिना इस जगतीतल में कुछ भी नहीं है। उसी विश्वरूप को यहाँ नहीं है—ऐसा जान कर

त्याग करता है ॥३४॥ ओंकार परम ब्रह्म है। उस विभु को पद्म पर स्थित रहने वाला ध्यान करे। क्षेत्र और अक्षेत्रज्ञ से रहित दो मन्त्रों से अन्वित का जप करना चाहिए ॥३५॥

हृदि सञ्चिन्तयेत्पूर्वं प्रधानं तस्य चोपरि।
तमोरजस्तथा सत्त्व मण्डलं त्रितयं क्रमात् ॥३६
कृष्णरक्तसितं तस्मिन्पुरुष जीवसंज्ञितम्।
तस्योपरि गुणैश्वर्य्यमष्टपत्रं सरोरुहम् ॥३७
ज्ञानं तु कर्णिका तत्र विज्ञानं केशरं स्मृतम्।
वैराग्यं नालं तत्कन्दौ वैष्णवो धर्म उत्तमः ॥३८
कर्णिकायां स्थित तत्र जीववन्निश्चलं ततः।
ध्यायेदुरसि संयुक्तमोङ्कारं मुक्तिसाधकम् ॥३९
ध्यायन् यदि त्यजेत्प्राणान्याति ब्रह्मणः सन्निधम्।
हरिं संस्थाप्य देहाब्जे ध्यायन् योगी च भक्तिभाक् ॥४०
आत्मानमात्मना केचित्पश्यन्ति ध्यानचक्षुषा।
सांख्यबुद्धया तथैवान्ये यागेनानेन योगिनः ॥४१
ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं भवबन्धविभेदनम्।
तत्रैकचित्तता योगो मुक्तिदो नात्र संशयः ॥४२

सर्व प्रथम हृदय में प्रधान का भली-भांति चिन्तन करना चाहिए। उसके ऊपर तम, रज तथा सत्त्व के इस त्रितय मण्डल का क्रम से चिन्तन करना चाहिए ॥३६॥ उसमें कृष्ण-रक्त और सित जीव संज्ञा वाले पुरुष का चिन्तन करे। उसके ऊपर गणैश्वर्य्य, आठ पत्रों वाले सरोरुह का चिन्तन करना चाहिए ॥३७॥ उसमें ज्ञान तो कर्णिका है और बिज्ञान उसके केशर बताया गया है। वैराग्य उसका कमल नाल है और उत्तम वैष्णव धर्म उसका कन्द है ॥३८॥ उसमें कर्णिका में स्थित जीव की भाँति निश्चल-मुक्ति का साधक संयुक्त ओंकार का उर:स्थल में ध्यान करना चाहिए ॥३९॥ यदि इस प्रकार से ध्यान करते हुए योगाभ्यासी पुरुष प्राणों को त्याग देता है तो वह ब्रह्म की सन्निधि में चला जाता है। इस देह के कमल में हरि को संस्थापित

करके उनका ध्यान करता हुआ योगी भक्ति को प्राप्त करने वाला होता है ।।४०।। कुछ योगी जन आत्मा के द्वारा आत्मा को ध्यान रूपी नेत्र से देखा करते हैं । दूसरे सांख्य की बुद्धि (ज्ञान) से तथा अन्य लोग (योगीजन) इस योग के द्वारा देखते हैं ।।४५।। ब्रह्म के प्रकाश करने वाला ज्ञान भव (सागर) के बन्धनों का विशेष रूप से भेदन करने वाला है । चित्त की एकाग्रता का हो जाना ही योग होता है और मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है इसमें लेशमात्र भी कोई संशय नहीं है ।।४२।।

जितेन्द्रियात्मकरणो ज्ञानदृप्तो हि यो भवेत् ।
स मुक्तः कथ्यते योगी परमात्मान्धवत्स्थितः ।।४३

आसनस्थानविषया न योगस्य प्रसाधकाः ।
विलम्बजनकाः सर्वे विस्तराः परिकीर्त्तिताः ।।४४

शिशुपालः सिद्धिमाप स्मरणाभ्यासगौरवात् ।
योगाभ्यासं प्रकुर्वन्तः पश्यन्त्यात्मानमात्मना ।।४५

सर्वभूतेषु कारुण्यं विद्वेषं विषमेषु च ।
लुप्तशिश्नोदरादिश्च कुर्वन् योगी विमुच्यते ।।४६
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्तु न जानाति नरो यदा ।
काष्ठवद् ब्रह्मसंलीनो योगी मुक्तस्तदा भवेत् ।।४७
सर्ववर्णाः स्त्रियः सर्वाः कृत्वा पापानि भस्मसात् ।
ध्यानाग्नि च मेधावी लभन्ते परमां गतिम् ।।४८
मन्थनाद् दृश्यते ह्यग्निस्तद्वद् ध्यानेन वै हरिः ।
ब्रह्मात्मनोर्यदैकत्व स योगश्चोत्तमोत्तमः ।।४९
बाह्यरूपैर्न मुक्तिस्तु चान्तस्थैः स्याद्यमादिभिः ।
साङ्ख्यज्ञानेन योगेन वेदान्तश्रवणेन च ।।५०
प्रत्यक्षतात्मनो या हि सा मुक्तिरभिधीयते ।
अनात्मन्यात्मरूपत्वमसतः सत्स्वरूपता ।।५१

इन्द्रियों को जीतकर आत्मकरण ज्ञान दृप्त होता है वह परमात्मान्धवत् स्थित योगी मुक्त कहा है ।।४३।। आसन, स्थान और विषय योग

के प्रसाधक नहीं होते हैं। ये सब विलम्ब के जनक होते हैं और विस्तार ही बताये गये हैं ॥४४॥ स्मरण के अभ्यास के गौरव से शिशुपाल ने सिद्धि को प्राप्त कर लिया था। योगाभ्यास को करते हुए आत्मा के द्वारा आत्मा को देखते हैं ॥४५॥ समस्त भूतों पर करुणा और विषमों में विद्वेष करते हुए शिश्न और उदर आदि को लुप्त करने वाला योगी विमुक्त हो जाता है ॥४६॥ जिस समय में इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों के अर्थों को मनुष्य नहीं जानता और एक काष्ठ की भाँति रहकर ब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय वह योगी मुक्त हो जाता है ॥४७॥ समस्त वर्णों वाले पुरुष और सब स्त्रियाँ पापों को भस्मसात् करके अन्त में परम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥४८॥ यागादि में अरणी आदि के मन्थन करके से अप्रकट अग्नि उत्पन्न होकर दिखलाई दिया करती है उसी भाँति ध्यान के करने से हरि भी प्रकट होकर दिखलाई दिया करते हैं जो कि सर्वत्र विद्यमान रहते हुए भी किसी को ध्यान के पूर्व मालूम नहीं हुआ करते हैं। जो ब्रह्म और आत्मा की एकता होती है वही योग उत्तम से भी उत्तम होता है। योग का शब्दार्थ ही ब्रह्म और आत्मा के एक साथ जुड़ जाने वाला होता है ॥४९॥ बाह्य रूप वाले नहीं, बल्कि अन्तःस्थ यम आदि के द्वारा मुक्ति हुआ करती है। सौख्य दर्शन के ज्ञान से, योग से और वेदान्त दर्शन के श्रवण से आत्मा की जो प्रत्यक्षता होती है वही मुक्ति कहलाती है। उसमें अनात्मा में आत्म-रूपता और असत् की सत्स्वरूपता होती है ॥५०-५१॥

१२३—गीतासार

गीतासारं प्रवक्ष्यामि अर्जुनायोदितं दितं पुरा।
अष्टाङ्गयोगयुक्तात्मा सर्ववेदान्तपारगः ॥१
आत्मलाभः परो नान्य आत्मदेहादिवर्जितः।
रूपादिहीनदेहान्तःकरणत्वाशिलोचनम् ॥२
विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्तोऽहं प्रतीयते।
नाहमात्मा च दुःखादि संसारादिसमन्वयात् ॥३

विधूम इव दीप्तार्चिरादीप्त इव दीप्तिमान् ।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे हृत्सङ्गे आत्मनात्मनि ।।४
क्षोत्रादीनि न पश्यन्ति स्वं स्वमात्मानमात्मना ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च क्षेत्रज्ञस्तानि पश्यति ।।४
यदा प्रकाशते ह्यात्मा पटे दीपो ज्वलन्निव ।
धानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः ।।६
यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च महाभूतानि पञ्चकम् ।।७
मनोबुद्धिरहङ्कारमव्यक्तं पुरुषं तथा ।
प्रसख्याय पराव्याप्तौ विमुक्तो बन्धनैर्भवेत् ।।८

श्री भगवान् ने कहा—अब हम भगवद्गीता का सार तुमको बतलाते हैं जो कि पहिले भगवान् श्रीकृष्ण ने भारत के युद्धस्थल में अर्जुन को बतलाया था। आठ यम-नियम-ध्यान-धारणा आदि अंगों वाले योग से युक्त आत्मा सम्पूर्ण वेदान्त का पारग भी आत्म-लाभ ही पर है तथा आत्म देह आदि वर्जित अन्य नहीं। रूप आदि से हीन देह और अन्तःकरण आदि लोचन हैं ।।१-२।। विज्ञान से रहित प्राण हैं मैं सुषुप्त हूँ—ऐसा प्रतीत होता है। दुःख आदि और संसार आदि के गमन्वय से मैं आत्मा नहीं हूं ।।३।। धूम रहित कीप्त अर्चि की भाँति, दीप्तिमान् आदीप्त की तरह और आकाश में वैद्युत (बिजली से सम्बन्ध रखने वाली) अग्नि के समान हृत्संग आत्मा में आत्मा के द्वारा श्रोत्रादिक आत्मा से अपनी आत्मा को नहीं देखते हैं। सबको जानने वाला, सब कुछ को देखने वाला जो क्षेत्रज्ञ है वह ही उनको देखा करता है ।।४-५।। पट में जलते हुए दीप की भाँति जिस समय में आत्मा प्रकाश किया करता है, पाप कर्मों के क्षय से मनुष्यो को ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ।।६।। जिस तरह से आदर्श (शीशा) तल प्रख्य में आत्मा को देखता है उसी प्रकार से इन्द्रियाँ इन्द्रियों के अर्थों को, पाँच महाभूतों को, मन, बुद्धि, अहंकार को, अव्यक्त और पुरुष को देखता है और पराव्याप्ति में प्रसंख्य के लिये बन्धनों से विमुक्त हो जाता है ।।७-८।।

इन्द्रियग्राममखिलं मनसाभिनिवेश्य च ।
मनश्चैवाप्यहङ्कारे प्रतिष्ठाप्य च पाण्डव ।।६
अहङ्कारं तथा बुद्धौ बुद्धिश्च प्रकृतावपि ।
प्रकृतिं पुरुषे स्थाप्य पुरुषं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रसंख्याय विमुच्यते ।।१०
नवद्वारमिदं गेहं तिसृणां पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स वरः कविः ।।११
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
ज्ञानयज्ञस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।१२
यमश्च नियमः पार्थ आसनं प्राणसंयमः ।
प्रत्याहारस्तथा ध्यानं धारणार्जुन सप्तमी ।
समाधिरिति चाष्टाङ्गो योग उक्तो विमुक्तये ।।१३
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम् ।।१४

हे पाण्डव ! सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को मन से अभिनिवेशित करके और मन को अहंकार में प्रतिष्ठित करके, अहंकार को बुद्धि में और बुद्धि को प्रकृति में तथा प्रकृति को पुरुष में स्थापित करके फिर पुरुष को ब्रह्म में विन्यस्त करना चाहिए। इसके अनन्तर मैं ही परब्रह्म ज्योति स्वरूप हूँ—ऐसा प्रसंख्य करके विमुक्त हो जाता है ।।६-१०।। तीनों का यह नौ द्वारों वाला घर है और पाँच साक्षियों वाला है तथा क्षेत्रज्ञ के द्वारा यह अधिष्ठित है जो विद्वान इस तरह जानता है वह श्रेष्ठ कवि है ।।११।। एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ भी सब ज्ञान यज्ञ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हो सकते हैं ।।१२।। श्री भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और हे पार्थ ! सातवीं धारणा तथा समाधि में आठ अंगों वाला योग होता है जो विमुक्त के लिये बताया गया है ।।१३।। कर्म-मन और वाणी से समस्त भूतों में सर्वदा हिंसा से विराम रखने वाला धर्म होता है और अहिंसा परम सुख हुआ करता है ।।१४।।

विधिना या भवेद्धिंसा सा त्वहिंसा प्रकीर्त्तिता ।
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१५
यच्च द्रव्यापहरणं चौर्य्याद्वाथ बलेन वा ।
स्तेयं तस्यानाचरण अस्तेयं धर्मसाधनम् ॥१६
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्ष्यते ॥१७
द्रव्याणामप्यनादानमापत्स्वपि तथेच्छया ।
अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥१८
द्विधा शौचं मृज्जलाभ्यां बाह्यं भावादथान्तरम् ।
यदृच्छालाभतस्तुष्टिः सन्तोषः सुखमक्षयम् ॥
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्र्यं परमं तपः ।
शरीरशोषणं वापि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥२०
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः ।
सत्त्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥२१

यागादि में विध का अंग जो भी कोई हिंसा बताई गई है वह हिंसा न होकर सदा अहिंसा ही कही गई है । सदा सत्य भाषण करना चाहिए और वह सत्य भी सबको श्रोत्र सुख देने वाला प्रिय हो ऐसा ही बोले । जो सत्य भी अप्रिय हो तो उसे कभी न बोलना चाहिए। ऐसा प्रिय भी कभी न कहे जो मिथ्या है—यह ही सनातन धर्म होता है ॥१५॥ चौर कर्म के द्वारा या बल पूर्वक जो पराये द्रव्य का आहरण करता है वही स्तेय कहा जाता है । उस स्तेय कर्म का न करना ही अस्तेय होता है और अस्तेय का आचरण ही धर्म का एक साधन होता है अर्थात् यह भी धर्म का एक अंग होता है ॥१६॥ दश प्रकार के धर्म के अंगों में एक अस्तेय भी है । कर्म, मन और वाणी से सभी अवस्थाओं में सर्वदा, सर्वत्र जो मैथुन का त्याग कर देता है उसी को ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥१७॥ आपत्ति के समय भी इच्छा से द्रव्यों का जो न लेना है उसी को अपरिग्रह कहते हैं उसको अर्थात् परिग्रह को

प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ॥१८॥ शौच (शुद्धि) दो प्रकार का होता है। बाह्य शौच मिट्टी और जल से होता है तथा आन्तरिक शौच शुद्ध भाव के रखने से होता है। जो कुछ स्वतः ही बिना किसी प्रयत्न के यदृच्छा से प्राप्त हो जावे उसी से सन्तुष्ट हो जाना सन्तोष कहलाता है और यह अक्षय सुख होता है ॥१९॥ मन तथा समस्त इन्द्रियों की जो एकाग्रता होती है यही सबसे श्रेष्ठ परम तप है। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों के द्वारा जो शरीर का शोषण किया जाता है वह भी तपस्या होती है ॥२०॥ बुध लोग द्वारा वेदान्त शत रुद्रीय और प्रणव आदि का जो जाप तथा पठन होता है वह सत्त्व की शुद्धि करने वाला पुरुषों का होता है उसे स्वाध्याय कहते हैं ॥२१॥

स्तुतस्मिरणपूजादिवाङ्मनःकायकर्मभि ।
अनिश्चला हरौ भक्तिरेतदोश्वरचिन्तनम् ॥२२
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा ।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥२३
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु त्वसत्स्विव ।
नियमं प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु पाण्डव ॥२४
मूर्त्तामूर्त्तब्रह्मरूपचिन्तनं ध्यानमुच्यते ।
योगारम्भे मूर्त्तहरिममूर्त्तमपि चिन्तयेत् ॥२५
अग्निमण्डलमध्यस्थो वायुदेवश्चतुर्भुजः ।
शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तः कौस्तुभसंयुतः । २६
वनमाली कौस्तुभेन यतोऽहं ब्रह्मसंज्ञकः ।
धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनोलये ॥२७
अहं ब्रह्मेत्यवस्थान समाधिराभिधीयते ।
अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम् ॥२८
श्रद्धयानन्दश्चैतन्यं लक्षयित्वा स्थितस्य च ।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म अहं ब्रह्मपदार्थयोः ॥२९

भगवान् की स्तुति, प्रभु का स्मरण, परमात्मा का अर्चन आदि वाणी, मन और शारीरिक कर्मों के द्वारा करना तथा हरि में अनिश्चल

भक्ति का करना ही ईश्वर का चिन्तन कहा जाता है ।।२२।। आसनों में स्वस्तिकासन, पद्मासन और अर्द्धासन कहे गये हैं । प्राणायाय का तात्पर्य यह है कि स्वदेहज जो प्राण वायु है उसका आयाम अर्थात् उसका निरोध किया जाता है ।।२३।। असत् विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों का रोकना ही सत्पुरुषों के द्वारा नियम कहा जाता है। विषयों से मन आदि का प्रत्याहरण करने अर्थात् हटाने को ही योग में प्रत्याहार हे पाण्डव ! कहा जाता है ।।२४।। मूर्त्त तथा अमूर्त्त स्वरूप वाले ब्रह्म का जो चिन्तन किया जाता है उसी को ध्यान कहते हैं। योगाभ्यास के आरम्भ काल में हरि के मूर्त्त स्वरूप को तथा उनके अमूर्त्त स्वरूप का भी चिन्तन करना चाहिए ।।२५।। अग्नि-मण्डल के मध्य में स्थित चार भुजाओं वाले वायुदेव हैं जो शंख, चक्र, गदा और पद्म इन चारों आयुधों से युक्त हैं और कौस्तुभ से समन्वित हैं ।।२६।। वनमाली और कौस्तुभ से युक्त मैं ही ब्रह्म की संज्ञा वाला हूँ–इस तरह से मनोलय में जो धारण किया जाया करता है इसलिये इसको योग में धारणा कहा जाया करता है ।।२७।। मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार का जो अवस्थान है उसी को समाधि कहा जाता है । 'अहं ब्रह्मास्मि' –अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ इस तरह के वाक्य से और इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्यों को मोक्ष होता है ।।२८।। श्रद्धा से स्थित आनन्द चैतन्य का लक्ष्य करके मैं ब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं ही हूँ और अहं पदार्थों में ब्रह्म ही है ।।२६।।

१२४–प्राणेश्वर मंत्र विधान

प्राणेश्वरं गारुड़श्च शिवोक्त प्रवदाम्यहम् ।
स्थान्यादौ प्रवक्ष्यामि नागदष्टो न जीवति ।।१
चितावल्मीकशैलादौ कूपे च विवरे तरोः ।
दंशे रेखात्रयं यस्य प्रच्छन्नं स न जीवति ।।२
षष्ठयाश्च कर्कटे मेषे मूलाश्लेषामघादिषु ।
कक्षाश्रोणिगले सन्धौ शङ्खकर्णोदरादिषु ।।३

दण्डी शस्त्रधरो भिक्षुर्नग्नादिः कालदूतकः।
वक्त्रे बाहौ च ग्रीवायां पृष्ठे न हि जीवति ।।४
पूर्वं दिनपतिर्भुङ्क्ते अर्द्धयामं ततोऽपरे।
शेषा ग्रहाः प्रतिदिनं षट्संख्यापरिवर्त्तनैः ।।५
नागभोगः क्रमाज्ज्ञेयो रात्रौ बाणविवर्त्तनैः।
शेषोऽर्कः फणिपश्चन्द्रस्तक्षको भौम ईरितः ।।६
कर्कोटाज्ञो गुरुः पद्मो महापद्मश्च भार्गवः।
शङ्खः शनैश्चरो राहु :कुलिकश्चाहयो ग्रहाः ।।७
रात्रौ दिवा सुरगुरोर्भागे स्यादमरान्तकः।
पङ्गोः कालो दिवा राहुः कुलिकेन सह स्थितः।
यामार्द्धार्द्ध संन्धिसंस्थः वेला कालवतीञ्चरेत् ।।८

सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के द्वारा कथित प्राणेश्वर गारुड़ को कहता हूँ। सबके आदि में, मैं उन स्थानों के विषय में बतलाता हूँ जहां नाग के द्वारा काटे जाने पर मनुष्य जीवित नहीं रहता ।।१।। चिता अर्थात् श्मशान भूमि, बाल्मीक अर्थात् सर्प के रहने की बाँवी और पर्वत आदि में, कूप में और वृक्ष के विवर अर्थात् खौंतर में दंश करने पर जिसकी प्रच्छन्न तीन रेखाऐं हों वह कभी जीवित नहीं रहता ।।२।। षष्ठी तिथि में, कर्क, मेष, मूल. आश्लेषा और मघा आदि नक्षत्रों में, कक्षा, श्रोणि, गला, सन्धि माँग, शखकर्ण और उदर आदि में दण्डी, शस्त्र धारण करने वाला, भिक्षु और नग्न आदि मुख, बाहु, ग्रीवा और पृष्ठ में दंशन किये जाने पर जीवित नहीं रहता ।।३-४।। पहिले सूर्य्य भोग करता है जिसका समय अर्द्ध प्रहर होता है। इसके उपरान्त शेष ग्रह प्रीति छै की संख्या के परिवर्त्तनों से भोग किया करते हैं ।।५।। बाण के विवर्त्तनों के द्वारा क्रम से नाग भोग जानना चाहिए। शेष तो अर्क (सूर्य) है, फणिप चन्द्रमा है और तक्षक को भौम कहा गया है ।।६।। कर्कोट को बुध तथा पद्म को गुरु और महापद्म को शुक्र, शंख शनैश्चर और कुलिक राहु कहा जाता है। इस रीति से ये अहि ग्रह होते हैं ।।७।। रात्रि-दिन में अमरान्तक सुर गुरु के भाग में होता है।

पंकु का काल दिवस है और राहु कुलिक के साथ स्थित रहता है। याम के अर्द्धार्द्ध सन्धि में संस्थित होता हुआ कालवती वेला का सञ्चरण किया करता है ॥८॥

बाणद्विषड्वह्निवाजियुगभूसेकभागतः ।
दिवा षड्वेदनेत्राद्रिपञ्चत्रिमानुषांशकैः ॥९
पादांगुष्ठे पादपृष्ठे गुल्फे जानुनि लिङ्गके ।
नाभौ हृदि स्तनपुटे कण्ठे नासापुटेऽक्षिणि ।
कर्णयोश्च भ्रुवोः शङ्खे मस्तके प्रतिपत्क्रमात् ॥१०
तिष्ठेच्चन्द्रश्च जीवेन्न पुंसो दक्षिणभागके ।
कायस्य वामभागे तु स्त्रिया वायुवहत्करात् ।
अमवत्त्वत्कृतो मोहो निवर्त्तेत च मर्दनात् ॥११
आत्मनः परमं बीजं हंसाख्यं स्फटिकामलम् ।
ज्ञातव्यं विषपापघ्नं बीजं तस्य चतुर्विधम् ॥१२
बिन्दुपञ्चस्वरयुतमाद्यमुक्तं द्वितीयकम् ।
षष्ठारूढं तृतीयं स्यात्सविसर्गं चतुर्थकम् ॥१३
ॐ कुरु कुन्दे स्वाहा ।
विद्या त्रैलोक्यरक्षार्थं गरुड़ेन धृता पुरा ॥१४
बधेप्सुर्नागनागानां मुखेऽथ प्रणवं न्यसेत् ।
गले कुरु न्यसेद्धीमान् कुन्दे च गुल्फयोः स्मृतः ।
स्वाहा पादयुगे चैव युगहा न्यास ईरितः ॥१५

पाँच, दो, छै, सात, चार और एक भाग से दिन में छै, चार, दो, सात, पाँच, तीन मानुषांशों के द्वारा पैर के अँगूठे से, गुल्फ में, जानु (घुटना) में, लिंग में, नाभि में, हृदय में, स्तन पुट में, नासापुट में, नेत्र में, कानों में, भ्रूओं में, शंख में और मस्तक में प्रतिपदा के क्रम से पुरुष के दक्षिण भाग में चन्द्र स्थित रहता है और वह नहीं जीवित रहता है। स्त्री के शरीर के वाम भाग में तो वायु वह कर से मर्दन करने से अमवत्त्व कृत मोह दूर हो जाया करता है ॥९-११॥ स्फटिक के समान निर्मल हंस नाम वाला आत्मा का परम बीज जान लेना

चाहिए। उसका विष और पाप का हनन करने वाला बीज है और उसके चार प्रकार हैं ॥१२॥ त्रिन्दु पञ्च स्वर से युक्त आद्य और द्वितीय बताया गया है, तृतीय षष्ठारूढ़ होता है तथा चतुर्थ विसर्ग से समन्वित होता है ॥१३॥ "ॐ कुर कुन्दे स्वाहा"—यह मन्त्र विद्या का स्वरूप है। प्राचीन समय में गरुड़ ने इस विद्या को धारण किया था ॥१४॥ नागों के वध करने की इच्छा वाले पुरुष को मुख में प्रणव का न्यास करना चाहिए। धीमान् पुरुष को गले में 'कुरु'—इसका न्यास करना चाहिए। "कुन्दे"—इस पद का न्यास दोनों गुल्फों में बताया है और 'स्वाहा'—इसका न्यास दोनों में युग का हनन करने वाला कहा है ॥१५॥

गृहेऽपि लिखितो यत्र तन्नागाः सन्त्यजन्ति च ।
सहस्रमंत्रं जप्त्वा तु कर्णे सूत्रं धृतं तथा ॥१६
यद्गृहे शर्करा जप्ता क्षिप्ता नागास्त्यजन्ति तम् ।
जप्तलक्षस्य जप्याद्धि सिद्धिः प्राप्ता सुरासुरैः ॥१७
ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा ।
एवञ्चाष्टदले पद्मे दले वर्णयुगं लिखेत् ।
नामैतद्वारिधाराभिः स्नातो दष्टो विषं त्यजेत् ॥१८
ॐ पक्षि स्वाहा ।
अँगुष्ठादि कनिष्ठान्तं करे न्यस्याथ देहके ।
के वक्त्रे हृदि लिङ्गे च पादयोर्गरुड़ः स हि ॥१९
नाक्रामन्ति च तच्छायां स्वप्नेऽपि विषपन्नगाः ।
यस्तु लक्षं जपेच्चास्याः स दृष्ट्वा नाशयेद्विषम् ॥२०
ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा ।
कर्णे जप्ता त्वियं विद्या दष्टकस्य विषं हरेत् ॥२१

जिस घर में यह लिखा रहता है, उस गृह को भी नाग त्याग देते हैं। इसका महान् प्रभाव होता है। इस मन्त्र का एक सहस्र बार जाप करके कान में सूत्र को धारण करे ॥१६॥ जिस घर में इस मन्त्र से शर्करा को अभिमन्त्रित करके उसका प्रक्षेप किया जावे उस घर को नाग स्वयं ही त्याग कर चले जाते हैं। इस मन्त्र का एक लाख जाप

करके सुर और असुरों ने सिद्धि की प्राप्ति की है ।।१७।। दूसने मन्त्र का स्वरूप "ॐ सुवर्ण रेखे कुक्कुट विग्रह रूपिणि स्वाहा" यह है। इस प्रकार से, अष्ट दल वाले पद्म के दल में दो वर्णों को लिखना चाहिए। इस नाम से जल की धाराओं से स्नान कराये जाने पर जिस पुरुष का दर्शन किया गया है उसका विष नष्ट हो जाता है ।।१८।। तीसरे मन्त्र का स्वरूप यह है—"ॐ पक्षि स्वाहा" अँगूठे से कनिष्ठिका पर्यन्त कर में न्यास करके देहक में, के मुख में, हृदय और लिंग में तथा दोनों पदों न्यास करे। वह निश्चय ही गरुड़ है ।।१९।। बड़े-बड़े विषधारी सर्प भी उसकी छाया को स्वप्न में भी कभी आक्रान्त नहीं किया करते हैं। जो पुरुष इस मन्त्र का एक लाख जाप कर लेता है उसमें तो इसके प्रभाव से ऐसी शक्ति समुत्पन्न हो जाया करती है कि वह सर्प दष्ट पुरुष को देख कर ही उसके विष का नाश कर दिया करता है ।।२०।। चतुर्थ मन्त्र का स्वरूप यह है— 'ॐ ह्रीं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा"। इस मन्त्र की विद्या को कान में जाप करके सुना देने पर ही जिसको सर्प ने काटा है उसका विष नष्ट हो जाता है ।।२१।।

अ आ न्यसेत्तुपादाग्रे इ ई गुल्फेऽथ जानुनि ।
उ ऊ ए ऐ कटितटे ओ नाभौ हृदि औ न्यसेत् ।।२२

वक्त्रे अमुत्तमाङ्गे अः न्यसेच्च हंससंयुताः ।
हंसो विषादि च हरेज्जप्तो ध्यातोऽथ पूजितः ।।२३
गरुड़ोऽहमिति ध्यात्वा कुर्य्याद्विषहरीं क्रियाम् ।
हं मन्त्रं गात्रविन्यस्तं विषादिहरमीरितम् ।।२४
न्यस्य हंसं वामकरे'नासामुखनिरोधकृत् ।
मन्त्रो हरेद्दष्टकस्य त्वङ् मांसादिगतं विषम् ।।२५
स वायुना समाकृष्य दष्टानां गरलं हरेत् ।
तनौ न्यसेद्दष्टकस्य नीलकण्ठादि संस्मरेत् ।।२६
पीत प्रत्यङ्गिरामूलं तण्डुलाद्भिर्विषापहम् ।
पुनर्नवाफलिनीनां मूलं चक्रजमीदृशम् ।।२७

मूलं शुक्लबृहत्यास्तु कर्कोटचा गैरिकर्णिकम् ।
आद्भूर्चृष्टं घृतोपेतं लेपोऽयं विषमर्दनः ॥२८

अ और आ इसका न्यास पाद के अग्र भाग में करे तथा इ ई इसका गुल्फ में और इसके अनन्तर जानु (घुटने) में उ ऊ का न्यास करे तथा ए ऐ का कटि तट में, 'ओ' का न्यास नाभि में और औ का न्यास हृदय में करना चाहिए ॥२२॥ हंस से संयुत मुख में और उत्तमाङ्ग में 'अः'-इसका न्यास करें । यह हंस जाप किया हुआ, ध्यान किया हुआ और समर्चित होता हुआ सम्पूर्ण विष आदि का नाश कर दिया करता है । मैं स्वयं ही गरुढ़ हूँ—ऐसा ध्यान करके ही विष के हरण कर देने वाली क्रिया को करना चाहिए । ह मन्त्र को जिस समय में गात्र में विन्यस्त किया जाता है तो वह विष आदि के हरण करने वाली कही जाने वाली विद्या है ॥२३-२४॥ वाम कर में हंस का न्यास करके नाक और मुख का निरोध करने वाला होता है यह मन्त्र दृष्ट किये हुए पुरुष के त्वचा और मांस आदि में प्राप्त होने वाले विष का नाश कर देता है ॥२५॥ वह वायु के द्वारा समाकर्षण करके दृष्ट किये हुए पुरुष के गरल का उसे हरण करना चाहिए । दृष्ट पुरुष के शरीर में न्यास करे और उस समय में नीलकण्ठ आदि का स्मरण करे ॥२६॥ चावलों के जल के साथ प्रत्यङ्गिरा की जड़ का पान करने से विष का अपहरण हो जाता है । फिर पुनर्नवा, फलिनी और चक्रज के मूल का भी इसी प्रकार से पान करे ॥२७॥ शुक्लवृहती का मूल, कर्कोटी के साथ गैरिकार्णिक को जल के साथ घिस कर उसका लेप करने से विष का मर्दन हो जाता है ॥२८॥

विषवृद्धिं न व्रजेच्च उष्णं पिबति यो घृतम् ।
पश्चाङ्गन्तु शिरीषस्य मूलं गृञ्जनजं तथा ॥२९
सर्वाङ्गलेपतश्चापि पावाद्वा विषहृद्भवेत् ।
ॐ ह्रीं गोनसादिविषहृत् ॥३०
हृल्ललाटविसर्गान्तं ध्यातं वश्यादिकृद्भवेत् ।
न्यस्तं योनौ वशेत् कन्यां कुर्य्यान्मदजलाविलाम् ॥३१

जप्त्वा सप्ताष्टसाहस्रं गरुत्मानिव सर्वगः।
कविःस्याच्छ्रुतिधारी च वश्यांस्त्रीं च समाप्नुयात्।
विषहृत्स्यात् कथातत्त्वं मुनेर्व्यासस्य ते ध्रुवम् ॥३२

जो उष्ण घृत का पान करता है उसके विष की वृद्धि नहीं हुआ करती है। शिरीष वृक्ष के पाँचो अंग अर्थात् मूल, फल, पत्ता, पुष्प और छाल और गाजर के मूल को लेकर सब अंग पर लेप करने से अथवा पान करने से विष का हरण होता है। 'ॐ ह्रीं'—यह मन्त्र गोनस आदि के विष का हरण करने वाला है ॥२९-३०॥ हृदय, ललाट और विसर्ग के अन्त पर्य्यन्त ध्यान करने पर वश्य आदि के करने वाला होता है। यदि इसका योनि में न्यास किया जावे तो कन्या को वशीभूत कर देता है और उसे मद जल से आविल अर्थात् उन्मत्त कर देता है ॥३१॥ आठ-सात सहस्र इस मन्त्र का जाप करने से गरुड़ की भाँति सर्वत्र गमन करने वाला हो जाता है, कवि और श्रुतिधारी हो जाया करता है तथा स्त्री को वश्य बनाकर प्राप्त करता है। यह विष का हरण करने वाला व्यास मुनि का कथातत्त्व आपको बतला दिया है ॥३२॥

१२५—सुदर्शन पूजा विधान

सुदर्शनस्य पूजां मे वद शङ्खगदाधर।
ग्रहरोगादिकं सर्वं यत्कृत्वा नाशमेति वै ॥१
सुदर्शनस्य चक्रस्य श्रृणु पूजां वृषध्वज।
स्नानमादौ प्रकुर्वीत पूजयेच्च हरिं ततः। २
मूलमन्त्रेण वै न्यासं मूलमन्त्रं श्रृणुष्व च।
सहस्रारं हुं फट् नमो मन्त्रः प्रणवपूर्वकः।
कथितः सर्वदुष्टानां नाशको मन्त्रभेदकः ॥३
ध्यायेत् सुदर्शनं देवं हृदि पद्मेऽमले शुभे।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं सौम्यं कीरिटिनम् ॥४
आवाह्य मण्डले देव पूर्वोक्तविधिना हर।
पूजयेत् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारैर्महेश्वर ॥५

पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं नरः ।
एव यः कुरुते रुद्र चक्रस्यार्चनमुत्तमम् ।।६
सर्वरोगविनिर्मुक्तो विष्णुलोक समाप्नुयात् ।
एतत्स्तोत्रं जपेत्पश्चात् सर्वव्याधिविनाशनम् ।।७

श्री रुद्र ने कहा—हे शंख और गदा को धारण करने वाले भगवन् ! अब आप कृपाकर सुदर्शन की पूजा बतलाइये जिसके करने से ग्रह रोग आदि समस्त नाश को प्राप्त हो जाते हैं ।।१।। भगवान् श्री हरि ने कहा—हे वृषध्वज ! अब आप सुदर्शन चक्र की पूजा जो मैं आपको बतलाता हूँ उसका आप श्रवण करो । सबसे प्रथम स्नान करना चाहिए फिर हरि की अर्चना करे ।।२।। इसके उपरान्त मूल मन्त्र के द्वारा न्यास करना चाहिए । अब मूल मन्त्र को सुनो । पहिले प्रणव (ओम्) लगा कर 'सहस्रारं हुं फट् नमः' यह मूल मन्त्र है । यह मन्त्रों का भेदन करने वाला समस्त दुष्टों का नाश करने वाला मन्त्र बता दिया गया है ।।३।। इसके अनन्तर परम शुभ विशुद्ध हृदय में सुदर्शन देव का ध्यान करना चाहिए । सुदर्शन का स्वरूप शंख—चक्र–गदा और पद्म को धारण करने वाला किरीट धारी और सौम्य होता है ।।४।। इस स्वरूप का ध्यान करना चाहिए । हे हर ! मण्डल में सुदर्शन देव का आवाहन करके पूर्व में जो बताई विधि से हे महेश्वर ! गन्ध क्षत पुष्प आदि पूजन के आवश्यक उपचारों के द्वारा सुदर्शन का पूजन करना चाहिए ।।५।। इस तरह से पूजन करने के पश्चात् अष्टोत्तर शत मन्त्र का जाप करे । हे रुद्र ! जो इस प्रकार से सुदर्शन चक्र के उत्तम पूजन को करता है वह सब प्रकार के रोगों से विमुक्त होकर अन्त में भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति किया करता है । इसके पीछे सब व्याधियों के विनाश करने वाले सुदर्शन के स्तोत्र का पाठ करना चाहिए ।।६-७।।

नमः सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्चसे ।
ज्वालमालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे ।।८
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने ।
सुचक्राय विचक्राय सर्व मन्त्रविभेदिने ।। ९

प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः ।
पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुरविनाशिने ॥१०
उग्राय चैव सौम्याय चाण्डाय च नमो नमः ।
नमश्चक्षुःस्वरूपाय संसारभयभेदिने ॥११
मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च नमो नमः ।
ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणां पतये नमः ॥१२
कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नमः ।
भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नमः ॥१३
विष्णूरूपाय शान्ताय चायुधानां धराय च ।
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नमः ॥१४
इति स्तोत्रं महापुण्यं चक्रस्य तव कीर्त्तितम् ।
यः पठेत्परया भक्त्या विष्णु लोकं स गच्छति ॥१५

भगवान् सुनर्शन देव के लिये मेरा नमस्कार है। सुदर्शन भगवान् सहस्र सूर्य के समान वर्चस वाले हैं। ज्वालाओं की माला से दीप्ति समन्वित, सहस्र और चक्षु स्वरूप वाले भगवान् के लिये नमस्कार है ॥८॥ समस्त दुष्टों के विनाशक, सम्पूर्ण पातकों को मर्दक, समस्त मन्त्रों को विशेष रूप से भेदक विचक्र एवं सुचक्र के लिये हमारा नमस्कार है ॥९॥ इस जगत् को प्रसून करने वाले, जगत् को धारण करने वाले और जगत् का विध्वंस करने वाले भगवान् सुदर्शन देव के लिये प्रणाम है। लोकों को पालन करने के हेतु अवतीर्ण होने वाले, दुष्ट असुर के विनाश करने वाले, अत्युग्र स्वरूप तथा सौम्य स्वरूप से युक्त और चड रूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है। ग्रहों को अभिभूत करने को ग्रहरूप वाले, ग्रहों के स्वामी श्री सुदर्शन देव के लिये नमस्कार है। चक्षु के स्वप्न वाले और संसार के भय को भेदन करने वाले देव के लिये नमस्कार है ॥१०-१२॥ माया के पञ्जर को भेदन करने वाले और शिव स्वरूप वाले देव को नमस्कार है। काल रूप, मृत्यु, भीम स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है अपने भक्तों पर कृपा करने वाले भक्तों की रक्षा करने वाले देव को बारम्बार नमस्कार है ॥१३॥ विष्णु

के सदृश स्वरूप वाले—परम शान्त, आयुधों के धारण करने वाले, विष्णु के शस्त्र स्वरूप सुदर्शन चक्र भगवान् को पुनः पुनः नमस्कार है ।।१४।। यही सुदर्शन चक्र का महा स्तोत्र है जिसे आपके समक्ष बता दिया है । जो इसे नित्य परम भक्ति भाव से पढ़ता है वह विष्णुलोक को जाता है ।।१५।।

१२६–हयग्रीव पूजा विधान

पुनर्देवार्चनं ब्रूहि हृषीकेश गदाधर ।
श्रृण्वतो नास्ति तृप्तिर्मे गदतस्तव पूजनम् ।।१

हयग्रीवस्य देवस्य पूजनं कथयामि ते ।
तच्छृणुष्व जगन्नाथो येन विष्णुः प्रतुष्यति ।।२

मूलमन्त्रं महादेव हयग्रीवस्य वाचकम् ।
प्रवक्ष्यामि परं पुण्यं तदादौ श्रृणु शङ्कर ।।३

ॐ ह्रौ क्ष्रौं शिरसे नमः इति प्रणवसंयुतः ।
अयं नवाक्षरो मन्त्रः सर्वविद्याप्रदायकः ।।४

अस्याङ्गानि महादेव तान् श्रृणुष्व वृषध्वज ।
ॐ क्ष्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहायुक्तं शिरः
प्रोक्तं क्ष्रूं वषट् तथा ।।५
ओंकारयुक्ता देवस्य शिखा ज्ञेया वृषध्वज ।
ॐक्ष्रैं कवचाय हुं वै कवचं परिकीर्त्तितम् ।।६
ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं देवस्य कीर्त्तितम् ।
ॐ हः अस्त्राय फट् अस्त्रं देवस्य कीर्त्तितम् ।।७

श्रीरुद्रदेव ने कहा—हे हृषीकेश ! गदाधर ! आप पुनः किसी देव के अर्चन के विषय में बतलाइये । मुझे अभी पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है यद्यपि आपने सुदर्शन के पूजन करने का विधान कृपा करके मुझे बतला दिया है ।।१।। श्रीहरि ने कहा—अब हम आपको हयग्रीव के पूजन को बतलाते हैं, आप सुनें । इससे जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु

परम प्रसन्न होते हैं ।।२।। हे महादेव ! मूल मन्त्र ही हयग्रीव का वाचक है । मैं उसे बतलाता हूँ । यह परम पुण्यमय है । हे शंकर ! सबसे आरम्भ में इसका ही आप श्रवण करें ।।३।। प्रणव (ओम) से युक्त अर्थात् आदि में 'ॐ'—यह लगा कर "ह्रौं क्ष्रौं शिरसे नमः" यह नौ अक्षर वाला मन्त्र है जो कि समस्त विद्याओं के प्रदान करने वाला है ।।४।। हे महादेव ! हे वृषध्वज ! इस मन्त्र के अंग बताये जाते हैं उन्हें सुनो। न्यास इस प्रकार से हैं—ॐ क्ष्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा ॐ क्ष्रूं शिरसे वषट् ।।५।। हे वृषध्वज ! हयग्रीव देव की शिखा ओंकार से युक्त जाननी चाहिए । ॐ क्ष्रूं कवचाय हुम्— यह कचव कहा गया है ।।६।। ॐ क्ष्रौं नेत्र त्रयाय वौषट्—यह देव का नेत्र बताया गया है ॐ हः अस्त्राय फट्—यह देव का अस्त्र कीर्त्तित किया गया है ।।७।।

पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृण ।
आदौस्नात्वा तथाचम्य ततो यागगृहं व्रजेत् ।।८

ततः प्रविश्य विधिवत् कुर्य्याद्वै शोषणादिकम् ।
यं क्षौं रमिति बीजैश्च कठिनीकृत्य लमिति ।।९

अण्डमुत्पाद्य च ततः ओंकारेणैव भेदयेत् ।
अण्डमध्ये हयग्रीवात्मानं परिचिन्तयेत् ।।१०

शङ्खकुन्देन्दुधवलं मृणालरजतप्रभम् ।
शङ्ख चक्र गदां पद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम् ।।११
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालासमन्वितम् ।
सुरक्तं सुकपोलञ्च पीताम्बरधरं विभुम् ।।१२
भावयित्वा महात्मानं सर्वदेवैः समन्वितम् ।
अङ्गमन्त्रैस्ततो न्यासं मूलमन्त्रेण वै तथा ।।१३
ततश्च दर्शयेन्मुद्रां शङ्खपद्मादिकां शुभाम् ।
ध्यायेद् ध्यात्वार्चयेद्विष्णुं मूलमन्त्रेण शङ्कर ।।१४

अब मैं हयग्रीव पूजा का विधान बतलाता हूं उसे श्रवण करो। सब से आदि में स्नान करे, फिर आचमन और इसके उपरान्त यागगृह में

जाना चाहिए ।८। फिर वहाँ प्रवेश करके विधि के साथ शोषण आदि कर्म करे । यं क्ष्रौं रं—इन बीजों से कठिनी करण करके रं इससे अण्ड का समुत्पादन करके फिर ओंकार से ही भेदन करना चाहिए । उस अण्ड के मध्य में हयग्रीव देव का और अपनी आत्मा का चिन्तन करे ।।९-१०।। हयग्रीव देव का स्वरूप ऐसा है जिसका कि ध्यान करना चाहिए । हयग्रीव का वर्ण शंख—कुन्द पुष्प और चन्द्र के सदृश धवल है, मृणाल के पराग के तथा रजत के समान श्वेत है । शंख–चक्र–गदा और पद्म इन चारों आयुधों के धारण करने वाले हैं—चार भुजाओं से संयुक्त हैं ।।११।। किरीट और कुण्डलों को धारण करने वाले हैं तथा वनमाला से भूषित वक्षःस्थल वाले हैं । इनके कपोल रक्त वर्ण वाले हैं तथा पीतांबर को पहिने हुए हैं ऐसे विभु का रूप है ।।१२।। समस्त देवगण से युक्त महान् आत्मा वाले प्रभु हयग्रीव हैं—ऐसा ही उनका ध्यान करना चाहिये । इसके पश्चात् अंग मन्त्रों तथा मूल मन्त्र के द्वारा न्यास करे ।।१३।। इसके अनन्तर शंख पद्म आदि शुभ मुद्राओं को दिखाकर ध्यान करे फिर हे शंकर ! मूल मन्त्र के द्वारा विष्णु का समर्चन करना चाहिये ।।१४।।

ततश्चावाहयेद्रुद्र देवता आसनस्य याः ।
ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छत च देवताः ।।१५

आवाह्य मण्डले तास्तु पूजयेत्स्वस्तिकादिके ।
द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्या वृषध्वज ।।१६

समस्तपरिवाराय अच्युताय नम इति ।
अस्य मध्येऽर्चनं कार्यं द्वारे गङ्गाञ्च पूजयेत् ।।१७

यमुनाञ्च महादेवीं शङ्खपद्मनिधी तथा ।
गरुडं पूजयेदग्रे मध्ये शक्तिञ्च पूजयेत् ।।१८

आधाराख्या महादेव ततः कूर्मं समर्चयेत् ।
अनन्तं पृथिवीं पश्चाद् धर्मज्ञानौ ततोऽर्चयेत् ।।
वैराग्यमथ चैश्वर्यमाग्नेयादिषु पूजयेत् ।।१९

अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यादींस्तु पूर्वतः।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव मध्यदेशेऽथ पूजयेत् ।।२०
नन्दं नालञ्च पद्मञ्च मध्ये चैव प्रपूजयेत् ।
अर्कसोमाग्निसंज्ञानां मण्डलानां हि पूजनम् ।।
मध्यदेशे प्रकर्त्तव्यमिति रुद्र प्रकीर्त्तितम् ।।२१

इसके अनन्तर जो आसन के देवता हैं उनका आवाहन करना चाहिए ॐ हयग्रीवासन के देवताओ आइये ।।१५।। उन सब देवगणों का आवाहन करके फिर स्वस्तिक आदि मण्डल में उन सबका पूजन करना चाहिए। हे वृषध्वज ! द्वार पर धाता और विधाता का यजन करे ।।१६।। समस्त परिवार वाले भगवान् अच्युत् के लिये नमस्कार है—इस अर्थ वाले मन्त्र के द्वारा इसके मध्य में अर्चन करे और द्वार पर गङ्गा का पूजन करना चाहिए ।।१७।। महादेवी यमुना तथा शङ्ख-पद्म निधि और गरुड़ का आगे पूजन करे और मध्य में शक्ति का पूजन करना चाहिए ।।१८।। हे महादेव ! आधाराह्व्या का यजन कर फिर कूर्म का समर्चन करे । अनन्त—पृथिवी के यजन के अनन्तर धर्म और ज्ञान का अर्चन करना चाहिए । आग्नेयादि दिशाओं में वैराग्य एवं ऐश्वर्य का यजन करे ।।१९।। अधर्म-अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि का पूर्व में यजन करे । इसके उपरान्त सत्त्व-रज और तम का मध्य देश में पूजन करना चाहिए ।।२०।। नन्द—नाल और पद्म को मध्य में प्रपूजित करे । अर्क—सोम और अग्नि संज्ञा वाले मण्डलों का यजन करना चाहिए । हे रुद्र ! इन सबका पूजन मध्य देश में ही करने का विधान बतलाया गया है ।।२१।।

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगे वृषध्वज ।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहाः शक्तयो ह्यमूः ।।२२
पूर्वादिषु च पत्रेषु पूज्याश्च विमलादयः ।
अनुग्रहा कर्णिकायां पूज्या श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ।।२३
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः ।
मन्त्रैरेतैर्महादेव आसनं परिपूजयेत् ।।२४

स्नानगन्धप्रदाऽनेन पुष्पधूपप्रदानतः ।
दीपनैवेद्यदानेन आसनस्यार्चनं शुभम् ॥२५
कर्त्तव्यं विधिनाऽनेन इति हर प्रकीर्त्तितम् ।
ततश्चावाहयेत् देवं हयग्रीवं सुरेश्वरम् ॥२६
वामनासापुटेनैव आगच्छन्तं विचिन्तयेत् ।
आगच्छतः प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥२७
आवाहनं प्रकर्त्तव्यं देवदेवस्य शङ्खिनः ।
आवाह्य मण्डले तस्य न्यासं कुर्यादतन्द्रितः ॥२८

हे वृषध्वज ! विमला—उत्कार्षिणी—ज्ञाना—क्रियायोग में प्राह्वी-सत्या—ईशाना और अनुग्रहा ये शक्तियाँ हैं । पूर्वादि दिशाओं में दलों में इन उपर्युक्त विमला आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिए । जो मनुष्य अपने परम श्रेय प्राप्त करने की कामना रखते हैं उनको अनुग्रह शक्ति का पद्म की कर्णिका में यजन करना चाहिए । हे महादेव ! प्रणव आदि में और नमः—यह अन्त में लगाकर नामों के आगे चतुर्थी विभक्ति जोड़कर इन्हीं मन्त्रों के द्वारा आसन का पूजन करे ॥२२-२३-२४॥ स्नान—गन्ध प्रदान कर पुष्प—धूप प्रदान करे और फिर दीप तथा नैवेद्य के समर्पण के द्वारा आसन का शुभ अर्चन करे ॥२५॥ हे हर ! इसी विधि से पूजन करे —यह सब कीर्तित कर दिया है । इस सबके करने के पश्चात् फिर सुरेश्वर भगवान् हयग्रीव देव का आवाहन करना चाहिए ॥२६॥ वाम नासापुट के द्वारा ही आगमन करने वाले भगवान् का ध्यान करे । हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के प्रयोग के द्वारा आते हुए शंखधारी देवों के देव का आवाहन करना चाहिए । आवाहन करके फिर आनन्दित होते हुए मण्डल में उसका न्यास करे ॥२७-२८॥

न्यासं कृत्वा च तत्रस्थं चिन्तयेत्परमेश्वरम् ।
हयग्रीवं महादेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥२९
इन्द्रादिलोकपालैश्च संयुतं विष्णुमव्ययम् ।
ध्यात्वा प्रदर्शयेन्मुद्राः शङ्खचक्रादिकाः शुभाः ॥३०

पाद्यार्घाचमनीयानि ततो दद्याच्च विष्णवे ।
स्नापयेच्च ततो देवं पद्मनाभमनामयम् ॥३१
देवं संस्थाप्य विधिवद्वस्त्रं दद्याद् वृषध्वज ।
ततो ह्याचमनं दद्यादुपवीतं ततः शुभम् ॥३२
ततश्च मण्डले रुद्रं ध्यायेद्देवं परमेश्वरम् ।
ध्यात्वा पाद्यादिकं भूयो दद्याद्देवाय शंकर ॥३३
दद्याद् भैरवदेवाय मूलमन्त्रेण शंकर ।
ॐ क्षां हृदयाय नमः अनेन हृदयं यजेत् ॥३४
ॐ क्षीं शिरसे नमश्च शिरसः पूजनं भवेत् ।
ॐ क्षूं शिखायै नमश्च शिखामनेन पूजयेत् ॥३५
ॐ क्षैं कवचाय नमः कवचं परिपूजयेत् ।
ॐ क्षौं नेत्राय नमश्च नेत्रञ्चानेन पूजयेत् ॥३६
ॐ क्षः अस्त्राय नमः इति अस्त्रञ्चानेन पूजयेत् ।
हृदयञ्च शिरश्चैव शिखाञ्च कवचं तथा ॥३७
पूर्वादिषु प्रदेशेषु ह्येतास्तु परिपूजयेत् ।
कोणेष्वस्त्रं यजेद्रुद्र नेत्रं मध्ये प्रपूजयेत् ॥३८

वहाँ पर संस्थित देव का न्यास करके महान् देव सुरों के स्वामी एवं सुरासुरों के द्वारा वन्दित परमेश्वर हयग्रीव का ध्यान करे ॥२६॥ भगवान् हयग्रीव इन्द्र आदि लोक पालों से समन्वित एवं अव्यय स्वरूप वाले विष्णु हैं—ऐसा ध्यान करके शंख चक्र आदि परम शुभ मुद्राओं को दिखलावे ॥३०॥ फिर विष्णु के लिए पाद्य-अर्घ्य और आचमनीय समर्पित करे। इसके उपरान्त आभय से रहित पद्म नाभ देव का स्नापन करना चाहिये ॥३१॥ हे वृषध्वज ! इस प्रकार से विधि के सहित देव की संस्थापना करके वस्त्र देवे। फिर आचमन और इसके पश्चात् उपवीत समर्पित करे ॥३२॥ इसके उपरान्त मण्डल में परमेश्वर रुद्र देव का ध्यान करना चाहिए। ध्यान के पश्चात् हे शङ्कर ! फिर देव के लिए पाद्यादिक का समर्पण करे ॥३३॥ हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के द्वारा भैरव देव के लिए देवे। "ॐ क्षां हृदयाय नमः" इस मन्त्र

से हृदय में यजन करे ।।३४।। "ॐ क्षीं शिरसे नमः"—इस से शिर का पूजन होता है।" ॐ क्षूं शिखायै नमः"—इस मन्त्र के द्वारा शिखा का यजन करे ।।३५।। "ॐ क्षैं कवचाय नमः"—इससे कवच को पूजे। "ॐ क्षौं नेत्राय नमः"—इससे नेत्र का पूजन करे ।।३६।। "ॐ क्षः अस्त्राय नमः"—इससे अस्त्र का यजन करे। हृदय, शिर, शिखा, कवच का पूर्व आदि प्रदेशों में परि पूजन करे। हे रुद्र ! कोणों में अस्त्र का और मध्य में नेत्र का पूजन करे ।।३७-३८।।

पूजयेत्परां देवीं लक्ष्मीं लक्ष्मींप्रदां शुभाम् ।
शङ्खं पद्मं तथा चक्रं गदां पूर्वादितोऽर्चयेत् ।।३९
खंगञ्च मुशलं पाशमंकुशं सशरं धनुः ।
पुजयेत् पूर्वतो रुद्र एभिर्मन्त्रैः स्वनामकैः ।।४०
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां तथा पीताम्बरं शुभम् ।
पूजयेत्पूर्वतो रुद्र शंखचक्रगदाधरम् ।।४१
ब्रह्माणं नारदं सिद्धं गुरुं परगुरुं तथा ।
गुरोश्च पादुके तद्वत्परमस्य गुरोस्तथा ।।४२
इन्द्रं सवाहनं चाथ परिवारयुतं तथा ।
अग्नि यमं निर्ऋतिञ्च वरुणं वायुमेव च ।।४३
सोममीशाननागञ्च ब्रह्माणं परिपूजयेत् ।
पूर्वादि चोर्ध्वपर्य्यन्तं पूजयेद् वृषभध्वज ।।४४
वज्रं शक्ति तथा दण्डं खंगं पाशं ध्वजं गदाम् ।
त्रिशूलञ्चक्रपद्मे च आयुधान्यथ पूजयेत् ।।४५
विष्वक्सेनं ततो देवमैशान्यां दिशि पूजयेत् ।
एभिर्मन्त्रैर्नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैर्वृषध्वज ।।४६
पूजा कार्या महादेव ह्यनन्तस्य वृषध्वज ।
देवस्य मूलमन्त्रेण पूजा कार्या वृषध्वज ।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।।४७

लक्ष्मी-प्रदान करने वाली परमशुभा देवी लक्ष्मी का पूजन करे और पूर्वादि में शंख, चक्र, गदा, पद्म का यजन करना चाहिए ।।३९।। हे रुद्र !

खड्ड, मुशल, पाश, अंकुश, शर सहित धनुष इनका अपने नाम वाले इन मन्त्रों से पूर्व में पूजन करे ॥४०॥ श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, शुभ पीताम्बर और शंख,चक्र, गदाधर का पूर्व में पूजन करे ।४१। ब्रह्मा,नारद,सिद्ध, गुरु,परगुरु गुरु तथा परम गुरु की पादुकाऐं,सवाहन इन्द्र जो कि अपने सम्पूर्ण परिवार से समन्वित हो, अग्नि, यम 'निऋ ति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, नाग और ब्रह्मा का पूजन करना चाहिए । हे वृषध्वज ! पूर्व आदि दिशा सें ऊर्ध्व पर्य्यन्त पूजन करे ॥४२-४४॥ वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र, पद्म इन समस्त वरायुधों का यजन करना चाहिए ।।४५।। इसके उपरान्त ऐशानी दिशा में विष्वक्सेन देव का पूजन करे । हे वृषध्वज ! इन मन्त्रों से जिनके आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः'—इसको संयुक्त करके करे । हे महादेव ! भगवान् अनन्त की पूजा करनी चाहिए । देव की मूल मन्त्र के द्वारा ही पूजा करे । पूजा में गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पित करे ।।४६-४७।।

प्रदक्षिणं नमस्कारं जप्यं तस्मै समर्पयेत् ।
स्तुवीत चानया स्तुत्या प्रणवाद्यैर्वृषध्वज ॥४८

ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नमः ।
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमो नमः ।४९

नमः शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नमः ।
सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने ॥५०

सर्व लोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नमः ।
नमश्चेश्वरवन्द्याय शंखचक्रधराय च ॥५१

नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च ।
त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे ।
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नमः ॥५२
इत्येवं संस्तवं कृत्वा देवदेवं विचिन्तयत् ।
हृत्पद्मे विमले रुद्र शंखचक्रगदाधरम् ॥५३

सूर्यकोटिप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम् ।
हयग्रीवं महेशेश परमात्मानमव्ययम् ॥५४
इति ते कथिता पूजा हयग्रीवस्य शङ्कर ।
यः पठेत् परया भक्त्या स गच्छेत् परमं पदम् ॥५५

फिर प्रदक्षिणा और नमस्कार समर्पित करे । हे वृषध्वज ! प्रणवादि के द्वारा इस निम्न कथित स्तुति से देव का स्तवन करे ॥४८॥ ॐ हय के समान शिर वाले के लिये नमस्कार है । विद्या के स्वामी देव के लिये प्रणाम है । विद्या के स्वरूप वाले और विद्या के प्रदान करने वाले देव के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥४६॥ परम शान्त स्वरूप देव को प्रणाम है । त्रिगुणात्मा देव के लिये नमस्कार है । सुर और असुरों का निहनन करने वाले तथा समस्त दुष्टों के समूल विनाश कर देने वाले देव को प्रणाम है । ॥५०॥ सम्पूर्ण लोकों के अधिपति ब्रह्म-स्वरूप देवेश को नमस्कार है । ईश्वर के द्वारा वन्द्यमान और शंख,चक्र के धारण करने वाले देवेश्वर को नमस्कार है । आद्य, दान्त और समस्त जीवों के हित करने वाले, त्रिगुण और गुणों से रहित, ब्रह्मा एवं विष्णु के स्वरूप वाले, सर्वत्र गमन करने वाले, कर्त्ता, हर्त्ता और सुरों के स्वामी देव के लिये पुनः पुनः नमस्कार है ॥५१-५२॥ इस प्रकार स्तवन करके फिर ध्यान करे । हे रुद्र ! मल-रहित विशुद्ध हृदय कमल में शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले देव का चिन्तन करे जो करोड़ों सूर्य्यों के समान प्रदीप्त और सभी अंगों मे परम सुन्दर स्वरूप युक्त हैं जो महान् ईशों के भी ईश हैं तथा नित्य परमात्मा हैं । ऐसा ध्यान करे । हे शङ्कर ! हमने हयग्रीव की पूजा का यह पूरा विधान तुमसे कह दिया है । इसे जो कोई परम भक्ति की भावना से युक्त होकर पढ़ेगा वह निश्चय ही परम पद की प्राप्ति कर लेगा ॥५३-५५॥

१२८—शिवार्चन विधान

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि धर्मकामादिसाधनम् ।
त्रिभिर्मन्त्रैराचामेत्स्वाहान्तैः प्रणवादिकः ॥१

ॐ हां आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय हीं तथा ।
ॐ हूँ शिवतत्त्वाय स्वाहा हृदा स्यात् श्रोत्रवन्दनम् ॥२
भस्मस्नानं तर्पणञ्च ॐ हां यां स्वाहा सर्वमन्त्रका ।
सर्वे देवाः सर्वमुनिर्नमोऽन्तो वौषडन्तकः ।
स्वधान्ताः सर्वपितरः स्वधान्ताश्च पितामहाः ॥३
ॐ हां प्रपितामहेभ्यस्तथा मातामहादयः ।
हां नमः सर्वमातृभ्यस्ततः स्यात्प्राणसंयमः ॥४
आचामं मार्जनञ्चाथो गायत्रीञ्च जपेत्ततः ।
ॐ हां तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्र ।
प्रचोदयात् ॥५
सूर्य्योपस्थापनं कृत्वा सूर्य्यमन्त्रैः प्रपूजयेत् ।
ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः शिवसूर्य्याय नमः ।
ॐ हं खखोल्काय सूर्य्यमूर्त्तये नमः ।
ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः ।
दण्डिने पिंगले त्वतिभूतानि नियमं स्मरेत् ।
अग्न्यादौ विमलेशानमाराध्य परमंसुखम् ॥६
यजेत्पद्माञ्च रां दीप्तां रीं सूक्ष्मां रूं जयाञ्च रें ।
भद्राञ्चरैं विभूतिं रौं विमलां रौममोधिकाम् ॥७
रं विद्युताञ्व पूर्वाद्रौ रो मध्ये रं सर्वतोमुखीम् ।
अर्कासनं सूर्य्यमूर्त्ति ह्रां ह्रूं सः सूर्य्यमर्च्चयेत् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हम अब धर्म कामादि का साधन स्वरूप भगवान् शिव का अर्चन बतलाते हैं । प्रथम आदि में और अन्त में स्वाहा संयुक्त करके तीन मन्त्रों से आचमन करना चाहिए ॥१॥ ॐ हां आत्म तत्त्वाय स्वाहा—ॐ हीं विद्या तत्त्वाय स्वाहा—ॐ हूँ शिव तत्त्वायं स्वाहा,इन मन्त्रों के द्वारा हृदय से श्रोत्र वन्दन करे ।२। ॐ हां यां स्वाहा —ये सभी मन्त्र हैं । इनसे भस्म स्नान और तर्पण करे । वौषट् अन्त में लगाकर तथा नमः—इसे संयुक्त करके समस्त देवगण, सब मुनिगण को

नमस्कार करना चाहिए । समस्त पितरों को स्वाधा अन्त में लगाकर तथा पितामहों को भी स्वधा अन्त में लगाकर नमस्कार करना चाहिए ।।३।। ॐ हां प्रपिता महेभ्यः–इस मन्त्र से तथा इसी प्रकार मातामहादिक को हां नमः' इस मन्त्र से सब माताओं के लिए प्रणाम करे । इसके अनन्तर प्राणों का संयम करना चाहिए ।।४।। आचमन, मार्जन, और इसके अन तर गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए । वह गायत्री मन्त्र निम्नलिखत है –"ॐ हां तन्महेशाय विघ्न हे वाग्नि शुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्रःप्रचोदयात्" यह गायत्री का स्वरूप है ।।५।। फिर सूर्य्य का उपस्थान करके सूर्य्य मन्त्रों के द्वारा पूजन करना चाहिए । वे मन्त्र ये हैं –'ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः शिव सूरर्याय नमः । ॐ ह खखोल्काय सूर्य्य मूर्तये नमः । ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः' । इन्हीं मन्त्रों के द्वारा यजन करे । दण्डो के लिये पिङ्गल में अतिभूत नियम का स्मरण करे । अग्नि आदि दिशा में परम सुख स्वरूप विमलेशान की समाराधना करे ।।६।। फिर रां पद्मा का–रीं दीप्ता को–रूं सूक्ष्मा को–रें जपा को–रैं भद्रा को—रों विभूति को—रौं अमेधिका विमला को—रं विद्यूता को पूजित करे और पूर्वाद्रि में इसका यजन करना चाहिए । मध्य में 'रो' और 'रं' को सर्वतोमुखी का यजन करे । अर्क का आसन और सूर्य की मूर्ति का तथा 'ह्रां ह्रूं सः' इससे सूर्य का अर्चन करना चाहिए ।।७-८।।

ॐ आं हृदयर्काय च शिरःशिखाय च भूर्भुवः स्वरोम् ।।९
ज्वालिनीं हूँ कवचस्य चास्त्रं राज्ञोञ्च दीक्षिताम् ।।
यजेत्सूर्य्यं हृदा सर्वान्सों सोम मञ्च मंगलम् ।।१०
बं बुधं बृं बृहस्पतिं भं भार्गवं शं शनैश्चरम् ।
रं राहुं कं यजेत् केतुं ॐ तेजश्चण्डमर्च्चयेत् ।।११
सूर्य्यमभ्यर्च्य चाचम्य कनिष्ठातोऽङ्गकान्न्यसेत् ।
हां हीं शिरो हूँ शिखा हैं वर्म्म हौं च नेत्रकम् ।
होऽस्त्रं शक्तिस्थितिं कृत्वा भूतशुद्धिं पुनर्न्यसेत् ।।१२
अर्घ्यपात्रं ततः कृत्वा तदद्भिः प्रोक्षयेद् यजेत् ।
आत्मानं पद्मसंस्थञ्च हौं शिवाय ततो बहिः ।।१३

द्वारे नन्दिमहाकालौ गङ्गा च यमुनाऽथ गीः ।
श्रीवत्सं वास्त्वधिपतिं ब्रह्माणञ्च गणं गुरुम् ॥१४
शक्त्यनन्तौ यजेन्मध्ये पूर्वादौ धर्मकादिकम् ।
अधर्माद्यञ्च वह्नयादौ मध्ये पद्मस्य कर्णिके ।
वामा ज्येष्ठा च पूर्वादौ रौद्री काली शिवा सिता ॥१५

"ॐ हृदयार्काय च शिरः शिखाय च भूर्भुवः स्वरोम्"—यह मन्त्र का स्वरूप है । ज्वालिनीं हूँ–कवच का और दीक्षितां राज्ञी–अस्त्र यजन करे । सूर्य हृदय से सों सोम का, मं मङ्गल का, बं बुध का, बृं बृहस्पति का, भं भार्गव (शुक्र)का, शं शनैश्चर का, रं राहु का,कं केतु का और ॐ तेजः इस प्रकार से सबका यजन करना चाहिए ॥९-११॥ इस विधि से सूर्य्य की अभ्यर्चना करके आचमन और कनिष्ठा से अङ्गों का न्यास करे । हां हीं शिर का,हूं शिखा का,हैं वर्म का,हौं नेत्र का,हः अस्त्र का न्यास करके शक्ति की स्थिति करे और भूत शुद्धि का न्यास करे ॥१२॥ फिर अर्घ्यपात्र करके उसके जलों से प्रोक्षण तथा यजन करे । पद्म पर संस्थित आत्मा का और फिर बाहिर हौं शिवाय इससे यजन करे । द्वार में नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, श्री वत्स, वास्तुका अधिपति, ब्रह्मा, गण, गुरु, शक्ति, अनन्त इन सबका यजन करे । मध्य में पूर्वादि दिशा में धर्मादिका, वह्नि आदि दिशा में अधर्म आदि का, पद्म की कर्णिका के मध्य में वामा, ज्येष्ठा तथा पूर्वा आदि दिशा में काली, शिवा, सिता का यजन करे ॥१३-१५॥

ॐ हौं कलविकरिण्यै बलविकरिणी ततः ।
बलप्रमथिनी सर्वभूतानां दमनी ततः ॥१६
मनोन्मनी यजेदेताः पीठमध्ये शिवाग्रतः ।
शिवासनसहामूर्ति मूर्तिमध्ये शिवाय च ॥१७
आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानं निरोधनम् ।
सकलीकरणं मुद्रादर्शनं चार्घ्यपाद्यकम् ॥१८
आचामाभ्यङ्गमुद्वर्त्तं स्नानं निर्मञ्छनं चरेत् ।
वस्त्रं विलेपन पुष्पं धूपं दीपं चरुं ददेत् ॥१९

आचामं मुखवासञ्च ताम्बूलं हस्तशोधनम् ।
छत्रचामरोपवीतं परमीकरणं चरेत् ।।२०
रूपकल्पनकैकत्वे जपो जपसमर्पणम् ।
स्तुतिर्नतिर्हृदाद्यैश्च ज्ञेयं नामाङ्गपूजनम् ।।२१
अग्नीश रक्षो वायव्ये मध्ये पूर्वादितन्त्रकम् ।
इन्द्राद्यांश्च यजेच्चण्डं तस्मै निर्माल्यमर्पयेत् ।।२२

"ॐ ह्रीं कलविकरिण्यै"—इस मन्त्र से कलविकरिणी-वल विकरिणी-फिर बल प्रमथिनी और सर्वभूतों की दमनी तथा मनोन्मनी का यजन करे। इनसबका पीठ के मध्य में शिव के ही आगे करे । मूर्ति के मध्य में शिवासन महामूर्त्ति का शिव के लिये आवाहन, स्थापन, सन्निधान, निरोधन,सकलीकरण,मुद्राओं का दर्शन और अर्घ्य तथा पाद्य करे।।१६-१८।।फिर आचमन, अभ्यंग,उद्वर्त्तन, स्नान और निर्मञ्छन करना चाहिये । इसके अनन्तर वस्त्र, विलेपन, पुष्प, धूप दीप और चरु समर्पित करे ।।१९।। आचमन, मुखवास, ताम्बूल, हाथों को शोधन, छत्र, चाभर, उपवीत और परमीकरण करे ।।२०।। रूप की कल्पना के एकत्व में जप करे तथा उस जाप को सर्मपित करे । स्तुति, नमस्कार और हृदाद्य के द्वारा नामाङ्ग पूजन करे ।।२१।। अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, पूर्व आदि तन्त्र से इन्द्रादि का यजन करे अर्थात् समस्त दिक्पालों का अपनी-अपनी दिशा के अनुसार पूजन करना चाहिए । चण्ड का यजन कर उसके लिये निर्माल्य का समर्पण करे ।।२२।।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृत जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव तत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ।।२३
यत्किञ्चित् कर्म हे देव सदा दुष्कृतदुष्कृतम् ः
तन्मे शिवपदस्थस्य क्षयं कुरु यशस्कर ।।२४
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ।।२५
यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृत तव ।
त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव ।।२६

अथान्येन प्रकारेण शिवपूजां वदाम्यहम् ।
गणः सरस्वती नन्दी महाकालोऽथ गङ्गया ।।२७
यमुना तु वास्त्वधिपो द्वारि पूर्वादितस्त्विमे ।
इन्द्राद्याः पूजनीयाश्च तत्त्वानि पृथिवी जलम् । २८
तेजो ह्यायुर्व्योमगन्धो रसरूपे च शब्दकः ।
स्पर्शो वाक् पाणिपादौ च पायूपस्थं श्रुतित्वचौ ।।२९
चक्षुर्जिह्वा घ्राणमनोबुद्धिश्चाहं प्रकृत्यपि ।
पुमान् रागो द्वेषविद्यये कालाकालो नियत्यपि ।।३०
माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिव ।
शक्तिः शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत् ।।३१
यः शिवः स हरिर्ब्रह्मा सोऽहं ब्रह्मास्मि मुक्तितः ।।३२

फिर प्रार्थना करे, आप गुह्यातिगुह्य के रक्षा करने वाले हैं । अब आप मेरे द्वारा किये हुए जाप को अङ्गीकार करें । हे देव ! आपके यहाँ संस्थित होने पर आपके प्रसाद से मुझे सिद्धि हो जावे ।।२३।। हे देव ! जो कुछ भी दुष्कृत से दुष्कृत सदा मैंने किया है, हे यशस्कर ! उसे क्षीण कर दो क्योंकि इस समय में मैं आपके चरणों की शरण में स्थित हूं ।।२४।। भगवान् शिव दाता हैं, शिव ही सबका भोग करने वाले हैं, यह सम्पूर्ण जगत् भी शिव का ही स्वरूप है,शिव की सर्वत्र जय होती है, जो शिव है वही मैं हूँ ।।२५।। जो कुछ मैंने किया और जो भी भविष्य में करूँगा वह आपका ही सुकृत है । आप ही त्राण करने वाले और इस विश्व के नायक हैं । हे शिव ! मेरा अन्य कोई नाथ नहीं है ।।२६।। अब अन्य प्रकार से शिव की पूजा को बतलाते हैं । गण, सरस्वती, नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, वास्त्वधिप इन सबका द्वार पर पूर्वादि दिशा के क्रम से यजन करे । इन्द्र आदि का भी पूजन करना चाहिए । तत्त्वों को बतलाते हैं–पृथ्वी,जल,तेज, वायु, व्योम, गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, वाक् पाणि, पाद, वायु, उपस्य, श्रुति, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति ये चौबीस, तत्त्व हैं । पुमान्, राग-द्वेष, विद्या, कालाकाल, नियति, माया, शुद्ध विद्या,

ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव उनको जानकर मुक्त ज्ञानी शिव होता है। जो शिव है वही हरि और ब्रह्मा है। मुक्ति ॰ प्राप्त होने से वह मैं भी ब्रह्म हूँ ॥२७-३२॥

भूतशुद्धि प्रवक्ष्यामि यया शुद्धः शिवो भवेत्।
हृत्पद्म सद्यो मन्त्रः स्यान्निवृत्तिश्च कला इड़ा ॥३३
पिंगला द्वे च नाड्यौ च प्राणोऽपानश्च मारुतौ।
इन्द्रदेहो ब्रह्मदेहश्चतुरस्रञ्च मण्डलम् ॥३४
वज्रेण लाञ्छितं दीप्तमेकोद्घातगुणाः शराः।
हृत्स्थानसातूणहनं शतकोष्ठप्रविस्तरम् ॥३५
ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ ह्रं विधायै ह्र हः फट्।
चतुरशीतिकोटीनामुच्छ्रयं भूमितन्त्रकम्।
तन्मध्ये भववृक्षञ्च आत्मानञ्च विचिन्तयेत् ॥३६

अब मैं भूतशुद्धि को बतलाता हूँ जिसके द्वारा शुद्ध होकर शिव हो जाता है। हृदय कमल, सद्योमन्त्र निवृत्ति होती है। कलाइड़ा और पिङ्गला ये दो नाड़ी हैं, प्राण और अपान दो मारुत हैं, इन्द्र देह और ब्रह्म देह यह चतुरस्र मण्डल हैं ॥३३॥ वज्र से लाञ्छित और दीप्त है, एकोद्घरात गुण वाले शर हैं, हृत्स्थान सातूणहन शतकोष्ठ विस्तार वाला है "ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ ह्रं विधायै ह्रं हः फट्"—यह मन्त्र का स्वरूप है। चौरासी करोड़ों का उच्छ्रय भूमि तन्त्र है। उसके मध्य में इस संसार के वृक्ष को और अपने आपको चिन्तन करे अर्थात् ध्यान करना चाहिए ॥३५-३६॥

अधोमुखीं ततः पृथ्वीं तत्तत् शुद्धं भवेद् ध्रुवम्।
वामादेवी प्रतिष्ठा च सुषुम्ना धारिका तथा ॥३७
समानोदानवरुणौ देवता विष्णुकारणम्।
उद्घाताश्च गुणं वेदाः श्वेता ध्यानं तथैव च ॥३८
एवं कुर्यात्कण्ठपद्ममर्द्धचन्द्राख्यमण्डलम्।
पद्माङ्कितं द्विशतकं कोटिविस्तीर्णवान्स्मरेत् ॥३९

चतुर्नवत्युच्छ्रयञ्च आत्मानञ्च ह्यधोमुखम् ।
तासु स्थानञ्च पद्मञ्च अघोरो विद्ययान्वितः ॥४०

फिर इस पृथ्वी को नीचे की ओर मुख वाली देखे तो वह सभी शुद्ध हो जाता है। वामा देवी–प्रतिष्ठा, सुषुम्ना तथा धारिका, समानोदान और वरुण दो देवता हैं, विष्णु कारण,उद्घाता और गुण है तथा वेद श्वेत हैं—इसी प्रकार का ध्यान करना चाहिए ॥३७-३८॥ इस प्रकार से कण्ठ पद्म को अर्घ चन्द्राख्य मण्डल ध्यान करे। पद्म से अङ्कित दो सौ करोड़ विस्तार वाला स्मरण करे ॥३९॥ चौरानवे उच्छ्रय वाली और नीचे को ओर मुख वाली आत्मा को ध्यान में करे। उनमें स्थान और पद्म है तथा विद्या से समन्वित अघोर है ॥४०॥

नाभ्योष्ठया हस्तिजिह्वा ध्यानो नागोऽग्निदेवता ।
रुद्रहेतुस्त्रिरुद्घातास्त्रिगुणा रक्तवर्णकम् ॥४१
ज्वालाकृते त्रिकोणञ्च चतुःकोटिशतानि च ।
विस्तीर्णञ्चसमुत्सेधं रुद्रतत्त्वं विचिन्तयेत् ॥४२
ललाटे तु तत्पुरुषः शक्तिर्यः शान्बलं बुधाः ।
कूर्मञ्च कृकरो वायुर्देव ईश्वरकारणम् ॥४३
द्विरुद्घातगुणौ द्वौ च वृषं षट्कोणमण्डलम् ।
विन्द्वङ्कितञ्चाष्टकोटिविस्तीर्णञ्चोच्छ्रयस्तथा ।
चतुर्दशाधिकं कोटि वायुतत्त्वं विचिन्तयेत् ॥४४
द्वादशान्ते सरसिजे शान्त्यतीतास्तथेश्वराः ।
कुहुश्च शङ्खिनी नाड्यो देवदत्तो धनञ्जयः ॥४५
शिखेश नकारणञ्च सदाशिव इति स्मृतः ।
गुणे एकस्तथोद्घातं शुद्धस्फटिकवत् स्मरेत् ॥४६
षोडशं कोटिविस्तीर्णं पञ्चविंशति चोच्छ्रयम् ।
वर्त्तुलं चिन्तयेद्धाम भूतशुद्धिरुदाहृता ॥४७
गणगुरुर्बीजगुरुः शक्त्यनन्तौ च धमकः ।
ज्ञादवैराग्यमैश्वर्यैस्ततः पूर्वादिपत्रके ॥४८

अधोर्द्धवदने द्वे च पद्मकर्णिककेशरम् ।
वामाद्या आत्मविद्या च सदा ध्यायेत् शिवाख्यकम् ।
तत्त्वं शिवासने मूर्तिर्हों हौं विद्यादेहाय नमः ।।४९

नाभि ओष्ठ से युक्त हस्ति जिह्वा, ध्यान, नाग, अग्नि देवता, रुद्रहेतु, तीन उद्घाता, तीन गुण, रक्त वर्ण, ज्वालाकृत में त्रिकोण और चार सौ करोड़ विस्तार वाला समुत्सेध है—ऐसा रुद्र तत्त्व है यह ध्यान करे ।।४१-४२।। ललाट में तत्पुरुष शक्ति है जो बुधों के द्वारा शाब्दल कही जाती है। कूर्म और कृकर नाम वाली वायु है तथा ईश्वर कारण देव है ।।४३।। दो उद्घात गुण हैं और दो वृष हैं, षट्कोण वाला मण्डल है । विन्दु से अंकित आठकरोड़ विस्तार से युक्त उच्छ्रय है । इसप्रकार से चौदह करोड़ अधिक वायु तत्त्व का विचिन्तन करे ।।४४।। द्वादशान्त कमल में शान्ति से भी अतीत ईश्वर हैं । कुहू और शङ्खिनी नाड़ियाँ हैं देवदत्त और धनञ्जय नाम वाले वायु हैं । शिखेशान कारण सदा शिव कहे गये हैं । गुण में एक उद्घात शुद्ध स्फटिक मणि के समान उनका स्मरण करे ।।४५-४६।। सोलह करोड़ विस्तार से युक्त, पच्चीस उच्छ्रय वाला वर्तुलाकार वह धाम है—ऐसा ध्यान करे । यह भूति शुद्धि बतला दी गई ।।४७।। गण गुरु, बीज गुरु, शक्ति अनन्त, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यों सहित पूर्वादि पत्रों में दो अधोवदन और उर्ध्ववदन, पद्म, कर्णिका,केशर, वामा आदि और आत्मविद्या यह सब शिव नाम वाले हैं इनका सदा ध्यान करे । शिवासन पर तत्त्व मूर्त्ति है । उसका "हों हौं विद्यादेहाय नमः"—यह मनन का स्वरूप है ।।४८-४९।।

बद्धपद्मासनासीनः सितः षोडशवर्षकः ।
पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वैर्दशभिश्चैव धारयन् ।।५०
अभयप्रसादशक्ति शूलं खट्वाङ्गमीश्वरः ।
दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजगञ्चाक्षसूत्रकम् ।
डमरुकं नीलोत्पल बीजपूरकमुत्तमम् ।।५१
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्त्रिनेत्रो हि सदाशिवः ।
एवं शिवार्च्चनध्यानी सर्वदा कालवर्जितः ।।५२

इहाहोरात्रिचारेण त्राणि वर्षाणि जीवति ।
दिनद्वयस्य चारेण जीवेद्वर्षद्वयं नरः ॥५३

दिनत्रयस्य चारेण वर्षमेकं स जीवति ।
नाकाले शीतले मृत्युरुष्णे चैव तु कारके ॥५४

सदाशिव का स्वरूप ऐसा है । पद्मासन बाँधकर बैठे हुए, सित वर्ण, सोलह वर्ष की आयु, पाँच मुख और अपने दश करों के अग्र भागों में विभिन्न आयुधों को धारण किये हुए हैं ॥५०॥ दाहिने हाथों में अभयदान, प्रसाद, शक्ति, शूल और खड्वाङ्ग धारण कर रक्खे हैं तथा वाम करों में भुजग, अक्षसूत्र, डमरू, नीलोत्पल और उत्तम बीज पूरक धारण करने वाले हैं ॥५१॥ इच्छा, ज्ञान और क्रिया की शक्ति से सम्पन्न तथा तीन नेत्रों से युक्त हैं । इस प्रकार से शिव की अर्चना और उनका ध्यान करने वाला पुरुष सर्वदा ही काल से वर्जित रहता है ॥५२॥ यहाँ अहोरात्र के चार से मनुष्य तीन वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है । दो दिन के चार से दो वर्ष और तीन दिन के चार से एक वर्ष जीवित रहता है । अकाल, शीतल और उष्णकाल में मृत्यु नहीं होती है ।।५३-५४।।

१२६—शिवजी की पवित्रारोहण विधि

पवित्रारोणं वक्ष्ये शिवस्याशिवनाशनम् ।
आचार्य्यः साधकः कुर्य्यात्पुत्रकः समयो हर ॥१

संवत्सरकृतां पूजां विघ्नेशो हरतेऽन्यथा ।
आषाढ़े श्रावणे माघे कुर्य्याद्भाद्रपदेऽपि वा ॥२

सौवर्णरौप्यताम्रञ्च सूत्रं कार्पासिकं क्रमात् ।
ज्ञेयं कृतादौ संगृह्य कन्यया कर्त्तितञ्च यत् ॥३

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ततः कुर्य्यात्पवित्रकम् ।
ग्रन्थयो वामदेवेन सत्येन क्षालयेच्छिव ॥४

अघोरेण तु संशोध्य बद्धस्तत्पुरुषाद्भवेत् ।
धूपयेदीशमन्त्रेण तन्तुदेवा इति स्मृताः ॥५

ओंकारश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागः शिखिध्वजः।
रविर्विष्णुः शिवः प्रोक्तः क्रमात्तन्तुषु देवता। ॥६
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात्पञ्चाशत्पञ्चविंशतिम्।
रुद्रोऽहन्तमादि विज्ञेयं मानञ्च ग्रन्थयो दश।।७

श्री हरि ने कहा—अब पवित्रारोहण के विषय में बतलाते हैं जो कि शिव के अशिव (अमंगल) को नाश करने वाला है। हे हर! साधना करने वाला आचार्य्य को करना चाहिए। समय पर पुत्र को करना चाहिए ।।१।। अन्यथा विघ्नों के ईश संवत्सर में की हुई पूजा का हरण कर लिया करते हैं। आषाढ़—श्रावण—माघ अथवा भाद्रपद मास में यह कर्म करना चाहिए ।।२।। सुवर्ण से निर्मित, चाँदी का बनाया हुआ, ताम्र से विरचित सूत्र हो या क्रम से कपास के द्वारा इसका निर्माण कराया जावे। कृतादि में संग्रह करके रक्खे और यह किसी कन्या के द्वारा काता हुआ होना चाहिये ।।३।। पहिले इस सूत्र को तीन गुना करे और फिर उसे त्रिगुणित करके पवित्रा की रचना करनी चाहिए। वामदेव मन्त्र से उसकी ग्रन्थियाँ लगावे तथा सत्य के द्वारा हे शिव ! उसका क्षालन करे ।।४।। अघोर मन्त्र से इसका संशोधन करके तत्पुरुष से बद्ध करे। ईश मन्त्र से इसको धूप देवे। ये तन्तु देव कहे गये हैं ।।५।। इन तन्तुओं के ओंकार—चन्द्रमा—वह्नि—ब्रह्मा—नाग—शिखिध्वज-रवि—विष्णु—शिव ये क्रम से देवता होते हैं ।।६।। अष्टोत्तर शत—पचास या पच्चीस बनावे। मैं रुद्र हूँ, उसको आदि जाने तथा उसका मान भी जानना चाहिए, ग्रन्थियाँ दश होती हैं ।।७।।

चतुरंगुलान्तरालाः स्युर्ग्रन्थिनामानि च क्रमात्।
प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता ।।८
जया च विजया रुद्रा अजिता च सदाशिव।
मनोन्मनी सर्वमुखी द्व्यंगुलांगुलतोऽथवा ।।९
रञ्जयेत् कुंकुमाद्यैस्तु कुर्य्याद्गन्धैः पवित्रकम्।
सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे तथेतरे ।।१०

क्षीरादिभिश्च संस्नाप्य लिङ्गं गन्धादिभिर्यजेत्।
दद्याद्गन्धपवित्रन्तु आत्मने ब्रह्मणे हर ॥११
पुष्पं गन्धयुतं दद्यान्मूलेनेशानगोचरे।
पूर्वे च दण्डकाष्ठन्तु उत्तरे चामलकीफलम् ॥१२
मृत्तिकां पश्चिमे दद्याद्दक्षिणे भस्तभूतयः।
नर्ऋते ह्यगुरं दद्याच्छिखामन्त्रेण मन्त्रवित् ॥
वायव्यां सर्षपं दद्यात्कवचेन वृषध्वज ॥१३
गृहं संवेष्ट्य सूत्रेण दद्याद्गन्धपवित्रकम्।
होम कृत्वाऽग्नये दत्त्वा दद्याद्भूतबलिं तथा ।१४।

इन ग्रन्थियों में चार अंगुल का अन्तर रहना चाहिए क्रम से ग्रन्थियों के नाम ये होते हैं—प्रकृति–पौरुषी–वीरा–चौथी अपराजिता—जया-विजया—रुद्रा और अजिता, हे सदा शिव ! मनोन्मनी और सर्वमुखी हैं। अथवा दो-दो अंगुल से इनकी रचना करे ॥८-९॥ इन ग्रन्थियों से कुंकुम आदि के द्वारा रञ्जित करे तथा गन्ध से पवित्र करे। सप्तमी अथवा त्रयोदशी तिथि में, शुक्ल पक्ष में तथा अन्य पक्ष में इनकी रचना करे ॥१०॥ हे हर ! लिंग का दूध आदि से संस्नपन कराके फिर गन्धाक्षतादि से यजन करना चाहिए। आत्मा और ब्रह्म के लिए गन्ध पवित्र को देवे ॥११॥ ईशान दिशा में गन्ध से युक्त पुष्प मूल मन्त्र से समर्पित करे। पूर्व दिशा में दण्ड काष्ठ देवे और उत्तर में आँवले के फल को अर्पित करना चाहिए ॥१२॥ पश्चिम दिशा में मृत्तिका देवे और दक्षिण की भस्म की भूति देवे। नैर्ऋत्य कोण में अगुरु देवे। हे वृष-ध्वज ! मन्त्रों के वेत्ता को शिखा मन्त्र के द्वारा वायव्य कोण में सर्षप (सरसों) देवे और कवच के द्वारा अर्पण करे ॥१३॥ सूत्र से गृह को संवेष्टित करके गन्ध पवित्रा को अर्पण करे। फिर होम करे और अग्नि को देकर भूत बलि देनी चाहिए ॥१४॥

आमन्त्रितोऽसि देवेश गणैः सार्द्धं महेश्वर।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि ह्यत्र सन्निहितो भव ॥१५

निमन्त्रयानेन तिष्ठेत्तु कुर्वन्गीतादिकं निशि ।
मन्त्रितानि पवित्राणि स्थापयेद्देवपार्श्वतः ॥१६
स्नात्वादित्यं चतुर्दश्यां प्राग्रुद्रञ्च प्रपूजयेत् ।
ललाटस्थं विश्वरूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूजयेत् ॥१७
अस्त्रेण प्रोक्षितान्येवं हृदयेनार्चितान्यथ ।
संहितामन्त्रितान्येव धूपतानि समपयेत् ॥ १८
शिवतत्त्वात्मकं चादौ विद्यातत्त्वात्मक ततः ।
आत्मतत्वात्मकं पश्चाद्देवकाख्य ततोऽर्चयेत् ॥
ॐ हौं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हीं विद्यातत्वाय नमः ।
ॐ हां आत्मतत्वाय नमः ॥१९
ॐ हां हीं हूँ क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः ।
ॐ कालात्मना त्वया देव यद् दृष्टं मामके विधौ ॥
कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं हुतं गुप्तञ्च यत्कृतम् ।
सर्वात्मनाऽऽत्मना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया ॥
ॐ पूरय पूरय मखव्रतं तन्नियमेश्वराय सर्वतत्वात्पकाय ।
सवकारणपालिताय ॐ हां हीं हूँ हैं हौं शिवाय नमः ॥२०
पूर्वैरनेन यो दद्यात्पवित्राणां चतुष्टयम् ।
दत्वा वह्नेः पवित्रञ्च गुरवे दक्षिणां दिशेत् ॥
बलिं दत्वा द्विजान्भोज्य चण्डं प्राच्यं विसर्जयेत् ॥२१

इसके उपरान्त यह प्रार्थना करे—हे देवों के ईश ! हे महेश्वर ! आप का अपने गणों के साथ आमन्त्रण किया जाता है मैं आपका कल प्रातःकाल के समय में पूजन करूंगा सो आप यहाँ पर ही सन्निहित होकर विराजमान होवें ॥१५॥ इस भाँति इससे निन्त्रण देकर रात्रि में गीत-गान आदि करते हुए स्थित रहे। पवित्राओं को अभिमन्त्रित करके देव के समीप में ही स्थापित करना चाहिए ॥१६॥ स्नान करके आदित्य का और चतुर्दशी में प्रथम रुद्र का पूजन करना चाहिये। ललाट में संस्थित विश्व रूप का ध्यान करके आत्मा का यजन करे ॥१७॥ अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण किए हुए, हृदय मन्त्र से अर्चित, संहिता

से मन्त्रितों को धूपित करके फिर समर्पित करे ॥१८॥ आदि में शिव तत्त्वात्मक की, फिर विद्या तत्वस्वरूप की और पीछे आत्म तत्त्वात्मक की और इसके अनन्तर देव कारव्य की अर्चना करनी चाहिए। इसके मन्त्र ये हैं—"ऊ ह्रौं शिव तत्त्वाय नमः, ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय नमः, ॐ ह्रां आत्म-तत्त्वाय नमः" ॥१६॥ 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः'. 'ओम् काल स्वरूप आपने हे देव ! मेरे द्वारा सम्पन्न विधि-विधान में जो भी कुछ देखा है। मैंने जो क्लिष्ट किया है या उत्सृष्ट कर दिया है, होम किया है और जो किया हुआ गुप्त रह गया है, हे शम्भो ! सबकी आत्मा, आत्मा से पवित्र के द्वारा आपकी इच्छा से इसे पूर्ण कर देवें। यह मन्त्र कहे— "ॐ पूरय-पूरय मख व्रतं तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय सर्व कारण पालिताय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ हैं ह्रौं शिवाय नमः"। पूर्वों के द्वारा इस मन्त्र से जो चार पवित्रताओं को समर्पित करता है और वह्नि को पवित्रा देकर फिर गुरु चरण की सेवा में दक्षिणा अर्पित करे। फिर बलि देकर द्विजों को भोजन करावे और चण्ड का समर्चन करके विसर्जन कर देवे ॥२०-२१॥

१३०—भगवान् विष्णु का पवित्रारोहण

पवित्रारोपणं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं हरेः।
पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्याः शरणं ययुः ॥
विष्णुश्च तेषां देवानां ध्वजं ग्रैवेयकं ददौ ॥१

एतौ दृष्ट्वा विलंघन्ति दानवानब्रवीद्धरिः।
विष्णूक्ते ह्यब्रवीन्नागो वासुकेरनुजस्तदा ॥२
वृणीत च पवित्राख्यं वरञ्चेदं वृषध्वज।
ग्रैवेयं हरिदत्तं तु तन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥
इत्युक्ते तेन देवांस्तान्नाम्ना च तद्वरं ददौ ॥३
प्रावृट्काले तु ये मर्त्या नार्चिष्यन्ति पवित्रकैः।
तेषां सांवत्सरी पूजा विफला च भविष्यति ॥
तस्मात् सर्वेषु देवेषु पवित्रारोहणं क्रमात् ॥४

प्रतिपत्पौर्णमास्यान्ता यस्य या तिथिरुच्यते ।
द्वादश्यां विष्णवे कार्यं शुक्ले कृष्णेऽथवा हर ॥५
व्यतीपातेऽयने चैव चन्द्रसूर्यग्रहे शिव ।
विष्णवे वृद्धिकार्ये च गुरोरागमने तथा ॥
नित्यं पवित्रमुद्दिष्टं प्रावृट्काले त्ववश्यकम् ॥६
कौषेयं पट्टसूत्रं वा कार्पास क्षौममेव वा ।
कुशसूत्रं द्विजानां स्याद्राज्ञां कौषेयपट्टकम् ॥७
वैश्यानाञ्चौर्णकं क्षौमं शूद्राणां नवबल्कजम् ।
कार्पासं पद्मजञ्चैव सर्वेषां शस्तमीश्वर ॥८

श्री हरि ने कहा—अब हरि के भुक्ति-मुक्ति देने वाले पवित्रारोहण का वर्णन करते हैं । पहिले देवासुर संग्राम में घबड़ा कर ब्रह्मा आदि समस्त देवगण उनकी शरण में गये तब विष्णु ने उन देवगणों को ध्वज और ग्रैवेयक प्रदान किया था ॥१॥ इन दोनों को देख कर विलङ्घन करते हुए दानवों से हरि ने कहा । विष्णु के कहने पर वासुकि का छोटा भाई नाग उस समय बोला ॥२॥ हे वृषध्वज ! यह पवित्रा नाम वाला वर वृणीत कीजिए । हरि के द्वारा प्रदान किया हुआ ग्रैवेय लोक में उसके नाम से प्रसिद्ध को प्राप्त करेगा । उसके द्वारा यह कहने पर उन देवों को नाम से वह वरदान दिया था ॥३॥ वर्षा ऋतु में जो मनुष्य पवित्राओं के द्वारा अर्चन नहीं करेंगे उन मनुष्यों की वार्षिक पूजा विफल हो जायगी । इसलिये समस्त देवों में क्रम से पवित्रारोहण करना परम आवश्यक है ॥४॥ प्रतिपदा के पौर्णमासी तक जिसको भी जो विधि कही जाती है । शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में हे हर ! द्वादशी तिथि में भगवान् विष्णु के लिये यह पवित्रारोहण करना चाहिए ॥५॥ हे शिव ! व्यतीपात-अयन—चन्द्रमा-सूर्य के ग्रहण के अवसर पर—वृद्धि के कार्य्य के समय पर तथा गुरु के आगमन पर भगवान् विष्णु के लिये प्रावृट् काल में पवित्रारोहण नित्य ही आवश्यक रूप से होना चाहिए ॥६॥ पवित्राओं के निर्माण करने के लिये कौषेय, पट्ट सूत्र, कपास का सूत्र या क्षौम सूत्र, होना चाहिए । द्विजों को कुश सूत्र होना चाहिए और राजाओं

को कौषेय या पट्ट सूत्र होता है ।।७।। वैश्य वर्ण वाले मनुष्यों के लिये ऊन का सूत्र क्षौम और शूद्रों के लिये नवीन वल्कल से होने वाला होना चाहिए । हे ईश्वर ! कपास से रचित और पद्मज सूत्र सभी के लिये प्रशस्त कहा गया है ।।८।।

ब्राह्मण्या कर्त्तितं सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम् ।
ओंकारोऽय शिवः सोमो ह्यग्निर्ब्रह्मा फणी रविः ।।९
विघ्नेशो विष्णुरित्येते स्थितास्तन्तुषु देवताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिसूत्रे देवताः स्मृताः।।१०
सोवर्णे राजते तन्त्रे वैणवे मृण्मये न्यसेत् ।
अंगुष्ठेन चतुःषष्टिः श्रेष्ठं मध्यं तदर्द्धतः ।।११
तदर्द्धा तु कनिष्ठा स्यात् सूत्रमष्टोत्तरं शतम् ।
उत्तमं मध्यमञ्चैव कन्यसं पूर्ववत् क्रमात् ।।१२
उत्तमोऽगुष्ठमानेन मध्यमो मध्यमेन तु ।
कन्यसे च कनिष्ठेन अंगुल्या ग्रन्थयः स्मृताः ।।
विमाने स्थण्डिले चैव एतत्सामान्यलक्षणम् ।।१३
शिवोद्धृतं पवित्रन्तु प्रतिमायाञ्च कारयेत् ।
हृन्नाभिरूरुमानेन जानुभ्यामवलम्बिनी ।।१४
अष्टोत्तरसहस्रेण चत्वारो ग्रन्थयः स्मृताः ।
षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश द्वादश ग्रन्थयोऽथवा ।।१५
उत्तमादिषु विज्ञेयाः पर्वभिर्वा पवित्रकम् ।
चर्चितं कुंकुमेनैव हरिद्राचन्दनेन वा ।।१६

ब्राह्मणी के द्वारा कात कर तैयार किया हुआ सूत्र तिगुना हो और फिर उसे त्रिगुणित करे । ओंकार–शिव—सोम—अग्नि—ब्रह्मा—फणी—रवि–विघ्नेश और विष्णु ये इतने सब उन पवित्रा के तन्तुओं में देवता होते हैं । ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र ये त्रिसूत्र में देवता बताये गये है ।।६-१०।। सौवर्ण (सुवर्ण से रचित), राजत (चाँदी से निर्मित) वैणव (वेणु अर्थात बाँस से निर्मित) और मृण्मय तन्त्र में न्यास करे । अंगूठे से चौसठ सबसे

श्रेष्ठ होता है,इससे आधा परिमाण वाला मध्यम श्रेणी का होता है ।।११।। इससे भी आधे परिमाण वाला सबसे कनिष्ठ श्रेणी का होता है । अष्टोत्तर शत सूत्र उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ पूर्व की भाँति क्रम से हुआ करता हैं ।।१२।। अंगुष्ठ के मान से जो बनाया जाता है वह उत्तम होता है, मध्यमा के द्वारा मध्यम और कनिष्ठा अंगुलि से जो किया जाता है वह कनिष्ठ होता है, इस प्रकार से इसकी ग्रन्थियाँ कही गई हैं । विमान में और स्थण्डिल में करे—यही इनका साधारण लक्षण होता है ।।१३।। शिवोद्धृत पवित्रा को तो प्रतिमा में ही करावे । हृदय, नाभि और ऊरुओं के परिमाण से जानुओं तक लटकने वाली पवित्रा होनी चाहिए । अष्टोत्तर सहस्र से चार ग्रन्थियाँ बताई गई हैं । अथवा छत्तीस, चौबीस और बारह ग्रन्थियाँ होती हैं ।।१४-१५।। अथवा पर्वों से पवित्रा उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ समझ लेने चाहिए । इनका पूजन कुंकुम से अथवा हरि चन्दन के द्वारा करना चाहिए ।।१६।।

सोपवासः पवित्रन्तु पात्रस्थमधिवासयेत् ।
अश्वत्थपत्रपुटके अष्टदिक्षु निवेशितम् ।।१७
दण्डकाष्ठं कुशाग्रञ्च पूर्वे सङ्कर्षणेन तु ।
रोचनाकुंकुमनैव प्रद्युम्नेन तु दक्षिणे ।।१८
युद्धार्थी फलसिद्धयर्थमनिरुद्धेन पश्चिमे ।
चन्दनं नीलयुक्तञ्च तिलभस्माक्षतं तथा ।
आग्नेयादिषु कोणेतु श्रियादीनां क्रमान्न्यसेत् ।।१९

उपवास पूर्वक पवित्रा को एक पात्र में संस्थित करके उसका अधिवास करे पीपल के पत्रों के दोना में आठ दिशाओं में निवेशित करे ।।१७।। पूर्व दिशा में सङ्कर्षण के द्वारा दण्ड काष्ठ और कुशा के अग्र भाग का—दक्षिण दिशा में रोचना कुंकुम से ही प्रद्युम्न से—पश्चिम दिशा में जो युद्ध के करने वाला और फल की सिद्धि के लिये करे—चन्दन नील से युक्त, तिल तथा भस्माक्षत को आग्नेयादि कोणों में श्रियादि का क्रम से न्यास करना चाहिए ।।१९।।

१३१—रक्त पित्त रोग का निदान

अथातो रक्तपित्तस्य निदानं प्रवदाम्यहम् ।
भृशोष्णतिक्तकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः ॥१
कोद्रवोद्दालकैश्चान्यैस्तदुक्तै रतिसेवितैः ।
कुपितं पैत्तिकैः पित्तं द्रवं रक्तञ्च मूर्च्छति ॥२
तैर्मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुवंस्तनुम् ।
पित्तारक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ॥३
गन्धवर्णानुवृत्तेषु रक्तेन व्यपदिश्यते ।
प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत् ॥४
शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः ।
छर्द्धितश्छर्दिवैभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः ॥५
लोहितो न हितो मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे ।
रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ॥६
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् ।
स्वप्ने उन्मादधर्मित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब रक्तपित्त नाम वाले रोग का निदान बतलाते हैं। यह रोग अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अम्ल (खट्टा) और लवण आदि विदाही पदार्थों के तथा कोद्रव, उद्दालक और अन्य इसी प्रकार के कहे हुए पदार्थों के अत्यधिक सेवन करने से और पित्त संयुत पदार्थों से पित्त कुपित हो जाता है तथा वह द्रव पित्त और रक्त को मूर्छित कर देता है ॥१-२॥ वे सब आपस में तुल्य स्वरूपता को प्राप्त होकर शरीर में व्याप्त होते हुए विकृत रूप में पित्तरक्त से तथा संसर्ग के दूषण से गन्ध और वर्ण में अनुवृत होने पर रक्त के नाम से ही उसका व्यपदेश किया जाता है। वह असृज के स्थान से तिल्ली और यकृत् से उत्पन्न होता है ॥३-४॥ इसके होने से शिर का भारापन—रुचि का न होना—शीत की इच्छा, धूमक, अम्लक—छर्दि—छर्दि वैभत्य—खाँसी—श्वास—भ्रम—क्लम—अहित—मत्स्य गन्ध जैसा मुख का होना

ज्वर के अभाव में लाल हल्दी का सा और हरे वर्ण का होना—नेत्र आदि में नील, लोहित और पीत वर्णों का विवेचना न करना स्वप्न में उन्माद के धर्म वाला होना ये सभी होते हैं या हो जाँयगे ॥५-७॥

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥८
ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधितम् ।
बह्वौषधस्य पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ॥९
अनुबन्धी कफो यत्र तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् ।
कषायाः स्वादवो यस्य विशुद्धौ श्लेष्मला हिताः ॥१०
कटुतिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहाः ।
अधो याप्यञ्च नायुष्मांस्तत्प्रच्छर्दनसाधकम् ॥११
अल्पौषधञ्च पित्तस्य वमनं नवमौषधम् ।
अनुबन्धिबलो यस्य शान्तपित्तनरस्य च ॥१२
कषायश्च हितस्तस्य मधुरा एव केवलम् ।
कफमारुतसंस्पृष्टमसाध्यमुपनामनम् ॥१३
असह्यं प्रतिलोमत्वादसाध्यादौषधस्य च ।
न हि संशोधनं किञ्चिदस्य च प्रतिलोमिनः ॥१४
शोधनं प्रतिलोमञ्च रक्तपित्तेऽभिसर्जितम् ।
एवमेवोपशमनं सशोधनमिहेष्यते ॥१५
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वथा छर्दनं हितम् ।
तत्र दोषाऽत्र गमनं शिवास्त्र इव लक्ष्यते ॥
उपद्रवाश्च विकृति फलतस्तेषु साधितम् ॥१६

नाक—नेत्र—कान और मुख से ऊपर तथा मेढ्र—योनि और गुदा से नीचे समस्त रोगों के छिद्रों के द्वारा यह कुपित होकर प्रवृत्त हुआ करता है ॥८॥ ऊपर के भाग में जो रोग होता है वह साध्य हुआ करता है क्योंकि यह कफ से होता है और विरेचन कराने से साधित होता है ।

वद्धौषध पित्त की विरेचन ही सबसे श्रेष्ठ औषध होती है ।।९।। जहाँ पर कफ अनुबन्धी होता है वहाँ पर उसकी शुद्धि के करने वाला होता है। जिसकी विशुद्धि के करने में कषैले स्वाद वाले पदार्थ होते हैं वे श्लेमल तथा हितकर हुआ करते हैं ।।१०।। जो कटु – तिक्त और कषाय स्वाद वाले होते हैं और जो स्वभाव से ही कफ के आवह करने वाले होते हैं। आयुष्मान को उसका अधो भाग में यापन नहीं करना चाहिए । उसका प्रच्छर्दान साधक होता है ।।११।। पित्त की अल्प औषध होती है। जिसका पित्त शान्त हो गया है उस मनुष्य का अनुबन्धी बल होता है ।।१-२।। उसका हित कर कषाय ही होता है। मधुर ही केवल होते हैं। कफ और वायु से जो सस्पर्श करने वाला जो रक्तपित्त होता है वह उपनाम वाला असाध्य रोग हुआ करता है ।।१३।। प्रति लोमत्व के असाध्य होने से यह असह्य होता है और औषध के द्वारा साध्य नहीं होता है। इस प्रतिलोमी का कुछ भी संशोधन नहीं होता है ।।१४।। शोधन और प्रतिलोम रक्तपित्त में अभिसर्जित होता है। इसी प्रकार से इसका उपशमन और संशोधन यहाँ पर इष्ट होता है ।।१५।। यदि सभी दोष आपस में मिले हुए संसृष्ट हों तो ऐसी स्थिति में छर्दन कराना ही सर्वथा हित करने वाला होता है। उसमें दोष है यहाँ पर गमन शिव के अस्त्र की भाँति लक्षित होता है। उपद्रव और जो विकृति होती है फल से उन में साधित है ।।१६।।

१३२—कास रोग का निदान

आशुकारी यतः कासः स एवातः प्रचक्ष्यते ।
पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।।१

क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ।
तेषां भविष्यतां रूपं कण्ठे कण्डूररोचकः ।।२

शुष्कशूकगलास्यकण्ठत्वं तत्राधोविहितोऽनिलः ।
ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन्कण्ठे च संसृजन् ।।३
शिरास्रोतांसि संपूर्य ततोऽङ्गान्युत्क्षिपन्ति च ।
क्षिपन्निवाक्षिणी क्लिष्टस्वरः पार्श्वे च पीड़यन् ।।४

प्रवर्त्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः ।
हृत्पार्श्वोरुशिरःशूलमोहक्षोभस्वरक्षयान् ।।५
करोति शुष्ककासञ्च महावेगरुजास्वनम् ।
सोऽङ्गहर्षी कफ शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत् ॥
पित्तात्पीताक्षिकता तिक्तास्यत्व ज्वरो भ्रमः ।
पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्य्यं धूमको मदः ।।७

धन्वन्तरि ने कहा—खाँसी बहुत ही शीघ्र होने वाली होती है यह पांच प्रकार को है। तीन वात·पित्त और कफ तीनों दोषों वाली, चौथी क्षत होने से और पाँचवी क्षय के कारण वाली खांसी हुआ करती है। ।।१।। चाहे खाँसी हो यदि इस रोग की उपेक्षा कर दी जाती है तो यह बल वाले पुरुष को भी उत्तरोत्तर क्षय के कर देने वाली हुआ करती है आगे होने वाली खाँसी का रूप यह है कि पहिले कण्ठ में खुजली और अरोचकता हो जाती है ।।२।। कर्ण—कण्ठ और मुख में शुष्कता होती है और उसके नीचे के भाग में वायु होती है। ऊपर की ओर प्रवृत्त होकर उरःस्थल को प्राप्त कर कण्ठ में ससृजन करते हुए शिरा के स्रोतों को सम्पूरित करके अङ्गों को उत्क्षिप्त किया करती है। नेत्रों को क्षिप्त करते हुए की भाँति क्लिष्ट स्वरों वाला होता है और पार्श्व भाग में पीड़ा समुत्पन्न कर देती है ।।३-४।। इसके पश्चात् खाँसी मुख के द्वारा प्रवृत्त होती है और टूटे हुए काँसे के पात्र की ध्वनि के समान शब्द निकला करता है। यह हृदय—पार्श्व भाग—उरु—शिरः शूल-मोह क्षोभ और स्वर की क्षीणता किया करती है। जो सूखी खाँसी होती है वह बड़े भारी वेग से होने वाला रोग है और बहुत शब्द उसमें हुआ करता है। यह खांसी अंगों को हर्षण करने वाली होती है। इसमें कफ सूखा होता है और बड़ी ही कठिनाई से उसका मोचन किया जाता है और अल्पता को प्राप्त होता है। ।।५-६।। पित्त से पीली आँखों वाला हो जाता है, तिक्ता स्वप्न, ज्वर और भ्रम होता है। पित्त रक्त का वमन, तृष्णा, निस्वरता, धूमक और मद होता है ।।७।।

प्रतत कासवेगे च ज्योतिषामिव दर्शनम् ।
कफादुरोऽल्परुङ् मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु ॥८
कण्ठे प्रलेपमदनं पीनसच्छर्द्यरोचकाः ।
रोमसर्षो घनस्निग्धश्लेष्मणाञ्च प्रवर्त्तनम् ॥९
युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम् ।
उरस्यन्तःक्षतो वायुः पित्तेनानुगतो बली ॥१०
कुपितः कुरुते कास कफं तेन सशोणितम् ।
पीतं श्यावञ्च शुष्कञ्च ग्रथितं कुपितं बहु ॥११
ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनैव चोरसा ।
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥१२
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीड़ा हि तापिना ।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यकम्पवान् ॥१३
परावत इवोत्कूजन्पार्श्वशूली ततोऽस्य च ।
कफाद्यैर्वमनं पक्तिबलवर्णाश्च हीयते ॥१४

जब कास का अधिक वेग होता है तो उसमें ज्योतियों का दर्शन-सा हुआ करता है । कफ से वक्षः स्थल में थोड़ी पीड़ा होती है, माथे में दर्द और हृदय स्तिमित हो जाता है ॥८॥ कण्ठ में प्रलेप और पीड़ा-पीनस, छर्दि और अरोचक, रोम हर्ष तथा घना और चिकनः कफ की प्रवृत्ति ये सब होते हैं ॥९॥ युद्ध आदि उन,उन साहसिक कार्यों के करने से यथा बल न होने के कारण उर में अन्दर क्षत हो जाता है तथा पित्त से अनुगत वायु बलवान् हो जाता है ॥१०॥ वह कुपित वायु खाँसी उत्पन्न कर देता है और उससे कफ में रुधिर आने लगता है वह पीत—श्याव (काला)—शुष्क,ग्रथित और बहुत ही कुपित हो जाता है ॥११॥ उरःस्थल के विभिन्न होने के समान रुज युक्त कण्ठ से उस कफ को थूका करता है । इसमें तीक्ष्ण सुइयों से चुभने के समान पीड़ा युक्त और शूल वाला मनुष्य हो जाता है ॥१२॥ दुःख के स्पर्श करने वाले शूल से भेदन जैसी पीड़ा होती है और बहुत ताप का अनुभव हुआ करता है । शरीर के पर्वों में भेदन—ज्वर—श्वास

तृष्णा, निस्वरता और कम्प होता है ॥१३॥ कबूतर की तरह कास वाला मनुष्य उत्कूजन करता है और उसकी पसलियों में शूल होता है। फिर खाँसी वाले पुरुष को कफ आदि से वमन हो जाता है तथा उसकी शक्ति, बल और वर्ण का क्षय होता रहता है ॥१४॥

क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं श्वासपृष्ठकटिग्रहः।
वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मणः ॥१५
कुर्वन्ति यक्ष्मायतने कासं ष्ठीवेत्कफं ततः।
पूतिपूयोपमं पीतं मिश्रं हरितलोहितम् ॥१६
सुप्यते तुद्यत इव हृदयं पचतीव च।
अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वशित्वं बलक्षयः ॥१७
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता।
ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च ॥१८
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः।
याप्यो वा बलिनां तद्वत्क्षतजोऽपि नवौ तु तौ ॥१६
सिद्ध्येतामपि सामर्थ्यादसाध्यादौ च पृथक्क्रमः।
मिश्रा याप्याश्च ये सर्वे जरसः स्थविरस्य च ॥२०
कासश्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः।
भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तां त्वरया जयेत् ॥२१

जब वह इस तरह अत्यन्त क्षीण होजाता है तो उसको रक्त के सहित पेशाब होता है। श्वास का रोग, पृष्ठ भाग और कमर में पीड़ा होती है। राजयक्ष्मा रोग के बन जाने से उसकी समस्त धातुऐं वायु की प्रधानता वाली होकर अत्यन्त कुपित होजाती हैं ॥१५॥ जब यक्ष्मा रोग का स्थान होता है तो उसमें खाँसी होती है और फिर वह कफ को थूकता रहता है। वह कफ भी दुर्गन्ध से युक्त मवाद के तुल्य पीले रङ्ग का हरे और लोहित रङ्ग से मिला हुआ होता है ॥१६॥ इस दशा में उसका हृदय सुप्त तथा तुद्यमान सा होकर पचता सा रहता है। अचानक ही कभी गर्मी और कभी शीत की इच्छा होती है। ऐसा रोगी अधिक खाने वाला होता है और उसके बल का क्षय होजाया करता है ॥१७॥ इस रोग वाले के मुख पर

स्निग्धता और प्रसाद तथा नेत्रों में श्रीमत्ता दिखलाई देती है। फिर इसको सम्पूर्ण क्षय के स्वरूपों का आविर्भाव होजाता है ॥१८॥ इस प्रकार का यह क्षय से समुत्पन्न होने वाला कास है जो क्षीणता वाले मनुष्यों के देह को नष्ट करने वाला होता है। बलधारी मनुष्यों की खाँसी हटाये जाने के योग्य होती है और इसी तरह से क्षत से उत्पन्न भी कास दूर कर देने के लायक है क्योंकि ये दोनों नवीन ही होती हैं ॥१९॥ सामर्थ्य से ये दूर की जाया करती हैं। साध्य आदि में इसका पृथक् क्रम होता है। ये सब मिश्रित तथा हटाई जाने के योग्य होती हैं। वृद्ध को बुढ़ापे के कारण भी खाँसी हुआ करती है ॥२०॥ खाँसी, श्वास, क्षय, छर्दि और स्वरसाद ये रोग उपेक्षा से प्रायः हो जाते हैं, इसलिये ये रोग हों तो शीघ्रता से इन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए ॥२१॥

१३३—श्वास रोग निदान

अथातः श्वासरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम्।
कासवृद्धया भवेत् श्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः ॥१

आमातिसारवमथूविषपाण्डुज्वरैरपि।
रजोधूमानिलैर्ममघातादपि हिमाम्बुना ॥२

क्षुद्रकस्तमकच्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः।
कफोपरुद्धगमनपवनो विष्वगास्थितः ॥३

प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टस्रोतांसि दूषयन्।
उरःस्थः कुरुते श्वासमामामाशयसमुद्भवम् ॥४

प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्रागविलोमता।
आनाहः शङ्खभेदश्च तत्रायासोऽतिभोजनैः ॥५

प्रेरितः प्रेरयन् क्षुद्रं स्वयं स समलं मरुत्।
प्रतिलोमं शिरा गच्छेदुदीर्य्य पवनः कफम् ॥६

परिगृह्य शिरोग्रीवमुरः पार्श्वौ च पीड़यन्।
कासं घुर्घुरकं मोहरुचिरं पीनसं भृशम् ॥७

करोति तीव्रवेगञ्च श्वासं प्राणोपतापिनम् ।
प्रताम्येत्तस्य वेगेन ष्ठीवनान्ते क्षणं सुखी ।।८

धन्वन्तरि ने कहा—अब हम श्वास रोग का निदान बतलाते हैं। खाँसी की वृद्धि हो जाने से अथवा पहिले दोषों के कोप से श्वास रोग हो जाता है ।।१।। आमातिसार, वमथू, विष, पाण्डु ज्वर, रजोधूम अनिल, मर्मस्थल में चोट, हिमाम्बु से क्षुद्रक स्तनक छिन्न महान् ऊर्ध्व पञ्चम कफ से उपरुद्ध गमन वाला वायु सब ओर आस्थित होता हुआ प्राण, जल और अन्न के वहन करने वाले दुष्ट स्रोतों को दूषित करता हुआ उरःस्थल में स्थित होकर आमाशय में समुत्पत्ति वाला श्वास रोग को कर देता है ।।२-४।। इस श्वास का प्राग्रूप यह है कि हृदय,पार्श्व में शूल होता है, प्राण की विलोमता, आनाह, शङ्खभेद और अति भोजन से आयास होता है ।।५।। प्रेरित होता हुआ क्षुद्र प्रेरणा करते हुए स्वयं मल के सहित वायु प्रतिलोम कफ को उदीरित करके शिरा को चला जाता है ।।६।। परिग्रहण करके शिर, गरदन, वक्ष और पार्श्व भागों को पीड़ा देता हुआ घुरन्धर करने वाली खाँसी तथा मोह रुचिर पीनस को कर देता है ।।७।। प्राणों को उपताप करने वाले श्वास के वेग को अतितीव्र कर देता है। उसके वेग से मनुष्य को एक दम संतप्त करता है और जब वह थूकता है तो उसे क्षण मात्र को शान्ति प्राप्त होती है ।।८।।

कृच्छ्राच्छयानः श्वसिति निषण्णः स्वास्थ्यमर्हति ।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान् ।।९
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासः कांक्षत्युष्णं सवेपथुः ।
मेघाम्बुशीतप्राग्वातः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ।।१०
स याप्यस्तमकः साध्यो नरस्य बलिनो भवेत् ।
ज्वरमूर्च्छावतः शीतैर्न शाम्येत्प्रथमस्तु सः ।।११
कासश्वसितवच्छीर्णमर्मच्छेदरुजार्दितः ।
सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहविबोधवान् ।।१२
अधोदृष्टिः प्लुताक्षस्तु स्निह्यद्रक्तैकलोचनः ।
शुष्कास्यः प्रलपन्दीनो नष्टच्छायो विचेतनः ।।१३

महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्वथन् ।
उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभः इवानिशम् ॥१४

श्वास से पीड़ित पुरुष बड़ी कठिनाई और क्लेश से सोता है । जब घबरा उठता है तो बैठा होजाता है, उसी समय उसे कुछ स्वस्थता प्रतीत होती है । उसकी आँखें ऊपर को चढ़जाती हैं और ललाट प्रदेश में पसीना हो जाया करता है । वह अत्यन्त ही आर्त्ति से उत्पीड़ित होजाता है ॥६॥ विशेष रूप से सूखे हुए मुख वाले उस पुरुष को बार-बार श्वास चलता है और कम्प से युक्त वह उष्णता की आकाँक्षा किया करता है । मेघों से होने वाले जल, शीत और पूर्व की वायु और श्लेष्मा बढ़ाने वाली वस्तुओं से यह श्वास का रोग अधिक बढ़ता है ॥१०॥ बलवान् मनुष्य का यह स्तमक श्वास कुछ साध्य तथा हटाये जाने के योग्य होता है । ज्वर मूर्च्छा वाले का प्रथम प्रकार का श्वास शीतोपचारों से शामित नहीं होता है ॥११॥ कास-श्वास वाला शीर्ण मर्मों के छेदन की पीड़ा से युक्त, पसीने के साथ मूर्छित हो जाने वाला, आनाद वाला, वस्ति भाग में दाह के अनुभव वाला, नीचे की ओर दृष्टि रखने वाला, चढ़ी हुई आँखों वाला, स्निग्ध और रक्त लोचन वाला, सूखे हुए मुख वाला, प्रलाप करने वाला, दैन्य से युक्त, नष्ट कान्ति वाला, चेतना से शून्य बहुत-बहुत ध्वनि के साथ अत्यन्त दीन होता हुआ कठिनाई से श्वास लेता है । उद्धूयमान और संरब्ध सर्वदा मत्त ऋषभ की भाँति रहता है ॥१२-१४॥

प्रनष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः ।
अक्ष समाक्षिपन्बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥१५

शुष्ककण्ठो मुहुश्चैव कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक् ।
यो दीर्घमुच्छ्वसित्यूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः ॥१६

श्लेष्मावृतमुखश्रोत्रः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ।
ऊर्ध्वं दिग्वीक्षते भ्रान्तमक्षिणी परितः क्षिपन् ॥१७

मर्मसु छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक् ।
एते सिद्धयेयुरव्यक्ता व्यक्ताःप्राणहरा ध्रुवम् ॥१८

जिसका ज्ञान और विज्ञान एक दम नष्ट हो गया है और जो विशेष रूप से भ्रान्त नेत्रों तथा मुख वाला है। अक्ष को समाक्षिप्त करता हुआ वद्ध मूत्र एवं वर्चस वाला है। जिसकी वाणी विशीर्ण प्राय हो गई है ।।१५।। गला सूखा हुआ है और बार-बार कान-शंख और शिर में अत्यन्त पीड़ा होती है। जो बहुत लम्बा ऊपर को श्वास तो लेता है किन्तु नीचे की ओर फिर प्रत्याहरण नहीं किया करता है ।।१६।। श्लेष्मा (कफ) से आवृत मुख तथा श्रोत्र वाला है—क्रुद्ध वायु से पीड़ित है, अपनी आँखों को सब ओर फैंकता हुआ ऊपर की दिशा में ही देखता है और भ्रान्त-सा रहता है ।।१७।। मर्म स्थानों में छिद्यमान होकर अत्यन्त परिवेदन करने वाला है जो बोलने में असमर्थ सा होकर बोलता हुआ रुक जाता है। ये सब अव्यक्त सिद्ध होते हैं, व्यक्त निश्चय ही प्राणों के हरण करने वाले होते हैं ।।१८।।

१३४—हिक्का रोग निदान

हिक्कारोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु।
श्वासैकहेतु प्राग्रूपं संख्या प्रकृतिसंश्रया ।।१

हिक्का भक्ष्योद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च।
गम्भीरा च मरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः ।।२

रूक्षतीक्ष्णखराशान्तैरन्नपानैः प्रपीड़ितः।
करोति हिक्कां मरुतो मन्दशब्दां क्षुधानुगाम्।
समं सन्ध्यान्नपानेन या प्रयाति च सान्नजा ।।३

आयासात्पवनः क्रुद्धः क्षुद्रां हिक्कां प्रवर्त्तयेत्।
जत्रुमूलात्परिसृता मन्दवेगवती हि सा ।।४

वृद्धिमायासतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम्।
चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते ।।५
परिणामा मुखे वृद्धि परिणामे च गच्छति।
कम्पयन्ती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ।।६

प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतजृम्भिता ।
यमला वेगिनी हिक्का परिणामवती च सा ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम हिक्का (हिचकी) रोग के निदान के विषय में बतलाते हैं । तुम इसका श्रवण करो । इस रोग का प्राग्रूप श्वास के हेतु वाला ही होता है । इसकी संख्या प्रकृति के संश्रय वाली है ॥१॥ हिक्का भक्ष्य से उत्पन्न होने वाली—क्षुद्रा-यमला—महती और गम्भीरा होती है । अयुक्त सेवन किये हुए त्वरा के साथ रूक्ष—तीक्ष्ण—खर—अशान्त अन्न और पानों के द्वारा प्रपीड़ित होने वाला वायु हिक्का को उत्पन्न कर देता है । यह मन्द शब्द वाली क्षुधानुगा होती है और सम सन्ध्यान्न पान से जो चलती है वह अन्नजा होती है ॥२-३॥ आयास से क्रुद्ध होने वाला वायु क्षुद्र हिचकी को उत्पन्न कर देता है । यह हिचकी जत्रु के मूल से परिसृत होती हुई मन्द वेग वाली होती है ॥४॥ यह आयास (श्रम) से वृद्धि को प्राप्त हो जाती है और भोजन करने मात्र से मृदुता को प्राप्त होती है । चिर-काल से यमल वेगों के द्वारा जो हिचकी सप्रवृत होती है मुख में परिणाम वाली परिणाम में वृद्धि को प्राप्त होती है । शिर और ग्रीवा को कम्पित करती हुई जो हिचकी होती है उस हिक्का को यमला कहते हैं ॥५-६॥ प्रलाप—छर्दि—अतीसार—नेत्र विप्लुत और जृम्भा वाली हिचकी यमला और वेग वाली तथा परिणाम से संयुत होती है ॥७॥

ध्यस्तभ्रूशङ्खयुग्मस्य श्रुतिविप्लुतचक्षुषः ।
स्तम्भयन्ती तनुं वाचं स्मृतिं सञ्ज्ञाञ्च मुञ्चती ॥८

तुदन्ती मार्गमाणस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् ।
पृष्ठतो नमनं साऽऽर्य्य महाहिक्का प्रवर्त्तते ॥९

महाशूला महाशब्दा महावेगा महाबला ।
पक्वाशयाच्च नाभेर्वा पूर्ववत्सा प्रवर्त्तते ॥१०

तद्रूपा सा महत्कुर्य्याज्जृम्भणाङ्गप्रसारणम् ।
गम्भीरेण निदानेन गम्भीरां तु सुसाधयेत् ॥११

आद्यौद्वे वर्जयेदन्ये सर्वलिङ्गाश्च वेगिनीम् ।
सर्वस्य साञ्चतामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः ॥१२
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः ।
हिक्काश्वासौ तथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ ॥१३

भ्रूशंख के युग्म को ध्वस्त जिसका कर दिया है और श्रुति विप्लुत चक्षु वाला जो हो गया है ऐसे पुरुष के शरीर को स्तम्भित करती हुई वाणी-स्मृति और संज्ञा को छुड़ा देने वाली, मार्गमाण का तोदन करने वाली तथा मर्मों का दाहन करती हुई होती है और पीछे से जिसमें नमन हो हे आर्य्य ! वह महा हिक्का होकर प्रवृत्त होती है ॥८-९॥ इस हिचकी में महान् शूल होता है और यह महान् शब्द वाली होती है, बहुत अधिक वेग वाली तथा महान् बल से संयुत होती है। यह पक्वा-शय से अथवा नाभि से उठकर पूर्व की भाँति ही प्रवृत हुआ करती है ॥१०॥ इस रूप वाली हिचकी जो होती है वह जँभाई और अंग का प्रस्तरण अधिक किया करती है गम्भीर नाद से गम्भीर उसको सुसाधित करे ॥११॥ आद्य जो दो हैं उनको वर्जित करे और अन्य जो होती हैं वे सब लिंगों से वेग वाली होती हैं। सबकी सञ्चित को तथा व्यवायी वृद्ध, व्याधियों से क्षीण देह वाले, भक्तच्छेद से कृश पुरुष के सभी रोग नाश करने वाले हुआ करते हैं किन्तु इस प्रकार से शीघ्र देह के नाश करने वाले नहीं होते हैं जिस तरह से हिचकी और श्वास ये दो रोग देह को नष्ट करने वाले होते हैं क्योंकि ये दोनों तो मृत्यु के समय में भी हर एक के समुत्पन्न हो जाने वाले ही होते हैं। जब मौत होने को होती है तो ऊर्ध्व श्वास चलने लगता है और हिचकी आकर ही प्राण पखेरू प्रयाण किया करते हैं ॥१२-१३॥

१३५ —यक्ष्मा रोग का निदान

अथातो यक्ष्मरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम् ।
अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ॥१

राजयक्ष्मा क्षय: शोषो रोगराडिति कथ्यते ।
नक्षत्राणां द्विजानाञ्च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा ।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मत: ।।२
देहौषधक्षयकृते: क्षयान्ते सम्भवेच्च स: ।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराडिति राजवान् ।।३
साहसं वेगसरोध: शुक्रौज:स्नेहसंक्षय: ।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतव: ।।४
तैरुदीर्णोऽनिल: पित्तं व्यथंश्चोदीर्य्य सर्वत: ।
शरीरसन्धिमाविश्य ता: शिरा: प्रतिपीड़यन् ।।५
मुखानि स्रोतसां रुद्धा तथंवातिविसृज्य वा ।
मध्यमूर्ध्वमधस्तिर्य्यग्व्यथां सञ्जनयेद्ध्‌द: ।।६
रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भ्रश ज्वर: ।
प्रसेको मुखमाधुर्य्यं मार्दवं वह्निदेहयो: ।।७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—अब इसके अनन्तर हम यक्ष्मा रोग के निदान को बतलाते हैं। यह यक्ष्मा रोग ऐसा होता है जिसके साथ पीछे लगे हुए बहुत से रोग हुआ करते हैं और इसके होने के पहिले भी कितने हा रोग हो जाया करते हैं। इस तरह पहिले और पीछे अनेक रोगों को साथ लेकर ही यह महान् यक्ष्मा नाम वाली व्याधि मनुष्य को हुआ करती है। यह राजयक्ष्मा रोग क्षय और मनुष्य का शोषण करने वाला होता है इसीलिये समस्त रोगों का यह राजा है—ऐसा ही कहा जाया करता है। इसका नाम राजयक्ष्मा इसीलिये पड़ा है कि यह पहिले समय में नक्षत्रों, द्विजों और राजाओं को ही होता था। जो राजा है और यक्ष्मा है—इसी से राजयक्ष्मा नाम धारी यह रोग हुआ है ।।१-२।। देह और औषध को क्षय करने वाला यह होता है तथा क्षय जब हो जाता है तो उसके अन्त में यह समुत्पन्न होता है। इससे रसादि सभी का पूर्णतया शोषण होता है इसी कारण से इसको शोष भी कहते हैं। रोगों का यह राजा है इसी से 'राज'-शब्द इसके नाम के साथ में लगा हुआ है ।।३।। इस राजयक्ष्मा महान् व्याधि के

उत्पन्न होने के चार मुख्य हेतु हुआ करते हैं। उनके नाम हैं—साहस अर्थात् करने न करने के योग्य हर काम में बुरी तरह से पिल पड़ने की हिम्मत करना—वेग सरोध अर्थात् भूख-प्यास और मलादि का उत्सर्ग करने आदि के जो वेग शरीर में हुआ करते हैं उनका रोक कर रखना यह दूसरा इस रोग की उत्पत्ति का हेतु होता है। वीर्य, ओज और स्नेह का शरीर से क्षीण हो जाना भी इसका एक हेतु होता है। अन्न-पान की विधि का त्याग कर देने से भी यह दुर्बलता होकर रोग पैदा हो जाया करता है ॥३-४॥ इन उपर्युक्त चारों प्रकार के कारणों से वायु उदीर्ण हो जाता है और वह पित्त को उदीर्ण कर देता है फिर वह शरीर की सन्धि में प्रवेश करके समस्त शिराओं को पीड़ित करता हुआ सभी स्रोतों के मुखों का रोध कर देता है और उसी प्रकार से सर्वत्र अति विसृष्ट होकर ऊर्ध्व भाग, मध्य भाग, अधोभाग और तिर्यग्भाग में हृदय को व्यथा उत्पन्न कर दिया करता है ॥५-६॥ होने वाले इस रोग का जो आरम्भ में स्वरूप बनता है वह यह है कि जुकाम होता है और फिर उसी प्रतिश्याय में अत्यन्त अधिक तेज ज्वर हो जाता है। प्रसेक, मुख का मिठास और वह्नि तथा देह का मार्दव होता है ॥७॥

लौल्यमाग्निपानादौ शुचावशुचिवीक्षणः ।
मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः ॥८

हृल्लासच्छर्दिररुचिरस्नातेऽपि बलक्षयः ।
पाण्योरुवक्षःपादास्यकुक्ष्यक्ष्णोरतिशुक्लता ॥९

बाह्वोः प्रतोदो जिह्वायाः काये वैभत्स्यदर्शनम् ।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणिता मूर्द्धगुण्ठनम् ॥१०

नखकेशास्थिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत् ।
पतनं कृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः ॥११
केशास्थितुषभस्मादितरौ समधिरोहणम् ।
शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः ।
ज्योतिर्दिवि दवाग्नीनां ज्वलताञ्च महीरुहाम् ॥१२

पीनसश्वासकासश्च स्वरमूर्द्ध रुजोऽरुचिः ।
ऊर्ध्वनिःश्वाससंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे ।।१३
स्थिते पार्श्वे च रुग्बोधे सन्धिस्थे भवति ज्वरः ।
रूपाण्यैकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मणः ।।१४

मार्ग और अन्न-पान आदि में चञ्चलता तथा शुचि में अशुचिता का देखना—मक्षिका-तृण और केशादि का पात प्रायः अन्न और पान में होता है ।।८।। हृल्लास-छर्दि—अरुचि और अस्नात होने पर भी बल की क्षीणता—पाणि-ऊरु—वक्षःस्थल—पाद-मुख-कुक्षि-नेत्र इन शरीर में अंगों में अत्यन्त शुक्लता हो जाना ये सब चिह्न इस रोग में हो जाया करते हैं ।।९।। दोनों बाहुओं में प्रतोद अर्थात् पीड़ा तथा जिह्वा और शरीर में वीभत्सता का दिखलाई देना--स्त्री प्रसंग, मदिरा पान की ओर दिल का झुकाव होना, घृणिता, मूर्द्ध गुण्ठन, नाखून-केश और अस्थि की वृद्धि, इस प्रकार के स्वप्न देखना जिनमें अपना अभिमान हो, कृकलास, सर्प, बन्दर और पक्षियों का पतन देखना केश, अस्थि, तुष, भस्म तथा वृक्ष पर समाधिरोहण देखना, शून्य ग्राम देशों का तथा जल की सूखा का देखना, दिन में तारों का दिखलाई देना और दावाग्नि से जलते हुए वृक्षों का देखना ये सब इस रोग से पीड़ित मनुष्य को हुआ करता है ।।१०-१२।। पीनस-श्वास-खाँसी-स्वरमूर्द्ध रुक्-अरुचि ऊर्ध्व निःश्वास-संशोष—अधश्छर्दि कोष्ठगत होते हैं ।।१३।। पार्श्व भागों में और सन्धियों में पीड़ा का होना और ज्वर का रहना भी इस रोग में होता है। राजयक्ष्मा महान् रोग के एकादश रूप हुआ करते हैं ।।१४।।

तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठध्वंसकरो रुजः ।
जृम्भाङ्गमर्दनिष्टीववह्निमान्द्यास्यपूतिता ।।१५
तत्र वाताच्छिरःपार्श्वशूलञ्च साङ्गमर्दनम् ।
कण्ठरोधः स्वरभ्रंशो पित्तात्पादांसपाणिषु ।।१६
दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धो ज्वरो मदः ।
कफादरोचकच्छर्दिकासावर्द्धाङ्गगौरवम् ।।१७

प्रसेक: पीनसः श्वास: स्वरभेदोऽल्पवह्निता ।
दोषैर्मन्दानलत्वेन शोथलेपकफोल्बणैः ॥१८
स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातुषु स्वल्पकेषु च ।
बिदाहो मनस: स्थाने भवन्त्यन्ये ह्युपद्रवा: ॥१६
पच्यते कोष्ठ एवान्नमम्लयुक्तै रसैर्युतम् ।
प्रायोऽस्य क्षयभागानां नैवान्नं चाङ्गपुष्टये ॥२०
रसो ह्यस्य न रक्ताय मांसाय कुरुते तु तत् ।
उरस्तब्ध: समन्ताच्च केवलं वर्त्तते क्षयी ॥२१

उनके जो उपद्रव होते हैं उनको समझ लेना चाहिए, कण्ठ के ध्वंस करने वाली पीड़ा, जंभाई का आना, शरीर के अंगों का टूटना, निष्ठीवन, अग्नि की मन्दता, मुख में दुर्गन्ध का रहना यह सब इस व्याधि में रोगी को हुआ करता है ॥१५॥ उसमें जब वात का प्रकोप होता है तो उससे शिर में और पार्श्व भागों में शूल अधिक होता है—शरीरावयवों में टूटन होती रहा करती है । गला रुक जाता है, स्वर का भ्रंश हो जाया करता है । जब पित्त का प्रकोप होता है तो पैर, कन्धे और हाथों में दाह होता है—दस्त होते हैं-रक्त गिरता है-छर्दि-मुख में वास, ज्वर और मद हो जाते हैं । कफ का प्रकोप इस रोग में होता है तो इससे अरोचकता, छर्दि, खांसी और अर्द्धांग में भारापन हो जाता है ॥१६-१७॥ प्रसेक, पीनस,श्वास, स्वरभेद, अग्नि का कम होना ये सब लक्षण इन दोषों से हो जाया करते हैं । वायु के मन्द हो जाने से शोथ (सूजन) लेप और कफ की उल्वणता हो जाती है । इससे समस्त स्रोतों के मुख रुक जाया करते हैं और शरीर की सभी धातुऐं स्वल्प हो जाया करती हैं । मन में विशेष दाह होता है । इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से उपद्रव हो जाया करते हैं ॥१८-१६॥ कोष्ठ में जो अन्न पहुँचता है वह अम्ल से संयुत रसों के द्वारा परिपाक को प्राप्त हुआ करता हैं किन्तु इस रोग वाले पुरुष के सभी भाग क्षीण हो जाते हैं । इसलिये काउस खाया हुआ अन्न अंगों की पुष्टि नहीं किया करता है ॥२०॥ जो भी भुक्त पदार्थ का रस बनता है उससे न तो फिर आगे चलकर रक्त

ही बनता है और न मांस बना करता है। सब ओर से उपस्तब्ध होकर अर्थात् पोषण की सभी क्रियाओं के रुक जाने पर वह केवल क्षय वाला ही होता रहता है ॥२१॥

लिङ्गेष्वल्पेष्वतिक्षीणं व्याधौ षट्करणक्षयम्।
वर्जयेत्साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ॥२२
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात्सर्वस्य मेदसाम्।
स्वरभेदो भवेत्तस्य क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः ॥२३
शूकपर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशमोऽनिलात्।
पित्तात्तालुगले दाहः शोषो भवति सन्ततम् ॥२४
लिम्पन्निव कफैः कण्ठं मुखं घुरघुरायते।
स्वयं विरुद्धैः सर्वैस्तु सर्वलिंगैः क्षयो भवेत् ॥२५
धूमायतीव चात्यर्थमुदेति श्लेष्मलक्षणम्।
कृच्छ्रसाध्याः क्षयाश्चात्र सर्वैरल्पश्च वर्जयेत् ॥२६

जब ये चिह्न स्वल्प स्वरूप में होते हैं तभी वह अत्यन्त क्षीणता प्राप्त करने लगता है। इस व्याधि में षट्करण क्षय होता है। इसलिये उसको सभी से वर्जित होना चाहिए और क्षीणता से बचने के लिये साधन करने चाहिए, अन्यथा यह परिणाम होता है कि इन समस्त दोषों के अलग-अलग या सबके मिल जाने पर कुपित हो जाने से मेदों का क्षय हो जाता है। उसका स्वर भेद होता है और इसका रोगी अत्यन्त क्षाम—रूक्ष एवं चल स्वर वाला हो जाया करता है ॥२२-२३॥ शूक-पर्ण के समान कण्ठ हो जाता है तथा वात से स्निग्धता एवं उष्णता का उपशमन हो जाया करता है। पित के प्रकोप से तालु और गले में बड़ा भारी दाह होता है और निरन्तर शोषण होता रहा करता है ॥२४॥ कफ के प्रकोप से उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो गला लिप्त सा हो रहा है और मुख में कफ की घुरघुराहट सर्वदा होती रहा करती है। इन समस्त दोषों के प्रतिकूल हो जाने पर सभी प्रकार के चिह्न उसको हो जाते हैं और उस रोगी का क्षय होता रहता है ॥२५॥ उसे अत्यन्त धुँआ से घुटन की भाँति अनुभव होता है यही श्लेष्मा के लक्षण

उसको प्रकट होकर किया करते हैं। ये क्षत्र इस प्रकार के हैं जो बहुत ही कठिनाई से साध्य हुआ करते हैं। इनमें सभी को अल्पों से वर्जित कर देना चाहिए ॥२६॥

१३६—अतीसार रोग का निदान

अतीसारग्रहण्योश्च निदानं वच्मि सुश्रुत ।
दोषैर्व्यस्तैः समस्तंश्च भयाच्छोकाच्च षविधः ॥१
अतीसारः स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः ।
विशुष्कान्नवसास्नेहतिलपिष्टविरूढ़कैः ॥२
मद्यरुक्षातिमात्रादिदिवसादिपरिभ्रमात् ।
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितानिलः ॥३
विभ्रंसयत्यधो रक्तं हत्वा तेनैव चानलम् ।
व्यापर्य्यान्नशकृत्कोष्ठपुरीषद्रवतादयः ॥४
प्रकल्पतेऽतीसारस्य लक्षणं तस्य भाविनः ।
भेदो हृदगुदकोष्ठेषु गात्रस्वेदो मलग्रहः ॥५
आध्मानमविपाकश्च तत्र वातेन विज्वरम् ।
स्वल्पाल्पं शब्दशून्याढ्यं विरुद्धमुपवेश्यते ॥६
रुक्षं सफेनमस्वच्छं ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ।
तथा दग्ध्वा गुदामांसं पिच्छिलं परिकर्त्तयन् ।
सशुष्कभ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिःश्वसन् ॥७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम अतीसार और ग्रहणी रोगों के निदान अर्थात् मूल कारण को बतलाते हैं। ये रोग तीनों व्यस्त दोषों के प्रकोप से तथा सबके मिश्रित होकर प्रकुपित होने से, भय के कारण से और शोक से उत्पन्न होने वाला छः प्रकार का होता है ॥१॥ यह जो अतीसार होता है वह सुतरां अत्यधिक जल के पीने से हो जाया करता है। विशेष रूप से शुष्क अन्न, वसा, स्नेह, तिल, पिष्ट और विरूढ़कों से यह हो जाता है ॥२॥ मद्य, रूक्ष, अत्यधिक मात्रा आदि और दिवस के आदि में परिश्रम से, कृमियों के उत्पन्न होने से तथा वेगों

के रोक लेने से और इसी प्रकार के अन्य कारणों से वायु कुपित हो जाता है ।।३।। ऐसा कुपित हुआ वायु उसी के द्वारा अग्नि का हनन करके रक्त को नीचे की ओर विभ्रंशित कर देता है। व्यापरित करके अन्न मल कोष्ठ और पुरीष की द्रवता आदि कर दिया करता है ।।४।। होने वाले उसका लक्षण अतीसार कहा जाता है। हृदय, गुदा और कोष्ठों में भेदन, गात्र स्वेद और मल ग्रह्य हो जाता है ।।५।। उसमें वात से आध्मान, अविपाक, विज्वर और स्वल्पाल्य शब्द शून्यता से युक्त विरुद्ध उपविष्ट होता है ।।६।। रूक्ष, फेनों (झागों) से युक्त, स्वच्छता से रहित, ग्रथित जो कि बार-बार होता है, गुदा के माँस को दग्ध करके पिच्छिल परिकर्त्तन करने वाला है। शुष्कता से युक्त परिभ्रष्ट गुदा वाला, हृष्ट रोमों से युक्त विशेष रूप से निःश्वास लिया करता है ।।७।।

पित्तेन पीतमसितं हारिद्रं शाद्वलप्रभम् ।
सरक्तमतिदुर्गन्धं तृणमूर्च्छास्वेददाहवान् ।।८
सशूलपायुसन्तापपाकवान्श्लेष्मणा धनम् ।
पिच्छिलं तत्रानुसारमल्पाल्पं सप्रवाहिकम् ।।९
सरोमहर्षः सोत्क्लेशो गुरुर्बस्तिगुदोवरः ।
कृतेऽप्यकृत्तसञ्ज्ञस्य सर्वात्मा सवलक्षणः ।।१०
भयेन क्षुभिते चित्ते शयितो द्रावयेच्छकृत् ।
वायुस्ततो निवार्य्येत क्षिप्रमुष्णं प्रविप्लवम् ।।११
वातपित्ते समं लिङ्गमभूत्तद्वच्च शोकतः ।
अतीसारः समासेन द्वेधा सामो निरामकः ।।१२
शकृद्दुर्गन्धमाटोपविष्टम्भार्त्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतो निरामस्तु कफात्कोऽपि न मज्जति ।।१३
अतीसारेषु यो नातियत्नवान्ग्रहणीगदः ।
तस्य स्यादग्निनिर्वाणकरैरित्यनुरेवितैः ।।१४

पित्त के कारण होने वाले रोग में पीला—असित्—हल्दी के रंग वाला—घास के समान वर्ण से युक्त—रुधिर वाला—अधिक दुर्गन्ध से समन्वित—तृष्णा, मूर्च्छा, स्वेद और दाह वाला होता है ।।८।। कफ के

प्रकोप से जो यह व्याधि होती है उसमें पायु में शूल होता है, सन्ताप और पाक से युक्त गुदा होती है और घन, पिछिन्ना और उसमें तदनुसार अल्प प्रवाहिका के सहित मल का उत्सर्ग होता है ।।६।। रोम हर्ष और उत्क्लेश स युक्त वास्ति, गुदा और उदर अत्यन्त भारापन से युक्त होते हैं। सब के स्वरूप वाला सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त होता है, किये जाने पर भी अकृत सङ्ग वाला रहता है ।।१०।। भय से क्षोभ युक्त चित्त होने पर शयन करता हुआ ही मल को द्रवित रूप में निकाल दिया करता है । शोघ्र ही ऊष्ण ओर प्रविप्लत्र को वायु निवारण कर दिया करता है ।।११।। वात और पित्त इन दोनों दोषों के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है उसमें समान ही लक्षण भी हुआ करते हैं और इसी भाँति शोक के कारण होने वाले रोग में होता है । संक्षेप में वह अतीसार साम और निरामक दो प्रकार का होता है अर्थात् एक तो ऐसा अतीसार होता है जिसमें साथ ही आम (कच्चा अपरिपक्व रस) हुआ करता है और दूसरा बिना आम वाला होता है ।।१२।। जो आम से युक्त अतीसार होता है उसमें मल दुर्गन्ध से युक्त होता है और आरोप, विष्टम्भ, आर्त्ति (पीड़ा) और प्रत्येक से युक्त रहा करता है। इसके विपरीत बिना आम वाला है। कफ से कोई भी मज्जित नही होता है ।।१३।। अतीसार के हो जाने पर जो इसके निवारण करने के लिये विशेष यत्न करने वाला नही होता है वह ग्रहणी रोग का शिकार बन जाया करता है। अधिक समल तक अतीसार के रहने पर पाचन करने वाली जो अग्नि होती है इसका निर्वाण अर्थात् समाप्ति हो जाता है ।।१४।।

सामं शकृन्निरामं वा जीर्णं येनातिसार्य्यते ।
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः ।
सामशीर्णमजीर्णेन जीर्ण पक्वं तु नैत्र च ।।१५
चिरकृद्ग्रहणीदोषः सञ्चयश्चोपवेशयत् ।
स चतुर्द्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ।।१६
प्रागू्पाङ्गस्य सदनं चिरात्पवनमल्पकः ।
प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट्समो भ्रमः ।।१७

आबद्धोदरता छर्दि: कर्णकेऽप्यनुकूजनम् ।
सामान्यलक्षण कार्श्यं भूमकस्तमको ज्वर: ।।१८
मूर्च्छा शिरोरुविष्टम्भः श्वयथु: करपादयो: ।
तन्द्रानिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयो: स्वन: ।
पार्श्वोरुत्वङ्क्षणग्रीवारुजा तीक्ष्ण विसूचिका ।।१९
रुग्णेषु वृद्धि: सर्वेषु क्षुत्तृष्णापरिकर्त्तिका: ।
जणे जीर्य्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्य समश्नुते ।।२०

कच्चे अपरिपक्व रस आम से युक्त मल अथवा आम से रहित जीर्ण जिसके द्वारा प्रसारित किया जाता है वह अतीसार अति सारण करने से क्षाशुकारी स्वभाव से ही हुआ करता है । साम अर्थात् आम से युक्त शीर्ण होता है और वह अजीर्ण ही हुआ करता है । जब वह जीर्ण हो जाता है पक्व नहीं होता है ।।१५।। चिरकाल तक अतीसार के रहने पर ग्रहणी का दोष समुत्पन्न हो जाता है और यह सञ्चय को उपवेष्टित किया करता है । यह संग्रहणी का रोग भी चार प्रकार का होता है । वात–पित्त–कफ इन तीनों दोषों के प्रकोप से अलग,अलग होने वाले तीन भेद हैं और एक भेद वह होता है जिसमें तीनों दोषों का सन्निपात होता है ।।१६।। इस ग्रहणी का प्राक् रूप जो होता है उसमें शरीर के अङ्गों में सादन हुआ करता है, और बहुत देर में थोड़ा पवन हुआ करता है । इसमें प्रत्येक मुख की विरसता—अरुचि—प्यास और भ्रम होता है ।।१७।। उदर में आवद्धता—छर्दि और कानों में गुनगुनाहट का रहना बराबर रहा करता है । इस व्याधि का साधारण लक्षण यह है कि शरीर में कृशता रहती है । भूमक—तमक ज्वर—मूर्च्छा—शिर और ऊरुओं में विष्टम्भ—श्यमथु हाथ तथा पैरों में होता है । वात से जब यह रोग होता है तो उसमें तन्द्रा रहा करती है—त लु में शोषण होता है—आँखों के सामने अंधेरा और कानों में आवाज होती रहा करती है । पार्श्व भाग—ऊरु में वक्षण—गरदन में पीड़ा और अति तीक्ष्ण विसूचिका होती है ।।१८-१९।। समस्त रोगों में जब वृद्धि होती है तो क्षुधा और तृष्णा का परिकीर्त्तन हो जाता है । जग जीर्ण होत । है तो आध्मान को

भी जीर्ण कर दिया करता है। मुक्त होने पर स्वास्थ्य का लाभ किया करता है॥२०॥

वाताद्धृद्रोगगुल्मार्शःप्लीहपाण्डुस्त्वसंज्ञिता।
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्क तुन्दारं शब्दफेनवत्।
पुनः पुनः सृजेद्वर्च्चः पायुरुच्छ्वासकासवान्॥२१
पीतेन पीतनीलाभं पीताभं सृजति द्रवम्।
अत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृर्डदितः॥२२
श्लेष्मणा पच्यते दुःखे मलश्छर्दिररोचकाः।
आस्योपदाहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसः॥२३
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुम्।
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं संप्रहर्षणम्॥२४
सम्भिन्नश्लेष्मसंश्लिष्टगुरुवर्चः प्रवर्त्तनम्।
अकृशस्यापि दौर्बल्यं सर्वजे सर्वदर्शनम्॥२५

वात से हृद्रोग—गुल्म—अर्श—प्लीहा—पाण्डु और असंगिता होती है। चिरकाल पर्यन्त दुःख का अनुभव हुआ करता है। द्रव (ढीला)—शुष्क—तुन्दार शब्द और झागों से युक्त बार-बार पायु वर्च्च का उत्सृजन किया करता है और वह उच्छ्वास और खांसी के उपद्रवों से वह व्यक्ति समन्वित होता है॥२१॥ पित्त से पीली और नीली आभा वाले द्रव का उत्सर्ग किया करता है और खट्टी डकारों से युक्त-हृदय और कण्ठ में दाह—अरुचि और तृषा से पीड़ित रहता है॥२२॥ श्लेष्मा से मल पचता है और छर्दि तथा अरोचकता होती है। मुख में दाह—निष्ठीव—खाँसी—हृल्लास और पीनस हो जाते हैं॥२३॥ हृदय स्त्यान और उदर स्तिमित तथा भारी मालूम होता है। कोषयुक्त मधुर डकार होती हैं—शरीर में पीड़ा और सम्प्रहर्षण होता है॥२४॥ सम्भिन्न कफ से संश्लिष्ट जब होता है तो गुरु वर्च्च की प्रवृत्ति होती है। शरीर कृश नही होने पर भी कमजोरी का अनुभव होता है। सभी दोषों से युक्त रोग में सब लक्षण और उपद्रवों का दर्शन हुआ करता है॥२५॥

१३७—मदादित्य रोग का निदान

वल्ये मदात्ययादेश्च निदानं मुनिभाषितम् ।
तीष्णाम्लरुक्षसूक्ष्माद्यव्यवायाशुकरं यघु ।।१
विकाशि विपदं मद्यं मेदसोऽस्माद्विपर्य्ययः ।
तीक्ष्णोदयाश्च दिव्युक्ताश्चित्तोपतापिनो गुणाः
जीवितान्ताः प्रजायन्ते विशेषोत्कर्षवर्त्तिनः ।
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यान्मान्द्यदोनौजसो गुणाः ।।३
इन्द्रियाणि च संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।
आद्ये मद्ये द्वितीरेऽपि प्रमदायतने स्थितः ।।४
दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्येव मुच्यते ।
मद्यपाने मतिर्यस्य प्राप्य राजासनं मदैः ।।५
निरंकुश इव व्यालो न किञ्चिन्नाचरेत्ततः ।
इयं भूमिरवाच्यानां दौः शीलस्येदमास्पदम् ।।५
एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्दर्शकः परः ।
निश्चेष्टः सततं वाञ्छेत्तृतीयेऽत्र मदे स्थितः ।।७
मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम् ।
धर्माधर्मं सुखं दुःखं मानामानं हिताहितम् ।।८
न वेद शोकमोहार्त्तः शोषमोहादिसंयुतः ।
संमोदभ्रममूर्च्छायां सापस्मारं पतत्यधः ।
नाति माद्यन्ति बलिनः कृताहारा महांशनाः ।।९

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—अब मैं मदात्यय आदि रोग का मुनि के द्वारा भाषित निदान बतलाता हूँ। तीक्ष्ण—अम्ल—रूक्ष—सूक्ष्मादि अव्यवायाशुकर—लघु—विकाशी और विपद मद्य में होता है और मेद का जो मदात्यय होता है वह इससे विपरीत हुआ करता है। तीक्ष्णोदय दिव्युक्त और चित्त के उत्ताप करने वाले गुण होते हैं ।।१-२।। विशेष रूप से उत्कर्ष का वर्त्तन करने वाले तीक्ष्णादि गुणों के द्वारा मद्य से मन्दता और दीन ओज वाले गुण जीवित के अन्त तक रहने वाले उत्पन्न हो जाते

हैं ।।३।। समस्त इन्द्रियों को संक्षुब्ध करके चित्त की विक्रिया कर दिया करते हैं । आद्य मद्य में और दूसरे प्रमदा के आयतन में भी स्थित होता हुआ मूढ़ बुरे विकल्पों से हत होकर उस सुख ही में—ऐसा मानता है । जिसकी बुद्धि मद्य के पान में होती है, मदों से राज्यासन को प्राप्त कर निरंकुश व्याल की भाँति फिर कुछ भी आचरण नहीं करे । यह भूमि अवाच्यों की ही होती है और दुश्शीलता का यह स्थान हुआ करता है ।।४-५-६।। यह एक बहुत मार्ग वाली दुर्गति का पर दर्शक होता है । निश्चेष्ट होकर यह सर्वदा इस तीसरे मद में स्थित होता हुआ इच्छा किया करता है ।।७।। मरण से भी परतर दशा को प्राप्त हो जाने वाला यह पापी धर्म—अधर्म, सुख—दुःख, मान—अपमान, हित—अहित को कुछ भी नहीं जानता है और शोक तथा मोह से आर्त्त होकर शोक मोहादि से युक्त हो जाता है । संमोद के मोह की मूर्च्छा में अपस्मार के सहित अर्थात् स्मरण और ज्ञान की शक्ति को खोते हुए नीचे की ओर भूमि पर गिर जाया करता है। अधिक भोजन करने वाले और आहार किये हुए बलवान लोग अत्यन्त मद युक्त नहीं हुआ करते हैं ।।८-९।।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्भवेद्रोगो मदात्ययः ।
सामन्यलक्षण तेषांप्रमोहो हृदयव्यथा ।।१०
विभेदप्रततं तृष्णा सौम्यो ग्लानिज्वरोऽरुचिः ।
पुरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः ।।११
स्वेदोऽतिमात्रं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
स्वप्नेनेवाभिभवति न चोक्तश्च स भाषते ।।१२
पित्ताद्दाहज्वरस्वेदो मोहो नित्यञ्च हृद्भ्रमः ।
श्लेष्मणाश्छर्दिहल्लासनिद्रा चोदरगौरवम् ।।१३
सर्वजे सर्वलिङ्गत्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत्तु यः ।
सर्वञ्च रुचिरञ्चास्य मतिध्वंसकविक्रिये ।।१४
भवेतां पायिनः काष्ठे द्रव्ये तस्याविशेषतः ।
मारुताच्छ्लेष्मनिष्ठीवकण्ठशोषोऽतिनिद्रता ।।१५

शब्दासहत्वं तच्चित्तविक्षेपोंगे सि वातरुक् ।
हृत्कण्ठरोगः सम्मोहः श्वासतृष्णावर्मीज्वराः ॥१६
निवर्त्तेद्यस्तु मद्य भ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत् ।
विकारैः क्लिश्यते या तु न स शारीरमानसैः ॥१७

वात—पित्त और कफ इन समस्त दोषों से यह मदात्यय रोग हुआ करता है। इस व्याधि का साधारण लक्षण यही होता है कि इस रोग वाले मनुष्यों को प्रकृष्ट मोह और हृदय में व्यथा हो जाती है ॥१०॥ विभेदन का विस्तार-तृष्णा—सौम्य—स्नानि—ज्वर—अरुचि—पुरोत्रिबन्ध—तिमिर—खाँसी—श्वास—प्रजागरण—स्वेद और अत्यधिक विष्टम्भ—श्वयथुचित्त में-विभ्रय—स्वप्न की भाँति अभिभव से युक्त होना ये सभी लक्षणमदात यय रोग में हो जाते हैं और इस रोग वाले पुरुष से कुछ कहा भी जावे तो वह कुछ भी बोलता नहीं है ॥११॥ पित्त के प्रकुपित होने से जो रोग होता है उसमें दाहज्वर स्वेद (पसीना)—मोह और नित्य ही हृदय में भ्रम होता है। कफ से जो यह रोग उत्पन्न होता है उसमें इस रोग के रोगी को छर्दि—हृल्लास—निद्रा—पेट में भारापन होता है। सभी दोषों से प्रकोप के कारण जब यह रोग होता है तो सभी दोषों के लक्षण दिखाई दिया करते हैं—यह जानकर ही जो मद्य पीता है उसकी मति का ध्वंस करने वाली विक्रिया में इसको सभी कुछ रुचिर प्रतीत हुआ करता है। इसके पीने वाले व्यक्ति को काष्ठ और द्रव्य की विशेषता प्रतीत नहीं होती है। वायु से श्लेष्मा—निष्ठीव—कण्ठ शोष और अति निद्रा का आना— शब्द को सहन न करना—चित्त विक्षेप—अङ्ग में वात पीड़ा—हृत्काष्ठ रोग—सम्मोह—श्वास—तृष्णा—वमन और ज्वर होते हैं ॥१२-१६॥ जो मद्य से निवृत्त हो जाता है वह जितात्मा और पूर्व बुद्धि वाला होता है और वह शारीरिक एवं मानसिक विकारों से क्लेशित नहीं होता है ॥१७॥

———

गरुड़ महापुराण

उत्तरार्द्ध

—(+)—

[प्रेतकल्प]

१—धर्म कथन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१
धर्मदृढ़बद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः ।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलः स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः ॥२
भवत्प्रसादाद्वैकुण्ठत्रैलोक्यं सचराचरम् ।
मया विलोकितं सर्वमुत्तमाधममध्यमम् ॥३
भूर्लोकात् सत्यपर्य्यन्तं पुरं याम्यं विना प्रभो ।
भूर्लोकः सर्वलोकानां प्रचुरः सर्वजन्तुभिः ॥४
मानुष्यं तत्र भूतानां भुक्तिमुक्त्यालयं शुभम् ।
अतः सुकृतिनां लोको न भूतो न भविष्यति ॥५
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥६
मानुषत्वं लभेत् कस्मात् मृत्युं प्राप्नोति तत् कथम् ।
क्रियते कः सुरश्रेष्ट देहमाश्रित्य कुत्रचित् ॥७

भगवान् श्री नारायण को प्रणाम करके, नरों में परमोत्तम नर को प्रणाम करके, भगवती सरस्वती का अभिवादन करके तथा भगवान् श्री

व्यास देव को प्रणाम करके फिर जय'—इस शब्द का उच्चारण करना चाहिये ।।१।। जो भगवान् विष्णु का कल्पद्रुम के सदृश हैं उनकी जय हो, इस कल्पद्रुम वृक्ष का दृढ़ धर्म से बद्ध होने वाला मूल है—वेद ही इस कल्पद्रुम के स्कन्ध है और पुराण रूपी शाखाओं से यह सम्पन्न है। जो क्रतु किये जाते हैं वे ही इस कल्पद्रुम के कुसुम हैं और परम पुरुषार्थ मोक्ष ही इसका सर्वोत्तम फल है ।।२।। श्री तार्क्ष्य ने कहा—मैंने आपके प्रसाद से बैकुण्ठ लोक—त्रैलोक्य, चर और अचर के सहित सब देख लिया है जो कि उत्तम-मध्यम और अधम है। हे प्रभो ! भूलोक से सत्य लोक पर्यन्त सभी का अवलोकन किया है किन्तु याम्यपुर अर्थात् यमराज के नगर को नहीं देखा है। यह भूलोक समस्त जन्तुओं से सभी लोकों से प्रचुर है ।।३-४।। यह मनुष्य लोक मानुष जीवन प्राणियों के मोक्ष का परम शुभ स्थान है। अतएव सुकृत करने वालों का लोक ऐसा उत्तम है जो कभी न हुआ है और न भविष्य में भी कभी होगा ।।५।। देवगण सब मिलकर गीतों का गायन किया करते हैं कि जो लोग इस परम पवित्र भारतवर्ष की भूमि के भाग में उत्पन्न हुए हैं वे परम धन्य अर्थात् महाभाग्यशाली हैं। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के फलों के अर्जन करने के लिये अर्थात् प्राप्त करने के वास्ते देवगण भी अपने देवत्व का त्याग कर पुनः भारतवर्ष में मनुष्य जन्म ग्रहण किया करते हैं ।।६।। हे सुरश्रेष्ठ ! यह मानुष जीवन किससे प्राप्त होवे और फिर कैसे मृत्यु को प्राप्त होता है ? कहीं पर देह का आश्रय ग्रहण करके क्या किया जावे ? ।।७।।

मृते क्व यान्तीन्द्रियाणि ह्यस्पृश्यः स कथं भवेत् ।
स्वकर्माणि कृतानीह कथं भोक्तु प्रसपति ।।८
प्रसादं कुरु मे मोहं छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
विनतागर्भसम्भूतः काश्यपस्तत्र वाहनः ।।९
इति प्रीततरो भूत्वा कथयस्व यथातथम् ।
यमलोके कथं यान्ति विष्णुलोके च मानवाः ।।
प्रेतमुक्तिप्रदं मार्गं कथयस्व प्रसादतः ।।१०

वैनतेय महाभाग शृण सर्वं यथातथम् ।
प्रीत्या कथयतो यस्मात् सुहृदस्ति भवान् मम ।।११

परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य वै ।
अरण्ये निर्जने देशे भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ।।१२

हीनजातौ प्रजायन्ते रत्नानामपहारकाः ।
यं यं काममभिध्यायेत् स तल्लिङ्गोऽभिजायते ।।१३

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।१४

मनुष्य के मृत हो जाने पर इसकी समस्त इन्द्रियाँ कहाँ चली जाया करती हैं और वह स्पर्श न करने के योग्य कैसे हो जाता है ? अपने किये हुए कर्मों का भोग करने के लिए कैसे गमन किया करता है ? आप मुझ पर प्रसन्न होइये और इस मेरे अज्ञान जनित मोह का पूर्णतया छेदन करने के लिये आप योग्य होते हैं। विनता के गर्भ से समुत्पन्न काश्यप आपका वाहन है। इसलिए अधिक प्रसन्न होकर ठीक-ठीक कहने की कृपा कीजिएगा। ये मानव यमलोक में तो कैसे जाया करते हैं और विष्णु के लोक में किस प्रकार से पहुँचा करते हैं ? आप प्रसन्नता पूर्वक प्रेत भाव से मुक्ति प्रदान करने वाला मार्ग क्या है—इसको बतलाइये ।।८-१०।। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे महान् भाग्यशालिन् ! हे वैन तेय ! आप मेरे परम सुहृत हैं इस कारण से मैं तुमको परम प्रीति के साथ वह सभी बतलाता हूँ उसका तुम ठीक-ठीक श्रवण करो ।।११।। जो पुरुष किसी दूसरे की स्त्री का अपहरण किया करते हैं या किसी ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करते हैं वे किसी निर्जन वन में ब्रह्मराक्षस हुआ करते हैं ।।१२।। जो मनुष्य रत्नों का अपहरण करते हैं वे किसी हीन (नीच) जाति वाले के यहाँ जन्म लिया करते हैं। जिस-जिस कामना का अभिध्यान किया करता है वह उसी के लिग से युक्त उत्पन्न होता है ।।१३।। यह आत्मा तो नित्य एवं अविनाशी है। इस को शास्त्र छेदन नहीं किया करते हैं और अग्नि इसका दाह नहीं कर

सकता है। जल इसको क्लेदित नहीं करता है तथा वायु इसका शोषण नहीं किया करता है ॥१४॥

वक्चक्षुर्नासिके कर्णौ गुदौ मूत्रपुरीषयोः।
अण्डजादिकजन्तूनां छिद्राण्येतानि सर्वशः ॥१५
नाभेस्तु मूर्द्ध पर्य्यन्तमूर्ध्वच्छिद्रेणि चाष्ट वै।
सन्तः सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ॥१६
अधश्छिद्रेण ये यान्ति ते यान्ति विगतिं नराः।
मृताहाद्वार्षिकं यावद्यथोक्तविधिना खग ॥१७
कार्य्याणि सर्वकर्माणि निर्धनैरपि मानुषैः ॥१८
देहे यत्र वसेज्जन्तुस्तत्र भुङ्क्ते शुभाशुभम्।
मनोवाक्कायजं नित्यं तत्र तत्र खगेश्वर ॥१९
मृतः सुखमवाप्नोति मायापाशैर्न बध्यते।
पाशबद्धनरस्येह विकर्मणि मनो भ्रमेत् ॥२०

वाक्—चक्षु-नासिका-दोनों कान-गुदा और मूत्र त्याग करने वाली इन्द्रिय ये सभी अण्डज आदि जन्तुओं के छिद्र मात्र ही होते हैं ॥१५॥ नाभि से लेकर मस्तक पर्यन्त ऊपर के भाग में आठ छिद्र हुआ करते हैं। जो सन्त एवं पुण्यात्मा पुरुष होते हैं इन ऊर्ध्व छिद्रों के मार्ग से ही जाया करते हैं ॥१६॥ नीचे के छिद्रों के मार्ग से जो जाते हैं वे मनुष्य विगति को प्राप्त होते हैं। हे खग! जिस दिन में मृत्यु हो उस दिन से वर्ष पर्यन्त जितने भी कर्म होते हैं वे सब कर्म यथावत् उक्त विधि के अनुसार निर्धन मनुष्यों के द्वारा भी मृतक के अवश्य ही करने चाहिए ॥१७-१८॥ जिस देह में भी यह जन्तु निवास किया करता है वहाँ पर ही शुभ और अशुभ का भोग किया करता है। हे खगेश्वर! मन-वाणी और शरीर से समुत्पन्न सबको यहाँ-वहाँ पर ही नित्य भोग किया करता है ॥१९॥ मृतात्मा सुख की प्राप्ति किया करता है और माया के पाशों से बद्ध नहीं होता है। जो पाशों से बद्ध नहीं होता है। जो पाशों से बद्ध मनुष्य होता है यहाँ पर उसका मन विकर्म में भ्रमण किया करता है ॥२०॥

२—जन्मान्तर गति कथन

एवं ते कथितं तार्क्ष्य जीवितस्य विचेष्टितम् ।
मनुष्याणां हितार्थाय प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥१

चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदैश्च जन्तवः ।
अण्डजाः स्वेदजाश्चैव ह्युद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥२

एकविंशतिलक्षाणि त्वण्डजाः परिकीर्त्तिताः ।
स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्भिज्जाश्च क्रमेण तु ॥३

जरायुजास्तथाऽसंख्या मानुषाद्याः प्रचक्षते ।
सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम् ॥४

पञ्चेन्द्रियनिधानं तु बहुपुण्यैरवाप्यते ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ह्यन्त्यजजातयः ॥५

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च ।
कैवर्त्तभेदभिल्लाश्च सप्तैताश्चान्त्यजातयः ॥६

म्लेच्छडुम्बविभेदेन जातिभेदास्त्रयोदश ।
जन्तूनामिह सर्वेषां भेदाश्चैव सहस्रशः ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! इस प्रकार से हमने तुमको जीवित प्राणी का विचेष्टित बतला दिया है जोकि मनुष्यों के हित सम्पादन करने के लिए और प्रेतत्व से छुटकारा पाने के लिए होता है ॥१॥ चौरासी लाख योनियाँ हैं । उनमें चार प्रकार के जन्तुगण जन्म ग्रहण किया करते हैं-कुछ तो उन जन्तुओं में अण्डे से जन्म लेने वाले अण्डज होते हैं । कुछ स्वेदज जीव हैं जिनका जन्म स्वेद (पसीना) से ही होता है । कुछ उद्भिज्ज होते हैं जो जमीन से उद्भेदन कर वृक्षादि के रूप में जन्म लेते हैं । और चौथी प्रकार के वे जन्तु हैं जो जरा में लिपटे हुए अर्थात् जेर से ढके हुए उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य आदि हैं । ये जरायुज कहे जाते हैं ॥२॥ इनमें इक्कीस लाख अण्डज जन्तु बताए गये हैं । उसी प्रकार से स्वेदज और उद्भिज्ज भी क्रम से कहे गये हैं । जो जरायुज

मनुष्य आदि हैं वे असंख्य कहे जाते हैं। इन सब प्रकार के जन्तुओं में जन्म अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥३-४॥ यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का निधान मनुष्य जन्म बहुत अधिक पुण्यों के संचय से प्राप्त हुआ करता है। इस मनुष्य योनि में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य-शूद्र और अन्त्यज ये जातियाँ होती हैं।५। अन्त्यज जातियाँ ये सात जातियाँ मानी गई हैं—रजक (धोबी)--चर्मकार (चमार)—नट—वरुड़—कैवर्त्त—भेद और भील ये उनके नाम हैं ॥६॥ म्लेच्छ और डुम्ब के विशेष भेद से जातियों के भेद तेरह होते हैं। यहाँ पर समस्त जन्तुओं के सहस्रों भेद होते हैं ॥७॥

आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस्तथैव च।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ॥८
एकपादादिरूपैश्च दश भेदा हि मानवाः।
कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदेशः स उच्यते ॥९
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे मुनयः पितरः खग।
धर्मः सत्यञ्च विद्या च तत्र तिष्ठन्ति सर्वदा ॥१०
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥११
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥१२
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम्।
द्वयोर्न साधयेदेकं तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम् ॥१३
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते।
कर्त्तुं लक्षाधिपती राज्यं राज्येऽपि सकलचक्रवर्त्तित्वम् ॥१४

आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध ये सभी जन्तुओं को हुआ करते हैं किन्तु विवेक का होना परम दुर्लभ होता है ॥८॥ एक पाद आदि रूपों से मानवों के दश भेद होते हैं। जहाँ पर कृष्ण सार मृग होता है वह धर्म का देश कहा जाता है ॥९॥ हे खग ! ब्रह्मा से आदि लेकर सम्पूर्ण देवगण,सब मुनि मण्डल,पितृगण, धर्म, सत्य और विद्या ये सब वहाँ सर्वदा

स्थित रहा करते हैं ॥१०॥ प्राणियों को समस्त भूतो में श्रेष्ठ माना जाता है और प्राणियों में भी जो मति (बुद्धि) के उपयोग से जीवन बिताने वाले हैं वे श्रेष्ठ होते हैं। उन बुद्धिमानों में भी मनुष्य श्रेष्ठ होता है और नरों में भी ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ॥११॥ ब्राह्मणों में जो विद्वान विद्या सम्पन्न होता है वह श्रेष्ठ होता है। विद्वानों में भी कृत बुद्धि श्रेष्ठ है तथा कृत बुद्धियों में कर्त्ता(करने वाले)और कर्त्ताओं में ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ॥१२॥ वह मनुष्य योनि में जन्म प्राप्त करना जोकि स्वर्ग और मोक्ष का प्रसाधक है। इन दोनों में से जिसने किसी भी एक की साधना नहीं की है जिसने निश्चय ही मनुष्य जन्म ग्रहण करके भी अपनी आत्मा का प्रवंचन ही किया है ॥१३॥ मनुष्य का स्वभाव होता है कि जिसके पास सौ रुपये होते हैं वह सहस्र की इच्छा करता है और जिसके पास सहस्र हो जाते हैं वह लक्ष का अधिपति होना चाहता है जो लक्ष का स्वामी धन जाता है वह एक विशाल राज्य प्राप्त करने की इच्छा रखता है और राज्य भी प्राप्त हो जावे तो चक्रवर्त्ती सम्राट् बनने की लालसा हृदय में हुआ करती है ॥१४॥

चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरत्वलाभे सकलसुरपतित्वम् ।
भवितुं सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्त्तते तृष्णा ॥१५
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते ।
तृष्णामुक्तास्तु ये केचित्स्वर्गवासं लभन्ति ते ॥१६
आत्माधीनः पुमान् लोके सुखी भवति निश्चितम् ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ॥
तथा च विषयाधीनो दुःखी भवति निश्चितम् ॥१७
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनाहताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकःप्रमादी स कथं न हन्यते यःसेवते पञ्चभिरेवपञ्च ॥१८
पितृमातृमयो बाल्ये यौवने दयितामयः ।
पुत्रपौत्रमयः पश्चान्मूढ़ो नात्ममयः क्वचित् ॥१९
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान्बद्धो विमुच्यते ।
पुत्रदारमयैः पाशैर्बद्धो नैव प्रमुच्यते ॥२०

मृत्योर्न मुच्यते मूढ़ो बालो वृद्धो युवापि वा।
सुखदुःखाधिको वापि पुनरायाति याति च ॥२१

एक साम्राज्य का अधीश्वर मानव सुरत्व की अभिलाषा करता है, सुरत्व की प्राप्ति हो जाने पर इन्द्र-पद की चाहना होती है। सुरपति के पद को भी पाकर उर्ध्वगति होने की इच्छा जागृत होजाती है और यह तृष्णा बढ़ती हुई कभी शान्ति नही होती ॥१५॥ तृष्णा से अभिभूत जन्तु नरक पाता है। जो इस पिशाचिनी तृष्णा से मुक्त होते हैं वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥१६॥ इस लोक में आत्माधीन ही निश्चित् रूप से सुखी होता है। शब्द, स्पर्श,रूप,रस और गन्ध ये उसके गुण होते हैं। जो पुरुष विषयों के अधीन होता है वह निश्चित रूप से दुःखी होता है ॥१७॥ कुरङ्ग(हिरण), मातङ्ग (हाथी), पतङ्ग, भृङ्ग (भौंरा) और मीन (मछली) ये पांचों एक-एक ही विषय में इतने उन्मत्त होकर सेवन करने वाले होते हैं किन्तु मनुष्य एक ही ऐसा प्रमादी होता है कि जो पाँचों इन्द्रियों से पाँचों विषयों के सेवन में निमग्न रहा करता है तो यह क्यों नहीं हनन किया जावे ॥१८॥ यह मानव बचपन में तो पिता-माता के वात्सल्य में डूबा रहता है—यौवन में पत्नी के प्रणय पाश में बद्ध हो जाता है। इसके पश्चात् वार्धका में पुत्र-पौत्रादि के स्नेह में डूबा रहता है। इसे अपने पूरे जीवन में आत्मामय होने का कोई भी अवसर ही नहीं होता है ॥१९॥ लौह और काष्ठ की पाशों से भी पुरुष विमुक्त हो जाया करते हैं किन्तु यह पुत्र और पत्नी की पाश ऐसी हैं कि इनसे बँधा हुआ कभी भी छुटकारा नहीं पासकता ॥२०॥ यह मूढ़तावश मृत्यु से कभी भी मुक्त नहीं होता चाहे बालक हो, युवा हो अथवा वृद्ध हो। अधिक सुख या दुःख से युक्त होकर यहाँ से चला जाता है और फिर यहीं आकर जन्म ग्रहण किया करता है। अर्थात् आवागमन बराबर लगा रहता है—मोक्ष नहीं होता है ॥२१॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एको हि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२२

सर्वेषां पश्यतामेव मृतः सर्वं जहाति च ।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमन्वितम् ॥२३
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।
गृहेष्वर्था निवर्त्तन्ते श्मशाने मित्रबान्धवाः ॥२४
शरीरं वह्निनरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं ब्रजेत् ।
शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम् ॥२५
शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः ।
अनस्तमित आदित्ये न दत्तं धनमर्थिनाम् ॥२६
न जानामीति तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति ।
रोरवीति धनं तस्य को मे भर्त्ता भविष्यति ॥२७
न दत्तं द्विजमुख्यानां नाग्नौ तीर्थे सुहृज्जने ।
पूर्वजन्मकृतात्पुण्याद्यल्लब्धं बहु चाल्पकम् ॥२८

यह जीवात्मा अकेला ही उत्पन्न होता है और मर कर भी अकेला ही चला जाता है । यह जो कुछ भी सुकृत कर्म करता है उसका फल या जो कुछ भी पाप कर्म करता है उसका कुफल भी यह अकेला ही भोगता है । इस भोग में और आवागमन में कोई भी अन्य साथी नहीं होता है ॥२२॥ सभी लोगों के देखते हुए जब इसका समय आ जाता है मृत्यु को प्राप्त होकर चला जाया करता है और सभी कुछ यहीं छोड़ जाता है । उस समय में विशाल वैभव और प्राणों से भी अधिक प्रिय मित्र – बन्धु कोई भी आड़े नहीं आते हैं । मृत शरीर को काष्ठ और लोष्ठ से समन्वित कर अर्थात् दाह करके या दफना कर बान्धव लोग छोड़ कर विमुख होते हुए चले जाते हैं । उस समय में यदि कुछ धर्म का काम किया है तो वही उसके साथ जाया करता है । धन, वैभव तो घर में ही रह जाता है और मित्र तथा बान्धव श्मशान में छोड़कर वहीं से चले जाते हैं ॥२३-२४॥ इस शरीर को अग्नि ग्रहण कर नष्ट कर देती है केवल सुकृत और दुष्कृत ही जो उसने अपने जीवन में किया है साथ जाया करता है । धन—बान्धव और शरीर वह्नि से जला हुआ सब नष्ट होकर केवल किया हुआ

एक मात्र कर्म साथ में रहता है ।।२५।। शुभ कर्म हो या पाप कर्म, उसका फल अकेला ही सर्वत्र भोगता है। सूर्य के अस्त न होने के समय में याचकों के धन का दान नहीं किया है— मैं यह नहीं जानता हूँ कि यह धन जिसका सञ्चय किया है वह कल प्रातः काल में किसका होगा ? धन भी बराबर रुदन करता है कि कल मेरा स्वामी कौन होगा ? ।२६-२७।पूर्व जन्म के किये हुए पुण्य के फल से जो भी अधिक या कम धन प्राप्त किया है उसे न तो ब्राह्मणों को दान में दिया और न अग्नि की सेवा में हवन रूप में ही समर्पित किया—न कोई उस से तीर्थाटन किया और न किसी मित्र आदि के हित में ही व्यय किया या उसका विनियोग उपकारार्थं किया है ।।२८।।

तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम् ।
धनेन धार्य्यते धर्मः श्रद्धायुक्तेन चेतसा ।।२९
श्रद्धाविहीनो धर्मस्तु नेहामत्र च वृद्धिभाक् ।
धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते ।।३०
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत् ।
श्रद्धया धार्य्यते धर्मो बहुभिर्नार्थं राशिभिः ।।३१
अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवङ्गताः ।
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।।
असदित्युच्यते पक्षिन्प्रेत्य नेह न तत्फलम् ।।३२

सो इस धन की ऐसी स्थिति का भली भांति ज्ञान करके धर्म के लिये धन का विनियोग किया जाता है। श्रद्धा से युक्त चित्त से धन के द्वारा धर्म को धारण किया जाता है ।।२९।। जो बिना श्रद्धा के धर्म किया जाता है उससे न तो यहाँ कुछ वृद्धि होती है और न परलोक में ही उसका सहारा प्राप्त होता है। धर्म से ही अर्थ होता है और धर्म से ही काम होता है ।।३०।। धर्म ही अपवर्ग के लिये सहायक होता है। इसलिये धर्म का आचरण करना चाहिए। श्रद्धा से धर्म धारण किया जाता है अत्यधिक धन के समूह से धर्म को अर्जित नहीं किया जाता है ।।३१।। अकिञ्चन

मुनि गण श्रद्धा वाले होने के कारण स्वर्ग गामी हुए थे। मुनियों के पास कुछ भी धन नहीं था। धन का कुछ भी महत्त्व नहीं है—महत्त्व है श्रद्धा का—श्रद्धा ही धन-धर्म का निर्वाहक होता है। अश्रद्धा से हवन किया हुआ—तपस्या की हुई और जो कुछ भी किया गया है वह सभी असत् कहा जाता है। हे पक्षिन् ! मरने के पश्चात् ऐसे हवन, दान, धर्म और तप से कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ करता है। यह सब व्यर्थ ही होजाता है ॥३२॥

३—दान फल कथन

कर्मणा केन देवेशं प्रेतत्वं नैव जायते।
पृथिव्यां सर्वजन्तूनां तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥१
शृणु वक्ष्यामि सङ्क्षेपात्क्रियाञ्चैवौर्ध्वदैहिकीम्।
स्वहस्तेनैव सा कार्या मोक्षकामैस्तु मानवैः ॥२
स्त्रीणामपि विशेषेण पञ्चवर्षाधिके शिशौ।
वृषोत्सर्गादिकं कर्म प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥३
वृषोत्सर्गादृते नान्यत्किञ्चिदस्ति महीतले।
जीवन्वापि मृतो वापि वृषोत्सर्गं करोति यः ॥
प्रेतत्वं न भवेत्तस्य विना दानैर्विना मखैः ॥४
कस्मिन्काले वृषोत्सर्गं जीवन्वापि मृतोऽपि वा।
कुर्य्यात्सुरवरश्रेष्ठ ब्रूहि मे मधुसूदन।
किं फलं तु भवेज्जन्तोः कृतैः श्राद्धैस्तु षोडशैः ॥५
अकृत्वा तु वृषोत्सर्गं कुरुते पिण्डपातनम्।
नोपतिष्ठति तच्छ्रेयो दत्तं प्रेतस्य निष्फलम् ॥६
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥७

गरुड़ ने कहा—हे सुरेश्वर ! हे देवेश ! ऐसा कौनसा कर्म है जिसके करने से प्रेतत्व की प्राप्ति नहीं होती ? कृपा करके मुझे यही बताइये कि जिससे पृथ्वी में समस्त जन्तुओं को प्रेतत्व न हो ॥१॥ भगवान् ने कहा—

अब हम ऊर्ध्व देह से सम्बन्ध रखने वाली और्ध्व दैहिकी क्रिया अर्थात् देह के नाश हो जाने पर की जाने वाली क्रिया संक्षेप में बतलाते हैं उसका श्रवण करो । मोक्ष की कामना रखने वाले मानवों को वह अपने ही हाथ से सम्पन्न करनी चाहिये ।।२।। स्त्रियों को भी शिशु के पाँच वर्ष से अधिक हो जाने पर विशेष रूप से वृष का उत्सर्ग आदि कर्म प्रेतत्व के निवारण करने के लिये करना चाहिए ।।३।। इसी महीतल में वृष के उत्सर्ग से अधिक अन्य कुछ भी नहीं है । जीवित रहते हुए अथवा मृत होने के बाद जो वृष का उत्सर्ग करता है उसे बिना किसी अन्य दान और मखों केकिये बिना ही प्रेतत्व नहीं होता है ।।४।। गरुड़ ने कहा—हे सुरवरों में श्रेष्ठ ! हे मधुसूधन ! यह वृष का उत्सर्ग किस समय में जीवित अथवा मृत की दशा में करना चाहिए ?-यह कृपया बतलाइये । इसका जन्तु को तथा षोडश श्राद्धों के करने का क्या फल होता है? ।।५।। श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—वृष के के उत्सर्ग के बिना अर्थात् बिजार छोड़ने के बिना जो कोई भी पिण्डों का पातन करता है उसका कुछ भी श्रेय प्रेत को दिया हुआ नहीं होता है और वह सब निष्फल ही होता है ।।६।। मृत्यु के ग्यारहवें दिन जिस प्रेत के लिये वृष का उत्सर्ग नहीं किया जाता है उसको प्रेतत्व सुस्थिर होता है चाहे उसके लिये सैकड़ों ही श्राद्ध क्यों न दिये जावें ।।७।।

पुत्रा यस्य न विद्यन्ते न माता न च बान्धवाः ।
न पत्नी न च भर्त्ता च कथं स्यादौर्ध्वदैहिकम् ।।८
केन मुक्ति प्रपद्यन्ते नरा नार्य्यो गतापदः ।
एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।।९
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननञ्चरेत् ।।१०
सपुत्रो वा ह्यपुत्रो वा नरो नारी पतिस्तथा ।
जीवन्नेव स्वयं कुर्य्यान्मृतो ह्यक्षयमाप्नुयात् ।।११
यानि कानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः ।
तानि तानि च सर्वाणि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः ।।१२

व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
स्वयं हस्तेन दत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम् ॥१३

गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च ।
यत्र तत्र वसेज्जन्तुस्तत्र तत्रोपतिष्ठति ॥१४

गरुड़ ने कहा—जिस पुरुष के कोई भी पुत्र न हो और माता और कोई बान्धव भी न हो—पत्नी-भर्त्ता आदि भी कोई न हो उसके लिए और्ध्व दैहिक कर्म कैसे हो सकता है ? क्योंकि इसे करने वाला तो कोई रहता ही नहीं है ? ॥८॥ हे भगवन् ! ऐसे गतापद नर और नारी किस प्रकार से मुक्ति को प्राप्त होते हैं ? यह मेरा बहुत अधिक संशय है । कृपा कर इसका निवारण करने में आप योग्य होते हैं ॥९॥ श्री भगवान् ने कहा—जो पुत्र से रहित है उसकी तो गति होती ही नहीं है । उसे स्वर्ग तो प्राप्त ही नहीं होता है । किसी भी उपाय से पुत्र की उत्पत्ति तो अवश्य ही करनी चाहिए ॥१०॥ जो अपुत्र है अर्थात् पुत्र से रहित होता है वह चाहे नर हो या नारी हो उसे जीवित रहते ही स्वयं अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया कर लेनी चाहिये जिससे मृत होकर वह अक्षय पद को प्राप्त कर लेवे ॥११॥ जो भी कोई दानादि मानवों के द्वारा स्वयं दिये गये हैं वे सब आगे उपस्थित रहा करते हैं ॥१२॥ विविध भाँति के विचित्र व्यञ्जन और भक्ष्य-भोज्य पदार्थ जो स्वयं हाथ से दिए गए हैं वे सब देह के अन्त हो जाने पर अक्षय फल प्रदान किया करते हैं ॥१३॥ गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और पद ये सभी यह जन्तु जहाँ-जहाँ पर भी वास किया करता है वहाँ पर ही उपस्थित मिला करते हैं ॥१४॥

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।
अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर्न किंचित्कर्त्तुमुत्सहेत् ॥१५

यावत्तस्य मृतस्येह न भूतं चौर्ध्वदैहिकम् ।
वायुभूतः क्षुधाविष्टो भ्रमते च दिवानिशम् ॥१६

कृमिकीटपतङ्गो वा जायते म्रियतेऽपि सः ।
असद्गर्भे वसेत्सोऽपि जातः सद्यो विनश्यति ॥१७

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य्यः प्रयत्नो महान् ।
संदीप्ते भवने हि कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥१८

जब तक इस शरीर में स्वस्थता रहती है तभी तक धर्म का काम कर ले । अस्वस्थ होने हर उस अशक्तावस्था में इससे कुछ भी उत्साह नही बन पड़ता है ॥१५॥ इस लोक में मृत जन्तु का जब तक और्ध्व दैहिक कर्म नहीं होता है तब तक यह क्षुधा से आविष्ट होकर वायुभूत होता हुआ रात दिन भ्रमण किया करता है ॥१६॥ अथवा कोई कृमि, कीट या पतङ्ग बन कर उत्पन्न होता है और मर जाया करता है । वह ऐसे असत् गर्भ में वास किया करता है कि तुरन्त ही विनष्ट हो जाता है ॥१७॥ अतएव जब तक बुढ़ापा इसको प्राप्त नहीं होता है, जिस समय तक इसकी इन्द्रियां अप्रतिहत शक्ति से सम्पन्न रहती हैं और आयु का क्षय नहीं होता है तभी तक विद्वान और ज्ञानयुक्त पुरुष को अपनी आत्मा के कल्याण के लिए महान् प्रयत्न करना चाहिए । जब घर में अग्नि लगकर खूब प्रदीप्त होजाती है उस समय उसे बुझाने के लिये कुएँ का खोदने का उद्यम करना क्या कर सकता है ? अर्थात् वह उद्यम तो व्यर्थ-सा ही होता है जब तक कुआ तैयार होगा तब तक अग्नि सभी को भस्मसात् कर देता है ॥१८॥

५४—और्ध्व दैहिक क्रिया कथन और वृषोत्सर्ग

स्वहस्तैः किं फलं देव परहस्तैश्च तद्वद ।
स्वस्थावस्थैरसंज्ञैर्वा विधिहीनमथापि वा ॥१
एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यस्वनस्थस्य च गोशतम् ।
सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम् ॥२
मृतस्यैव पुनर्लक्षं विधिहीनञ्च निष्फलम् ।
तीर्थपात्रसमायोगादेका वै लक्षपुण्यदा ॥३

पात्रे दत्तं खगश्रेष्ठ ह्यहन्यहनि वर्द्धते।
दातुर्दानमपापाय ज्ञानिनां न प्रतिग्रहः।
विषशीतापहौ मन्त्रं वह्निः किं दोषभाजिनौ ।।४
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ।।५
अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत्।
कुलैकविंशतियुतं गृहीतारञ्च पातयेत्।
देहान्तरं यदावाप्यं स्वहस्तसुकृतञ्च यत् ।।६
धनं भूमिगतं यद्वत्स्वहस्तेन निवेशतम्।
तद्वत्फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर ।।७

गरुड़ ने कहा—हे देव ! अपने ही हाथों से किये हुए का क्या फल है और दूसरों के किए हुए का क्या फल है ? स्वस्थ अवस्था में रहते हुए अस्वस्थ एवं संज्ञा-शून्यों के द्वारा किये हुए का क्या फल है ? जो कुछ भी किया जावे वह विधि से रहित हो तो उसका क्या फल है ?—यह सब बताइये ।।१।। श्री कृष्ण ने कहा—जो स्वस्थ चित्त वाला हो उसकी दान की हुई गौ और जो अस्वस्थ चित्त वाला है उसकी दी हुई एक सौ गौ—मरने के जो निकट हो उसकी दी हुई एक हजार गौ का दान बराबर होता है क्योंकि उस समय तो उसका चित स्थिर ही नहीं रहता । मृत होने पर एक लाख गौ दान बराबर होता है। जो दान आदि विधि से रहित है वह बिल्कुल फल से शून्य है। तीर्थ और सत्पात्र के समायोग होने पर एक ही गौ का दान एक लाख गौ के समान पुण्य-फल के देने वाला है। दान के पात्र और स्थान का बड़ा महत्त्व होता है ।।२-३।। हे खगश्रेष्ठ ! सत्पात्र में दिया हुआ दान दिनों-दिन बढ़ता है। दाता का दान अपाप के लिये होता है ज्ञानियों का प्रतिग्रह नहीं होता है। विष और शीत का अपहरण करने वाला वह्नि मन्त्र होता है फिर क्या दोष है ! ।।४।। प्रति दिन पात्र में ही दान दे और विशेष करके निमित्त में भी दान जो अपना श्रेय चाहता है उसे विद्वान् पुरुष को कभी किसी अपात्र को दान नहीं देना चाहिए ।।५।। यदि किसी सत्पात्रता से रहित पुरुष को गौ

का दान दिया जाता है तो वह दाता को नरक में ले जाता है। जो दान ग्रहण करता है उसके भी इक्कीस कुलों का वह पातन किया करता है। अपने हाथ से जो भी सुकृत किया गया है वह दूसरे देह में प्राप्त होता है ।।६।। जिस प्रकार से अपने हाथ से भूमि रक्खा हुआ धन प्राप्त होता है उसी तरह फल की प्राप्ति हुआ करती है। हे खगेश्वर में यह बतलाता हूँ ।।७।।

अपुत्रोऽपि विशेषेण क्रियञ्चै वौर्ध्वदेहिकीम् ।
प्रकुर्य्यान्मोक्षकामश्च निर्धनश्च विशेषतः ॥८
स्वल्पेनापि हि वित्तेन स्वयं हस्तेन यत्कृतम् ।
अक्षयं याति तत्सर्वं यथाज्यञ्च हुताशने ॥९
एका एकस्य दातव्या शय्या कन्या पयस्विनी ।
सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम् ॥१०
तस्मात्सर्वं प्रकुर्वीत चञ्चले जीविते सति ।
गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि ॥११
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ।
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ वृषयज्ञं समाचरेत् ॥१२
अकृत्वा म्रियते यस्तु सपुत्रोऽपि न मुक्तिभाक् ।
अपुत्रोऽपि हि यः कुर्य्यात्सुखं याति महापथे ॥१३
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि ।
न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या भवेत् ॥१४

जिसके पुत्र न हो वह भी विशेष रूप से अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया करे। मोक्ष की कामना करने वाला निर्धन भी और्ध्वदैहिकी क्रिया अवश्य अपने आप ही करे ।।८।। चाहे बहुत थोड़ा धन हो उसी से अपने आप स्वयं हाथ से जो कुछ भी किया गया है वह सब अक्षय होता है, जिस तरह अग्नि में दिया हुआ अर्थात् हवन किया हुआ घृत अक्षय होता है ।।९।। एक को एक ही कन्या शय्या और पयस्विनी देनी चाहिए। यदि उसका कोई विक्रय तथा विभाग करता है तो वह

सात कुलों का दाह किया करता है ।।१०।। इस कारण से यह सभी कुछ अपने इस चंचल एवं अस्थिर जीवन में ही कर ले जिसने जीवित रहते हुए ही दान का पाथेय ग्रहण कर लिया है वह मरने के पश्चात् उस यमपुरी के महामार्ग में सुख पूर्वक गमन करता है ।।११।। जैसे कोई मार्ग में खाने की सामिग्री से रहित मनुष्य मात्रा में दुःखित होता है वैसे ही यह जन्तु भी दान के पाथेय से रहित होकर सदा क्लेश भोगता है । हे खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार समझ कर वृष यज्ञ का समारम्भ करे ।।१२।। जो इस वृषयज्ञ को न करके यों ही मृत्युगत हो जाता है वह चाहे सुन्दर पुत्र वाला भी क्यों न हो, मुक्ति को प्राप्त नहीं किया करता बिना पुत्र वाला भी इस वृषयज्ञ को करके इस महामार्ग में सुख पूर्वक गमन करता है ।।१३।। अग्निहोत्र आदि से, यज्ञों से और विविध प्रकार के दानों से भी मनुष्य उस गति को प्राप्त नहीं होता है जो गति वृषोत्सर्ग से प्राप्त हो जाती है ।।१४।।

सर्वोषामेव यज्ञानां वृषयज्ञस्तथोत्तम ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत् ।।१५

कथयस्व प्रसादेन वृषयज्ञक्रियां तथा ।
कस्मिन्काले तिथौ कस्यां विधिना केन तद्भवेत् ।।
कृत्वा किं फलमाप्नोति ह्येतन्मे वद साम्प्रतम् ।।१६

कार्त्तिकादिषु मासेषु ह्युत्तरायणगे रवौ ।
शुक्लपक्षे तथा कृष्णे द्वादश्यादिशुभे तिथौ ।।
शुभे लग्ने मुहूर्त्ते वा शुचौ देशे समाहितः ।।१७

ब्राह्मणन्तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् ।
जपहोमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् ।।१८

पूण्येऽह्नि शुभनक्षत्रे ग्रहान्देवान्समर्चयेत् ।
होमं कुर्य्याद्यथाशक्ति मन्त्रैश्च विविधैः शुभैः ।।१९

ग्रहाणां स्थापनं कुर्य्यात्पूजनञ्च खगेश्वर ।
मातृणां पूजनं कुर्य्याद्वसोर्धाराञ्च कारयेत् ।।२०

वह्नि संस्थाप्य तत्रैव पूर्णहोमञ्च कारयेत् ।
शालग्रामञ्च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत् ।।२१

समस्त प्रकार के यज्ञों में वृषयज्ञ सबसे उत्तम यज्ञ होता है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्न से वृषयज्ञ को करे ।।१५।। गरुड़ ने कहा—भगवन् ! वृष-यज्ञ की सम्पूर्ण क्रिया का वर्णन कीजिये किस समय में और किस तिथि में, किस विधान से इसे किया जाता है ? इसके करने से किस फल की प्राप्ति होतो है ?—यह सब मुझे बतलाइये ।।१६।। श्रीकृष्ण ने कहा—कार्तिक आदि मासों में जब कि सूर्य उत्तरायण हो जावें—शुक्ल पक्ष में अथवा कुष्ण पक्ष में द्वादशी आदि शुभ तिथि के दिन, शुभ लग्न में और उत्तम मुहूर्त्त में, किसी पवित्र स्थल में समाहित होकर स्थित हो जाना चाहिए ।।१७।। फिर किसी विधि के ज्ञाता शुभ लक्षणों से समन्वित ब्राह्मण को बुलवा कर जाप, होम और दानों के द्वारा सर्व प्रथम देह का शोधन करना चाहिए ।।१८।। पुण्य दिन में और शुभ नक्षत्र में समस्त ग्रहों का तथा देवताओं का अर्चन करे। अनेक शुभ मन्त्रों के द्वारा शक्ति भर होम करना चाहिये ।।१९।। हे खगेश्वर ! ग्रहों की स्थापना करे और उनका सविधि पूजन करे। षोड़श मातृकाओं का यजन करके वसुधारा करे ।।२०।। वहाँ पर अग्नि की स्थापना करके पूर्ण होम करावे। भगवान् शालग्राम को संस्थापित करके वैष्णव श्राद्ध करे ।।२१।।

वृषं सम्पूज्य तत्रैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
चतस्रो वत्सतर्य्यस्ताः पूर्वं समधिवासयेत् ।।२२
प्रदक्षिणां प्रकुर्वीत होमान्ते तु विसर्जयेत् ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य ह्युत्तराभिमुखं स्थितः ।।२३
धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।
वृषोत्सर्गप्रभावेण मामुद्धर भवार्णवात् ।।२४
अनेनैव वृषोत्सर्गं रुद्रकुम्भोदकेन तु ।
दर्भमूले घटं स्थाप्य उदकं शिरसि न्यसेत् ।।२५

अभिषिच्य शुभैर्मन्त्रैः पावनैर्विधिपूर्वकम् ।
तेन क्रीड़ेति मन्त्रेण वृषोत्सर्गे कृते सति ।।२६
आत्मश्राद्धं ततः कुर्य्याद्दत्वा चान्नं द्विजोत्तमे ।
उदके चैव गन्तव्यं जलं तत्र प्रदापयेत् ।।२७
यदिष्टं जीवितस्यासीत्तद्द्याच्च स्वशक्तितः ।
सुतृप्तो दुस्तरं मार्गं मृतो याति सुखेन हि ।।२८

वहाँ उपर्युक्त समस्त क्रिया करने के पश्चात् वृष का पूजन करे और वस्त्रालंकारों से सुसज्जित करे। चार वत्सतरियों को पहिले लाकर उनका अधिवास करे ।।२२ प्रदक्षिणा और होम के अन्त में निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उत्तर की ओर मुख करके स्थित हो विसर्जन करे। आप धर्म हैं ब्रह्मा ने पहिले वृष के रूप में आपका निर्माण किया था। अब वृषोत्सर्ग के प्रभाव से मुझको इस संसार रूपी समुद्र से उद्धार करो ।।२३-२४।। शुभ मन्त्रों के द्वारा जो कि परम पावन मन्त्र हैं, विधि के सहित अभिषेक करे। फिर "तेन क्रीड"—इस मन्त्र से वृषोत्सर्ग किये जाने पर फिर अपना श्राद्ध करे और किसी श्रेष्ठ द्विज को अन्न दान करे। फिर जलाशय पर जाकर वहाँ जल देवे ।।२५-२७।। जो अपने जीवित का इष्ट हो उस पदार्थ को भी यथाशक्ति देना चाहिये। इस प्रकार से सुतृप्त होवे। ऐसा करने पर जब भी मृत होगा तो यमपुरी के महान् दुस्तर मार्ग में परम सुख से चला जाता है ।।२८।।

यावन्न दीवते जन्तोः श्राद्धञ्चैकादशाह्निकम् ।
स्वदत्तं परदत्तं वा नेहामुत्रोपतिष्टति ।।२९
त्रयोदश तथा सप्त पञ्च त्रीणि यथाक्रमम् ।
पददानानि कुर्वीत श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।३०
तिलपात्राणि कुर्वीत त्रीणि पञ्च च सप्त वा ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चद्गामेकाश्च प्रदापयेत् ।।३१
वामे चक्रं प्रकर्त्तव्यं त्रिशूलं दक्षिणे तथा ।
माल्यं दत्त्वा तथैवास्य वृषमेकं विसर्जयेत् ।।३२

एकोद्दिदष्टविधानेन स्वाहाकारेण बुद्धिमान् ।
कुर्य्यादेकादशाहं तु द्वादशाहं प्रयत्नतः ॥३३
सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्य्याच्छ्राद्धानि षोड़श ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु पददानानि दापयेत् ॥३४
कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रे तथाच्युतम् ।
वस्त्रेणाच्छाद्य तत्रस्थमर्घ्यं दद्याच्छुभैः फलैः ॥३५

जब तक एकादशवें दिन का श्राद्ध जन्तु को नहीं दिया जाता है चाहे वह अपने आप से ही किया जावे या दूसरे के द्वारा दिया जावे। इसके बिना यहाँ और परलोक में उपस्थित नहीं होता है ॥२६॥ त्रयोदश तथा सात–पाँच और तीन यथा क्रम श्रद्धा–भक्ति से युक्त होकर पदों का दान करना चाहिए ॥३०॥ तीन, पाँच अथवा सात तिल के पात्र बनावे और दान करे। पीछे ब्राह्मणों को भोजन करावे और एक गो का दान करे ॥३१॥ वाम भाग में चक्र बनावे और दक्षिण में त्रिशूल करे फिर माल्थ इसको देकर एक वृष का उत्सर्ग करना चाहिए ॥३२॥ बुद्धिमान् पुरुष को एकोदिष्ट विधान से स्वाहाकार से एकादशाह करना चाहिए तथा फिर प्रयत्न पूर्वक द्वादशाह करे ॥३३॥ सपिण्डी कर्म करने से अर्वाक् ही षोड़श श्राद्ध करे। ब्राह्मणों को भोजन करा कर उन्हें पदों का दान देवे ॥३४॥ कार्पास के ऊपर संस्थापित करके ताम्र के पात्र में अच्युत भगवान् को वस्त्र से आच्छादित करे, शुभ फलों से वहाँ पर स्थित को अर्घ्य देवे ॥३५॥

नावमिक्षुमयीं कुर्य्यात्पट्टसूत्रेण वेष्टितम् ।
कांस्यपात्रे घृतं स्थाप्य वैतरण्या निमित्तकम् ॥३६
नावमारोहयेद्गन्तुं पूजयेद्गरुड़ध्वजम् ।
आत्मवित्तानुसारेण तस्या दानमनन्तकम् ॥३७
भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम् ।
धर्मप्लवविहीनानां तारको हि जनार्दनः ॥३८
तिलंलौहं हिरण्यञ्च कार्पासं लवणं तथा ।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥३९

तिलपात्राणिकुर्वीत शय्यादानञ्च कारयेत् ।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।।४०
एवं यः कुरुते तार्क्ष्य पुत्रवानप्यपुत्रवान् ।
स सिद्धि समवाप्नोति यथा ते ब्रह्मचारिणः ।।४१
नित्यं नैमित्तिकं कुर्याद्यावज्जीवति मानवः ।
यत्किञ्चित् कुरुते धर्ममक्षय फलमाप्नुयात् ।।४२

एक इक्षुमयी नौका की रचना करावे । यह सूत्र से वेष्टित काँसे के पात्र में वैतरणी नदी के निमित्त घृत स्थापित करना चाहिए ।।३६।। उस नौका से गमन करने के लिये आरूढ़ करावे और भगवान् गरुड़-ध्वज का पूजन करे । अपने धन की शक्ति के अनुसार उसके अनन्त दान होते हैं ।।३९।। तिलपात्रों का दान करे और शय्या का दान करे । दीन, अनाथ और विशिष्टों को यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए ।।४०।। इस प्रकार से जो सम्पूर्ण विधि को साङ्ग सम्पादित किया करता है, हे तार्क्ष्य ! वह चाहे पुत्र वाला हो या अपुत्री हो, जिस तरह ब्रह्मचारी प्राप्त किया करते हैं वैसे ही सिद्धि को प्राप्त करता है ।।४१।। मनुष्य जब तक जीवित रहता है उसे सभी नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्म करने चाहिए। जो भी कुछ मनुष्य धर्म करता है उसका अक्षय फल प्राप्त किया करता है ।।४२।।

तीर्थयात्राव्रतानाञ्च श्राद्धे सांवत्सरादिके ।
देवतानां गुरूणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ।।४३
पुण्यं देयं प्रयत्नेन प्रत्यहं वर्द्धते खग ।
अस्मिन्यज्ञे हि यः कश्चिद्भूरिदानं प्रयच्छति ।।४४
तत्तस्य चाक्षयं सर्वं वेदिकायां यथा किल ।
यथा पूज्यतमा लोके यतयो ब्रह्मचारिणः ।।४५
तथैव प्रतिपूज्यन्ते लोके सर्वे च निश्चयशः ।
वरदोऽहं सदा तस्य चतुर्वक्त्रस्तथा हरः ।।४६
ते यान्ति परमान्लकानिति सत्यं वचो मम ।
पौर्णमास्याञ्च रेवत्यां नीलमेकं प्रमुञ्चयेत् ।।४७

संक्रान्तीनां सहस्राणि सूर्य्यपर्वशतानि च ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने ।।४८
वत्सतरी प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः पदानि च ।
तिलपात्राणि देयानि शिवभक्तद्विजेषु च ।।४६

तीर्थों की यात्रा–व्रत आदि को वार्षिक श्राद्ध में देवताओं के और गुरुओं के तथा माता–पिता के लिये जो किया जाता है देने के योग्य पुण्य प्रयत्न पूर्वक प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है। हे खग! इस वृषोत्सर्ग यज्ञ में जो कोई भी अधिक दान देता है वह सभी अक्षय हो जाता है जिस प्रकार से वेदिका में किया हुआ कर्म अक्षय होता है। जैसे लोक में यति वर्ग और ब्रह्मचारी गण पूज्यतम होते हैं वैसे ही ये दान देने वाले सभी लोक में पूजित हुआ करते हैं और मैं तथा ब्रह्मा एवं हर सदा ही उसको वरदान देने वाले होते हैं ।।४३-४६।। वे लोग सब परम श्रेष्ठ लोकों में गमन करते हैं—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य एवं ध्रुव है। पूर्णमासी तिथि के दिन और रेवती नक्षत्र में एक नील का विसर्जन करे ।।४७।। सहस्रों संक्रान्ति और सैकड़ों सूर्य पर्व करके जो फल प्राप्त होता है वही एक नील के विसर्जन करने का पुण्य—फल हुआ करता है ।।४८।। ब्राह्मणों को वत्सतरी का दान करना चाहिए और पद भी देवे—तिलों से परिपूर्ण पात्रों का दान करे। जो ब्राह्मण शिव के भक्त हों उनको दान करे ।।४६।।

उमा महेश्वरश्चैव परिधाप्य प्रयत्नतः ।
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।।५०
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ।
प्रेतत्वान्मोक्षमिच्छन्ति ये करिष्यन्ति स्वक्रियाम् ।।५१
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया स्वञ्चौर्ध्वं दैहिकम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापैर्विष्णुलोकं स गच्छति ।।५२
श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुड़ो हर्षमागतः ।
भूयः पप्रच्छ देवेशं कृत्वा चानतकन्धरम् ।।५३

उमा-महेश्वर का प्रयत्नपूर्वक परिधान करके अलसी-पुष्प के सदृश पीत वस्त्र धारी भगवान् गोविन्द को जो नमन करते हैं उनको कुछ भी भय नहीं होता। जो प्रेतत्व से छुटकारा पाने की इच्छा रखते हैं वे अपनी क्रिया को करेंगे ॥५०-५१॥ मैंने तुमको यह सब अपनी औध्र्व दैहिक क्रिया का पूर्ण वर्णन कर दिया है। इसका जो श्रवण करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में विष्णु लोक में जाता है ॥५२॥ इसका अतुल माहात्म्य को सुनकर गरुड़ बहुत ही हर्षित हुए और फिर अपनी कन्धरा आनत करके उसने वेवेश्वर से पूछा था ॥५३॥

५—औध्र्व दैहिक कर्मादि संस्कार

भगवन्ब्रूहि मे सर्वं यमलोकस्य निर्णयम् ।
प्रमाणं विस्तरं तस्य महात्म्यञ्च सुविस्तरम् ॥१
शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यमलोकस्य निर्णयम् ।
प्रमाणकानि सर्वाणि भुवनानि च षोडश ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ।
यमलोकस्य चाध्वा वै अन्तरो मानुषस्य च ॥३
सुकृत दुष्कृत वापि भुक्त्वा लोके यथार्जितम् ।
कर्मयोगात्तदा कश्चिद् व्याधिरुत्पद्यते खग ॥४
निमित्तमात्रः सर्वेषां कृतकर्यानुसारतः ।
यो यस्य विहितो मृत्युः स तं ध्रुवमवाप्नुयात् ॥५
कर्मयोगात्तदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः ।
तदाभूमिगतं कुर्य्याद्गोमयेनोपलिप्य च ॥६
तिलान्दर्भां विकीर्य्याथ मुखे स्वर्णं विनिक्षिपेत् ।
तुलसीसन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा ॥७
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम्
शलाकास्वर्णविक्षेपः प्रेतप्राणगृहेषु च ॥८

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! अब आप कृपा करके मुझे यमलोक का प्रमाण—विस्तार और उसका विस्तृत महात्म्य बतलाइये ॥१॥ श्री

भगवान् ने कहा—हे तार्क्ष्य ! मैं अब यमलोक का निर्णय तुम्हें श्रवण कराता हूँ। ये सोलह भुवनों का प्रमाण है। इस मनुष्य लोक से यमलोक की यात्रा का मार्ग छयासी हजार योजन के प्रमाण वाला है। इतना लम्बा इन दोनों लोकों का अन्तर होता है ।।२-३।। इस लोक में जो भी सुकृत या दुष्कृत किया है उसका फल भोग करके हे खग ! कर्म के योग से उसे मृत्यु के प्राप्त होने के लिये कोई रोग उत्पन्न हो जाया करता है ।।४।। किये हुए कर्म के अनुसार सभी को कुछ व्याधि आदि मृत्यु का एक निमित्त मात्र हुआ करता है। जिसको जिस भी समय में मृत्यु के आने का योग विदित है वह उसको उसी समय में निश्चित रूप से प्राप्त होता है ।।५।। कर्मों के योग से यह शरीरधारी जीव अवश्य ही इस अपने पाँच भौतिक शरीर का त्याग किया करता है। उस समय में जबकि इस शरीर को त्याग कर परलोक गमन का समय प्राप्त होता है गोबर से भूमि का लेपन कर उसे भूमि पर ही ले लेना चाहिए ।।६।। इधर-उधर भूमि में तिल और डाभों को फैला देना चाहिये और मृत्यु को प्राप्त होने वाले के मुख में सुवर्ण डाल देना चाहिए। उसके समीप में तुलसी को रक्खे तथा भगवान् शालग्राम को विराजमान करे। इस प्रकार से सामवेद के सूक्तों का श्रवण कराते हुए जो मृत्यु होती है वह मुक्ति को प्रदान कराने वाली हुआ करती है। प्रेत के प्राण गृहों में सुवर्ण की शलाकाओं का विक्षेप करे ।।७-८।।

एका वक्त्रे तु दातव्या घ्राणयुग्मे तथा पुनः ।
अक्ष्णोश्च कर्णयोश्चैव द्वे द्वे देये यथाक्रमम् ।।९

अथ लिङ्गे तथा चैका चैका ब्रह्माण्डके क्षिपेत् ।
करयुग्मे च कण्ठे च तुलसीञ्च प्रदापयेत् ।।१०

वस्त्रयुग्मञ्च दातव्यं कुंकुमैश्चाक्षतैर्यजेत् ।
पुष्पमालायुतं कुर्य्यादन्यद्वारेण सन्नयेत् ।।११

पुत्रस्तु बान्धवैः सार्द्धं विप्रस्तु पुरवासिभिः ।
पितुः प्रेतगतं पुत्रः स्कन्धमारोप्य बान्धवैः ।।१२

गत्वा श्मशानदेशे तु प्राङ्मुखञ्चोत्तरामुखम् ।
अदग्धपूर्वा या भूमिश्चितां तत्रैव कारयेत् ॥१३
श्रीखण्डतुलसीकाष्ठसमित्पालाशसम्भवाम् ।
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् ॥१४

एक शलाका को मुख में देवे। दो घ्राणों में देवे। आँखों में और कानों में दो-दो यथाक्रम रक्खे। इसके पश्चात् एक लिङ्ग में देवे और एक को ब्रह्माण्ड में विक्षिप्त कर देवे। मृत्यु को प्राप्त होने वाले के दोनों हाथों में और कण्ठ में तुलसी रक्खे।।९-१०।। उस मृत को दो वस्त्र धारण करावे और कुंकुम तथा अक्षतों के द्वारा उसका यजन करे। पुष्पों की मालाओं से युक्त करके उसे अन्य द्वार से भली भांति ले जाना चाहिए ।।११।। पुत्र को अपने बान्धवों के साथ विप्र को पुरवासियों के साथ प्रेत-गत पिता को कन्धों पर आरोपित करे और इस रीति से उसे श्मशान में पहुंचावे ।।१२ वहाँ श्मशान में पहुंच कर जो भूमि पहले अदग्ध हो वहाँ पर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख दाह करने के लिए चिता की रचना करे ।।१३।। उस चिता में श्री खण्ड–तुलसी काष्ठ और पलाश की समिधाओं को लगा कर निर्मित करे। इस प्रकार से सामादि सूक्तों के पाठ पूर्वक जो मृत्यु एवं दाह कर्म होता है वह मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है।।१४।।

विमलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जड़ताङ्गते ।
प्रचलन्ति ततः प्राणा यामैर्निकटवर्त्तिभिः ।।१५
वीभत्सं दारुणं रूपं प्राणैः कण्ठसमाश्रितैः ।
फेनमुद्गिरते सोऽपि मुखं लालाकुलं भवेत् ।।१६
दुरात्मानश्च ताड्यन्ते किङ्करै पाशवेष्टिताः ।
सुखेन कृतिनस्तत्र नीयन्ते नाकनायकैः ।।१७
दुःखेन पापिनो यान्ति यममार्गे सुदुर्गमम् ।
यमश्चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत् ।।१८
पुण्यकर्मरतान्सम्यक्स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ।
आहूय पापिनः सर्वान्यमो दण्डेन तर्जयेत् ।।१९

प्रलयाम्बुदनिर्घोषो ह्यञ्जनाद्रिसमप्रभः ।
महिषस्थो दुराराध्यो विद्युतेजःसमुद्युतिः ।।२०
योजनत्रयविस्तारदेहो रुद्रोऽतिभीषणः ।
लोहदण्डधरो भीमः पाशपाणिर्दुराकृतिः ।।२१

निमल इन्द्रियों के समूह और चैतन्य के जड़ता को प्राप्त होने पर इसके पश्चात् निकटवर्त्ती यामों से प्राण प्रचलित हो जाते हैं ।।१५।। जिस समय में निकलने वाले प्राण कण्ठगत होते हैं उस मृत होने वाले जन्तु का रूप बहुत ही वीभत्स और दारुण हो जाता है । उसके मुख से झाग निकलने लगते हैं और मुख में लार भर जाया करती है ।।१६।। जो दुष्ट आत्मा वाले होते हैं वे यम के दूतों द्वारा ताड़ित होते हैं और पाशों में बाँध लिये जाया करते हैं और जो पुण्यात्मा होते हैं वे स्वर्ग के दूतों के द्वारा बहुत ही सुख पूर्वक वहाँ से ले जाये जाया करते हैं ।।१७।। पापी लोग बहुत ही कष्ट सहन करते हुए उस यमपुरी के महान् विशाल मार्ग की यात्रा पूरी किया करते हैं । यह यम मार्ग बहुत दुर्गम होता है । वहाँ पर यमराज चार भुजाओं वाले विराजमान् रहते हैं जो अपने हाथों में शङ्ख—चक्र और गदा आदि आयुधों को धारण किये रहते हैं ।।१८।। जो पुण्य कर्मों में रति रखने वाली आत्माऐं होती हैं उनसे वे बहुत ही स्नेह के साथ एक मित्र की भाँति आचरण किया करते हैं । जो पापी होते हैं उन्हें उस सुदुर्गम यमराज के मार्ग में बड़े ही दुःख के साथ जाना पड़ता है और उन्हें यमराज अपने निकट बुलाकर दण्ड से तर्जित किया करते हैं ।।१९।। यमराज की ध्वनि ऐसी भयानक होती है जैसे प्रलय काल में होने वाले मेघ की गर्जना होती है । उसके शरीर की कान्ति अंजन गिरि के समान एक दम कृष्ण वर्ण वाली है—महिष (भैंसा) उनका वाहन है बहुत ही कठिनाई के साथ उनके सामने ठहरा जाता है तथा विद्युत के तेज के सदृश उनके शरीर की द्युति होती है ।।२०।। उसके शरीर का विस्तार तीन योजन (१२ कोश) के प्रमाण वाला है, यमराज का स्वरूप अत्यन्त रौद्र एवं भीषण होता है । हाथ में एक लोहे का दण्ड धारण किये रहते हैं—परम भयानक और पाश हाथ

में रखने वाले हैं। यमराज की आकृति बहुत ही भय देने वाली होती है ॥२१॥

रक्तनेत्रोऽतिभयदो दर्शनं याति पापिनाम् ।
अंगुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन्कलेरात् ॥२२
यदैव नीयते दूतैर्याम्यैर्वीक्षन् स्वकं गृहम् ।
निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम् ॥२३
अस्पृश्यं जायते तूर्णं दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम् ।
त्रिधावस्थाऽस्य देहस्य क्रिमिविड्भस्मरूपतः ॥२४
को गर्वः क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर्नरैः ।
दानं वित्ताद्यो नकुर्य्यात्कीर्त्तिधर्मौ तथायुषः ॥२५
परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत् ।
तस्यैवं नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति हि ॥२६
दर्शयन्ति भय तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः ।
शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् त्वं यास्यसि यमालयम् ॥२७
कुम्भीपाकादिनरकान्त्वां नयिष्यामि माचिरम् ।
एवं वाचस्तदा शृण्वन्बधूनां रुदितं तथा ॥२८
उच्चैर्हाहेति विलपन्नीयते यमकिङ्करैः ।
मृतस्योत्क्रान्तिसमयात्षट्पिण्डान् क्रमतो ददेत् ॥२९
मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे तार्क्ष्य कारयेत् ।
विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने च षट् ॥३०

यमराज के नेत्र रक्त वर्ण के होते हैं जिन्हें देखने से ही अत्यन्त भय लगता है। पापी लोग उन्हें देखते ही डर से काँपने लगते हैं। यह एक अंगुष्ठ मात्र कलेवर वाले यमराज के सामने जन्तु हाहाकार करने लगते हैं ॥२२॥ यमराज के दूतों के द्वारा जिस समय अपने घर को देखते हुए इसे ले जाया जाता है प्राणों से मुक्त यह शरीर अत्यन्त बुरा एवं चेष्टा हीन हो जाया करता है ॥२३॥ प्राणों के निकलते ही यह शरीर शीघ्र स्पर्शन करने के योग्य हो जाता है। इससे दुर्गन्ध निकला करती है और सभी को यह बहुत बुरा लगने लगता है। इस मृत शरीर की फिर तीन

प्रकार की दशा होती है-कृमि-विट और भस्म ये तीन अवस्था हुआ करती हैं। कीड़े हो जाते हैं या कोई जानवर खाकर विड् (मल) बनता है अथवा जला देने पर इसकी भस्म हो जाती है ॥२४॥ हे तार्क्ष्य ! एक ही क्षण में अच्छा-भला मनुष्य विध्वंस हो जाता है। ऐसे क्षण भर में विध्वंस को प्राप्त होने वाले मनुष्यों का गर्व करना व्यर्थ ही है। ऐसे क्षणभंगुर शरीर का अभिमान क्या करना ? जो अपने धन से दान नहीं करता और उस मनुष्य शरीर की आयु से कीर्त्ति तथा धर्म का अर्जन नहीं करता उस शरीर से क्या लाभ ? इस सार शून्य शरीर से दूसरों की भलाई करना एक सार का संग्रह है उसे अवश्य ही करना चाहिए। इस प्रकार से यमपुरी को ले जाये जाने वाले इसको यम के दूत बुरी तरह धमकाते हैं और फटकार लगाया करते हैं ॥२५-२६॥ वे पापियों को बारम्बार नरकों का अत्यन्त तीव्र भय दिखाते हैं। वे कहा करते हैं- "अरे ओ दुष्टात्मा ! शीघ्र चल, तुझको यमराज के पुर में जाना होगा ॥२७॥ हम तुझको शीघ्र ही कुम्भीपाक आदि नरकों में ले जायेंगे।" इस तरह से यमदूतों से फटकार खाने वाला वह अपने वियुक्त बन्धु-बान्धवों का इधर घर में होने वाले रुदन को सुनता रहता है। यह भी जब यम दूतों के द्वारा पाश से बाँध कर बरबस ले जाया जाता है तो हाय हाय करके बहुत ऊँचे स्वर से विलाप करता है। उसे अपने शरीर को और भरे पूरे घर को जिसमें सभी परिवारी लोग हैं छोड़ते हुए महान् क्लेश होता है। मृत की उत्क्रान्ति के समय में क्रम से छः पिंड देने चाहिए ॥२८-२९॥ जहाँ उसकी मृत्यु होती है उस स्थल पर—घर के द्वार पर—आँगन में—बीच में जहाँ उसे विश्राम देते हैं वहाँ काष्ठों के चयन और संचयन में इस तरह से छः जगह पिंड देना आवश्यक है ॥३०॥

शृणु तत्कारणं तार्क्ष्य षट्पिण्डपरिकल्पने।
मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३१
तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता।
द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३२

तेन दत्तेन तुष्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः।
चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदीयते ॥३३
तेनतत्रोपघाताय भूतकोटिः पलायते।
विश्रामे भूतसंज्ञोऽयं तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३४
पिचाशा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशिवासिनः।
तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ॥३५

हे तार्क्ष्य ! इन उपर्युक्त छै स्थलों पर पिंड देने का क्या कारण है ? उसका अब तुम श्रवण करो। मृत के स्थान पर उसका "शव" नाम होता है अतएव उस नाम से पिंड दिया जाता है ॥३१॥ इसके देने से वह भूमि तुष्ट होती है। द्वार देश में इसलिये पिंड प्रदान किया जाता है कि उसके अधिष्ठातृ देवता तुष्टि को प्राप्त होते हैं। मार्ग में वह पान्थ होता है इसलिये उसी नाम से पिंड दिया जाता है ॥३२॥ इससे गृह के वास्तु—अधिदेवता सन्तुष्ट होते हैं। आँगन में उसका खेचर नाम है अतः उसी का उद्देश्य करके पिंड यातन किया जाता है। ३३॥ इससे वहाँ उपघात के लिये भूतकोटि पलायन करती है। विश्राम में यह भूत संज्ञा वाला होता है अतः इसी नाम से पिंड प्रदान किया जाता है ॥३४॥ पिचास—राक्षस-यक्ष और अन्य जो दिशिवासी होते हैं उस होतव्य देह के अयोग्यत्व करने वाले नहीं होते हैं ॥३५

चितामोक्षप्रभृति च प्रेतत्वमुपजायते।
चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर ॥३६
केऽपि तं प्रेतमेवाहुर्यथा कल्पविदस्तथा।
तदा हि तत्र तत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते ॥३७
इत्येवं पञ्चपिण्डैर्हि शवस्याहुतियोग्यता।
अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ॥३८
उत्क्रामे प्रथमं पिण्डं तथा चार्द्धपथेन च।
चितायां तु तृतीयं स्यात्त्रयः पिंडाश्च कल्पिताः ॥३९
विधाता प्रथमे पिंडे दितीये गरुड़ध्वजः।
तृतीये यमदूताश्च प्रयोगः परिकीर्त्तितः ॥४०

दत्त तृतीये पिण्डेऽस्मिन्देहदोषैः प्रमुच्यते ।
आधारभूतजीवस्य ज्वलनं ज्वलयेच्चिताम् ॥४१
संसृज्य चोपलिप्याथ उल्लिख्योद्धृत्य वेदिकाम् ।
अभ्युक्षीय समाधाय वह्निं तत्र विधानतः ॥४२

चिता मोक्ष आदि प्रेतत्व उपजात होते हैं अतः चिता में कुछ लोग साधक नाम हे खगेश्वर कहा करते हैं कुछ लोग उसको प्रेत ही कहते हैं ये कल्प के वेत्ता होते हैं उस समय में भी वहाँ 'प्रेत' नाम से पिंड का प्रदान किया जाता है ॥३६-३७॥ इस प्रकार ये पाँच पिंड शव की आहुति की योग्यता के होते हैं अन्यथा ये जो पूर्व में कहे गये हैं वे सब उपघात के लिये हुआ करते हैं ॥३८॥ उत्क्रामण में शव के उठाने के समय में प्रथम पिंड होता है तथा दूसरा पिंड मार्ग के आधे समाप्त हो जाने पर दिया जाता है,तीसरा पिंड चिता में समारूढ़ करने के समय दिया करते हैं। इस तरह पिंड कल्पित किये जाते हैं। प्रथम पिंड में विधाता—द्वितीय पिंड गरुड़ध्वज और तीसरे पिंड में यमदूत—इस प्रकार से प्रयोग कहा गया है ॥३९-४०॥ इस तीसरे पिंड के देने पर वह देह के सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो जाया करता है। जीव के आधार भूत इस देह को फिर अग्नि चिता में जला दिया करता है ॥४१॥ संसृजन करके—उपलेपन को और उल्लेखन करके उद्धरण करे फिर वेदिका का अभ्युक्षण वहाँ पर वह्नि का समाधान करे और विधान के सहित लावे ॥४२॥

पुष्पाक्षतैः सुसम्पूज्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम् ।
त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोक परिपालकः ॥४३
संहारकारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय
एवं क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत् ॥४४
अर्द्धं देहे तथा दग्धे दद्यादाज्याहुतिं ततः ।
लोमभ्यस्त्वनुवाक्येन कुर्याद्धोमं यथाविधि ॥४५
चितामारोप्य तं प्रेतं हुनेदाज्याहुतिं ततः
यमाय चान्तकायेति मृत्यवे ब्रह्मणे तथा ॥४६

जातवेदोमुखे देया ह्येका प्रेतमुखे तथा ।
ऊर्ध्वं तु ज्वालयेद्वह्निं पूर्वभागे चितां पुनः ।।४७

अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलति पावकः ।।४८
एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम् ।
ततो दाहः प्रकर्त्तव्यः पुत्रेण किल निश्चितम् ।।४९

फिर क्रव्यादि संज्ञा वाले देव का पुष्प—अक्षतों से भली भाँति पूजन करे और प्रार्थना करे—आप ही मृत्यु के करने वाले हैं और आप इस जगत् की योनि हैं। आप इस समस्त लोक के परिपालक हैं आप संहार के करने वाले हैं। इससे हमारी यह विनती है कि इस मृतक की आत्मा को स्वर्ग में ले जाइये इस रीति से क्रव्यादि की अभ्यर्चना एवं प्रार्थना करके फिर शरीर की आहुति करे ।।४४।। जब मृतक का आधा देह जल जावे तो घृत की आहुति देवे। 'लोमस्यः'—इस अनुवाक्य से यथाविधि होम करना चाहिए ।।४५।। उस प्रेत को चिता पर समारोपित करके घृत की आहूतियां द्वारा हवन करे। यम के लिए—अन्तक, मृत्यु और ब्रह्मा के लिए आहूतियाँ देवे ।।४६।। एक आहूति जात वेदा (अग्नि) के मुख में देवे तथा एक प्रेत के मुख में देनी चाहिए। इसके ऊपर अग्नि को जलावे और चिता के पूर्व भाग में अग्नि को जलाना चाहिए ।।४७।। इससे तुम अधिजात हुए हो सो यह पुनः जायमान हो। यह स्वर्ग के लिये और लोक के लिए स्वाहा है अर्थात् आहुति समर्पित की जाती है। पावक ज्वलित होता है ।।४८।। इस प्रकार से मन्त्र के सहित तिलों से मिश्रित घृत की आहुति देनी चाहिए। इसके अनन्तर दाह पुत्र के द्वारा निश्चित रूप से करना चाहिए ।।४९।।

रोदितव्यं ततो गाढ़ं एवं तस्य सुखं भवेत् ।
दाहस्यानन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम् ।।५०
प्रेतपिंडं प्रदद्याच्च दाहार्त्तिशमनं खग ।
तेन दूताः प्रतीक्षन्ते त प्रेतं बान्धवार्थिनम् ।।५१

दद्यादनन्तरं कार्य्यं पुत्रैः स्नान सचेलकम् ।
तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रेण चाश्मनि ॥५२
ततो जनपदैः सर्वैर्दातव्या करताड़नी ।
विष्णुर्विष्णुरिति ब्रूयाद्गुणैः प्रेतमुदीरयेत् ॥५३

इसके पश्चात् खूब गहराई के साथ रुदन करे। इस प्रकार से उस मृतक जन्तु को सुख होता है। दाह करने के अनन्तर वहाँ पर सञ्चयन की क्रिया का सम्पादन करे ॥५०॥ हे खग ! प्रेत को पिंड प्रदान करे जोकि दाह की पीड़ा का विनाश करने वाला होता है। इससे दूत प्रतीक्षा किया करते हैं उस बान्धवों के अर्थी प्रेत की अतएव इसे बाद में देना चाहिऐ। इसके पश्चात् पुत्रों को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए। इसके पश्चात् नाम और गोत्र का उच्चारण करके तिलोदक देवे। घर में सब जन पदों के द्वारा करताड़नी देनी चाहिए। तीन बार विष्णु का उच्चारण करे और प्रेत के गुणों का उदीर्ण (बखान) करना चाहिए ॥५१-५३॥

जनाः सर्वे समास्तस्य गृहमागत्य सर्वशः ।
द्वारस्य दक्षिणे भागे गोमयं गोरसर्षपान् ॥५४
निधाय वरुणं देवमन्तर्द्धाय स्ववेश्मनि ।
भक्षयेन्निम्बपत्राणि घृतं प्राश्य गृहं व्रजेत् ॥५५
केचिद्दुग्धेन सिञ्चन्ति चिन्तास्थानं खगेश्वर ।
अश्रुपातं न कुर्वीत दत्त्वा चाथ जलाञ्जलिम् ॥५६
श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यं हि क्रिया कार्य्या स्वशक्तितः ॥५७
दुग्धश्च मृन्मये पात्रे तोयं दद्याद्दिनत्रयम् ।
सूर्य्येऽस्तमागते तार्क्ष्य बलभ्याश्चत्वरे तथा ॥५८
बद्ध संमूढहृदयो देहमिच्छन्कृतानुगः ।
श्मशानश्चत्वरं गेहं वीक्षन्याम्यैः स नीयते ॥५९
गर्त्त पिंडान्दशाहानि प्रदद्याच्च दिने दिने ।
जलांजल्यः प्रदातव्याः प्रेतमुद्दिश्य प्रत्यहम् ॥६०

तावद्वृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत्पिडं दशाह्निकम् ।
पुत्रेण हि क्रिया कार्य्या भार्य्यया तदभावतः ॥६१

फिर सभी मनुष्य जो दाह कर्म के लिये श्मशान तक गये थे समान रूप से घर पर लौट कर आवें । द्वार के दक्षिण भाग में गोवर और श्वेत सरसों रख कर घर के भीतर वरुणदेव का अन्तर्धान करे । नीम के पत्रों को भक्षण करे और घृत का पान करके घर को जाना चाहिए ॥५४-५५॥ हे खगेश्वर ! कुछ लोग दूध से चिता का सिञ्चन करते हैं । जलाञ्जलि देकर फिर अश्रुपात न करे ॥५६॥ बान्धवों के द्वारा छोड़े हुए श्लेष्माश्रुओं को प्रेत विवश होकर खाता है । इसलिये रुदन नहीं करे और अपनी शक्ति से समस्त क्रिया का सम्पादन करे ॥५७॥ मिट्टी के पात्र में दुग्ध और जल तीन दिन पर्य्यन्त देवे । हे तार्क्ष्य ! सूर्य के अस्त हो जाने पर वलभी में तथा चत्वर में इस क्रिया को करे ॥५८॥ पाशों से बद्ध एवं संमूढ़ हृदय वाला कृतानुग होकर देह की इच्छा रखता हुआ श्मशान चत्वर और घर को देखता हुआ यम के दूतों के द्वारा ले जाया जाता है ॥५९॥ दिन-दिन में अर्थात् प्रतिदिन गर्त्त पिण्डों को दश दिन तक देवे और प्रेत का उद्देश्य करके प्रतिदिन जलाञ्जलि देनी चाहिये ॥६०॥ तब तक वृद्धि करे जब तक दशाह्निक कर्म होवे अर्थात् दशवें दिन में किये जाने वाली क्रिया होवे । यह सभी क्रिया पुत्र के द्वारा ही की जाये । यदि पुत्र न हो तो उसके अभाव में भार्या को करनी चाहिये ॥६१॥

तदभावे च शिष्येण शिष्याभावे सहोदरः ।
श्मशाने चान्यतीर्थे वा जलं पिंडञ्च दापयेत् ॥६२
ओदनानि च सक्तूंश्च शाकमूलफलादि वा ।
प्रथमेऽहनि यद्दद्यातद्दद्यादुत्तरेऽहनि ॥६३
दिनानि दश पिंडानि कुर्वन्त्यत्र सुतादयः ।
प्रत्यहं ते विभाज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम ॥६४
भागद्वयं तु देहार्थे प्रीतिदं भूतपञ्चकम् ।
तृतीयं यमदूतानाञ्चतुर्थेनोपजीवति ॥६५

अहोरात्रैस्तु नवभिः प्रेतो निष्पत्तिमाप्नुयात् ।
जन्तोर्निष्पन्नदेहस्य दशमे तु भवेत्क्षुधा ॥६६
न द्विजो नैव मन्त्रश्च न स्वधा वाहनाशिषः ।
नामगोत्रे समुच्चार्य्य यद्दत्तञ्च दशाह्निकम् ॥६७
दग्धे देहे पुनर्देहं प्राप्नोत्येव खगेश्वर ।
प्रथमेऽहनि यः पिंडस्तेन मूर्द्धा प्रजायते ॥६८
ग्रीवास्कन्धौ द्वितीये तु तृतीये हृदयं भवेत् ।
चतुर्थेऽह्नि भवेत्पार्ष्णिर्नाभिर्वै पञ्चमे तथा ॥६९
षष्ठे च सप्तमे चैव कटिर्गुह्यं प्रजायते ।
ऊरू चाष्ठमके चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा ॥७०
नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि भवेत्क्षुधा ।
देहभूतः क्षुधाविष्टो गृहद्वारे स तिष्ठति ॥७१

भार्या भी न हो तो शिष्य को क्रिया करनी चाहिये । शिष्य के अभाव में सहोदर भाई करे । श्मशान में, अन्य तीर्थ में जल और पिण्ड दान करे ॥६२॥ ओदन, सत्तू, शाक—मूल और फल प्रथम दिन में जो खावे वही उसके दूसरे दिन भी खाना चाहिये ॥६३॥ यहाँ पर सुत आदि को दश दिन तक पिण्ड करे । प्रतिदिन हे खगोत्तम ! चतुर्भागों में उनका विभाग किया जाता है ॥६४॥ दो भाग तो देह के लिये होते हैं जो पाँच भूतों के प्रीति देने वाले हैं । तीसरा भाग यम के दूतों का होता है और चौथे से उपजीवित होता है ॥६५॥ नौ अहोरात्रों में प्रेत निष्पत्ति को प्राप्त होता है । जब जन्तु की देह की बिष्पत्ति हो जाती है तो दशम दिन में इसको क्षुधा लगा करती है ॥६६॥ उसमें द्विज, मन्त्र, स्वधा अथवा आशिष कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है । केवल नाम और गोत्र का उच्चारण करके दशवें दिन में जो भी कुछ दिया जावे हे खगेश्वर ! देह के दग्ध हो जाने पर वह प्रेत पुनः देह की प्राप्ति किया करता है । प्रथम दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उससे इसका मस्तक उत्पन्न होता है ॥६७-६८॥ द्वितीय में गरदन और कन्धे होते हैं । तीसरे में हृदय बन जाता है । चौथे दिन में पार्ष्णि, पाँचवें में

नाभि, छटे और सातवें में कटि (कमर) और गुह्य बनते हैं। आठवें दिन में दिये हुए पिण्ड से जानु (घुटने) और पैर तथा नवम दिन में यह बन जाया करते हैं ॥६९-७०॥ इस प्रकार से नौ पिण्डों से वह प्रेत अपने पूरे देह को प्राप्त करके दशम दिन में उसे भूख उत्पन्न हो जाती है। वह प्रेत देहधारी के स्वरूप में होकर क्षुधा से आविष्ट होता हुआ घर के द्वार पर स्थित हो जाया करता है ॥७१॥

दशमेऽहनि यः पिंडस्तं दद्यादामिषेण तु।
यतो देहः समुत्पन्नः प्रेतस्तीव्रक्षुधान्वितः ॥७२
अतस्त्वाभिषवाह्यं तु क्षुधा तस्य न नश्यति।
एकादशाहं द्वादशाहं प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम् ॥७३
योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्द समुच्चरेत्।
दीपमन्नं जलं वस्त्रमन्यद्वा दीयते तु यत् ॥७४
प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्ददायकम्।
त्रयोदशेऽह्नि वै प्रेतो नीयते च महापथे ॥७५
पिण्डजं देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वितः।
मार्गे गच्छति स प्रेतो ह्यसिपत्रवनान्विते ॥७६
क्षुत्पिपासार्दितो नित्यं यमदूतैः प्रपीड़ितः।
अहन्यहनि स प्रेतो योजनानां शतद्वयम् ॥७७
चत्वारिंशत्तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति।
गृहीतो यमपाशैस्तु जनो हाहेति रोदिति ॥७८
स्वगृहं सम्परित्यज्य याम्यं पुरमनुव्रजेत्।
क्रमेण गच्छति सः प्रेतः पुरं वैवस्वतं शुभम् ॥७९

दशम दिन में जो आमिष से पिण्ड देवे तो जिससे देह समुत्पन्न हुआ है वह प्रेत तीव्र क्षुधा से युक्त हो जाता है ॥७२॥ इसलिये आमिष से आवाह्य उसकी भूख नष्ट नहीं हुआ करती है। ग्यारहवें दिन में वह प्रेत दो दिन खाया करता है ॥७३॥ स्त्री हो या पुरुष उसको प्रेत शब्द से ही उच्चारण करे। दीप, अन्न, जल, वस्त्र अथवा अन्य जो कुछ भी दिया जाता है, प्रेत इस शब्द से जो कुछ भी दिया जाया करता है

उससे उस मृत प्राणी को बहुत आनन्द उत्पन्न होता है। तेरहवें दिन में वह प्रेत उस यमपुरी के विशाल मार्ग में ले जाया जाता है ।।७४-७५।। पिण्डों से समुत्पन्न देह को प्राप्त कर दिन-रात भूख से युक्त असि पत्र के वन से संयुत उस मार्ग में वह प्रेत जाता है ।।७६।। वह नित्य ही भूख, प्यास से पीड़ित होकर यम के दूतों से सताया जाता है। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ योजन तक चला करता है। इस तरह सैंतालीस दिन-रात में यह चलकर जाता है। यम के पाशों से गृहीत होता हुआ वह हाहाकार करके रोया करता है ।।७७-७८।। अपने घर का त्याग करके यम के पुर को जाया करता है। इस प्रकार से क्रम से यह प्रेत धर्मराज के उस शुभ नगर को जाता है ।।७९।।

याम्यं सौरिपुरं सुरेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमं।
क्रूरं क्रौञ्चपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्।
नानाक्रन्दनपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं।
शीताढ्यं बहुभीति धर्मभवनं याम्यं पुरञ्चाग्रतः ।।८०
त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते यमकिङ्करैः।
तस्मिन्मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव कर्कटः ।।८१
तथैव स व्रजन्मार्गे पुत्र पुत्र इति ब्रुवन्।
हाहेति क्रन्दते नित्यं कीदृशं तु मया कृतम् ।।८२
मानुषत्वं लभे कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति।
महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ।।८३
तच्च प्राप्य न प्रदत्तं याचकेभ्य स्वकं धनम्।
पराधीनमभूत्सर्वमिति ब्रूते स गद्गदः।
किङ्करैः पीड्यतेऽत्यर्थं स्मरते पूर्वदैहिकम् ।।८४
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुराकृतं कर्मसदैवभुज्यतेशरीर हे निस्तरयत्वयाकृतम् ।।८५

वह यमराज का पुर, सौरि नगर अर्थात् सूर्यपुर, सुरेन्द्र का भवन, गन्धर्वों के शैल का आगम क्रूर क्रौञ्च का पुर विचित्र भवनों वाला है जहाँ बहुत-सी आपत्तियाँ भरी हुई हैं और परम दुःख देने वाला है।

अनेक प्रकार के आक्रन्दों (रुदन) से पूर्ण वह पुर है जहाँ सुतप्त भवन हैं और वह रौद्र है। बराबर पानी की वर्षा होती है, शीत से युक्त, बहुत से भयों से परिपूर्ण, घाम से युक्त जिनमें भवन हैं ऐसा वह यमराज का नगर आगे मिलता है ॥८०॥ तेरहवें दिन में यह प्रेत वहाँ ले जाया जाता है और यम के दूत उसे ले जाया करते हैं। उन विशाल बड़े लम्बे मार्ग में कर्कट की भाँति पकड़ा हुआ अकेला ही जाया करता है ॥८१॥ उस मार्ग में वह जाता हुआ 'हा पुत्र ! हा पुत्र !'–इस तरह से विलाप करता हुआ और हाहाकार के स्वर में रुदन करता हुआ नित्य जाता है और कहता रहता है कि यह मैंने कैसा पाप किया है ? जिससे यह कष्ट मुझे हो रहा है ॥८२॥ अब मुझे फिर वह मनुष्य शरीर कैसे प्राप्त होगा ? यही कहता हुआ वह दौड़ लगाता जाता है। बहुत ही बड़े पुण्यों के योग से यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ करता है ॥८३॥ मैंने इस मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके भी याचकों को अपना धन दान में नहीं दिया था। अब तो सभी कुछ पराये अधीन हो गया है, अब मैं क्या कर सकता हूँ ?—ऐसे वह गद्गद होकर बराबर बोलता रहा करता है। यम के दूतों के द्वारा वह खूब पीड़ित किया जाता है तब वह अपने पहिले देह की सब बातों का स्मरण किया करता है ॥८४॥ इस सुख-दुःख का दूसरा अन्य कोई भी देने वाला नहीं है। दूसरा हमें दुःख देता है—यह विचार एक कुबुद्धि का ही है। यह प्राणी पहिले जन्म में किये हुए कर्मों का फल सदा भोगता है। हे शरीर ! तूने जो किया है उसे अब भोग। यह सभी तेरा ही किया हुआ है ॥८५॥

मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।
नसेवितंगाङ्गमहोमहाजलंशरीरहेनिस्तरयत्वयाकृतम् ॥८६

जलाश्रयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे।
गोतृप्तिहेतोर्नकृतंहिगोचरंशरीरहेनिस्तरयत्वयाकृतम् ॥८७

ननित्यदानंनगवाह्निकंकृतंनवेददानंनचशास्त्रपुस्तकम्।
पुरानइष्टोनचसेवितोऽध्वाशरीरहेनिस्तरयत्वयाकृतम् ॥८८

मासोपवासैर्न न शोधितं वपुश्चान्द्रायणैर्वा नियमैश्च सुव्रतैः।
नारीशरीरंबहूदुःखभाजनंलब्धंमयापूर्वकृतैर्विकर्मभिः ॥८६
उक्तानिवाक्यानिमयानराणांमत्तःशृणुष्वावहितोहिपक्षिन।
स्त्रीणाञ्चदेहंत्ववलम्ब्यदेहीब्रवीतिकर्माणिकृतानिपूर्वम् ॥६०

उसे उस समय में यह ज्ञान होता है और फिर पश्चात्ताप किया करता है कि मैंने कभी कुछ भी दान नहीं दिया—मैंने अग्नि में हवन भी नहीं किया—कोई भी तपश्चर्या नहीं की किसी पर्वत पर या सागर तट तथा गुफा में बैठकर कुछ तप ही कर लेता। कभी मैंने गंगा का जैसा महा पावन जल का सेवन भी नहीं किया था। हे शरीर! तूने जैसा भी किया है उसे अब तू भोग। ये सब तेरे ही किये हुए का फल है ॥८६॥ मैंने किसी निर्जल स्थान में कोई जलाशय नहीं बनवाया है जिसमें मनुष्य, पशु और पक्षी सब जलपान कर सकते। गायों की तृप्ति के लिए मैंने गोचर भूमि भी नहीं बनाई थी। हे शरीर! तूने जैसा किया है अब उसका निस्तारा तू स्वयं ही कर ॥८७॥ मैंने नित्य कुछ भी दान नहीं किया, न मैंने गौओं का आह्निक ही कभी किया था। कभी वेदों का दान नहीं किया, न मैंने कभी किसी भी शास्त्र की पुस्तकों का ही दान किया है। मैंने पहिले कभी किसी का इष्ट नहीं किया और न किसी की सेवा ही की है। अब तक मैंने ऐसे मार्ग का कभी गमन नहीं किया था। हे शरीर! तूने जैसा भी जो कुछ किया है उसका फल अब तुझे भोगना है ॥८८॥ मासों के उपवास के द्वारा मैंने कभी अपने शरीर का शोधन नहीं किया। मैंने चान्द्रायण आदि का नियम एवं व्रतों के करने का कष्ट नहीं उठाया था। मैंने बहुत-से दुःखों का आधार नारी के शरीर को पूर्वकृत विकर्मों से प्राप्त किया था ॥८६॥ हे पक्षिन्! मनुष्यों के उस उत्पीड़न पाने के समय में ऐसे पश्चात्ताप और दुःख से भरे शब्द होते हैं। मैंने तुमको यह सब बता दिया है। अब तुम सावधान होकर मुझसे सब श्रवण करो। यह देहधारी स्त्रियों के शरीर का अवलम्बन लेकर पूर्व में किये हुए कर्मों को बोला करता है ॥६०॥

६—यमलोक वर्णन

एवं प्रचलते प्रेतस्तत्र मार्गे खगेश्वर।
क्रन्दितश्चैव दुःखार्त्तः श्रान्तश्चाकुललोचनः ॥१
सप्तदशदिनान्येको वायुमार्गेण गच्छति।
अष्टादशे त्वहोरात्रे पूर्वं याम्यपुरं व्रजेत् ॥२
तस्मिन्पुरवरे रम्ये प्रेतानाञ्च गणो महान्।
पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥३
पुरे ऽत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः।
जायापुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः ॥४
क्रन्दते करुणैर्वाक्यैस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः।
स्वधनं स्वसुखानीह गृहपुत्रधनानि च ॥५
भृत्यमित्राणि धान्यञ्च सर्वं शोचति वै तदा।
क्षुधार्त्तस्य पुरे तस्मिन्किङ्करैस्तस्य चोच्यते ॥६
क्व धनं क्व सुता जाया क्व सुहृत्क्व त्वमीदृशः।
स्वकर्मणार्जितं भुङ्क्ष्व मूढचेतश्चिरं पथि ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे खगेश्वर! इस उपर्युक्त प्रकार से यह प्रेत यमपुरी के मार्ग में चला हुआ क्रन्दन करता रहता है—दुःख से बड़ा ही आर्त्त होता है—थक जाता है और इसके नेत्र व्याकुल हो जाते हैं ॥१॥ वह सत्रह दिन तक वायुमार्ग से जाता है, अठारहवें दिन फिर पूर्व याम्यपुर को जाया करता है ॥२॥ उस परम रम्य पुर में प्रेतों का एक महान् समुदाय है। वहाँ पुष्पभद्रा नाम वाली एक नदी है और एक वट का वृक्ष है, जो देखने में बहुत प्रिय लगता है ॥३॥ उस पुर में यम के किंकरों के द्वारा उसे विश्राम प्राप्त कराया जाया करता है। वहाँ पर फिर वह प्रेत अपनी स्त्री और पुत्र आदि के सुख का स्मरण करता है और बहुत दुःखित होता है ॥४॥ करुणा से भरे हुए शब्द कहता हुआ वह वहाँ पर रोता है। प्यास से पीड़ित होता है और थकान से अत्यन्त दुःखित हुआ करता है। उस समय में वह अपने धन,

अपने सुख, गृह, पुत्र, भृत्य, मित्र, धान्य और अतुल वैभव-सम्पत्ति के छूट जाने का शोच किया करता है। उस पुर में क्षुधा से दुःखित इससे यम के दूतों के द्वारा कहा जाता है ।।५-६।। यम के किंकरों ने कहा—अरे ! हे मूर्ख ! अब गई बीती बातों का यहाँ क्या स्मरण करके यों रो रहा है। यहां तेरा वह धन कहाँ है ? न तेरे पुत्र हैं और न भार्या ही है। यहाँ तेरा कोई मित्र भी नहीं है। तूने जो जैसा कर्म किया है उसे इस लम्बे मार्ग में बहुत काल पर्यन्त भोग। तू बहुत ही मूढ़ चित्त वाला है ।।७।।

जानासि सम्बलवशं बलमध्वगानां नो सम्बलाय पतितं परलोकपान्थ ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेवमस्मिन्मार्गे हि चात्र भवतः क्रयविक्रयौ न ।।८
यमगीताभवं वाक्यं नैव मर्त्ये श्रुतं त्वया ।
एवमुक्तस्ततः सर्वैर्हन्यमाना स मुद्गरैः ।।९
अबदत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाथवा ।
मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत् ।।१०
तत्र नाम्ना तु राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक् ।
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु विश्रामे कुरुते मतिम् ।।११
उदकश्चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तस्मिन्पुरे गतः
त्रिभिः पक्षैस्तथा पिण्डैस्तत्पुरं स व्यतिक्रमेत् ।।१२
सुरेन्द्रनगरे रम्ये प्रेतो याति दिवानिशम् ।
ततो वनानि रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति तत्र सः ।।१३
भीषणैः क्लिश्यमानश्च क्रन्दत्येव पुनः पुनः ।
मासद्वयावसाने तु तत्पुरं स व्यतिक्रमेत् ।।१४

तू जानता है कि मार्ग में चलने वालों का बल सम्बल के अधीन होता है। हे परलोक गामी पथिक ! तेरे पास सम्बल के लिये कुछ भी नहीं है। तुझे ज्ञात ही है कि इस महान् मार्ग की यात्रा तो निश्चय रूप से पूरी करनी ही है। यहाँ पर तुझे कोई भी क्रय विक्रय

करने का साधन नहीं है अर्थात् पहिले से हीं कोई इस मार्ग की यात्रा करने का सुकृत जैसा सम्बल नहीं है तो अब कुछ नहीं किया जा सकता ॥८॥ अरे ओ प्राणी ! क्या तूने मनुष्य लोक में रहकर यमगीत के वाक्यों को नहीं सुना है ?" इस प्रकार से उन सब यमकिंकरों के द्वारा कहे जाने पर वह जन्तु मुद्गरों से ताड़ित किया जाता है ॥६॥ यहाँ पर पुत्र तथा पौत्र आदि के द्वारा स्नेह से जो पिंडदान दिया जाता है उसी दया करके दिए हुए मासिक पिंड का वह भक्षण किया करता और तब सौरिपुर अर्थात् यमराज के नगर में गमन करता है ॥१०॥ वहाँ पर न ाम से तो वह राजा है किन्तु वैसे जंगम काल के रूप को धारण करने वाला है। उसको देखकर भय से डरकर विश्राम करने में अपनी बुद्धि करता है ॥११॥ उस पुर मे जाकर जल से युक्त अन्न का भक्षण करता है। तीन पक्षों में तीन पिंडों से वह उस पुर में समय काटता है। सुरेन्द्र के सुरम्य नगर में प्रेत दिवानिश जाता है इस पश्चात् वह भयानक वनों को देखकर क्रन्दन किया करता है ॥१२-१३॥ बड़े भीषण परिणामों से क्लेश भोगता हुआ यह बार-बार रुदन करता है। इस तरह दो मास के अन्त तक वह उस पुर में समय काटता है ॥१४॥

तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्व नगरे शुभे ।
तृतीयेमासिकं पिंडं तत्र भूङ्क्ते स गच्छति ॥१५
शैलागमे चतुर्थे च मासि याति खगेश्वर ।
पतन्ति तत्र पाषाणाः प्रेतस्योपरि पृष्ठतः ॥१६
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुक्त्वा तत्र सुखी भवेत् ।
स गच्छति ततः प्रेतः क्रूरं मासे तु पञ्चमे ॥१७
पञ्चममासिकं पिंडं भुङ्क्ते तत्र पुरे स्थितः ।
ऊनषाण्मासिके क्रौञ्चे: पञ्चभिः सार्द्धमासिकैः ॥१८
तत्र दत्तेन पिंडेन श्राद्धेनाप्यायितस्ततः ।
मुहूर्त्तार्द्धं तु विश्राम्य कम्पमानः सुदुःखितः ॥
तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः ।
प्रयाति चित्र नगरं विचित्रो नाम पार्थिवः ॥२०

यमस्यैवानुजः सौरिर्यत्र राज्यं प्रशास्ति हि ।
तत्र षण्मासपिंडेन तृप्तः सन्कृष्यते नरः ॥२१

अब तीसरा मास आरम्भ होता है तो शुभ गन्धर्व नगर में वह जाया करता है और वहाँ तीसरे मास का पिंड खाता है ॥१५॥ हे खगेश्वर ! चौथे मास में शैलागम में यह प्रेत जाता है। वहीं पर इस प्रेत की पीठ पर और ऊपर पाषाण गिरते हैं ॥१६॥ चतुर्थ मास के दिये हुए श्राद्ध को खाकर यह सुखी होता है। इसके पश्चात् वह प्रेत ५वें मास में क्रूर को जाया करता है ॥१७॥ उस क्रूर पुर में ५वें मास में दिये हुए पिंड को खाकर सुख पाता है। इस अनन्तर ऊन षाण्मासिक अर्थात् साढ़े पाँच मास का दिया हुआ श्राद्ध प्राप्त करता है ॥१८॥ उसमें दिये हुए पिंड से यह प्रेत आप्यायित (तृप्त) होता है और आधे मुहूर्त तक विश्राम करके फिर काँपता हुआ अत्यन्त दुःखित होकर उस पुर का त्याग करता है तथा यम के दूतों के द्वारा फटकारें खाता हुआ यह प्रेत चित्र नगरमें जाया करता है। वहाँ विचित्र नाम का राजा होता है ॥१६-२०॥ यह यमराज का ही छोटा भाई सूर्य का पुत्र है जो कि इस राज्य का शासन किया करता है। वहाँ पर फिर छः मास में होने वाले श्राद्ध के पिंड़ से तृप्ति प्राप्त करता है और वहीं से भी यमदूतों के द्वारा इसे खींचा जाता है ॥२१॥

मार्गे पुनः पुनस्तस्य बुभुक्षा जायते भृशम् ।
मदीयपुत्रः पौत्रौ वा बान्धवः कोऽपि तिष्ठति ॥२२
ददाति कश्चिन्मां सौख्यं पतितः शोकसागरे ।
एवं विलपतो मार्गे वार्य्यमाणस्य किङ्करैः ॥२३
आयान्ति सम्मुखास्तत्र कैवर्तास्तु सहस्रशः ।
वयं त्वां तारयिष्यामि महावैतरणीं नदीम् ॥२४
शतयोजनविस्तीर्णां पूयशोणितपूरिताम् !
नानापक्षिसमाकीर्णां नानाझषशतैर्वृताम् ॥२५
येन तत्र प्रदत्ता गौर्विष्णुलोकञ्च सा नयेत् ।
न दत्ता चेत्खगश्रेष्ठ वैतरण्यां स मज्जति ॥२६

स्वस्थावस्थे शरीरे तु वैतरण्या व्रतं चरेत् ।
देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं ततुमिच्छता ॥२७
अदत्वा मज्जमानस्तु निन्दति स्वयं स मूढ़धीः ।
पाथेयार्थं मया किंचिन्न प्रदत्तं द्विजातये ।
न तप्तं न हुतं जप्तं न स्नानं न कृतं शुभम् ॥२८

मार्ग में इसको बार-बार बहुत भूख लगा करती है और यह कहा करता है कि संसार में मेरा कोई पुत्र-पौत्र या बान्धव उपस्थित होगा तो शोक सागर में पड़ा हुआ कोई उनमें से मुझे सुख देगा, इस प्रकार से विलाप करता हुआ जाता है और यम के दूतों के द्वारा वार्य्यमाण होता है। वहाँ पर सहस्रों कैवर्त्त इसके सामने आ जाया करते हैं और वे कहते हैं कि हम तुमको इस आगे आने वाली महान् वैतरणी नदी से पार करा देंगे ॥२२-२४॥ यह महा वैतरणी नदी एकसौ योजन के प्रमाण वाली है। यह पूय (मवाद) रोर रक्त से भरी हुई होती है। इसमें अनेक प्रकार के पक्षीगण घिरे हुए रहा करते हैं और बहुत-से विशाल मत्स्य भी इसमें रहते हैं ॥२५॥ जिसने संसार में वास करके गौ का दान किया है वह गौ उस नदी से पार कराकर विष्णु लोक को ले जाया करती है। हे खगश्रेष्ठ ! यदि गौ दान नहीं दिया है तो फिर वह उस वैतरणी में मज्जित हो जाया करता है ॥२६॥ जब तक यह शरीर स्वस्थ दशा में रहे तभी वैतरणी का व्रत कर लेना चाहिए। यदि उस महा नदी वैतरणी को तर कर पार होने की इच्छा रखता है तो किसी विद्वान सत्पात्र को धेनु का दान अवश्य ही करे ॥२७॥ गोदान न करके उस नदी में डूबता हुआ यह मूढ़ उस समय अपने आपकी भूल पर पश्चाताप किया करता है। उस समय सोचता है कि पाथेय के लिए अर्थात् परलोक मार्ग में भोजन एवं सुख पाने के लिए ब्राह्मणों को मैंने कुछ भी नहीं दिया था। कोई तप, हवन, जाप या तीर्थादि का स्नान भी कभी नहीं किया है ॥२८॥

यादृश कर्म चरितं मूढ़ भुङ्क्ष्वाद्य तादृशम् ।
हा दैव इति संमूढ़ो भीषणैस्ताडयते हृदि ॥२९

षाण्मासिकंच यच्छ्राद्धं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ।
तार्क्ष्य तत्र विशेषेण भोजयेच्च द्विजान्शुभान् ॥३०
चत्वारिंशत्तथा सप्तयोजनानां शतद्वयम् ।
प्रयाति प्रत्यहं तार्क्ष्य ह्यहोरात्रेण कर्षितः ॥३१
सप्तने मासि सम्प्राप्ते पुरं बद्ध्वा पदं व्रजेत् ।
तत्र भुक्त्वा प्रदत्तं यत् सप्तमासिकसम्भवम् ॥३२
तत् पुरं स व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमाश्रयेत् ।
महद् दुःखमनुप्राप्य स्वमार्गे याति वै पुनः ॥३३
मास्यष्टमे प्रदत्तं यत् तत्र भुक्त्वा स गच्छति ।
नवम मासिकं भुङ्क्ते नानाक्रन्दपुरे स्थितः ॥३४
नानाक्रन्दगणान्दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान् ।
स्वयञ्च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः ॥३५

उससे यमकिंकर कहते हैं—अरे मूढ़ ! तूने जैसे कर्म किये हैं, उन सब का फल भोग। अब पछतावे रोर-धोने से क्या होता है ? यह कहते हुए यमदूतों के द्वारा भीषणता के साथ हृदय पर ताड़ित किया जाता है और वह "हा देव !"—कहकर रोता है ॥२९॥ फिर वहाँ छः मास के दिये हुए श्राद्ध को खाकर आगे को दौड़ लगाता है। हे तार्क्ष्य ! वहां पर विशेष रूप से शुभ द्विजों को भोजन कराना चाहिए ॥३०॥ यह इस तरह से दिन-रात में कर्षित होता हुआ प्रतिदिन दो सौ सैंतालीस योजन जाया करता है ॥३१॥ सातवें मास के आरम्भ होने पर पद बांधकर पुर को जाता है और सातवें मास का दिया हुआ श्राद्ध अशन करता है ॥३२॥ फिर इस पुर से निकल कर अत्यन्त दुःख देने वाले एक पुर में जाकर बहुत भारी दुःख भोगकर पुनः अपने मार्ग में चलता है ॥३३॥ आठवें मास में जो श्राद्ध दिया जाता है उसका भोजन करके फिर आगे जाता है। नवम मास है दिये हुए पिंड का अशन करके नानाक्रन्द पुर में स्थित होता है ॥२४॥ वहां क्रन्दन करते हुए परम दारुण नानाक्रन्द गणों को देखकर स्वयं शून्य हृदय वाला होता हुआ दुःखित हो क्रन्दन किया करता है ॥३५॥

विहाय तत् पुरं प्रेतो याति तप्तपुरं प्रति ।
सुप्तनगरं प्राप्य दशमे मासि सोऽश्नु ते ॥३६
भोजनैः पिंडदानैस्तु दत्तैस्तत्र सुखी भवेत् ।
मासि चैकादशे पूर्णे रौद्रं स्थानं स गच्छति ॥३७
दर्शकमासिकं भुक्त्वा पयोवर्षणमिच्छति ।
मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः ॥३८
न्यूनाब्दिकं तु यच्छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः ।
सम्पूर्णे च ततो वर्षे प्रेतः शीतपुरं व्रजेत् ॥३९
शीताढ्यनगरं तत्र महीशातं प्रवर्त्तते ।
शीतार्त्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश ॥४०
अस्ति मे बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति ।
किङ्करास्तं वदन्त्येवं क्व ते पुण्यं हि तादृशम् ॥४१
श्रुत्वा तेषां तु तद्वाक्यं हा दैव इति भाषते ।
दैवञ्च प्राकृतं कर्म यन्मया मानुषे कृतम् ॥४२
एवं सञ्चिन्त्य बहुशो धैर्य्यमालभते पुनः ।
चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्यक्तानि वै तथा ॥४३
धर्मराजपुरं दिव्यं गन्धर्वाप्सरःसंकुलम् ।
चतुरशीतिलक्षैश्च मूर्त्तामूर्त्तैरधिष्ठितम् ॥४४

उस पुर का त्याग करके फिर वह प्रेत तप्तपुर की ओर जाया करता है । उस सुतप्त नगर में पहुंच कर दशम मास में दिये हुऐ श्राद्ध को खाता है । भोजन और पिंड दानों से जोकि दिये गये हैं वहां पर वह सुखी होता है । एकादश के पूर्ण हो जाने पर—वह प्रेत रौद्र स्थान में जाता है ॥३६-३७॥ फिर यह दर्शक मासिक का अशन कर पयो- वर्षण की इच्छा किया करता है । वहां पर मेघ वर्षा किया करते हैं जो प्रेतों को दुःख देने वाले होते हैं ॥३८॥ वहां पर न्यूनाब्दिक जो श्राद्ध होता है उसे वह अतीव दुःखित होता हुआ खाता है । फिर वर्ष के सम्पूर्ण हो जाने पर यह प्रेत शीतपुर में जाया करता है ॥३९॥ यह शीत से युक्त नगर होता है और वहां पर महान् शीत रहा करता है । शीत में दुःखित

तथा क्षुधा से पीड़ित यह दशों दिशाओं की ओर देखा करता है ॥४०॥ वह सोचता है कि मेरा कोई बान्धव है जो मेरे इस दुःख को दूर हटावें। उससे यम के दूत कहा करते हैं–"तेरा ऐसा पुण्य कहां है? जो तेरी पीड़ा का निवारण हो।" उनके ऐसे वचन श्रवण कर के वह "हा दैव!" यह कह कर चिल्लाता है। मैंने मनुष्य लोक में दैव और प्राकृत कर्म जो कुछ भी था वही किया है अर्थात् कोई शुभ कर्म किया ही नहीं है। इस प्रकार से बहुत-सा चिन्तन करके फिर धीरज बांध लेता है। फिर चौवालीस योजन के विस्तार वाला धर्मराज का पुर आता है जो परम दिव्य होता है और गन्धर्व तथा अप्सराओं के गण से संकुल (घिरा हुआ) होता है। चौरासी लाख मूर्त्त और अमूर्त्तों से वह अधिष्ठित होता है ॥४०-४४

द्वादशैव प्रतीहारा धर्मराजपुरे स्थिताः।
शुभाशुभं तु यत् कर्म ते विचार्य्य पुनः पुनः ॥४५
श्रवणा ब्राह्मणः पुत्रा मनुष्याणाञ्च चेष्टितम्।
कथयन्ति तदा काले पूजताऽपूजताः स्वयम् ॥४६
नरैस्तुष्टैश्च रुष्टैश्च यत् प्रोक्तञ्च कृतञ्च यत्।
सर्वमावेदयन्ति स्म चित्रगुप्ते यमे यथा ॥४७॥
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम्।
एवञ्चेष्टास्तु ते सर्वे स्वभूःपातालचारिणः ॥४८
तेषां यत्नास्तथैवोग्राः श्रवणाः पृथगाह्वयाः।
एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्ये मर्त्योपकारिका ॥४९
व्रतैर्दानैश्च यस्तेषां पूजयेदिह मानवः।
जायन्ते तस्य ते सौम्याः सुखमृत्युप्रदायकाः ॥५०

धर्मराज पुर में बारह प्रतीहार स्थित रहा करते हैं शुभ और अशुभ जो भी कर्म मृत प्राणी (प्रेत) के होते हैं उन पर वे बार-बार विचार करके निर्णय किया करते हैं। ब्रह्म के पुत्र श्रवण मनुष्यों के चेष्टित अर्थात् कर्म को उस समय में कहते हैं। स्वयं पूजित और अपूजित होते हैं ॥४५-४६॥ तुष्ट तथा रुष्ट मनुष्यों के द्वारा जो कहा गया है। वह सभी कुछ यम और चित्रगुप्त से आवेदित कर देते हैं ॥४७॥ दूर

से श्रवण करने का विशेष ज्ञान और दूर से देखने का प्रत्यक्ष जैसा ज्ञान का होना इनको होता है। वे सभी ऐसी चेष्टा वाले हुआ करते हैं। वे स्वर्ग भूमि और पाताल में चरण करने वाले होते हैं ।।४८।। उनसे सब यन्त्र भी वैसे ही उग्र हुआ करते हैं। श्रवण ये इनका एक प्रथक् नाम होता है। उनकी ऐसी विशेष शक्ति हुआ करती है जो मनुष्य लोक में मनुष्यों की उपकार करने वाली होती है ।।४६।। यहां पर जो मनुष्य व्रत तथा दानों के द्वारा उनकी पूजा किया करता है उसके लिये वे बहुत ही सौम्य होते हैं और सुख से मृत्यु के देने वाले हुआ करते हैं ।।५०।।

७-श्रावण गण चरित्र

एको मे संशयो देव हृदयेऽतीव वर्त्तते।
श्रवणाः कस्य पुत्राश्च कथं यमपुरे स्थिताः ।।१
मानुषैश्च कृतं कर्म कस्माज्जानन्ति ते प्रभो।
कथं शृण्वन्ति ते सर्वं कस्माज्ज्ञानं समागतम् ।।२
कुत्र भुञ्जन्ति देवेश कथयस्व प्रसादतः।
पक्षिराजवचः श्रुत्वा भगवान् वाक्यमब्रवीत् ।।३
शृणुष्व वचनं सत्यं सर्वेषां सौख्यदायकम्।
तदहं कथयिष्यामि श्रवणानां विचेष्टितम् ।।४
एकीभूतं यदा सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
क्षीरोदसागरे पूर्वं मयि सुप्ते जगत्पतौ ।।५
नाभिस्थोऽजस्तपस्तेपे वर्षाणि सुबहून्यपि।
एकीभूतं जगत् सृष्टं भूतग्रामश्चतुर्विधम् ।।६
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं विष्णुना पालितं यदा।
रुद्रः संहारमूर्तिश्च निर्मित ब्रह्मणा ततः ।।७

गरुड़ ने कहा—हे देव ! मेरे हृदय में एक बड़ा भारी संशय होता है। ये श्रवण किसके पुत्र हैं और ये यमपुर में क्यों रहा करते है ? ।।१।। हे प्रभो ! मनुष्यों के द्वारा किये कर्मों को ये कैसे जान लिया करते हैं ?

यह ऐसा ज्ञान उन्हें कहाँ से आ गया है ? हे देवेश ! यह भी कृपा कर बताइये कि ये लोग कहां खाया करते हैं ? पक्षिराज के इस वचन को सुनकर भगवान् ने यह वाक्य कहा—।।२-३।। श्री कृष्ण बोले—हे गरुड़ ! अब तुम मेरे सत्य वचनों का श्रवण करो जोकि सभी के लिए सुख देने वाले हैं। मैं श्रवणों के विचेष्टित को बतलाता हूँ ।।४।। इस समस्त जगत् के पति मेरे क्षीर सागर में शयन करने पर जब यह स्थावर (अचर) जंगम (चर) जगत् एकीभूत होगया था अर्थात् सभी कुछ मुझमें लीन हो गया था उस समय मेरी नाभि के कमल में स्थित अज ने बहुत वर्षों तक तपश्चर्या की थी। फिर एकीभूत चार प्रकार का जगत् सृजन किया गया था जो कि भूतों का एक समुदाय था ।।५-६।। पहिले ब्रह्मा ने इसका निर्माण किया और विष्णु ने इस निर्मित जगत् का पालन किया था तथा रुद्र इसके संहार करने वाली मूर्त्ति थी। इसके अनन्तर ब्रह्मा ने निर्माण किया था ।।७।।

वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्य्यस्तेजोविवृद्धिमान् ।
धर्मराजस्ततः सृष्टिश्चित्रगुप्तेन संयुतः ।।८

सृष्ट्वैवमादिकं सर्वं तपस्तेपे तु पद्मजः ।
गतानि बहुवर्षाणि ब्रह्मणो नाभिपङ्कजे ।।९

यो यो हि निर्मितः पूर्वं तत्तत्कर्म समाचरेत् ।
कस्मिश्चित समये तत्र ब्रह्मलोकसमन्वितः ।।१०

रुद्रो विष्णुस्तथा धर्मः शासयन्ति वसुन्धराम् ।
न जानीमो वयं किञ्चिल्लोककृत्यमिहोच्यताम् ।।११

इति चिन्तापराः सर्वे देवा विममृशुस्तदा ।
संचिन्त्य ब्रह्मणो मन्त्रं विबुधैः प्रेरितस्तदा ।।१२

गृहीत्वा कुशपत्राणि सोऽसृजद्द्वादशात्मजान् ।
तेजोराशीन् विशालाक्षान् ब्रह्मणो वचनात्तु ते ।।१३

यो यं वदति लोकेऽस्मिन् शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
प्रापयन्ति ततः शीघ्रं ब्रह्मण कर्णगोचरे ।।१४

सर्वत्र गमन करने वाले वायु का सृजन किया गया था। तेज की निवृद्धि से युक्त सूर्य का सृजन किया था। इसके अनन्तर चित्रगुप्त से युक्त धर्मराज की सृष्टि की गई थी ॥८॥ इस प्रकार से इन सबका सृजन करके पद्मज ब्रह्मा ने तप किया था। नाभि से समुत्पन्न कमल में ब्रह्माजी को तपस्या करते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥९॥ जो-जो पहिले निर्मित हुए थे वे अपना-अपना कर्म का आचरण करते थे। वहाँ पर किसी समय में ब्रह्म लोक से समन्वित रुद्र-विष्णु तथा धर्म इस वसुन्धरा का शासन करते थे। हम सब लोक के कृत्य को कुछ भी नहीं जानते हैं अतएव यह बतलाओ। इस प्रकार से इस चिन्ता से युक्त समस्त देवों ने परस्पर परामर्श किया था। देवों के द्वारा प्रेरित होकर उस समय में ब्रह्मा के मन्त्र संचिन्तन करके कुशा के पत्र लेकर बारह आत्मजों का सृजन किया था। जो कि बारह पुत्र तेज के राशिभूत थे और विशाल नेत्रों वाले थे। ब्रह्मा के वचन से वे सब इस लोक में जो भी कोई जिसको कुछ बोलता है वह शुभ हो अथवा अशुभ हो उस सबको तुरन्त वे ब्रह्मा के कानों में पहुँचा दिया करते हैं ॥१०-१४

दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् ।
सर्वं शृण्वन्ति यत् पक्षिस्तेनैव श्रवणा मताः ॥१५
स्थित्वा चैव तथाकाशे जन्तूनाञ्चेष्टितं तु यत् ।
तज्ज्ञात्वा धर्मराजाग्रे मृत्युकाले वदन्ति च ॥
धर्मश्चार्थञ्च कामश्च मोक्षश्च कथयन्ति ते ॥१६
एको हि धर्ममार्गश्च द्वितीयश्चार्थ मार्गकः ।
अपरः काममार्गश्च मोक्षमार्गश्चतुर्थकः ॥१७
उत्तमाधर्ममार्गेण वैनतेय प्रयान्ति हि ।
अर्थदाता विमानैस्तु अश्वैः कामप्रदायकः ॥१८
हंसयुक्तविमानैश्च मोक्षकाङ्क्षी प्रसर्पति ।
इतरः पादचारेण ह्यसिपत्रवनानि च ॥१९
पाषाणैः कण्टकैः क्लिष्टः पाशबद्धोऽथ याति वै ।
यः कश्चिन्मानुषे लोके श्रवणान् पूजयेदिह ॥२०

दूर से ही श्रवण करने का, और दूर से ही देख लेने का विशेष ज्ञान प्राप्त करना इनकी विशेष शक्ति थी। हे पक्षिन् ! ये सभी कुछ सुन लिया करते हैं अतएव इनका नाम श्रवण कहा गया है ॥१५॥ आकाश में ही स्थित होकर समस्त जन्तुओं के कर्मों को जान या देख लेते हैं और मृत्यु के समय उन सबको धर्मराज के आगे बतला देते हैं। वे धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष के विषय में भी सब कुछ कर दिया करते हैं ॥१६॥ एक धर्म का मार्ग है—दूसरा अर्थ का मार्ग है–तीसरा काम का मार्ग है और चौथा मोक्ष का मार्ग होता है ॥१७॥ हे वैनतेय ! वे सब उत्तम और अधम मार्ग से जाया करते हैं। जो अर्थ का दाता होता है वह विमानों के द्वारा गमन करते हैं। काम के प्रदायक अश्वों के द्वारा प्रयाण करते हैं। जो मोक्ष के आकाङ्क्षी होते हैं वे हंसों से युक्त विमानों के द्वारा प्रयाण किया करते हैं। इतर लोग पैरों से ही असिपत्र वनों में होकर पाषाण कण्टकों से क्लेश भोगते हुए पाश से बद्ध होकर गमन किया करते हैं। जो कोई मनुष्य इस मनुष्य लोक में श्रवणों का यजनार्चन करता है उसकी वर्द्धनी पक्वान्न से परिपूर्ण और जल से भरी पूरी होती है। हे खगेश्वर ! अतएव वहाँ पर मेरे साथ श्रवणों का पूजन करना चाहिए ॥१८-२०॥

वर्द्धनी जलसम्पूर्णा पक्वान्नपरिपूरिता।
श्रवणान् पूजयेत्तत्र मया सह खगेश्वर ॥२१
तस्याहं तत्करिष्यामि यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
सम्भोज्य ब्राह्मणान्भक्त्यां एकादश शुभान्शुचीन् ॥२२
द्वादशं सकलञ्च मम प्रीत्यैव पूजयेत्।
देवैः सर्वैश्च सम्पूज्याः स्वर्गं यान्ति सुखेप्सया ॥२३
तैः पूजितैरहं तुष्टश्चित्रगुप्तेन धर्मराट्।
तैस्तुष्टैर्मत्पुरं यान्ति लोका धर्मपरायणाः ॥२४
श्रवणानाञ्च माहात्म्यमुत्पत्तिञ्चेष्टितं शुभम्।
शृणोति पक्षिशार्दूल स च पापैर्न लिप्यते ॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२५

उसके हित के लिये मैं वह सब कुछ कर दिया करता हूँ जो कि देवों के लिये भी—दुर्लभ होता है। परम शुभ ग्यारह ब्राह्मणों को जो कि अतीव पवित्र हों भक्ति-भाव के साथ भली-भाँति भोजन करावे। बारहवें ब्राह्मण को पत्नी के सहित मेरी प्रीति के लिये ही पूजा करे। ये समस्त देवों के द्वारा सम्पूज्य होते हैं और सुख की इच्छा से स्वर्ग को जाया करते हैं। उनके पूजित होने से मुझे परम तोष होता है और चित्रगुप्त के द्वारा धर्मराट् सन्तुष्ट होते हैं। उन सबके तुष्ट होने से धर्म परायण लोग मेरे पुर में जाया करते हैं। श्रवणों के इस माहात्म्य, उत्पत्ति और शुभ चेष्टित को हे पक्षिशार्दूल ! जो श्रवण करता है वह पापों से कभी भी लिप्त नहीं होता है। इस लोक में सम्पूर्ण सुखों का उपभोग करके अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२०-२५॥

८—प्रेतोद्‌देश्य से विविध दानों का फल

श्रवणानां वचः श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा पुनर्यमः।
यत्कृतञ्च मनुष्यश्च पुण्यं पापमहर्निशम् ॥१

तत्सर्वञ्च परिज्ञाय चित्रगुप्तो निवेदयेत्।
चित्रगुप्तस्ततः सर्वं कर्म तस्मै वदत्यथ ॥२

वाचैव यत्कृतं कर्म कृतञ्चैव तु कायिकम्।
मानसञ्च तथा कर्म कृतं भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥३

एवं ते कथितं तार्क्ष्य प्रेत मार्गस्य निर्णयम्।
विश्रान्तकानि सर्वाणि स्थानानि कथितानि ते ॥४

तमुद्दिश्य ददात्यन्नं सुखं याति महाध्वनि।
दिवारात्रं तमुद्दिश्य स्थाने दीपप्रदो भवेत् ॥५

अन्धकारे महाघोरे स्वपूर्त्ते लक्षवर्जिते।
दीप्तेऽध्वनि च ते यान्ति दीपो दत्तश्च यैर्नरैः ॥६

कार्त्तिके च चतुर्दश्यां दीपदानं सुखाय वैं।
अथ वक्ष्यामि संक्षेपाद्यममार्गस्य निष्कृतिम्॥ ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—श्रवणों के वचनों को सुनकर फिर क्षण मात्र ध्यान कर फिर यम, मनुष्यों के द्वारा अहर्निश में जो भी पाप और पुण्य किया है उस सबको जान कर चित्रगुप्त को निवेदन कर देता है। इसके अनन्तर चित्रगुप्त उसके समस्त कर्मों को उससे बोलते हैं। वाणी से जो कुछ भी बुरा-भला कर्म किया है तथा शरीर के द्वारा जो भी कर्म किया गया है और मन से जो भी कर्म का चिन्तन किया है वह चाहे शुभ हो या अशुभ हो उसका वह प्रेत भोग किया करता है ॥१-३॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार से वहाँ पर प्रेत के मार्ग का निर्णय हुआ करता है और वह सब कहा जाता है। विश्रान्तक सभी स्थान तुझे बता दिये गये हैं। इसका उद्देश्य करके ही अन्न का दान किया करता है जिससे उस परम विशाल यमपुरी के मार्ग में वह सुख पूर्वक जाता है। जिन मनुष्यों ने दीपों का दान किया है वे उस महा घोर स्वपूर्त्त एवं लक्ष वर्जित अन्धकार में दीप्त मार्ग में जाया करते हैं। उसी का उद्देश्य करके दीपों का दान किया जाता है ॥४-५॥ कार्त्तिक मास में चतुर्दशी के दिन में जो दीपों का दान किया जाता है वह उस समय में सुख के लिये होता है। इसके अनन्तर मैं संक्षेप से यम के मार्ग की निष्कृति बतलाता हूं ॥६-७॥

वृषोत्सर्गतय पुण्येन पितृलोकं स गच्छति।
एकादशाहपिण्डेन शुद्धदेहो भवेत्ततः ॥८

उदकुम्भप्रदानेन किङ्करास्तृप्तिमाप्नुयुः।
शय्यादानैर्विमानस्थो याति मार्गे खगेश्वर ॥६

तद्दिने दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः।
त्रयोदश वरिष्ठानि वस्तुवन्ति पदानि वै ॥१०

यो ददाति मृतस्येह जीवन्नेवात्महेतवे।
तथाश्रितो महामार्गे वैनतेय स गच्छति ॥११
एक एवास्ति सर्वत्र व्यवहारः खगेश्वर।
उत्तमाधममध्यानां तत्तदा वर्जनं भवेत् ॥१२

यावद्भाग्यं भवेद्यस्य तावन्मार्गः प्रकीर्त्यते ।
स्वयं स्वस्थेन यद्दत्तं तत्राधिक्यं करोति तत् ॥१३
मृते तद्बान्धवैर्दत्तं तदाश्रित्य सुखी भवेत् ।
इत्युक्तो वासुदेवेन गरुड़स्तमथाब्रवीत ॥१४

वृषोत्सर्ग जिसके विषय में पहिले पूर्ण विधान बता दिया गया है। इसके पुण्य के प्रभाव से प्रेत पितृ-लोक में चला जाता है। ग्यारहवें दिन के पिंड दान से देह की शुद्धि हो जाया करती है ॥८॥ उदक के कुम्भ के प्रदान करने से किंकर लोग तृप्ति को प्राप्त हुआ करते हैं। हे खगेश्वर ! शय्या के दानों से यह प्रेत विमान में स्थित होकर उस महान् मार्ग की यात्रा किया करता है ॥९॥ उस दिन में सभी कुछ का दान किया जाता है। बारहवें दिन में विशेष रूप से तेरह विशेष वस्तुओं वाले परम वरिष्ठ पदों का दान दिया जाता है ॥१०॥ जो यहाँ मृतक के लिये दान करता है तथा जीवित ही रहते हुए अपने लिये दान किया करता है। उसी प्रकार से आश्रित होता हुआ हे वैनतेय ! उस महामार्ग में वह गमन किया करता है ॥११॥ हे खगेश्वर ! सर्वत्र एक ही व्यवहार होता है । उस समय में उत्तम—मध्यम और अधमों का वर्जन हुआ करता है ॥१२॥ जिसका जितना भाग्य होता है उसी प्रकार का वैसा मार्ग प्रकीर्त्तित किया जाता है। स्वयं ही स्वस्थता की दशा में जो दान किया है वहाँ पर वह अधिक कर देता है। मृत होने पर बान्धवों के द्वारा जो दिया गया है उसका आश्रय पाकर वह सुखी होता है। इस प्रकार से वासुदेव भगवान् के द्वारा कहे गये गरुड़ ने फिर उनसे कहा था ॥१३-१४॥

कस्मात् पदानि यानि ते किंविधानि त्रयोदश ।
दीयन्ते देवदेवेश तद्वदस्व यथातथम् ॥१५
छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः ।
आसनं भाजनञ्चैव पदं सप्तविधं स्मृतम् ॥१६
अ तपस्तत्र यो रौद्रो दह्यन्ते येन मानवाः ।
छत्रदानेन सुच्छाया जायते प्रेत तुष्टिदा ॥१७

असिपत्रवने घोरे शर्कराकण्टकैर्युते ।
अश्वारूढ़ास्तु ते यान्ति ददति ये ह्य ुपानहौ ।।१८
आसनं भाजनञ्चैव यो ददाति द्विजातये ।
सुखेन भुञ्जमानस्तु पथि गच्छेच्छनं रपि ।।१९
बहुधर्मसमाकीर्णे मार्गे वौ तोयवर्जिते ।
कमण्डलुप्रदानेन सुखी भवति निश्चितम् ।।२०
मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं तु ताम्रजम् ।
प्रपादानसहस्रस्य यत् फलं सोऽश्नुते फलम् ।।२१

गरुड़ ने कहा—हे देवों के भी दिवेश ! वे तेरह पद क्यों दिये जाया करते हैं ओर वे किस प्रकार के होते हैं ? यह आप मुझे कृपा कर ठीक-ठीक बताने की उदारता करिये ।।१५।। श्री कृष्ण भगवान ने कहा—ये पद सात प्रकार के हुआ करते हैं—छत्र—उपानत्—वस्त्र—मुद्रिका—कमण्डलु—आसन और पात्र ये सात वस्तुऐं दान की होने से यह भी सात प्रकार के होते हैं ।।१६।। वहाँ पर जो भीषण आतप होता है जिससे मनुष्य ताप से दग्ध हो जाया करते हैं छत्र के दान से उस समय में बहुत अच्छी छाया हो जाती है जोकि प्रेत की तुष्टि को प्रदान किया करती है ।।१७।। वह मार्ग परम घोर है और असिपत्रवन से युक्त होता है। बालू और काँटों से भी युक्त रहा करता है उस मार्ग में जो उपानह (पाद त्राण) का दान करते हैं वे अश्व पर आरूढ़ होकर गमन किया करते हैं ।।१८।। जो विप्रों को आसन और पात्रों का दान करते हैं वे सुख पूर्वक खाते-पीते धीरे२ उस मार्ग की यात्रा किया करते हैं ।।१९।। वह मार्ग बहुत से धर्मों से समाकीर्ण होता है और जल से रहित है उसमें कण्मडलु के दान से प्रेत निश्चित् रूप से परम सुखी होता है ।।२०।। मृतक के उद्देश्य से जो ताम्र का पात्र जल से परिपूर्ण करके दान देता है उसे एक सहस्र प्रपा (प्याऊ) के दान का जो पुण्य फल होता है वह प्राप्त हो जाता है ।।२१।।

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः ।
न पीड़यन्ति दाक्षिण्याद्वस्त्राभरणदानतः ।।२२

सायुधा बहुरूपास्तु नामार्गे दृष्टिगोचरे ।
प्रयान्ति यमदूताश्च मुद्रिकायाः प्रदानतः ॥२३
भाजनासनदानेन ह्यामान्नैर्भोजनेन च ।
आज्ययज्ञोपवीताभ्यां पदं सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥२४
एवं मार्गे गम्यमानस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः ।
घटान्नदानयोगेन बन्धुदत्तेन नित्यशः ॥
महिषी रथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् ॥२५
मृतोद्देशेन यत् किञ्चिद्दीयते स्वगृहे विभो ।
सं गच्छति महामार्गे तद्दत्तं केन गृह्यते ॥२६
गृह्णाति वरुणो दान मम हस्ते प्रयच्छति ।
अहञ्च भास्करे देवे भास्करात्सोऽश्नुते फलम् ॥२७
विकर्मणः प्रभावेण वंशच्छेदः क्षिताविह ।
सर्वे ते नरकं यान्ति यावत्पापस्य संक्षयः ॥२८

यम के दूत महान् रौद्र स्वरूप वाले होते हैं। ये बहुत ही कराल, कृष्ण तथा पिंगल वर्ण वाले हैं किन्तु वे वस्त्र तथा आभरणों के दान से दाक्षिण्य से उस प्रेत को पीड़ा नहीं दिया करते ॥२२॥ आयुधों के सहित बहुत प्रकार के स्वरूपों वाले यम के दूत मुद्रिका के प्रदान करने से अमार्ग में दृष्टिगोचर नहीं होते ॥२३॥ पात्र और आसन के दान से, अमान्न और भोजन से, घृत तथा यज्ञोपवीत से पद सम्पूर्णता को प्राप्त होता है ॥२४॥ इस तरह मार्ग में गमन करता हुआ प्यास से दुःखित एवं श्रम से पीड़ा वाला प्रेत बन्धुओं के द्वारा नित्य दिये हुए घटान्न दान के योग से तथा महिषी, रथ और गोदान से निश्चित् रूप से सुखी होता है ॥२५॥ गरुड़ ने कहा—हे विभो ! मृतक का उद्देश्य करके अपने घर में जो कुछ दान किया जाता है वह सभी उस महान् विशाल यमपुरी के मार्ग में चला जाता है तो उसके दिये हुए किस के द्वारा ग्रहण किया जाता है ? ॥२६॥ श्री कृष्ण ने कहा—उस दिये हुए दान को वरुण देवता ग्रहण किया करते हैं और फिर मेरे हाथ में दे दिया करते हैं। मैं फिर उसको भुवन भास्कर सूर्यदेव को दे देता हूँ और भास्कर

से उसे वह प्रेत प्राप्त किया करता है और उसका फल भोगता है ।।२७।। विकर्म के अर्थात् बुरे कर्मों के प्रभाव से यहाँ भूलोक में वंश का उच्छेद अर्थात् नाश हो जाया करता है और जब तक उस बुरे कर्म द्वारा समुत्पन्न पाप का क्षय नहीं होता है वे सभी लोग नरकों में निवास किया करते हैं और नाना प्रकार के असह्य उत्पीड़न भोगा करते हैं ।।२८।।

कस्मिंश्चित्सुखरूपेण महिषासन संस्थितः ।
नरकान्वीक्ष्य धर्मात्मा नानाक्रन्दसमाकुलान् ।।२९

चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां स ईश्वरः ।
तेषां मध्ये श्रेष्ठतमन्धौरेयाँस्त्वेकविंशतिम् ।।३०

तामिस्त्रं लोहशंकुञ्च महारारवशाल्मलीम् ।
रौरवं कुण्डलम्पूतिमूर्त्तिकं कालसूत्रकम् ।।३१

सन्ततं लोहतोदञ्च सविषं सप्रतापनम् ।
महानरक कोकोलं सञ्जीवञ्च महापथम् ।।३२
अवीचिमन्धतामिस्त्रं कुम्भीपाकं तथैव च ।
असिपत्रवनञ्चैव पतनञ्चैकविंशकम् ।।३३
येषां तु नरके घोरे गतान्यब्दशतानि वै ।
सन्ततिर्नैव विद्येत दूतत्वं ते प्रयान्ति हि ।।३४
यमेन प्रेषितास्ते गै मानुषस्य मृतस्य च ।
दिने दिने प्रगृह्णन्ति दीपमन्नं घटादिकम् ।।३५

किसी स्थान पर बड़े ही सुख पूर्वक महिष के आसन पर विराजमान् धर्मात्मा धर्मराज अनेक प्रकार के रुदन से समाकुल नरकों को देखकर वहाँ संस्थित रहते हैं। वह चौरासी लाख नरकों के अधिपति हैं। उन नरकों में सबसे ऊंची श्रेणी प्रबलतम नरक इक्कीस हैं—उनके नाम ये हैं—तामिस्त्र, लोहशंकु, महारौरव, शाल्मली, रौरव, कुण्डलम्, पूतिमूर्त्तिक, कालसूत्रक, सन्तत, लोह तोद, सविष, संप्रतापन, महानरक, कोल, सञ्जीव, महापथ, अवीचि, अन्ध तामिस्त्र, कुम्भीपाक, असि पत्र वन, पतन ये कुल इक्कीस हैं ।।२९-३३।। जिनको उस

घोर नरक में सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। उनके सन्तति नही होती है वे दूत कर्म के करने वाले हो जाया करते हैं ॥३४॥ वे सब यमराज के द्वारा प्रेषित होकर मृत मनुष्य के प्रतिदिन दीपक–अन्न और घट आदि को ग्रहण किया करते हैं ॥३५॥

प्रेतस्यैव प्रयच्छन्ति ह्यन्नकामस्य सत्तृषः।
मासान्ते भोजनं पिण्डमेकमिच्छन्ति तत्र वै ॥३६
तृप्ति प्रयान्ति ते सर्वे प्रत्यहञ्चैव वत्सरम्।
एवमादिकृतैः पुण्यैः क्रमतो वत्सरं व्रजेत् ॥३७
ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये।
बहुभीतिपुरे रम्ये हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥३८
दशभिर्दिवसैर्जातं तं देहं दशपिण्डजम्।
जामदग्नेर्यथा रामं दृष्ट्वा तेजः प्रसर्पति ॥३९
कर्मजं देहमाश्रित्य पूर्वदेहं समुत्सृजेत्।
अंगुष्ठमात्रः पुरुषः शमीपत्रं समारुहेत् ॥४०
व्रजस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलौकेयं देही कर्मानुगोऽवशः ॥४१
वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णातिनरोऽपराणि।
तथाशरीराणिविहायजीर्णान्यन्यानिगृह्णातिवानिदेहि ॥४२

तृष्णा से युक्त और अन्न की कामना करने वाले प्रेत को ही दिया करते हैं। मास के अन्त में वहाँ पर एक पिंड भोजन की इच्छा करते हैं ॥३६॥ वे सब प्रतिदिन साल भर तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के किये हुए पुण्यों के द्वारा क्रम से एक वत्सर व्यतीत हो जाया करता है ॥३७॥ इसके अनन्तर एक वर्ष के अन्त में यमालय के निकट आ जाने पर उस बहुत से भयों वाले रम्यपुर में हस्त मात्र का समुत्सर्जन करे ॥३८॥ दश दिनों में दश पिंडों से समुत्पन्न उस देह में श्रीराम को देख कर जमदाग्नि के पुत्र परशुराम की भांति तेज प्रसर्पित होता है ॥३९॥ कर्मों से जन्य देह को प्राप्त कर फिर वह पूर्व देह का त्याग कर देता है। यह एक अँगूठे के बराबर पुरुष शमी के पत्र पर समारूढ़ हो

जाता है ।।४०।। एक पैर से चलता है—स्थित होता है और एक से ही गमन किया करता है। जैसे तृणजलों का होता है वैसे ही यह देही कर्मों का अनुगमन करने वाला अवश हुआ करता है ।।४१।। जैसे कोई मनुष्य अपने पुराने जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों का त्याग करके पुनः नूतन वस्त्रों को अपने शरीर पर धारण कर लिया करता है उसी भांति यह देही जीवात्मा अपने पूर्व शरीरों का त्याग कर अन्य नवीन शरीरों को अपना आवास स्थल बनाता हुआ उन्हें धारण कर लेता है। मनुष्य के शरीर की मृत्यु भी यही वस्तु एवं स्थिति होती है। मनुष्य का देह अनित्य है और इसका त्याग अवश्य ही होता है। आत्मा नित्य एवं अविनाशी है वह इसी तरह अपना चोला बदला करता है ।।४२।।

६—यमपुर वर्णन

वायुभूतः क्षुधाविष्टः कर्मजं देहमाश्रयेत् ।
तं देह स समासाद्य यमेन सोऽपि गच्छति ।।१
चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः ।
कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्ये च सर्वशः ।।२
महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत् ।
योजनानांश्चतुर्विंशत्पुरं वैवस्वतं शुभम् ।।३
लोहं लवणकार्पासं तिलपात्रञ्च यैः कृतम् ।
तेन दत्तेन तृप्यन्ति यमस्य पुरवासिनः ।।४
यत्र गत्वा तु ते सर्वे प्रतिहारं वदन्ति हि ।
धर्मध्वजप्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ।।५
सप्तधान्यस्य दानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत् ।
तत्र गत्वा प्रतीहारो ब्रूते तस्य शुभाशुभम् ।।६
धर्मराजस्य यद्रूपं सन्तः सुकृतिजनो जनाः ।
पश्यन्ति च दुरात्मनो यमरूपं दुरासदम् ।।७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–यह देही जीवात्मा वायु के समान है और क्षुधा से आविष्ट रहता हुआ कर्मज इस देह का आश्रय लिया करता है।

वह उस देह को प्राप्त कर स्थित रहता है और यम के द्वारा वह भी गमन करता है ।।१।। वहां पर बीस योजन के प्रमाण वाला चित्रगुप्त पुर है। वहां कायस्थ जाति के लोग सम्पूर्ण पाप और पुण्य का लेखा-जोखा किया करते हैं ।।२।। महादानों के दिये जाने पर वहां पर गया हुआ प्राणी सुखी होता है। चौबीस योजनों के विस्तार वाला वैवस्वत शुभ पुर होता है ।।३।। जिन्होंने लोह, लवण, कार्पास और तिल मात्र का दान किया हैं। इसके देने से यमराज के पुर में निवास करने वाले तृप्त हुआ करते हैं ।।४।। वहां पर वे सब जाकर पहिले प्रतिहार को बोलते हैं। वहां पर धर्मध्वज प्रतिहार सर्वदा स्थित रहा करता है ।।५।। सात धान्यों के दान से धर्मध्वज प्रतिहार प्रसन्न हुआ करता है। वहां जाकर वह प्रतिहार उसके सब अच्छे-बुरे कर्मों को बतलाता है ।।६।। धर्मराज का जो स्वरूप है उसे सन्त और सुकृत करने वाले अच्छा देखा करते हैं और दुरात्मा लोग उसी धर्मराज के स्वरूप को बहुत ही दुरामद अर्थात् भयावह देखा करते हैं ।।७।।

तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते जनः ।
कृतं दानं तु यैर्मर्त्यैर्न भय विद्यते क्वचित् ।।८
प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्य्यजः ।
एष मे मंडल भित्त्वा ब्रह्मलोकं हि गच्छति ।।९
दानेन सुलभो धर्मो यममार्गे सुखावहः ।
एष मार्गो विशालोऽत्र न केनाप्यनुगम्यते ।।१०
दानपुण्यं विना सम्यङ् न गच्छेद्धर्ममन्दिरम् ।
अस्मिन्मार्गे तु रौद्रे च भीषणा यमकिङ्कराः ।।११
पाशदण्डधरा घोराः सहस्राणि च षोडश ।
एकैकस्य पुरस्याग्रे सहस्रं कश्च तिष्ठति ।।१२
पापिनं प्राप्य पाच्यन्ते उदके यातनाकराः ।
गृह्णन्ति मासमासान्ते पादशेषं तु यद्भवेत् ।।१३
और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यपः ।
महाकष्टेन ते यान्ति यस्माद्देयानि शक्तितः ।।१४

धर्मराज के भयानक स्वरूप को ही देखकर प्राणी भय से हाहाकार करने लगता है। जिन मनुष्यों ने दान किया है उन्हें कहीं भी कुछ भय नहीं होता है ।।८।। कोई सुकृती जन्तु जिस समय यमराज के सामने उपस्थित होता है तो उसे आया हुआ देखकर यमराज अपने स्थान से चलित हो जाते हैं कि यह मेरे मण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक को गमन करता है ।।९।। दान से धर्म सुलभ होता है जो कि यमपुरी के मार्ग में सुख देने वाला हुआ करता है यह इतना विशाल मार्ग है जहां अन्य कोई भी अनुगमन नहीं करता ।।१०।। दान-पुण्य के बिना धर्मराज के मन्दिर में भली भांति नहीं जाया करता है। यह मार्ग बहुत ही रौद्र है जिसमें यमराज के किंकर रहा करते हैं ।।११।। ये सब पाश और दंड के धारण करने वाले सोलह सहस्र हैं। एक-एक पुर के आगे एक-एक सहस्र स्थित रहते हैं ।।१२।। पापी को प्राप्त करके यातना के करने वाले जल में पाचन किये जाते हैं। प्रत्येक मास के अन्त में जो पाद शेष होता है उसे ग्रहण करते हैं ।।१३।। हे काश्यप ! जिन्होंने और्ध्वदैहिक दान नहीं दिए वे महान् कष्ट से जाते हैं। इसलिये और्ध्वदैहिक दान अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य ही देना चाहिये ।।१४।।

अदत्त्वा पशुवद्याति गृहीतो वधबन्धनैः ।
एवं कृते च संपश्येत न नरः कृतकर्मणः ।।१५
दैविकीं पैतृकीं योनिं मानुषीं वाथ नारकीम् ।
धर्मराजस्य वचनान्मुक्तिर्भवति वा ततः ।।१६
मानुष्यश्च ततः प्राप्य सुपुत्रे पुत्रतां व्रजेत् ।
यथा यथा कृतं कर्म तां तां योनिं व्रजेन्नरः ।।१७
तत्तथैव हि भुञ्जानो विचरेत्सर्वलोकतः ।
अशाश्वतं परिज्ञाय सर्वं लोकान्तरं सुखम् ।।१८
यदाभवति मानुष्यं तदा धर्मं समाचरेत् ।
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहानां प्रकृतिः सदा ।।१९
अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतत्यपि ।
यदापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते ।।२०

यस्तं प्राप्य चरेद्धर्मं स गच्छेत्परमां गतिम् ।
अपि जानन्वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च ॥२१
जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं
तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम् ।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि
तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥२२

और्ध्व दैहिक दानों को न देने वाला एक पशु की भांति ग्रहण किया हुआ वध और बन्धनों से पूर्ण कष्ट भोगता हुआ वहाँ जाता है। ऐसा होने पर वह मनुष्य जिसके कर्म किये गये हैं वह सब कुछ भी नहीं देखता ॥१५॥ धर्मराज के वचन से दैविकी, पैतृकी, मानुषी अथवा नारकी योनि प्राप्त होती है अथवा इन सबसे छुटकारा पाकर मुक्ति हो जाती है ॥१६॥ मनुष्य योनि में जन्म पाकर सुपुत्र में पुत्रता को प्राप्त होवे। यह मनुष्य जैसा-जैसा भी कर्म करता है उस-उस योनि को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि सर्वदा कर्मों के अनुसार ही जीवन की प्राप्ति होती है ॥१७॥ और उसी प्रकार से भोगों को भोगता हुआ सभी लोकों में वह जीवात्मा विचरण करता है। लोकान्तर का समस्त सुख का परिज्ञान करके जो कि शाश्वत नहीं होता है फिर जब यह मनुष्य जीवन प्राप्त करता है तो उस समय इसे धर्म का आचरण करना चाहिए। इस मानव शरीर की सदा तीन ही गति हैं, वे कृमि, भस्म अथवा विष्ठा हैं ॥१८-१६॥ महारौद्र अन्ध कूप में दीपक हाथ में लेने वाला भी पतित हो जाता है। महान् पुण्य के प्रभाव से ही यह मनुष्य देह मिलता है ॥२०॥ जो इसे प्राप्ति करके धर्म का आचरण करता है वह परम गति को पाता है। यह सब जानता हुआ भी धर्म कृत्य को व्यर्थ समझता है उसे दुःख आता और चला जाया करता है। दुःख से नितान्त निवृत्ति कभी नहीं होती है ॥२१॥ यह मानुषत्व सैकड़ों जातियों के बाक बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है अतएव इस मनुष्य योनि को ही परम दुर्लभ बतलाया जाता है। इस मनुष्य जन्म को भी पाकर हे खग ! द्विजत्व की प्राप्ति तो और भी अधिक दुर्लभ होती

है। जो मनुष्य और उसमें भी द्विज जीवन पाकर उसका यथार्थ रूप से पालन नहीं करता है और केवल अपनी इन्द्रियों के सुख में निमग्न रहता है, उसके हाथ में रखा हुआ अमृत उसके प्रमाद के कारण क्षरित हो जाया करता है अर्थात् उत्तम गति के प्राप्त करने का अमृत के समान सुयोग उसके हाथ से लापरवाही के कारण यों ही नष्ट हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि अति दुर्लभ मनुष्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है ॥२२॥

१०—प्रेत पीड़ा वर्णन

ये केचित्प्रेतरूपेण तत्र वासं लभन्ति ते।
प्रेतलोकाद्विनिर्मुक्ताः कथं भुञ्जन्ति किल्विषम् ॥१
चतुरशीतिलक्षैश्च नरकैः पर्य्युपासिताः।
यमेन रक्षिताश्चैव दूतश्चैव सहस्रधा ॥२
विचरन्ति कथं लोके नरकाच्च विनिसृताः।
रक्षिता रक्षपालैश्च विचरन्ति दिवानिशम्।
पक्षीन्द्रेण त्विदं पृष्टो लक्ष्मीनाथोऽब्रवीदिदम् ॥३
पक्षिराज श्रृणुष्व त्वं यथा प्रेताश्चरन्ति वै।
परस्वहरणार्था ये पत्न्यन्वेषणतत्पराः ॥४
तथैव सर्वपापिष्ठा आत्मजान्वेषणे रताः।
विचरन्त्यशरीरास्ते क्षुत्पिपासार्दिता भृशम् ॥५
वन्दीगृहविनिर्मुक्ता यथा नश्यन्ति जन्तवः।
तथा नश्यन्ति ते प्रेता वधं कृत्वा सहोदरे ॥६
पितृद्वाराणि रुन्धन्ति तन्मार्गच्छेदकास्तथा।
पितृभागांश्च गृह्णन्ति पथिकांस्तस्करा इव ॥७

गरुड़ ने कहा—जो कोई वहाँ पर प्रेत की अवस्था में निवास करते हैं वे प्रेतलोक से कैसे विनिमुक्त होते हैं और अपने किये हुए पापों को किस प्रकार से भोगा करते हैं ? ॥१॥ चौरासी लाख नरकों में रहते हुए

और यमराज के द्वारा रक्षित होते हुए तथा सहस्रों यम के दूतों के निरीक्षण में रहकर वे नरक से निकल कर कैसे लोक में विचरण किया करते हैं ? क्योंकि वे तो रात दिन रक्षा करने वालों के द्वारा रक्षित रहने वाले होते हैं। इस प्रकार पक्षियों के स्वामी गरुड़ के द्वारा पूछे गये, भगवान् लक्ष्मीनाथ यह बोले—हे पक्षिराज ! जिस तरह से वहाँ प्रेतगण विचरण किया करते हैं उसका श्रवण करो। जो पराये धन के हरण करने वाले और पत्नी के अन्वेषण में तत्पर रहने वाले हैं तथा आत्मजान्वेषण में रति रखने वाले सब महा पापिष्ठ वे बिना ही शरीर वाले भूख-प्यास से पीड़ित होकर बहुत ही दुःखित होकर विचरण किया करते हैं ॥२-५॥ बन्दीगृह से विनिर्मुक्त जन्तु जिस तरह नष्ट हो जाते हैं उसी भाँति वे देवगण भी सहोदर का वध करके नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥६॥ पितृगण के द्वारों का रोध कर दिया करते हैं तथा उनके मार्ग के छेदक हो जाते हैं। वे पितृगण के भागों को मार्ग में पथिको को तस्करों की भाँति ग्रहण कर लेते हैं ॥७॥

स्तवेश्म पुनरागत्य मूत्रोत्सर्गं विशन्ति ते।
तत्र स्थिता निरीक्षन्ते रोगशोकादिना जनम् ॥८
ज्वररूपेण पीडयन्ते ह्येकान्तरामिषेण तु।
चिन्तयन्ति सदा तेषामुच्छिष्टादिस्थलस्थिताः ॥९
आत्मजानां छलं लोके भूतजातैश्च रक्षिताः।
पिबन्ति तत्र पानीयं भोजनोच्छिष्टयोजितम् ॥
सदा पापरताः पापा एवं पीड़ां प्रकुर्वते ॥१०
कथं कुर्वन्ति ते प्रेताः केन रूपेण कस्य किम्।
ज्ञायन्ते केन विधिना जल्पन्ति न वदन्ति वा ॥११
एवं छिन्धि मनोमोहं मम चेदिच्छसि प्रियम्।
कलिकाले हृषीकेश प्रेतत्वं जायते बहु ॥१२
स्वकुलं पीड़येत्प्रेतः परं छिद्रेण पीड़येत्
जीवंश्च कुरुते स्नेहं मृतो दुष्टत्वमाप्नुयात् ॥१३

रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजकः ।
सत्यवान्प्रियवादी च न स प्रेतैश्च पीडयते ॥१४

अपने घर में फिर आकर वे मूत्रोत्सर्ग में प्रवेश किया करते हैं। वहाँ पर संस्थित होकर रोग और शोक आदि के द्वारा जनों को देखा करते हैं ।।८।। ज्वर के रूप में एकान्तरा के बहाने से पीड़ित किये जाते हैं, उच्छिष्ट आदि के स्थलों में स्थित होते हुए उनका सदा चिन्तन किया करते हैं ।।९।। आत्मजों के छल को लोक में भूत जातों के द्वारा रक्षित हुए भोजन के उच्छिष्ट से योजित पानी को वहां पर पीते हैं । सदा पाप कर्मों में रत रहने वाले पापी इस प्रकार से पीड़ा प्राप्त करते हैं ।।१०।। गरुड़ ने कहा—वे प्रेत पाप किस रूप से किसका क्या कैसे किया करते हैं ? वे किस विधि से जाने जाते हैं और कैसे बोलते या कहा करते हैं ? हे प्रभो ! यदि मेरे प्रिय करने की कृपा करते हैं तो यह जो मेरे मन में बड़ा भारी मोह है उसका छेदन करने का अनुग्रह करें । हे हृषीकेश ! इस कलिकाल में तो बहुत से प्रेत होते हैं । श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—प्रेत अपने कुल को पीड़ा दिया करता है । दूसरे को कोई छिद्र देखकर पीड़ा दिया करता है । यह जीवित रहता हुआ तो स्नेह करता है किन्तु मरने के बाद दुष्टता को प्राप्त हो जाता है ।।११-१३।। जो रुद्र के मन्त्र का जाप करने वाला होता है, धर्म में रति रखने वाला है, देवगण तथा अतिथियों के सत्कार एवं यजन करने वाला है और सत्यव्रत को धारण करने वाला तथा प्रिय बोलने वाला है वह प्रेतों के द्वारा कभी भी पीड़ित नहीं किया जाता है अर्थात् उक्त प्रकार के व्यक्ति पर प्रेत की पीड़ा कभी नहीं हो सकती है ।।१४।।

गायत्रीजाप्यनिरतो वैश्वदेवरतो गृही ।
श्राद्धकृत्तीर्थसेवी च न स प्रेतैश्च पीडयते ॥१५
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको देवनिन्दकः ।
असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः प्रपीडयते ॥१६
कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्धक्रियापरः ।
कृतादौ द्वापरं यावन्न प्रेतो नैव पीड़नम् ॥१७

बहूनामेकजातीनामेकः सौख्यं समश्नुते ।
एको दुष्कृतकर्मा च ह्येकः सन्ततिवर्जितः ॥१८
एकः संपीडयते प्रेतैरेकः पुत्रसमन्वितः ।
एकस्य पुत्रनाशः स्यात्पुत्रो न लभते सदा ॥१९
विरोधो बन्धुभिः सार्द्धं प्रेतदोषोऽस्ति तत्र वै ।
सन्ततिर्नैव दृश्येत समुत्पन्नो विनश्यति ॥
पशुद्रव्यविनाशश्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२०
प्रकृतिश्च विवर्त्तेत विद्वेषः सह बन्धुभिः ।
अकस्माद्व्यसनप्राप्तिः स पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२१

जो गायत्री मन्त्र के जप में निरत रहा करता है और जो गृहस्थी बलि वैश्वदेव करने वाला है, श्राद्धों के करने वाला, तीर्थ का सेवी होता है वह भी कभी प्रेतों के द्वारा नहीं सताया जा सकता है ॥१५॥ जो सब प्रकार की क्रियाओं से परिभ्रष्ट होता है अर्थात् जिसमें कोई भी कर्म की क्रिया नहीं होती है—जो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता है, जो देवगण की निन्दा करने वाला होता है, जो सदा मिथ्या भाषण करने में ही डूबा रहा करता है ऐसा मनुष्य प्रेतों के द्वारा सताया जाया करता है ॥१६॥ हे तार्क्ष्य ! इस कलियुग में जो अशुद्ध क्रियाओं में अहर्निश तत्पर रहा करता है वही प्रेत योनि को प्राप्त होता है। सत्ययुग और द्वापर पर्यन्त युग में कोई भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं होता था और न किसी को प्रपीड़ित ही किया जाता था ॥१७॥ एक जाति वाले बहुत सों का एक ही सुख प्राप्त किया करता है। कोई एक दुष्कृत कर्मों का करने वाला होता है और कोई एक ही सन्तति से रहित होता है ॥१८॥ प्रेतों के द्वारा एक संपीड़ित किया जाता है। एक पुत्र से समन्वित होता है। एक के पुत्र का नाश हो जाता है और वह सदा पुत्र की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥१९॥ जहाँ बन्धुओं के साथ आपस में विरोध होता है वहाँ पर ही प्रेत का दोष हुआ करता है। वहाँ सन्तति भी दिखाई नहीं देती है और हो भी जाती है तो विनष्ट हो जाता करती है ॥२०॥ प्रेत से होने वाली पीड़ा में पशुओं का नाश और द्रव्य का विनाश हुआ

करता है। प्रकृति ही विवर्त्तित हो जाया करती है और स्वभाव के परिवर्तन होने से बन्धुओं के साथ विद्वेष हो जाया करता है। अचानक ही व्यसनों का समागम उपस्थित हो जाया करता है—यह सभी प्रेत के द्वारा की जाने वाली पीड़ा हुआ करती हैं ॥२१॥

नास्तिक्यं व्रतलोपश्च महालोभस्तथैव च ।
दम्भश्च कलहो नित्यं सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२२
मातापित्रोश्च हन्ता च देवब्राह्मणदूषकः ।
हत्यादोषमवाप्नोति सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२३
नित्यकर्मविमुक्तश्च जपहोमविवर्जितः ।
परद्रव्यापहर्त्ता च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२४
तीर्थं गत्वा परासक्तः स्वकृत्यञ्च परित्यजेत् ।
धर्मकार्य्ये न सम्पत्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२५
सुभिक्षे कृषिनाशः स्याद्व्यवहारो विनश्यति ।
लोके कलहकारी च स पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२६
मार्गे तु गच्छतश्चैव पीड़येद्वाथ मण्डली ।
यश संपीड्यते प्रेतैरिति सत्यं वचो मम ॥२७
हीनजातिषु सम्बन्धो हीनकर्म करोति च ।
अधर्मे रमते नित्यं सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२८

प्रेत के द्वारा उत्पन्न जो पीड़ा होती है उसमें नास्तिक पने की भावना पैदा हो जाती है—जितने नियम एवं व्रत होते हैं वे सब छूट कर उनका एक दम लोप हो जाता है—हृदय में एक महान् लोभ उत्पन्न हो जाया करता है—दम्भ और कलह नित्य प्रति होता है ॥२२॥ प्रेत से समुत्पन्न पीड़ा यह किया करती है कि वह व्यक्ति अपने ही माता-पिता का हनन एवं ताड़न करने लगता है—देवता तथा ब्राह्मणों को दूषित किया करता है—पराये धन का अपहरण करने वाला हो जाता है ॥२३॥ प्रेत से उत्पन्न जब पीड़ा किसी को होती है तो वह नित्य कर्म को छोड़ देता है—मन्त्रों का जाप, होम सब छोड़ देता है—हत्या के दोष का भागी हो जाता है ॥२४॥ तीर्थों में जाकर भी परम असक्त

हो जाता है और अपने कृत्य को त्याग देता है—धर्म के कार्य में सम्पत्ति का विनियोग नहीं करता है—ये सब बातें तभी होती हैं जब कि किसी प्रेत के द्वारा पीड़ा होती हैं ।।२५।। प्रेत का जब किसी पर प्रभाव होता है तो उसका ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष में भी कृषि का नाश हो जाता है और जितना भी सद्व्यवहार होता है वह सब विनष्ट हो जाया करता है । लोक में कलह करने वाला हो जाया करता है ।।२६।। मार्ग में गमन करते हुए पीड़ा उत्पन्न हो जाती है अथवा प्रेतों के द्वारा मण्डली को प्रपीड़ित किया जाता है । यह सब मेरा पूर्णतः सत्य वचन है ।।२७।। प्रेत के द्वारा जब किसी को पीड़ा होती है तो उसका हीन जाति वालों में सम्पर्क होता है और वह हीन कर्मों को किया करता है । सर्वदा अधर्म में उसकी रति होती है ।।२८।।

व्यसनैर्द्रव्यनाशः स्यादुपक्रान्तञ्च नश्यति ।
चौराग्निराजभिर्हानिः स पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।२९
महारोगोपपत्तिश्च स्वतनोः पीड़नं तु यत् ।
जाया संपीडयते यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३०
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु धमकार्य्येषु चैव हि ।
अभावो जायते येषां सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३१
देवतीर्थ द्विजातीनां भावशुद्धया न मन्यते ।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा दूपयेत्प्रेतभावतः ।।३२
स्त्रीणां गर्भविनाशः स्यान्न पुष्पं दृश्यते तथा ।
बलानां मरणं यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३३
पुष्पं प्रदृश्यते यत्र फलं नैव प्रदृश्यते ।
विरोधो भार्य्यया सार्द्धं सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३४
भावशुद्धया न कुरुते श्राद्धं सांवत्सरादिकम् ।
स्वयमेव न कुर्वीत सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३५

ऐसे बहुत से व्यसन लग जाते हैं जिनमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का विनाश कर देता है और स्वयं उपक्रान्त होकर नष्ट हो जाता है । चोर, अग्नि, राजा के द्वारा हानि होती है—ये सभी उपद्रव प्रेत के द्वारा की जाने

वाली पीड़ा से हुआ करते हैं ॥२९॥ किसी महान् रोग की उत्पत्ति—अपने शरीर की पीड़ा का होना—अपनी स्त्री का सताया जाना—ये सभी बातें प्रेत के द्वारा होने वाली पीड़ा से हुआ करती हैं ॥३०॥ श्रुति—स्मृति और पुराणों में तथा धर्म के कार्यों में अश्रद्धा तथा अभाव का होना जिनको हो जाता है वे सब प्रेतों के द्वारा उत्पन्न हुई पीड़ा से ही हुआ करते हैं ॥३१॥ देव तीर्थ और द्विजों को युद्ध भावना से नहीं मानना और प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से प्रेत भाव के कारण इनको दूषित किया करता है ॥३२॥ स्त्रियों के गर्भ का विनाश हो जाता है तथा रजो दर्शन ही नहीं होता है। बालकों का मर जाना ये सब उपद्रव प्रेतों के द्वारा उत्पन्न होने वाली पीड़ा के कारण हुआ करते हैं ॥३३॥ पुष्प जहाँ दिखाई देता है वहाँ फल नहीं होता है और अपनी भार्या के साथ विरोध रहना—ये सभी प्रेत के द्वारा ही सम्भव होते हैं ॥३४॥ सांवत्सर श्राद्ध खाना-पूरी के लिए करता तो है किन्तु प्रेत की पीड़ा के कारण उसके भावों में शुद्धि नहीं रहा करती है। स्वयमेव कुछ भी नहीं करता है यह प्रेत पीड़ा से ही होता है ।३५।

कलहो घातकाश्चैव पुत्राः शत्रुमिवात्मजाः ।
न प्रीतिर्न च सौख्यञ्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३६

गृहे दन्तकलिश्चैव भोजने कोपसंयुतः ।
परद्रोहमतिश्चैव सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३७

पित्रोर्वाक्यं न कुरुते स्वपत्नीं न च सेवते ।
परदारापकर्षी च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३८

विकर्मणा भवेत्प्रेतो विधिहीनक्रियस्तथा ।
तत्काले दुष्टसंसर्गाद्वृषोत्सर्गाहते तथा ॥३९

दुष्टमृत्युवशाद्वापि ह्यदग्धवपुषस्तथा ।
प्रेतत्वं जायते तार्क्ष्य पीडयन्ते येन जन्तवः ॥४०

दाहक्रियादिलोपश्च खट्वादिमृतिदोषतः ।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य वाक्चेष्टादिविवर्जितम् ॥४१

एवंज्ञात्वा खगश्रेष्ठ प्रेतमुक्ति समाचरेत् ।
यो वै न मन्यते प्रेतान्मृतः प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥४२

जिसके यहां प्रेत के द्वारा पीड़ा दी जाती है वहाँ रात-दिन कलह रहता है और पुत्र एक शत्रु के समान ही घात करने वाले हो जाते हैं। न वहाँ कोई आपसी प्रीति भाव होता है और कोई सुख ही हुआ करता है ॥३६॥ जिसके घर में दन्त कलह हो और भोजन के समय में कोप का आवेश होता हो—सदा दूसरों के साथ द्रोह करने की बुद्धि रहे— ये सभी दुष्परिणाम प्रेत के द्वारा दी हुई पीड़ा से होते हैं ॥३७॥ जिस पर प्रेत का असर होता है वह माता-पिता के वचन का पालन कभी नहीं करता और अपनी पत्नि में रमण नहीं करता। ऐसा पुरुष पराई स्त्रियों के अपकर्षण किया करता है ॥३८॥ विकर्मों के कारण ही प्रेत होता है तथा विधि से शून्य क्रिया करने वाला होता है। दुष्टों के उस समय में संसर्ग से, वृषोत्सर्ग के न करने से प्रेतत्व की प्राप्ति होती है ॥३६॥ दुष्ट मृत्यु के कारण भी प्रेत योनि मिलती है तथा मृत के शरीर के दाह न होने के कारण भी प्रेतत्व की प्राप्ति होती है। हे तार्क्ष्य ! इसी कारण जन्तुओं को सताया जाता है ॥४०॥ दाह आदि की क्रिया का जहाँ लोप होता है तथा खाट पर ही जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझो। जो प्रेतत्व की दशा ऐसी होती है कि वाणी और चेष्टा आदि सब से शून्य हुआ करती है ॥४१॥ हे खगश्रेष्ठ ! इस तरह से जान कर प्रेत की मुक्ति करनी चाहिये। जो आदमी प्रेतों को नहीं मानता वह मर कर स्वयं प्रेतत्व को प्राप्त हो जाता है ॥४२॥

प्रेतदोषः कुले यस्य सुखं तत्र न विद्यते ।
मतिः प्रीति रतिर्बुद्धिर्लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम् ॥४३

तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदोऽभिजायते ।
दरिद्रो निर्धनश्चैव पारकर्मा भवे भवे ॥४४

ये केचित्प्रेतरूपा विकृतमुखदृशो रौद्रदंष्ट्राः कराला
मन्यन्ते नैव गोत्रं सुतदुहितृपितृन्भ्रातृजायांश्च बन्धून् ।

कृत्वा काम्यञ्च रूपं सुखगतिरहिता भाषमाणा यथेष्टं ।
हा कष्टं भोक्तुकामा विधिवशपतिताः संस्मरन्ति स्वपापम् ।।४५

जिसके कुल में प्रेत का दोष विद्यमान रहता है वहाँ सुख नहीं रहता। उस कुल में बुद्धि, प्रीति, रति, मति और लक्ष्मी इन पाँचों का विनाश हो जाता है ।।४३।। तीसरे तथा पाँचवें पुरुष (पीढ़ी) में वंश का उच्छेद हो जाता है और ऐसा पुरुष जन्म-जन्म में बहुत दरिद्र एवं धन से हीन तथा पाप करने वाला होता है ।।४४।। जो कोई भी प्रेत के रूप वाले होते है उनके मुख और नेत्र विकृत हुआ करते हैं। रौद्र (भीषण) दाढ़ों वाले होते हैं तथा बहुत कराल (भयानक स्वरूप से युक्त) होते हैं। वे अपने गोत्र को भी कुछ नहीं माना करते हैं और सुत—पुत्री—पिता —भ्रातृजाय (भाभी) तथा बन्धुओं को भी नहीं माना करते हैं। ये लोग अपनी इच्छा के अनुरूप अपना स्वरूप बना लिया करते हैं। ये सुखमय गति से रहित होते हैं अर्थात् इनकी योनि में कुछ भी सुख नहीं मिलता है। ये प्रेत गण जो चाहें सो बोलते रहा करते हैं। ये "हाय हाय ! बड़ा कष्ट है—हम कुछ खाना चाहते हैं, भूखे हैं—भाग्य वश हम अब प्रेत योनि में आ गये हैं"—ऐसा चिल्लाते-चीखते रहते हैं और अपने किए हुए पापों का स्मरण किया करते हैं जो कि मनुष्य के रूप में रह कर किये थे ।।४५।।

११—प्रेतों का स्वरूप और चरित्र

मुक्तिं यान्ति कथं प्रेतास्तदहं प्रष्टुमुत्सुकः ।
यन्मुक्तौ च मनुष्याणां न पीड़ा जायते तु सा ।।१

एतैश्च लक्षैर्देव पीड़ा प्रेतसमुद्भवा ।
तेषां कदाभवेन्मुक्तिः प्रेतत्वं न कथं भवेत् ।।२

प्रेतत्वे हि प्रमाणञ्च कतिवर्षाणि सङ्ख्यया ।
चिरं प्रेतत्वमाप्नोति कथं मुक्तिमवाप्नुयात् ।।३

मुक्तिं प्रयान्ति ते प्रेतास्तदहं कथयामि ते ।
यद्यत्कुर्वन्ति ते प्रेताः पिशाचत्वे व्यवस्थिताः ।।४

तेषां स्वरूपं वक्ष्यामि चिह्नं स्वप्नं यथातथम् ।
क्षुत्पिपासार्दितास्ते वै प्रविशेयुः स्ववेश्मनि ।।५

प्रविष्टा वायुदेहेन शयानान्स्वस्ववंशजान् ।
तत्रलिङ्गानि यच्छन्ति निर्दिशन्ति खगेश्वर ।।६

स्वपुत्रस्वकलत्राणि स्वबन्धूँस्ते प्रयान्ति वै ।
गजो हयो वृषो भूत्वा दृश्यन्ते विकृताननः ।।७

गरुड़ ने कहा—हे भगवान् ! ये प्रेत योनि में रहने वाले किस तरह मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ?–अब मैं यह आपसे पूछने के लिये उत्सुकता रखता हूँ । जिसकी मुक्ति हो जाने पर फिर मनुष्यों को उनके द्वारा की हुई वह पीड़ा नही होती है ।।१।। हे देव ! इन लक्षणों से यह ज्ञात होता है कि यह प्रेत के द्वारा उत्पन्न की हुई पीड़ा है तो फिर यह बताइये कि उनकी पीड़ा नष्ट कब होती है ? और मनुष्यों को प्रेतत्व किस प्रकार से नहीं होता है ? प्रेतत्व के होने पर संख्या से कितने वर्षों का प्रमाण होता है ? चिरकाल तक यदि प्रेतत्व प्राप्त करता है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हुआ करती है ? ।।३।। श्री भगवान् ने कहा–वे प्रेत जैसे प्रेतत्व से छुटकारा पाया करते हैं उसे अब हम तुमको बतलाते हैं । जो-जो भी वे प्रेत किया करते हैं उससे वे पिशाच जैसे व्यवस्थित हो जाया करते हैं ।।४।। अब हम उनका स्वरूप—चिह्न और स्वप्न सभी ठीक-ठीक बतलाते हैं । भूख और प्यास से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर वे अपने घर में प्रवेश किया करते हैं ।५। ये अपने वायु तत्त्व से निर्मित देह से प्रविष्ट हो जाते हैं अर्थात् इनका देह एक प्रकार की वायु जैसा ही होता है जो कि किसी को दिखलाई नहीं दिया करता है । वहाँ घर में सोते हुए अपने ही वंश वालों को हे खगेश्वर ! ऐसे चिह्न दिया करते हैं कि जिनसे वे अपने आपका निर्देष कर देवे ।।६।। वे अपने पुत्र, कलत्र और अपने बन्धुओं के पास जाते हैं तथा हाथी, अश्व, वृष होकर एक विकृत मुख वाले हो जाते हैं ।।७।।

शयनं विपरीतं वा आत्मानञ्च विपर्य्ययम् ।
उत्थितः पश्यति तु यः स प्रेतैः पीड्यते भृषम्।।८

निगडैर्बध्यते यस्तु बध्यते बहुधा यदि ।
अन्नञ्च याच्यते स्वप्न कुरुते पापमात्मना ।।९
भुञ्जमानस्तु यः स्वप्ने गृहीत्वाऽन्नं पलायते ।
आत्मनस्तु परस्यापि तृषार्त्तस्तु जलं पिबेत् ।।१०
वृषभारोहणं स्वप्ने वृषभैः सह गच्छति ।
उत्पत्य गगनं याति तीर्थं याति क्षुधातुरः ।।११
स्वकलत्रं स्वबन्धूंश्च स्वसुतं स्वपतिं विभुम् ।
विद्यमानं मृतं पश्येत्प्रेतदोषेण निश्चतम् ।।१२
यस्त्वपो याच्यते स्वप्ने क्षुत्तृषाभ्यां परिप्लुतः ।
तीर्थं गत्वा ददेत्पिण्डान्प्रेतदोषैर्न संशयः ।।१३
निर्गच्छतो गृहाद्रात्रौ स्वप्ने पुत्रांस्तथा पशून् ।
पितृभ्रातृकलत्राणि प्रेतदोषैः स पश्यति ।।१४

जो उठ कर शयन के विपरीत अथवा अपनी आत्मा का विपर्यय देखता है अर्थात् स्वयं को नीचे और शय्या को अपने ऊपर में उठने के समय दिखाई देता है वह प्रेतों के द्वारा बहुत पीड़ित किया जाता है। ।।८।। यदि कोई बहुधा रस्सियों या जंजीरों से बाँधा जाया करता है और स्वप्न में अन्न की याचना करता है–अपने द्वारा पाप करता है–स्वप्न में खाता हुआ अपने आपको देखता है और अन्न को ग्रहण कर भाग जाता है–अपने तथा दूसरे के जल को अत्यन्त प्यास से दुःखित होकर पी लेता है—जो स्वप्न में वृषभ पर सवारी किया करता है और बैलों के साथ गमन करता है—जो उछल कर आकाश में जाता है तथा भूख से उत्पीड़ित होकर तीर्थ में जाता है–अपनी स्त्री को, अपने बन्धुओं को, अपने पति को और विभु को, विद्यमान को मृत देखता है तो समझ लेना चाहिए कि यह सब स्वप्न में देखना प्रेत के द्वारा उत्पन्न दोष से ही निश्चित रूप से होता है ।।९-१२।। जो स्वप्न में भूख और प्यास से बहुत आर्त्त होकर जल की याचना किया करता है और तीर्थ में जाकर पिण्डों का दाह किया करता है ऐसा स्वप्न में देखना भी प्रेत के दोषों के कारण ही हुआ करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।१३।। रात्रि में गृह से स्वप्न में जो

निकलते हुए पुत्रों तथा पशुओं को देखा करता है, अथवा अपने पिता, भाई, और पत्नी को निकलते हुए देखता है—यह सब भी प्रेत के दोषों से ही होता है कि उसे इस तरह के स्वप्न दिखलाई दिया करते हैं—ऐसा समझ लेना चाहिए ॥१४॥

चिह्नान्येतानि पक्षीन्द्र गणकाय निवेदयेत् ।
कृत्वा स्नानं गृहे तीर्थे श्रीवृक्षे तर्पणञ्चरेत् ॥१५
कृष्णधान्यानि सम्पूज्य प्रदद्याद्वेदपारगे ।
सर्वविघ्नानि संत्यज्य मुक्त्युपायं करोति यः ॥१६
तस्य कर्मफलं साधु प्रेततृप्तिश्च शाश्वती ।
शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यो ददाति स तृप्यति ॥१७
आत्मैव श्रेयसा युज्येत्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् ।
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति स्वात्मबन्धुषु सर्वदा ॥१८
अन्ये पापा दुरात्मानः क्लेशयन्ति स्ववंशजान् ।
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुपद्रवान् ॥१९
पश्चात्ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते तु पुत्रतः ।
सदा बन्धुषु यच्छन्ति ऋद्धिं वृद्धिं खगाधिप ॥२०
दर्शनाद्भाषणाद्यस्तु चेष्टनात्पीड़नाद्गतिम् ।
न प्रापयति मूढ़ात्मा प्रेतशापैः स लिप्यते ॥२१

हे पक्षीन्द्र ! इन समस्त चिह्नों को किसी गणक अर्थात् ज्योतिषी को बतलाना चाहिए और घर में या तीर्थ में स्नान करके श्रीवृक्ष पर तर्पण करना चाहिए ॥१५॥ किसी वेद के पारगामी अर्थात् पूर्ण विद्वान को भली-भाँति पूजन करके कृष्णधान्य का दान करे । समस्त विघ्नों का त्याग करके जो प्रेत की मुक्ति का उपाय करता है उसे ऐसा ही करना चाहिए । उसके इस कर्म का बहुत उत्तम फल होता है और प्रेत की निरन्तर होने वाली इससे तृप्ति हो जाती है । हे गरुड़ ! तुम इसका अच्छी तरह से श्रवण कर लो—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य है । जो ऐसा किया करता है तो वह इससे पूर्णतः तृप्त हो जाया करता है ॥१६-१७॥ दान और तर्पण करने वाले की आत्मा ही श्रेय से युक्त होती है और

इससे प्रेत भी चिरकाल पर्यन्त तृप्ति को प्राप्त हो जाता है। जो प्रेत तृप्त हो जाया करते हैं वे फिर सदा अपने बन्धुओं की शुभकामना किया करते हैं ॥१८॥ अन्य जो तृप्त नहीं होते हैं वे दुरात्मा प्रेत अपने ही वंश में उत्पन्न होने वालों को सदा क्लेशित किया करते हैं अर्थात् किसी न किसी प्रकार से बराबर सताया करते हैं। जब वे पूर्णतया तृप्त हो जाते हैं तो फिर उत्पन्न हुए सभी दोषों को निवारित कर दिया करते हैं ॥१९॥ इसके पीछे काल प्राप्त होने पर पुत्र से वे मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं। हे खगों के स्वामी गरुड़! सन्तृप्त हुए प्रेत सर्वदा अपने बन्धुओं को ऋद्धि-सिद्धि प्रदान किया करते हैं ॥२०॥ दर्शन से—भाषण से—चेष्टाएं करने से और पीड़ा करने से भी प्रेत के दोषों को जानकर जो मूढ़ आत्मा-वाला व्यक्ति उसकी सद्गति नहीं कराया करता हैं वह प्रेत के शाप से पूर्णतया लिप्त हो जाता है। अर्थात् प्रेत जब हर तरह से उसे अपनी दुर्गति का ज्ञान अच्छी तरह करा दिया करता है और इसे प्रेत-दोष समझ-कर भी जो मूर्ख उसकी तृप्ति सुगति और मुक्ति का उपाय नहीं करता है उसे प्रेत शाप ऐसा दे देते हैं कि उससे वह अच्छी तरह लिप्त होकर अतीव पीड़ित रहा करता है ॥२१॥

अपुत्रकोऽपशुश्चैव दरिद्रो व्याधितस्तथा।
वृत्तिहीनश्च दीनश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२२
सर्वं कुर्वन्ति ते प्रेताः पुनर्याम्यं समाश्रिताः।
तस्मात्स्थानाद्भवेन्मुक्तिः स्वकाले कर्मसंक्षये ॥२३
नामगोत्रं न दृश्येत प्रतीतिर्नैव जायते।
केचिद्वदन्ति दैवज्ञाः पीड़ां प्रेतसमुद्भवाम् ॥२४
न स्वप्नं चेष्टितं नैव दर्शनं न कदाचन।
किं कर्त्तव्यं सुरश्रेष्ठ तत्र मे ब्रूहि निश्चतम् ॥२५
सत्यमेवानृतं नैव वदन्ति क्षितिदेवताः।
तदा सञ्चिन्त्य हृदये सत्यमेतद्द्विजेरितम् ॥२६
भावभक्तिं पुरस्कृत्य पितृभक्तिपरायणः।
कृत्वा विष्णुबलिं तत्र पुरश्चरणपूर्वकम् ॥२७

जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् ।
कृतेन तैन विघ्नानि विनश्यन्ति खगेश्वर ।।२८

प्रेत से शाप पाकर वह फिर बिना पुत्र वाला—पशुश्रों से रहित—दरिद्र—व्याधियुक्त—वृत्ति से हीन और दीन होकर ही जन्म-जन्म में रहा करता है ।।२२।। वे प्रेत फिर यार्म्य स्थान में अर्थात् यम के लोक में पहुंच कर यह सभी कुछ किया करते हैं। जब उनके अपना समय समाप्त कर कर्मों का संक्षय हो जाता है तब वे उस स्थान से मुक्ति पाया करते हैं ।।२३।। गरुड़ ने कहा—नाम श्रौर गोत्र तो दिखलाई नहीं दिया करता है श्रौर पूर्ण विश्वास भी नहीं होता है किन्तु कुछ दैवज्ञ (ज्योतिषी. उसे प्रेत के कारण उत्पन्न होने वाली पीड़ा बतला दिया करते हैं। न तो कभी कोई स्वप्न ऐसा दिखाई देता है न कोई ऐसी चेष्टा ही प्रतीत होती है श्रौर न कभी प्रेत का दर्शन ही किसी भी रूप में होता है। हे सुरश्रेष्ठ ! ऐसी दशा में क्या करना चाहिए ? कृपा कर यह निश्चित रूप से बतलाइये ।।२४-२५।। भगवान् श्रीकृष्ण बोले—क्षिति के देवता अर्थात् ब्राह्मण लोग सदा सत्य ही बोला करते हैं वे कभी भी मिथ्या नहीं बोलते हैं। उस समय में मन में भली-भाँति विचार करके यह समझ लेना चाहिए कि यह ब्राह्मणों का कथन बिल्कुल यथार्थ ही है ।।२६।। अपनी भावना श्रौर भक्ति को पूर्ण तृप्त करके और भक्ति में अच्छी तरह से तत्पर होकर वहाँ पर पुरश्चरणपूर्वक विष्णु भगवान की बलि करनी चाहिए ।।२७।। जप, होम श्रौर दानों के द्वारा देह का शोधन करे। हे खगेश्वर ! इसके करने से जितने भी विघ्न होते हैं वे सब विशेष रूप से नष्ट हो जाया करते हैं।२८।

भूतप्रेतपिशाचैर्वा स तदान्यैर्न पीड्यते ।
पितॄनुद्दिश्य यः कुर्य्यान्नारायणबलिं शुभम् ।।२९
विमुक्तः सर्वपीड़ाभ्य इति सत्यं वचो मम ।
पितृपीड़ा भवेद्यत्र कृत्यैरन्यैर्न मुच्यते ।।३०
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तिपरो भवेत् ।
नवमे दशमे वर्षे पित्रुद्देशेन यः पुमान् ।।३१

गायत्र्या ह्ययुतं जप्त्वा दशांशेनैव होमयेत् ।
कृत्वा विष्णुबलिं पूर्वं वृषोत्सर्गादिकाः क्रियाः ॥३२
सर्वोपद्रवहीनस्तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात् ।
उत्तमं लोकमाप्नोति ज्ञातिप्राधान्यमेव च ॥३३
पितृमातृसमो लोके नास्त्यन्यद्दैवतं परम् ।
प्रभुः शरीरप्रभवः प्रत्यक्षदैवतं पिता ॥३४
हितानामुपदेष्टा च प्रत्यक्षो गुरुदेवता ।
अन्या या देवता लोके शरीरप्रभवा मताः ॥३५

उस समय अन्य भी भूत-प्रेत-पिशाचों के द्वारा वह कभी भी नहीं सताया जाया करता, जो पितृगण का उद्देश्य करके परम शुभ नारायण-बलि- किया करता है उसे फिर कोई भी बाधा, पीड़ा नहीं देती है ॥२६॥ वह समस्त पीड़ाओं से विमुक्त हो जाता है-यह मेरा वचन पूर्ण सत्य है । जहाँ पितृगण के द्वारा की हुई पीड़ा होती है वह अन्य किसी भी कृत्य से युक्त नहीं होती है ॥३०॥ इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा पितृगण का परम भक्त एवं उनकी भक्ति में परायण होना चाहिए । नवम या दशम वर्ष में जो पितृगण के उद्देश्य से पुरुष दश हजार गायत्री मन्त्र का जाप करके उस जप का दशम अंश होम करे और पहिले विष्णु बलि और वृषोत्सर्ग आदि की क्रिया करे तो सम्पूर्ण उपद्रवों से हीन होकर सभी प्रकार के सुखों को प्राप्ति किया करता है । अन्त में परम उत्तम लोक की प्राप्ति करता है। ज्ञाति में प्राधान्य भी उसे प्राप्त होता है ॥३१-३३॥ इस संसार में अपने माता-पिता के समान अन्य कोई देवता नहीं है । पिता इस शरीर के देने का कारण है अतएव वह प्रत्यक्ष देवता है । पिता न होता तो यह शरीर ही प्राप्त नहीं होता ॥३४॥ हितों से युक्त कर्मों के करने का उपदेश देने वाला गुरु भी प्रत्यक्ष देवता है । इनके अतिरिक्त अन्य जो लोक में देवता हैं वे सब इस शरीर से ही होने वाले होते हैं ॥३५॥

शरीरमेव जन्तूनां नरकस्वर्गमोक्षदम् ।
शरीरं सम्पदो दाराः सुता लोकाः सनातनाः ॥२

यस्य प्रसादात्प्राप्यन्ते कोऽन्यः पूज्यतमस्ततः ।
एवं सञ्चिन्त्य हृदये पितृणां यः प्रयच्छति ।।
तत्सर्वमात्मना भुङ्क्ते दान वेदविदो विदुः ।।३७
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते तु यः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेकस्त्वहं ब्रुवे ।।३८
अपमृत्युमृतौ स्यातां पिता माता च कस्यचित् ।
धर्मं तीर्थं विवाहादि श्राद्धं सांवत्सरं त्यजेत् ।।३९
स्वप्नाध्यायमिमं यस्तु प्रेतलिङ्गेन दर्शितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि प्रेतचिह्नं न पश्यति ।।४०

यह शरीर ही मुख्यतया जन्तुओं के नरक–स्वर्ग तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला होता है । ऐसा यह उत्तम शरीर–सम्पत्ति–दारा–सुत–सनातन लोक आदि सभी कुछ जिसके प्रसाद से प्राप्त होते हैं उससे अन्य कौन सर्वाधिक पूजा के योग्य हो सकता है ? इस प्रकार से अपने हृदय में भलीभाँति चिन्तन करके जो पितृगण के उद्देश्य से दिया करता है उस दान को सर्वात्मा के द्वारा मुक्त किया जाता है—ऐसा वेद के विद्वान् कहते हैं और समझते हैं ।।३६-३७।। पुन्नाम वाले नरक से जो अपने पिता का त्राण किया करता है इसलिये उसे 'पुत्र'—इस नाम से कहा गया है । मैं स्वयं एक ही हूँ—ऐसा बोले ।।३८।। किसी के माता–पिता अपमृत्यु से मृत हुए हों उसे धर्म–तीर्थ, विवाह आदि में तथा वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए । इस स्वप्नाध्याय को जो प्रेत लिङ्ग से दिखाया गया है जो पठन—श्रवण करता है वह प्रेत चिह्न को नहीं देखता है ।।३९-४०।।

१२–प्रेतत्व प्राप्ति का कारण और उनका आहार

सम्भवन्ति कथं प्रेताः केन मृत्युवशङ्गताः ।
कीदृक्तेषां भवद्रूपं भोजनं किं भवेद्विभो ।।१
सुप्रीतास्ते कथं प्रेताः क्व तिष्ठन्ति सुरेश्वर ।
प्रसन्नः कृपया देव प्रश्नमेनं वदस्व मे ।।२

ये केचित्पापकर्माणः पूर्वकर्मवशानुगाः ।
जायन्ते ते मृताः प्रेताः शृणुष्व त्वं वदाम्यहम् ॥३
वापीकूपतड़ागानि ह्यारामञ्च सुरालयम् ।
प्रपां सद्यः सुवृक्षांश्च तथा भोजनशालिकाः ॥४
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापकृत् ।
मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसप्लवम् ॥५
गोचरं ग्रामसीमाश्च तड़ागारामगह्वरम् ।
कर्षयन्ति च ये लोभात्प्रेतास्ते सम्भवन्ति हि ॥६
चाण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्य तात्तथा ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभयश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥७

गरुड़ ने कहा—हे विभो ! कृपा कर अब यह बतलाइये कि ये किसके द्वारा मृत्यु गत हुए किस प्रकार से प्रेत हो जाया करते हैं ? उन प्रेतों का स्वरूप कैसा होता है और उनका भोजन क्या हुआ करता है ? ॥१॥ हे सुरेश्वर ! वे प्रेतगण परम प्रसन्न किस तरह होते हैं और किस स्थान में रहा करते हैं ? हे देव ! आप प्रसन्न होते हुए मेरे इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करने की कृपा करें ॥२॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—जो कोई पाप कर्मों के करने वाले होते हैं और अपने पूर्व जन्म के कर्मों के वश में जो पड़े होते हैं अर्थात् पहिले जन्मों में जो बुरे-भले कर्म किये हैं उनके वश वर्त्ती होते हुए वे मृत होकर प्रेत उत्पन्न हुआ करते हैं । मैं सब बतलाता हूँ तुम इसका श्रवण करो ॥३॥ वापी (वावड़ी) —कूप(कुआ)-तड़ाग(तालाब)— आराम (बाग)-देव स्थान-प्रपा (प्याऊ)-सुन्दर फल छाया समन्वित वृक्ष और भोजनशाला इनका एवं पिता—पितामह के समय से चले आने वाले धर्म का जो स्वरूप बिगाड़ देते हैं अर्थात् नष्ट भ्रष्ट कर दिया करते हैं वे पाप के करने वाले होते हैं और मर कर वे प्रेतत्व की योनि प्राप्त किया करते हैं और जब तक भूत संप्लव(महा प्रलय)होता है तब तक प्रेत योनि में रहा करते हैं ॥४-५॥ गोचर भूमि—ग्राम की सीमा—तालाब–आराम और गह्वर(घना जंगल)-इनका जो कर्षण लोभ से किया करते हैं वे प्रेत

हो जाते हैं ।।६।। पाप युक्त कर्म करने वालों की मृत्यु चाण्डाल से–जलसे–सर्प दंशन से–ब्राह्मण से–बिजली से–दाढ़ वाले जीवों से और पशुओं से हुआ करती है । उपर्युक्त जिनकी मौत होने के कारण होते हैं वे पापी होते हैं ।।७।।

उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये ।
आत्मोपघातिनो ये च विसूच्यग्निहताश्च ये ।।८
महारोगैर्मृता ये च पापरोगैश्च दस्युभिः ।
असंस्कृतप्रमृताश्च विहिताचारवर्जिताः ।।९
वृषोत्सर्गादिसंस्कारैर्लुप्तैः पिण्डैश्च मासिकैः ।
यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च ।।१०
पतनं पर्वतादिभ्यो भित्तिपातेन ये मृताः ।
रजस्वलादिदोषैस्तु न भूमौ म्रियते यदि ।।११
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः ।
सूतकादिषु सम्पर्का दुष्टशल्यहतास्तथा ।।१२
एवमादिभिरन्यैश्च कुमृत्युवशगास्तु ये ।
ते सर्वे प्रेतयोनिस्था विचरन्ति महीस्थलीम् ।।१३
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
युधिष्ठिरस्य संवादं भीष्मेण सह सुव्रत ।।
तदहं कथयिष्यामि यच्छ्रुत्वा सौख्यमाप्नुयात् ।।१४

जो उद्बन्धन के होने के कारण मृत हो जाते हैं—जो पाप के कारण से होने वाले रोगों से मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं—जो डाकू तथा चोरों के द्वारा मार दिये जाते हैं—जो असंस्कृत ही मृत्यु गत हो जाते हैं तथा अपने शास्त्र विहित आचार से रहित होते हैं । वृषोत्सर्ग के संस्कारों के लोप होने से तथा मासिक पिंडों के लुप्त हो जाने से बुभूक्षित दशा में रहते हैं—जिसके लिये शूद्र,अग्नि,तृण,काष्ठ और हवि का साहित्य लाया करता है—जो पर्वत आदि समुच्च स्थान से पतन होने से मर जाते हैं तथा भींत-मकान आदि के नीचे दबकर मौत के मुँह में चले जाया करते हैं—जो रजस्वला

आदि के दोषों से भूमि में नहीं मरते हैं—जो अधर ही अन्तरिक्ष में मृत हो जाते हैं—जो भगवान् विष्णु के स्मरण से रहित होते हुए मर जाते हैं—सूतक आदि में सम्पर्क वाले तथा दुष्ट शल्य आदि से जो मृत होते हैं—एवमादि तथा अन्य भी मृत्यु के हेतु जिनके ऐसे ही हुआ करते हैं वे सब कुमृत्यु के वशीभूत कहे गये हैं। ऐसे कुमौत से मरने वाले सभी प्रेत योनि में स्थित होकर इस भू-मण्डल में विचरण किया करते हैं। हे सुव्रत ! अब हम तुम्हारे समक्ष में एक परम प्राचीन इतिहास बतलाते हैं। यह युधिष्ठिर का भीष्म के साथ सम्वाद में आया था। उसे मैं तुमको श्रवण कराता हूँ। इसे सुन कर तुमको परम सुख प्राप्त होगा ॥८-१४॥

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते ।
केनोपायेन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१५
अहं ते कथिष्यामि सर्वमेतदशेषतः ।
यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि सुव्रत ॥१६
येन यो जायते प्रेतो येन चैव विमुच्यते ।
प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं दैवतैरपि ॥१७
सततं श्रवणाद्विष्णोः पुण्यतीर्थानुकीर्त्तनात् ।
प्रेतभावा विमुच्यन्ते आपत्सु प्रेतयोनिषु ॥१८
श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
नाम्ना सन्तप्तकः ख्यातस्तपोऽर्थे वनमाश्रितः ॥१९
स्वाध्याययुक्तो होमे च योगयुक्तो दयान्वितः ।
स यजेत्सकलान्यज्ञान्युत्य कालं क्षिपेन्निजम् ॥२०
ब्रह्मचर्य्ये सदा युक्तो युक्तस्तपसि मार्दवे ।
परलोकभये युक्तः सत्ये शौचे तु नित्यशः ॥२१

धर्मराज राजा युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा था—हे पितामह ! किस कर्म के विपाक होने से प्रेत की योनि प्राप्त हुआ करती है और वह फिर किस उपाय के करने से छूटा करती है ? इसे मुझे बतलाइये। तब राजा युधिष्ठिर के इस प्रश्न को सुनकर भीष्म पितामह बोले—भीष्म ने कहा—मैं इसे तुमको पूर्ण रूप से बतलाता हूँ। हे सुव्रत! इसका श्रवण कर इसप्रकार

से फिर तुमको कभी मोह नहीं होगा ॥१५-१६॥ जिस कारण से जो कोई प्रेत हो जाता है और जिस कारण से इससे मुक्ति प्राप्त किया करता है और देवों के द्वारा भी दुस्तर घोर नरक को प्राप्त किया करता है ॥१७॥ निरन्तर भगवान् विष्णु के परम पुण्य तीर्थों को अनुकीर्तन करने से तथा श्रवण करने से प्रेत भाव से विमुक्ति हो जाती है जोकि प्रेत योनि परम आपत्ति स्वरूप हुआ करती है ॥१८॥ हे वत्स ! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन समय में पहिले संशित व्रत वाला संतप्त नाम वाला एक ब्राह्मण प्रसिद्ध था जोकि तप करने के लिए वन में आश्रय करने वाला था ॥१९॥ वह स्वाध्याय से युक्त और होम में योनि से संयुत—दया से समन्वित था। वह युक्ति से अपने समय का क्षेय करता हुआ समस्त यज्ञों का यजन किया करता था ॥२०॥ वह सर्वदा ब्रह्मचर्य में युक्त रहा करता था और मार्दवच तपश्चर्या में युक्त रहता था। उसे परलोक का भय रहा करता था और नित्य ही सत्य तथा शौच में स्थित रहता था ॥२१॥

युक्तो हि गुरुवाक्ये च युक्तस्त्वतिथिपूजने ।
आत्मयोगेषु यो युक्तः सर्वं द्वन्द्वविवर्जितः ॥२२
योगाभ्यासे सदा युक्तः संसारविजिगीषया ।
एववृत्तसमाचारो मोक्षाकाङ्क्षी जितेन्द्रियः ॥२३
बहून्यब्दानि विजने वने तस्य गतानि वै ।
तस्य बुद्धिस्ततो जाता तीर्थानुगमनं प्रति ॥२४
पुण्यैस्तीर्थजलैरेव शोषयिष्ये कलेवरम् ।
स तीर्थं त्वरितं स्नात्वा तपस्वी भास्करोदये ॥२५
कृतजाप्यनमस्कारो ध्यानञ्चक्रे जगद्गुरोः ।
एकस्मिन्दिवसे विप्रो मार्गभ्रष्टौ महातपाः ॥२६
ददर्श त्वरितो गच्छन्पञ्च प्रेतान्सुदारुणान् ।
अरण्ये निर्जने देशे कण्टकैः वृक्षवर्जिते ॥२७
पञ्चैतान्विकृताकारान्दृष्ट्वा वै घोरदर्शनान् ।
दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयस्तिष्ठन्मीलित लोचनः ॥२८

वह गुरु के वचनों में सर्वदा युक्त रहा करता था तथा अतिथियों के पूजन में निरत रहता था। वह आत्म योगों में युक्त रहा करता था और सभी द्वन्द्वों से रहित था ।।२२।। इस संसार की विजिगीषा अर्थात् जय प्राप्त करने की इच्छा से वह सदा योगाभ्यास में युक्त रहता था। इस प्रकार के चरित्र और समाचार वाला वह मोक्ष की इच्छा वाला और विशेष रूप से इन्द्रियों को जीतने वाला था ।।२३।। इस तरह से रहते हुए उस वियावान जङ्गल में उसको बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसके अनन्तर उसका विचार तीर्थों में अनुगमन करने को हुआ था ।।२४।। उसने सोचा कि अब मैं परम पवित्र तीर्थों के जल से ही कलेवर का शोषण करूँगा। वह तीर्थ में शीघ्र स्नान करके भगवान् भास्कर के उदय काल में वह तपस्वी जय और नमस्कार करके जगद्गुरु का ध्यान किया करता था। एक दिन उस मार्ग से भ्रष्ट महा तपस्वी विप्र ने शीघ्रता से गमन करते हुए अत्यन्त दारुण पाँच प्रेतों को देखा जबकि वह उस काँटों से परिपूर्ण निर्जन वृक्षों से रहित वन में थे ।।२५-२७।। इन पाँचों प्रेतों को जो कि बहुत ही भयानक दिखलाई देने वाले, विकृत आकार वाले थे, देखकर वह सन्त्रस्त हृदय वाला हो गया था और अपने नेत्र मूँदकर एक ही स्थान पर स्थित हो गया था ।।२८।।

अवलम्ब्य ततो धैर्य्यं त्रासमुत्सृज्य दूरतः।
पप्रच्छ मधुराभाषी के यूयं विकृता भृशम् ।।२९
किञ्चाशुभं कृतं कर्म येन प्राप्ताः स्म वैकृतम्।
कथं वा एककर्माणः प्रस्थिताः कुत्र निश्चितम् ।।३०
स्वैः स्वैः कर्मभिरुत्पन्नं प्रेतत्वं नो द्विजोत्तम।
परद्रोहरताः सर्वे पापमृत्युवशङ्गताः ।।३१
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं प्रेतत्वं समुपागताः।
हतवाक्या वयं सर्वे नष्टसंज्ञा विचेतसः ।।३२
न जानीमो दिशं तात विदिशञ्चातिदुःखिताः।
गच्छामः कुत्र वै मूढाः पिशाचाः कर्मजा वयम् ।।३३

न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः ।
प्राप्ताः स्म सहसा तद्वै दुःखोद्वेगसमाकुलाः ।।३४
दर्शनेन च ते ब्रह्मन्ह्लादिताप्यायिता वयम् ।
मुहूर्त्तं तिष्ठ वक्ष्यामि वृत्तान्तं सर्वमादितः ।।३५

फिर कुछ समय में धीरज का सहारा लेकर और अपने भय को दूर कर उनसे उसने मधुर भाषण करते हुए पूछा—आप इतने विकृत स्वरूप वाले कौन हैं ? ।।२९।। आप लोगों ने ऐसा क्या अशुभ कर्म किया था ऐसा यह विकृत स्वरूप आपको प्राप्त हुआ है ? आप सभी पाँचों क्या एक ही जैसा कर्म करने वाले हैं जोकि किसी एक निश्चित स्थान पर रवाना हो रहे हैं ? आप कहाँ को प्रस्थान कर रहे हैं ? ।।३०।। प्रेतों ने कहा–हे द्विज श्रेष्ठ ! हम सबको अपने-अपने कर्मों के ही कारण यह प्रेतत्व की योनि प्राप्त हुई है। हम सब पराये द्रोह में रति रखने वाले थे और पाप पूर्ण मृत्यु के वशंगत हो गये थे ।।३१।। अब हम सब क्षुधा और प्यास से पीड़ित नित्य ही रहा करते हैं और इस प्रेतत्व को प्राप्त हो गए हैं। हम सब हत वाक्य हैं और नष्ट संज्ञा वाले अर्थात् मूर्च्छित तथा असावधान चित्त वाले हो रहे है ।।३२।। हे तात ! हम इस समय में इतने दुःखित हो रहे हैं कि दिशाओं और विदिशाओं को भी नहीं पहिचान रहे हैं। हम अब कहाँ जावें ?—इसे भी नहीं बता सकते हैं क्योंकि इसमें भी हम मूढ़ हो रहे हैं। हम कर्मों से उत्पन्न हो जाने वाले पिशाच हैं ।।३३।। हमारा न कोई पिता है और न कोई माता है। हम अपने ही कर्मों से प्रेत योनि में आ गये हैं। और जब इस योनि में आ गये हैं तो सहसा दुःख के उद्वेग से परम व्याकुल हो रहे हैं। हे ब्रह्मन् ! आपके दर्शन से हम ह्लादित (प्रसन्न) और अत्यन्त तृप्त हुए हैं। मुहूर्त मात्र आप यहाँ ठहरिये तो हम सब आदि से अपना पूर्ण वृत्तान्त आपको बता देंगे ।।३४-३५।।

मम पर्युषितं नाम एष सूचीमुखः स्मृतः ।
शीघ्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा ।।
एवं नाम्ना च सर्वे वै सम्प्राप्ताः प्रेततां वयम् ।।३६

प्रेतानां कर्मजातानां कथं वै नामसम्भवः ।
शिञ्चित्कारणमुद्दिष्टं येन ब्रूत स्वनामकान् ॥३७
मया स्वादु सदा भुक्तं दत्तं पर्युषितं द्विजे ।
तेन पर्य्युषितं नाम जातं मे ब्राह्मणोत्तम ॥३८
सूचिता बहवोऽनेन विप्रा अन्नादिकांक्षया ।
एतत्कारणमुद्दिश्य ह्येष सूचीमुखः स्मृतः ॥३९
शघ्रीं गच्छति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वै ।
एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोऽयं द्विजोत्तम ॥४०
एकाकी मिष्टमश्नाति दैवं पैत्र्यञ्च नित्यशः ।
ब्राह्मणानामभावेन रोहकस्तेन चोच्यते ॥४१
पुरायं मौनमास्थाय याचितो विलिखन्महीम् ।
तेन कर्मविपाकेन लेखको नाम नामतः ॥४२

उन पाँचों प्रेतों में से एक ने कहा—मेरा नाम तो पर्युषित है और यह दूसरा जो है उसका नाम सूची मुख है–तीसरा शीघ्रग, चौथा रोहक और पाँचवा लेखक नाम वाला है। इस प्रकार से इन सब नामों वाले हम प्रेतत्व को प्राप्त हुए हैं ॥३६॥ ब्राह्मण ने कहा–कर्म से उत्पन्न होने वाले प्रेतों के नाम कैसे उत्पन्न हुए हैं अर्थात् इनका नाम कैसे रक्खा गया है ? इसका कुछ कारण अवश्य ही होगा जिससे कि आप अपने नामों को बता रहे हैं। ॥३७॥ प्रेतराज बोला—मैंने हमेशा स्वाद युक्त भोजन किया था और जो बासी भोजन होता था वह ब्राह्मण को खिला दिया था। हे ब्राह्मणोतम ! इसीलिए मेरा नाम पर्युषित पड़ गया है ॥३८॥ इस प्रेत ने अन्नादि की आकांक्षा से बहुत से विप्रों को सूचित किया था इसी कारण का उद्देश्य करके यह सूची मुख इस नाम से कहा गया है ॥३९॥ भूखे ब्राह्मण के द्वारा जब इससे याचना की जाती तो यह शीघ्रता से चला जाया करता था। इसी कारण के उद्देश्य से हे द्विजोत्तम ! इसका नाम शीघ्रग पड़ गया है ॥४०॥ ब्राह्मणों के अभाव के कारण यह देवता और पितृगण सम्बन्धी मिष्ट पदार्थ को अकेला ही नित्य खा जाया करता था इस कारण से इसे रोहक कहा

जाता है ॥४१॥ यह पहिले जब याचना किया करता था तो मौन होकर भूमि पर लिखने लगता था उसी कर्म के विपाक से इसको लेखक इस नाम से कहा जाता है ॥४२॥

प्रेतत्वं कर्मभावेन प्राप्य नामानि च द्विज ।
मेषाननो लेखकोऽयं रोहकः पर्वताननः ॥४३
शीघ्रगः पशुवक्त्रश्च सूचकः सूचिवक्त्रवान् ।
पर्युषितो बलग्रीवः पश्य रूपविपर्य्ययम् ॥४४
धृत्वा मायामयं रूपं विद्रुता नरकार्णवात् ।
सर्वे च विकृताकारा लम्बोष्ठा विकृताननाः ॥४५
बृहच्छरीरदशना वक्रास्याः स्वेन कर्मणा ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रेतत्वे कारणा मया ॥४६
ज्ञानिनो हि वय सर्वे सञ्जाता दर्शनात्तव ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा पृच्छास्मान्यद्यदिच्छसि ॥४७
ये जीवा भुवि जीवन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः ।
युष्माकमपि चाहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥४८
यदि ते श्रवणे श्रद्धा आहारं श्रोतुमिच्छसि ।
अस्माकं तु महाभाग शृणुष्व सुसमाहितः ॥४९

हे द्विज ! कर्मों की भावना से प्रेतत्व प्राप्त किया और नाम भी प्राप्त हुए हैं। यह लेखक मेष के समान मुख वाला है और रोहक पर्वत के तुल्य मुख वाला है ॥४३॥ शीघ्रग का मुख पशु के समान है और सूचक सूची जैसा मुख वाला है। पर्युषित बलग्रीव है। इस तरह इन सबके रूप का विपर्यय है उसे तुम देख लो ॥४४॥ इस माया से परिपूर्ण रूप को धारण कर हम नरक के सागर से विद्रुत हुए हैं। हम सभी विकृत आकार वाले, लम्बे ओठों से युक्त और बिगड़े हुए मुखों वाले हैं। हम बड़े शरीर और दांतों वाले हैं, टेढ़े मुख से युक्त अपने ही कर्मों के कारण हैं। मैंने यह सब प्रेतत्व प्राप्त करने का कारण तुमको बतला दिया है ॥४५-४६॥ तुम्हारे दर्शन से हम सब ज्ञान वाले हो गये हैं। यदि तुमको श्रवण करने की इच्छा है और श्रद्धा है तो हमसे और

कुछ पूछिए ।।४७।। ब्राह्मण ने कहा—इस मही मण्डल में जो भी जीव हैं उन सभी का मूल आहार है, क्योंकि आहार के बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता। अब मैं, आप का भी क्या आहार है ?—यह तत्त्व पूर्वक श्रवण करना चाहता हूँ ।।४८।। प्रेतगण बोले-यदि तुम्हारी श्रवण करने की इच्छा है और हमारा आहार सुनना चाहते हो तो हे महाभाग ! हमारा आहार क्या होता है ?--इसे सावधान होकर सुनो ।।४९।।

कथय प्रेतराज त्वमाहारञ्च पृथक् पृथक् ।
इत्युक्ता ब्राह्मणेनेदमूचुः प्रेताः पृथक् पृथक् ।।५०
शृणुष्वाहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम् ।
यच्छ्रुत्वा गर्हसे ब्रह्मन् भूयो भूयोऽपि कुत्सितम् ।।५१
श्लेष्ममूत्रपुरीषैश्च रेचकैः समलैः सह ।
उच्छिष्टैश्चैव पक्वान्नैः प्रेतानां भोजनं भवेत् ।।५२
गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च ।
मलिनान्यपि भूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।।५३
नास्ति शौचं गृहे यस्य न सत्यं न च संयमः ।
पतितैर्दस्युभिर्भुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।।५४
बलिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च ।
स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेताभुञ्जन्ति तत्र वै ।।५५
न लज्जा न च मर्यादा यत्र वै कुत्सितो गृही ।
सुराश्चैव न पूज्यन्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।।५६
यत्र लोभो ह्यतिक्रोधो निद्रा शोको भयं मदः ।
आलस्यं कलहो माया प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।।५७
र्ह्रीहीना च याभ नारी परवीर्य्यं विषेवते ।
वीर्य्यमूत्रसमायुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ।।५८

'हे प्रेतराज ! आप अपना पृथक्-पृथक् आहार बतलाओ।' ब्राह्मण के द्वारा इस तरह से कहे गये वे प्रेत अलग-अलग बोले ।।५०।। प्रेत बोले—आप हमारे आहार का श्रवण करो जो सब प्रकार के सत्वों से

विशेष रूप से बुरा होता है। हे ब्रह्मन् ! उसे आप सुन करके बारम्बार उसकी निन्दा करेंगे कि वह ऐसा कुत्सित होता है ।।५१।। श्लेष्मा (कफ), मूत्र, पुरीष (मल), रेचक(वमन किया हुआ पदार्थ)ये सब मल सहित तथा उच्छिष्ट(झूँठे,पक्वान्न इनसे प्रेतों का भोजन हुआ करता है ।।५२।। जिनमें शौच छोड़ा गया हो और पवित्रता से रहित हों, जिनमें मलवा आदि उपस्कर बिखरे पड़े हैं, मलिन गृह इन भूत-प्रेतों के भोजन करने के स्थान हुआ करते हैं। ये प्रेतगण हम सभी वहाँ पर भोजन किया करते हैं ।।५३।। जिस घर में अत्यन्त पवित्रता नहीं होती है,न सत्य है और न किसी प्रकार का कोई संयम ही होता है जो पतित और दस्युओं के द्वारा मुक्त होता है उसी स्थल या घर में प्रेतगण भोजन किया करते हैं ।।५४।। जो घर बली मन्त्र और होम से रहित तथा स्वाध्याय और व्रतों से हीन हुआ करते हैं, प्रेत लोग वहीं पर भोजन करते हैं ।।५५।। न किसी तरह की कोई लज्जा होती है और न कोई मर्यादा का ही पालन किया जाता है तथा जहाँ पर गृहस्थी पूर्णतया कुत्सा (बुराई) से युक्त रहा करता है एवं सुरगण का कभी भी कोई यजन-अर्चन नहीं किया जाता वहीं प्रेतगण भजन करते हैं ।।५६।। जहाँ अत्यन्त लोभ,क्रोध,निद्रा, शोक, भय और मद की अधिकता तथा आलस्य, कलह और माया का आधिक्य हुआ करता है उन्ही घरों तथा स्थानों में प्रेत भोजन किया करते हैं ।।५७।। स्वामी से रहित नारी पर पुरुष के साथ रमण कर उसी के वीर्य का सेवन किया करती है वहाँ वीर्यमूत्र से समायुक्त उसी पदार्थ को प्रेतगण खाया करते हैं ।।५८।।

लज्जा मे जायते तात वदतो भोजनं स्वकम् ।
यत्स्त्रीरजो योनिगतं तल्लिहामो द्विजोत्तम ।।५९

निर्विण्णा प्रेतभावेन पृच्छामि त्वां दृढव्रतम् ।
यथा च न भवेत्प्रेतस्तन्मे वद तपोधन ।
नित्यं मृत्युर्वरं जन्तोः प्रेतत्वं मा भवेत्क्वचित् ।।६०

उपवासरतो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः ।
किमन्यैः सुकृतैः प्रेत न प्रेतो जायते नरः ।।६१

इष्ट्वा चैवाश्वमेधादीन् दानं दत्त्वा तु यो नरः।
मठारामप्रपादीनां गोष्ठ्यादेश्चैव कारकः ॥६२
कुमारीं ब्राह्मणांश्चैव विवाहयति शक्तितः।
विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेतो जायते नरः ॥६३
पतितान्नेन भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः।
पापमृत्युवशाद् यो वै स प्रेतो जायते नरः ॥६४
अयाज्ययाजकश्चैव याज्यानाञ्च विवर्जकः।
कुत्सितैश्च रतो नित्यं स प्रेतो जायते नरः ॥६५
ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च गुरुद्रव्यं हरेत्तु यः।
कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः ॥६६
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं ततः।
अदृष्टदोषात्त्यजति स प्रेतो जायते नरः ॥६७

हे तात ! मुझे अपना भोजन बताते हुए भी बड़ी भारी लज्जा होती है। हे द्विजोत्तम ! जो रज स्त्री की योनिगत होता है हम उसी को चाटा करते हैं ॥५६॥ अब हम इस प्रेतभाव से बहुत ही विरक्त हो गये हैं और दृढ़ व्रत वाले आपसे पूछते हैं। हे तप के धन वाले महाभाग ! ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे यह प्रेतभाव न रहे, जन्तु की नित्य ही मृत्यु का हो जाना भी परम श्रेष्ठ है किन्तु यह प्रेतत्व कभी न हो ॥६०॥ ब्राह्मण ने कहा—नित्य उपवासों में रति रखने वाला और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि महाव्रतों का करने वाला पुरुष हे प्रेत ! कभी भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं हुआ करता है फिर अन्य सुकृतों की कोई आवश्यकता ही नहीं है ॥६१॥ जो पुरुष अश्वमेध आदि यज्ञों का यजन करके दान देता है तथा मठ—आराम और प्रपा (प्याऊ) आदि का एवं गोष्ठी आदि का निर्माण किया करता है। जो अपनी शक्ति के अनुसार कुमारी कन्याओं का तथा ब्राह्मणों का विवाह कर देता है। जो विद्या का दान करता है और जो किसी के भय की मुक्ति कर उसे अभय का दान किया करता है वह पुरुष कभी प्रेत की योनि प्राप्त नहीं किया करता है ॥६३॥ किसी भी पतित पुरुष के अन्न को खाकर उस अन्न को अपने उदर में रखते हुए ही मृत हो जाता है।

उस पापयुक्त मृत्यु के वशीभूत होता हुआ वह नर अवश्य ही प्रेत हो जाया करता है ।।६४।। जिसका यजन नहीं कराने के योग्य हो उसका याजन तथा जो यजन के योग्य हों उनका वर्जन करने वाला एवं नित्य ही कुत्सित कर्मों में रति रखने वाला नर प्रेत हुआ करता है ।।६५।। जो ब्राह्मण का धन, देवता का द्रव्य और गुरु की सम्पत्ति का हरण किया करता है और शुल्क लेकर अर्थात् धन प्राप्त करके जो कन्या का विक्रय किया करता है वह मनुष्य प्रेतत्व प्राप्त करता है ।।६६।। अपनी माता, भगिनी, भार्या, स्नुषा (पुत्र वधू) तथा पुत्री को कोई दोष विना ही देखे त्याग देता है वह मनुष्य भी प्रेत हो जाता है ।।६७।।

न्यासापहर्त्ता मित्रध्रुक्परदाररतः सदा ।
विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः ।।६८

भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतेषु सदा रतः ।
हर्त्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः ।।६९

एवं वदति विप्रे च आकाशे दुन्दुभिस्वनः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता द्विजोपरि ।।७०
पञ्च देवविमानानि प्रेतानामागतानि च ।
स्वर्गं गता विमानैस्ते पुण्यं सम्भाष्य तं मुनिम् ।।७१
तस्य विप्रस्य सम्भाषात्पुण्यसङ्कीर्त्तनेन च ।
प्रेताः पापविनिर्मुक्ताः परं पदमवाप्नुयुः ।।७२

इदमाख्यानकं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थवर्णवत् ।
मानुषाणां हितार्थाय पुनः पृच्छति पक्षिराट् ।।७३

धरोहर के अपहरण करने वाला, मित्रों से द्रोह करने वाला, पराई स्त्रियों में रमण करने वाला, विश्वासघाती और कूट पुरुष प्रेतत्व की प्राप्ति करता है ।।६८।। भाई से द्रोह करने वाला, ब्राह्मण का हनन करने वाला, गौ का वध कर्त्ता, मदिरा का पान करने वाला, गुरु की शय्या पर गमन करने वाला और अपने कुल के परम्परागत मार्ग का त्याग कर जो सर्वदा

मिथ्या कर्म तथा मिथ्या भाषण में रति रखता है एवं भूमि और सुवर्ण का हरण करने वाला पुरुष है वह भी अवश्य ही प्रेत होता है ।।६९।। श्री भीष्म पितामह ने कहा–जिस समय इस तरह से उन पाँचों प्रेतों से वह ब्राह्मण कह रहा था उसी समय आकाश में देवों की दुन्दुभि की ध्वनि हुई और देवों के द्वारा छोड़ी हुई पुष्पों की वृष्टि उस द्विज पर हुई थी ।।७०।। देवताओं के पाँच विमान उन पाँचों प्रेतों के लिये आगये थे । उस महामुनि के साथ थोड़े समय तक यह जो परम सुन्दर सम्भाषण किया था इसी के महापुण्य से वे सब देखते-देखते स्वर्ग को चले गये थे । सद्भाषण और सत्पुरुष के सङ्ग का कैसा अद्भुत् महात्म्य हुआ करता है ।।७१।। उस विप्र के साथ सम्भाषण से और पुण्य कर्म के सङ्कीर्त्तन से वे प्रेत पापों से निर्मुक्त हो गये और परम पद को प्राप्त हो गये थे ।।७२।। इस आख्यान का श्रवण करके पक्षियों का राजा गरुड़ पीपल के पत्र की भाँति कम्पित होगया और मनुष्यों के हित के लिये उसने फिर पूछा ।।७३।।

१३—मृत्यु के कारणों का वर्णन

नाकाले म्रियते कश्चिदिति वेदानुशासनम् ।
कस्मान्मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमनृतं तत्प्रदृश्यते ।।१
वेदैरुक्तं तु यद्वाक्यं शतञ्जीवति मानवः ।
तत्काली न च दृश्येत कस्मादेवं समादिश ।।२
साधु साधु महाप्राज्ञ यत्त्वं भक्तोऽसि मे दृढ़ः ।
श्रूयतां मत वाक्यन्तु नानापापविनाशनम् ।।३
विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति ।
तं प्रवक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते ।।४
मनुष्यः शतजीवी च पुरा वेदेन भाषितम् ।
विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रञ्चापि विनश्यति ।।५
वेदानभ्यसते नैव कुलाचारं न सेवते ।
आलस्यात्कर्मणा त्यागं कुरुते पापमाचरन् ।।६

यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतो यदि ।
एतैरन्यैश्च बहुशो जायते ह्यायुषः क्षयः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे भगवान् ! वेदों का यह तो अनुशासन है कि कभी कोई अकाल में नहीं मरता, फिर राजा या श्रोत्रिय कैसे मृत्यु को प्राप्त होता है ? क्या ब्रह्मा ने पहिले जो कुछ भी कहा है वह मिथ्या दिखलाई देता है ? ॥१॥ वेदों ने जो यह वाक्य कहा है कि मानव सौ वर्ष तक जीवित रहता है यह बात अब इस कराल कलियुग में नहीं दिखलाई देती। इस प्रकार यह विपरीतता क्यों हो रही है ? इसे समझाइये ॥२॥ भगवान् ने कहा—हे महान् पण्डित ! बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह ठीक है। तुम मेरे बड़े ही दृढ़ भक्त हो अतएव मेरे वाक्य श्रवण करो जो अनेक प्रकार के पापों के नाशक हैं ॥३॥ विधाता के द्वारा निहित किया हुआ मृत्यु शीघ्र ही आकर चला जाता है । हे पक्षियों के स्वामिन्! हे काश्यपेय! हे महान् द्युति वाले ! मैं इसे अब बतलाता हूँ ॥४॥ मनुष्य वस्तुतः सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहने वाला है जो कि पहिले वेद भगवान् ने कहा है। बुरे कर्मों के प्रभाव से वही सौ वर्ष तक जीवित रहने वाला मनुष्य शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है ॥५॥ यह मानव न वेदों का अभ्यास करता है और न अपने कुल में चले आने वाले आचारों का ही सेवन करता है। इसमें आलस्य इतना भर गया है कि अपने कर्त्तव्य कर्मों का त्याग कर पाप कर्मों का आचरण करता रहता है ॥६॥ जहाँ-तहाँ दिल में आया वहीं खा लिया और खाने-पीने में कुछ भी भले-बुरे का इसके दिल में विचार नहीं होता। पराये क्षेत्र में अर्थात् दूसरे की नारी में रति करता है तो ऐसे ही कर्मों से मनुष्य की आयु का क्षय हो जाया करता है ॥७॥

अश्रद्दधानमशुचिमजपं त्यक्तमङ्गलम् ।
तं यति सुरासक्तं ब्राह्मणं यमशासनम् ॥८

अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम् ।
क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम् ॥९

प्रजापीड़कं सन्तप्तं राजानं यमशासनम् ।
प्रापयन्त्यपमृत्युं वै युद्धे चैव पराङ्गमुखम् ॥१०
स्वकर्माणि परित्यज्य निषिद्धं वैश्य आचरेत् ।
परकर्मरतो नित्यं यमलोकं स गच्छति ॥११
शूद्रः करोति यत्किञ्चिद्द्विजसेवाविवर्जितम् ।
करोति कर्म यच्चान्यद्यमेना लोक्यते सदा ॥१२
स्नानं दानञ्जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
यस्मिन्दिने न सेव्यन्ते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१३
अनित्यमध्रुवं देहमनाधारं रसोद्भवम् ।
अन्नपिण्डमये देहे गुणानेतान्वदाम्यहम् ॥१४

श्रद्धा न रखने वाले, अशुचि, जाप न करने वाले, मङ्गलमय शुभ कर्मों को त्याग देने वाले, मदिरा पान में आसक्त ब्राह्मण को यमराज के शासन में पहुंचाया करते हैं ॥८॥ जो राजा प्रजाजन की रक्षा न करने वाला होता है और धर्म से रहित है—क्रूर,व्यसनों में लिप्त,मूर्ख और वेद वाद से बहिष्कृत, प्रजा को प्रपीड़ित करने वाले राजा को यमराज के दण्ड भोगने को प्राप्त करा देते हैं। जिसकी अपमृत्यु होती है तथा जो युद्ध में परांगमुख होता है उस राजा को यम के शासन में जाना पड़ता है ॥९-१०॥ जो वैश्य अपने शास्त्रोक्त कर्मों का त्याग करके निषिद्ध कर्मों का आचरण करने वाला तथा सदा पापयुक्त कर्मों का करने वाला होता है वह वैश्य भी यमराज के लोक में जाया करता है ॥११॥ जो शूद्र द्विजगण की सेवा को त्याग कर जो कुछ भी दिल में भाया कर्म किया करता है वह यमराज के यहाँ पहुंच कर उसके शासन का भोग भोगता है ॥१२॥ स्नान, दान, जप होम, स्वाध्याय, देवों का अर्चन आदि जिस दिन में नहीं किये जाते हैं वह पूरा दिन मनुष्यों का व्यर्थ ही व्यतीत हुआ करता है। ये उपर्युक्त कर्म प्रत्येक दिन में अनिवार्य रूप से करने के योग्य होते हैं ॥१३॥ यह मानव का शरीर तो अनित्य है,अध्रुव है अर्थात् कब तक यह बना रहेगा, इसका कुछ भी निश्चय नहीं है। यह देह किसी भी आधार से

युक्त नहीं है। इस देह की उत्पत्ति रस से होती है, यह अन्न के एक पिण्ड से परिपूर्ण होता है। ऐसे इस देह में इन गुणों को मैं बताता हूँ ॥१४॥

यत्प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति।
तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥१५
गतं ज्ञात्वा तु पक्षीन्द्र स्वकर्मबन्धन वपुः।
पापनिर्दहनं पुंभिः कार्य्यं भवति नाशनम् ॥१६
अनेकजन्मसम्भूतं पातकं त्रिविध कृतम्।
यदा हि मानुषावाप्तिस्तदा सर्वं पतत्यपि ॥१७
मनुष्योदरवासी च यदा भवति पापभाक्।
अण्डजादिषु भूतेषु यत्र तत्र प्रसर्पति ॥१८
मानुषे जन्मनि कृते तत्र तत्र समाप्नुयात्।
अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कमजा गतयस्तथा ॥१९
आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्य्ययः।
गर्भवासे तु यज्ज्ञानं जातं मासात्तु सप्तमात् ॥२०
तेन पश्यति सर्वं तु प्राकृतं यच्छुभाशुभम्।
गर्भवासाद्विनिर्मुक्तो ह्यज्ञानतिमिरावृतः ॥२१
न पश्यति खगश्रेष्ठ बलभाव समाश्रितः।
यौवने वनितान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक् ॥२२

जो अन्न प्रातःकाल में संस्कार करके बनाया जाता हैं और रक्खा रहे तो वह पाक किया हुआ अन्न सायङ्काल तक निश्चय ही बुस जाया करता है। उसी अन्न के रस से इस शरीर की संपुष्टि होती है। जिसके कारण की ऐसी दशा है उसके द्वारा होने वाले कार्य स्वरूप शरीर में कैसे नित्यता हो सकती है ? ॥१५॥ हे पक्षीन्द्र ! अपने कर्मों के बन्धन से युक्त इस शरीर को तो गत समझ कर मनुष्यों को अपने कृत पापों का नाश तथा दहन अवश्य ही इस शरीर द्वारा करना चाहिए ॥१६॥ यही इस शरीर का मुख्य कार्य होता है। पहिले अनेक जन्मों में समुत्पन्न पातक तीन प्रकार के होते हैं। जब वह जन्तु मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है तभी वे सब पातक आकर इसके ऊपर गिरते हैं ॥१७॥ मनुष्य के उदर में वास

करने वाला जन्तु जब पापों का भागी होता है तब वह अण्डज आदि भूतों में जहाँ-तहाँ प्रसर्पण किया करता है ।।१८।। मानुस जन्म करने पर वहाँ-वहाँ प्राप्त किया करता है । गर्भ के वासों को तथा कर्मों से जात गतियों को देखकर, आधि, (मानसिक व्यथा), व्याधि, (रोग), क्लेश और वृद्धावस्था में रूप विपर्यय इन सबको भली-भाँति अवेक्षण किया करता है । गर्भवास में जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह सातवें मास से ही हो जाया करता है । उस समय से फिर वह गर्भ का वासी सभी कुछ शुभ और अशुभ प्राकृत को देखा करता है । जब गर्भ के वास से निर्मुक्त होकर यहाँ जन्म कर लेता है तभी उसे अज्ञान का अन्धकार आवृत कर लेता है ।।२०-२१।। हे खगश्रेष्ठ ! फिर तो यह बालभाव में आश्रित होकर कुछ भी नहीं देखता है–यौवन में प्यारी पत्नी के प्रणय में अन्धा हो जाता है, उसे कुछ भी अन्य उस समय नहीं सूझता है । जो कोई उस समय में उक्त बातों को देखता है या समझता है । वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करने वाला होता है ।।२२।।

१४—अशौच और प्रेतकृत्य वर्णन

आधानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा ।
सधनो निर्धनश्चैव सुकुमारः कुरूपवान् ।।१
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः ।
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः ।।२
महादानरतः श्रीमान्धर्मात्माऽतुलविक्रमः ।
विना मनुष्यदेहं तु सुखञ्च न तु विन्दति ।।३
प्रांक्तनैः कर्मपाकैस्तु सुखं प्राप्नोति मानवः ।
आधानात्पञ्चवर्षाणि स्वल्पपापैर्विपद्यते ।।४
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपद्यते ।
योनिं पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च ।।५
व्रतदानप्रभावेण चिरञ्जीवति मानवः ।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा गरुड़ो वाक्यमब्रवीत् ।।६

मृते बाल्ये कथं कुर्य्यात्पिण्डदानादिकाः क्रियाः ।
गर्भेषु च प्रपन्नानामाचूड़ाकरणाच्छिशोः ॥७

कृते चूड़े व्रतादर्वाक् मृतस्य को विधिः स्मृतः ।
गरुड़स्य वचः श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥८

श्रीकृष्ण ने कहा—बालक, युवा या वृद्ध हो आधान से मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् गर्भ में आता है और जन्म ग्रहण करता है तो मृत्यु भी अवश्य होती है। चाहे धन से सम्पन्न हो या धन से रहित हो, सुकुमार हो अथवा कुरूप हो, बिना पढ़ा-लिखा हो किम्बा पूर्ण विद्या से परिपूर्ण महान् विद्वान् हो, ब्राह्मण जाति में समुत्पन्न होने वाला परम श्रेष्ठ हो या कोई हीन जाति में जन्म लेने वाला हो या जो भी कोई मनुष्य तपस्या में रत रहने वाला, योगाभ्यास के स्वभाव से समन्वित, महान् ज्ञान से युक्त होता है तथा महादान करने में रति रखता है वह श्रीमान्, धर्मात्मा और अतुल विक्रम सम्पन्न होता है। बिना इस मनुष्य देह के धारण किये कभी सुख की प्राप्ति नहीं हुआ करती है ॥१-३॥ पुराने पहिले जन्मों में किये हुए कर्मों के विपाक से यह मनुष्य सुख प्राप्त किया करता है। आधान अर्थात् गर्भ में आने से पाँच वर्ष तक तो छोटे २ पापों से यह विपन्न होता है ॥४। जब यह पाँच वर्ष से अधिक आयु वाला होजाता है तो फिर महान् पापों से विपत्तियों का भोग किया करता है मृत होता है और फिर आ जाया करता है अर्थात् संसार से मर कर चला जाया करता है और फिर जन्म लेकर यहाँ आ जाता है इस तरह योनियों को पूरी करता रहता है ॥५॥ व्रतों और दानों के प्रभाव से ही यह मानव चिर काल तक जीवित रहा करता है। इस प्रकार के भगवान् श्री कृष्ण के वचनों का श्रवण कर फिर गरुड़ यह वाक्य बोले ॥६॥ गरुड़ ने कहा—हे भगवन् बाल्यावस्था में मृत्युगत हो जाने पर उसके लिये पिण्ड दान आदि की क्रिया किस प्रकार से करनी चाहिए। गर्भों में आये हुए शिशु का जब तक चूड़ाकरण संस्कार न हो तब तक और चूड़ा के कियेजाने के पश्चात् जो मृत होजाता

है उसके लिये क्या विधि—विधान होता है ? गरुड़ के इस वचन का श्रवण कर भगवान् विष्णु ने कहा—॥७-८॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवन्ते वापि योषितः।
यावन्मासगतो गर्भस्तद्दिनानि च सूतकम् ॥९
तस्य किञ्चिन्न कर्त्तव्यमात्मनः श्रेय इच्छता।
ततो जाते विपन्ने तु आचूड़ाद्भुवि निक्षिपेत् ॥१०
दुग्धं देयं यथाशक्ति बालानां तुष्टिहेतवे।
आचूड़ात्पञ्चवर्षे तु देहदाहो यथाविधि ॥११
दुग्ध तस्य प्रदातव्यं बालानां भोजनं शुभम्।
पञ्चवर्षस्य कर्माणि स्वजातिविहितानि च ॥१२
कुर्य्यात्तस्मिन्मृते सर्वमुदकुम्भादिपायसम्।
दातव्यञ्च खसश्रेष्ठ ऋणसम्बन्धकस्तु सः ॥१३
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
स्वल्पायुर्निर्धनो भूत्वा रतिभुक्तिविवर्जितः ॥१४

श्रीकृष्ण ने कहा—यदि स्त्री के गर्भ का स्राव हो जावे या गर्भपात हो जावे तो जितने दिन या मास का गर्भ होता है उतने ही दिनों का सूतक अर्थात् मृत का शौच उसको होता है ॥९॥ उसके लिये अपने श्रेय की इच्छा से कुछ भी नहीं करना चाहिए। गर्भ के द्वार से बाहिर जन्म ग्रहण कर लेने पर मृत्युगत होता है तो जब तक चूड़ा कर्म न हो तबतक उसको भूमि में गाढ़ देना चाहिए ॥१०॥ उस मृतात्मा की तुष्टि के लिये यथाशक्ति बालकों को दूध पिलावे। चूड़ा कर्म के संस्कार होजाने पर के पाँच वर्ष में उसका यथाविध दाह संस्कार करना चाहिए ॥११॥ उसको भी तृप्ति के लिये दुग्ध देवे तथा छोटे २ बालकों को परम शुभ भोजन भी देवे। पाँच वर्ष के बालक के अपनी जाति में विहित सभी कर्म करने चाहिये। उसके मृत हो जाने पर सभी जल का कुम्भ आदि पायस देना चाहिए। हे खग श्रेष्ठ ! वह ऋण सम्बन्धक होता है। अर्थात् कोई ऋण देने वाला होता है जो उसे लेने के लिये ही इस सम्बन्ध से समुत्पन्न होकर

यहाँ से चल बसा करता है ॥१२-१३॥ जो जन्म ग्रहण किया करता है उसकी निश्चय ही मृत्यु होती है और जो मृत्यु गत होता है वह अवश्य ही पुनः जन्म ग्रहण किया करता है—ऐसा यह इस संसार में जन्तुओं के लिये एक परम ध्रुव नियम होता है। जो स्वल्प आयु वाला ही मर जाता है वह निर्धन होकर रति भोग से रहित रहा करता है ॥१४॥

पुनर्जन्म विशेज्जन्तुस्तस्माद्देयं मृते शिशौ।
कर्त्तव्यं पक्षिशार्दूल पुनर्देहक्षयाय वै ॥१५
एवं मे रोचतेऽदत्त्वा जायते निर्धने कुले।
पुराणे गीयते गाथा सर्वथा प्रतिभाति मे ॥१६
मिष्टान्नं भोजनं देयं दानशक्तिः सुदुर्लभा।
भोज्ये भोजनशक्तिस्तु रतिशक्तिर्वरस्त्रियाः ॥१७
विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।
दानाद्भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात् ॥
सुभाषणात्परे लोके विद्वांश्च धर्मवित्तमः ॥१८
अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावत्प्रकरोतिपापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनदरिद्रो पुनरेव पापी ॥१९

वह जन्तु पुनः जन्म में प्रवेश किया करता है इसलिये शिशु के मृत हो जाने पर हे पक्षिशार्दूल ! उसके पुनर्देह के क्षय के लिये करना चाहिए और धन देना चाहिए ॥१५॥ मुझे यह प्रिय लगता है कि उसके लिये भी अवश्य ही करे। जो उसको एक छोटा शिशु समझ कर कुछ भी नहीं दिया करते हैं वह निर्धन कुल में जन्म लेता है। पुराण में यह गाथा गाई जाती है और मुझे सर्वथा ठीक प्रतीत होती है ॥१६॥ भोजन में मिष्टान देना चाहिए। दान की शक्ति बहुत ही सुदुर्लभ होती है। भोजन के योग्य पदार्थ प्राप्त हों और उन्हें भोजन करने की शक्ति भी प्राप्त हो–रति करने की शक्ति विद्यमान् हो और सुन्दरी नारी भी प्राप्त हो—वैभव के होने पर दान देने की शक्ति भी हृदय में विद्यमान हो—ये सब बातों

का होना किसी भी साधारण एवं स्वल्प तप का फल नहीं होता है अर्थात् इन सब वस्तुओं और शक्तियों का पाना महान् तपश्चर्या का ही पुण्य फल हुआ करता है। दान से ही भोगों की प्राप्ति होती है। सुन्दर भाषण से परलोक में विद्वान और धर्म के ज्ञाता होते हैं ॥१७-१८॥ दान के न देने से दरिद्रता होती है तो उस अवस्था में यह जीव पाप कर्म किया करता है। पापों के प्रभाव से नरकों की प्राप्ति होती है। फिर यह दरिद्र होकर जन्म लेता है और पुनः धनाभाग वश पाप कर्म किया करता है तथा पापी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि दान करना महान् शुभ कर्म होता है ॥१९॥

१५—प्रेतकृत्य और पुनार्निर्णय

अतःपरं प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य विनिर्णयम्।
जीवन्वापि मृतो वापि पञ्चवर्षाधिको हि यः ॥१
पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे पुमांश्चैव प्रतिष्ठितः।
सर्वेन्द्रियाणि जानाति रूपारूपविनिर्णयम्।
पूर्वकर्मविपाकेन प्राणिनां वधबन्धनम्।
विप्राद्यानन्त्यजान्सर्वान्पापम्पारयति ध्रुवम् ॥३
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते
घटांश्च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥४
एकादशाहे द्वादशाहे वृषोत्सर्गं विधिं विना।
महादानविहीनन्तु कुमारे कृत्यमाचरेत् ॥५
कुमाराणाञ्च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम्।
बाले वा तरुणे वृद्धे घटो भवति देहिनाम् ॥६
भूमौ निक्षेपणं बालमावर्षद्वयमेव च।
ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो विधीयते ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके आगे मैं पुरुष के विषय में निर्णय करता हूँ जो पाँच वर्ष से अधिक बड़ा होता है वह जीवित हो या मृत हो उसका वर्णन किया जाता है ॥१॥ पाँचवे वर्ष के पूर्ण हो जाने पर पुरुष प्रतिष्ठित

हो जाया करता है। वह सभी इन्द्रियों को जानता है और उसे रूप तथा अरूप का भी विशेष निर्णय हो जाता है ॥२॥ पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों के विपाक से ही प्राणियों का यह संसार का बन्धन हुआ करता है। विप्र से आदि लेकर अन्त्यज पर्यन्त सभी माप को यह निश्चय पार कर देता है ॥३॥ गर्भ के नष्ट हो जाने पर तो कोई क्रिया के करने का विधान ही नहीं हैं। शिशु की अवस्था में मृत हो जाने पर दूध देना चाहिए। जब बालक का स्वरूप प्राप्त कर लेवे तो उसके निमित्त घट-पायस—क्षीर ये सभी देना चाहिए जिससे उसकी तुष्टि एवं तृप्ति होती है ॥४॥ एकादशाह में अर्थात् ग्यारहवें दिन में और द्वादशाह में वृषोत्सर्ग विधि के बिना महादान से विहीन कृत्य कुमार के लिये करना चाहिए ॥५॥ कुमारों और बालकों को भोजन तथा नेष्टन वस्त्र का दान करे। बाल अथवा तरुण तथा वृद्ध के देह धारियों को घर होता है ॥६॥ दो वर्ष तक के बच्चे को तो भूमि में गड्ढा करके निक्षेपण कर देना चाहिए। हे खगश्रेष्ट! इससे बड़ा उम्र वालों के देह का दाह करने का विधान होता है ॥७॥

शिशुरादन्तजननाबद्दालः स्याद्यावदाशिखम्।
कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥८

मृतो हि पञ्चमे वर्षे अव्रतः सव्रतोऽपि वा।
पूर्वोक्तमेव कर्त्तव्यमीहते दशपिण्डजम् ॥९

स्वल्पकर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात्।
स्वल्पे वपुषि वासाच्च कियां स्वल्पामपीच्छति ॥१०

यावच्च पञ्चवर्षे तु बालकस्य भवेन्मृतिः।
यद्यद्यस्योपजीव्यं स्यात्तत्तद्देयमिहेच्छति ॥११

ब्रह्मवीर्य्योद्भवाः पुत्रा देवर्षीणाञ्च वल्लभाः।
यमेन यमदूतैश्च मन्यन्ते निश्चितं खग ॥१२

बालो वृद्धो युवा वापि वयो भवति देहिनाम्।
सुखं दुखं समाप्नोनि देही सर्वगतस्त्विह ॥१३

परित्यज्य तदात्मानं जीर्णान्त्वचमिवोरगः ।
अंगुष्ठमात्रपुरुषो वायुभूतः क्षुधार्दितः ।।१४
तस्माद्देयानि दानानि मृते तस्मिन्सुनिश्चितम् ।
जन्मतः पञ्च वर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम् ।।१५

जब तक दाँत नहीं निकलते तब तक शिशु और जब तक चूड़ा कर्म नहीं होता, वह बाल कहा जाता है। मौञ्जी बन्धन होने से समस्त शास्त्रों में वह 'कुमार' नाम से सम्बोधित होता है ।।८।। पाँचवें वर्ष में मृत चाहे वह अव्रत हो या सव्रत, पूर्व कहा हुआ ही कर्त्तव्य कर्म दश पिण्डज करना चाहिए ।६। स्वल्प कर्म के प्रसङ्ग से और स्वल्प विषयों के बन्धन से स्वल्प उम्र में या शरीर में वास करने से वह स्वल्प ही क्रिया भी चाहता है। अर्थात् छोटे के लिये बड़ी क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती ।।१०।। बालक पांच वर्ष की आयु में यदि मृत्यु हो जाती है तो जो-जो भी उसके जीवन में उप जीव्य पदार्थ हों वही-वही दान स्वरूप में उसकी तुष्टि एवं तृप्ति के लिये अवश्य देने चाहिए। मृतात्मा यही इच्छा भी करता है ।।११।। ब्राह्मण के वीर्य से समुत्पन्न पुत्र और देवर्षियों के प्रिय जो होते हैं वे यमराज तथा यम के दूतों के द्वारा सत्कृत हुआ करते हैं। हे खग ! यह बिल्कुल निश्चय है ।।१२।। देह धारियों में बालक हो —वृद्ध हो अथवा युवा हो ये तीन ही अवस्था हुआ करती है। यहाँ पर सर्वगत देही अर्थात् सभी में रहने वाला आत्मा सुख और दुःख की प्राप्ति किया करता है ।।१३।। जब इसके परलोक गमन का समय उपस्थित होता है उस समय में यह आत्मा इस अपने शरीर को इस तरह त्याग देता है जैसे कोई सर्प अपनी कैंचुली का परित्याग कर दिया करता है जबकि उसे जीर्ण समझ लेता है। फिर अंगुष्ठ प्रमाण वाला पुरुष वायुभूत होकर क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हुआ करता है। इसीलिये उसकी तृप्ति के निमित्त उसके मृत हो जाने पर दानादि अवश्य ही देने चाहिए—यह सुनिश्चित् सिद्धान्त है। जन्म से पाँच वर्ष तक बिना संस्कार किया हुआ ही वह खाता है ।।१४-१५।।

पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते ।
वृषोत्सर्गादिकं कम सपिण्डीकरणं विना ॥१६
अहन्येकादशे पुत्रः कुर्य्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
उदकुम्भप्रदानन्तु अन्यदानानि यानि च ॥१७
भोजनानि द्विजे दद्यान्महादानानि शक्तितः ।
दीपदानानि यत्किञ्चित्पञ्चवर्षाधिके सदा ॥१८
कर्त्तव्य तु खगश्रेष्ठ क्रियादि प्रेततृप्तये ।
यदा न क्रियते सर्वं पिशाचत्वं स गच्छति ॥१९
एवं कृते तु स प्रेतस्ततो याति परां गतिम् ।
पुनश्चिरायुर्भूत्वा च कुले तस्य वसेद् ध्रुवम् ॥२०
सर्व सौख्यप्रदः पुत्रः पित्रोः प्रीतिविवर्द्धनः ।
आत्मा वै जायते पुत्र इति वेदेषु निश्चतम् ॥२१

पाँच वर्ष की अवधि वाले बालक यदि मृत्यु हो जाती है तो सपिंडोकरण कर्म के बिना वृषोत्सर्ग आदि कर्म करे ॥१६॥ ग्यारहवें दिन में पुत्र को षोड़श श्राद्ध करने चाहिए । उदक के कुम्भका प्रदान तथा अन्य जो भी दान होंवे देवे ॥१७॥ ब्राह्मणों को भोजन करावे और महादान जो भी हों अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें करे । दीप दान करे और सदा पांच वर्ष से अधिक उम्र वाले के लिये जो कुछ भी हो वह सदा सभी करे ॥१८॥ हे खगश्रेष्ठ ! प्रेत की पूर्णतया तृप्ति के लिये क्रिया आदि सब करनी चाहिए । जब ये क्रिया और देय दान आदि सभी नहीं किया जाता है तो वह प्रेत फिर पिशाच की योनि को प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ ऐसा सब कुछ कर देने पर तो वह प्रेत फिर परम गति को प्राप्त हो जाता है और फिर चिर आयु होकर उसके कुल में निश्चय ही निवास किया करता है ॥२०॥ पितृगण की प्रीति का बढ़ाने वाला पुत्र सब प्रकार के सुखों वाला होता है । वेदों में यह निश्चय रूप से कहा गया है कि यही आत्मा पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ करता है ॥२१॥

आकाशमेकं हि यथा चन्द्रादित्यौ तथैव च ।
घटादिषु पृथक्सर्वं दृष्ट्वा रूपे च तत्समम् ॥२२

आत्मा तथैव सर्वेयु पुत्रेषु विचरेत्सदा ।
या यस्य प्रकृतिः पूर्वं शुक्रशोणितसङ्गमे ।।२३
तस्य तद्भावयोगेन पुत्रास्तत्कर्मकारिणः ।
पितृरूपं समादाय कस्यचिज्जायते सुतः ।।२४
पितृतः कामरूपश्च गुणज्ञो दानतत्परः ।
ईदृशः कोऽपि लोकेऽस्मिन्न भूतो न भविष्यति ।।२५
अन्धादन्धो न भवति मूकान्मूको न जायते ।
बधिराद्बधिरो नैव मूर्खान्मूर्खो न जायते ।।२६
औरसक्षेत्रजाद्याश्च पुत्रा दशविधाः स्मृताः ।
संगृहीतसुतो यश्च दासीपुत्रश्च ते न किम् ।।२७
कां कां गतिमवाप्नोति जातै मृत्युवशङ्गतैः ।
भवन्ति दुहितरो यस्य दौहित्रो न भवेत्सुतः ।।
श्राद्धं तस्य तु कः कुर्याद्विधिना केन तद्भवेत् ।।२८

जैसे आकाश एक है और जैसे चन्द्र तथा आदित्य होते हैं । घटादि में सभी पृथक् दिखलाई दिया करते हैं किन्तु रूप में वे सभी समान ही होते हैं ।।२२।। वैसे ही यह आत्मा सदा समस्त पुत्रों में विचरण किया करता है । रजोवीर्य का जब गर्भाधान के समय में सङ्गम होता है तब जिसकी जो प्रकृति होती है उसके उसी भाव के योग से पुत्र उस कर्म के करने वाले होते हैं । किसी का पुत्र पितृरूप को लेकर समुत्पन्न होता है । ।।२३-२४।। पिता से अच्छा रूप गुणों का ज्ञाता और दान में परायण होता है । इस प्रकार का लोक में कोई भी न हुआ और न होगा ही ।२५। किसी अन्धे पिता से कभी कोई अन्धा तथा मूक पिता से मूक पुत्र नहीं होता बहरे से बहरा और मूर्ख पिता से मूर्ख पुत्र भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ करता ।।२६।। गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! औरस और क्षेत्रज आदि दश प्रकार के पुत्र कहे गये हैं । जो संगृहीत सुत होता है तथा दासी पुत्र होता है उससे क्या होता है ? ।।२७।। इन सबके उत्पन्न होने से और मृत्युगत होजाने से कौन-कौन सी गति प्राप्त होती है ? जिस के लडकियाँ ही होती हैं । उस दुहिता का पुत्र दौहित्र तो पुत्र नहीं होता । उसका श्राद्ध किसको

करना चाहिए ? उस केवल पुत्रियों वाले श्राद्ध की क्या विधि होती है ? ॥२८॥

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात् ।
अन्ये क्षेत्रादयः पुत्रा मुक्तिमात्रप्रदायकाः ॥२९
कुर्वीत पार्वणं श्राद्धमौरसो विधिवत्सुतः ।
कुर्वन्त्यन्ये तथा श्राद्धमेकोद्दिष्टं सुता नव ॥३०
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते स ऋणत्रयात् ।
लोकान्ते च दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥३१
ब्रह्मपुत्र उन्नयति संगृहीतास्त्वधो नयेत् ।
श्राद्धं सांवत्सर कुर्वन्जायते नरकाय वै ॥३२
सर्वदानानि देयानि ह्यन्नदानानि वै खग ।
संगृहीतसुतेनैव ह्येकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥३३

श्रीकृष्ण ने कहा—पुत्र के मुख का दर्शन करने ही से जो पैतृक एक ऋण रहता है उससे मनुष्य छुटकारा पा जाता है। अन्य जो क्षेत्रादि पुत्र होते है वे तो केवल मुक्ति मात्र के प्रदायक होते है ॥२६॥ जो औरस पुत्र होता हैं अर्थात् अपनी सवर्णा पाणि परिणीता पत्नी से उत्पन्न है उसे पार्वणश्राद्ध विधि पूर्वक करना चाहिए। अन्य जो नौ प्रकार के पुत्र हैं उन्हें एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करना चाहिए ॥३०॥ जब मनुष्य पौत्र का दर्शन कर लेता है तो वह फिर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीनों तरह के ऋणों से मुक्त हो जाया करता है। पुत्र-पौत्र और प्रपौत्र के प्राप्त होने पर वह इस लोक के अन्त में दिवलोक को प्राप्त हो जाता है। ॥३१॥ ब्रह्म पुत्र उन्नयन किया करता है और जो संगृहीत पुत्र होता है वह अधोभाग में ले जाया करता है। सांवत्सर श्राद्ध करता हुआ वह नरक में जाता है ॥३२॥ हे खग ! संगृहीत सुत के द्वारा अन्य सम्पूर्ण दान तथा अन्न दान देने चाहिऐ किन्तु एकोद्दिष्ट और पार्वण श्राद्ध नहीं करना चाहिए ॥३३॥

प्रत्यब्दं पितृमातृभ्यांश्राद्धं कृत्वा न लिप्यते ।
एकोद्दिदष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते यदि ॥३४

तदात्मानं पितृंश्चैव स नयेद्यमशासमम् ।
संगृहीताश्च ये केचिद्दासीपुत्रादयस्तथा ॥३५
तीर्थे गत्वा तु यः श्राद्धमामानञ्च ददेद्द्विजे ।
संगृहीतसुतो भूत्वा पाकञ्चैव प्रयच्छति ॥३६
वृथा श्राद्धं विजानीयाच्छूद्रान्नेन यथा द्विजः ।
तेन दत्त न गृह्णन्ति पितामहमुखाश्च ये ॥३७
ऐवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतान्त्यजेत् ।
यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्यां शूद्रतश्च यः ॥३८
द्वाविमौ विद्धि चाण्डालौ स्वगोत्राद्यस्तु जायते ।
स्वजातिविहितान्पुत्रान्समुत्पाद्य खगेश्वर । ३९
तैः सुवृत्तैः सुखं प्राप्तो दुर्वृत्तैर्नरकं व्रजेत् ।
हीनजातिसमुत्पन्नैः सुवृत्तैः सुखमेधते ॥४०
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घैः ।
मरचमरमाला वीज्यमानोऽप्सरोभिः ।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रानपि ।
नरकनिमग्ना नुद्धरेदेक एव ॥४१

प्रति वर्ष माता-पिता के लिये श्राद्ध करने वाला पुरुष कभी लिप्त नहीं होता । यदि एकोद्दिष्ट श्राद्ध का परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपने आपको और पितृगण को भी यमराज के शासन में ले जाता है। जो संगृहीत सुत है तथा कुछ दासी पुत्र आदि है उन्हें तीर्थ में जाकर जो श्राद्ध करे उसमें कच्चा (अपरिपक्व) अन्न द्विज को देना चाहिए। संगृहीत सुत होकर पाक का भी दान देता है ॥३६॥ श्राद्ध को वृथा ही समझना चाहिए जिस प्रकार से शूद्रान्न से द्विज होता है उसी भाँति उसके द्वारा दिये हुए को पितामह मुख जो होते हैं ग्रहण नहीं किया करते ॥३७॥ हे खग ! इस तरह से जान कर जो हीन जाति के पुत्र होते हैं उनका त्याग करदे, जो प्रव्रजित से (संन्यासी से) ब्राह्मण में उत्पन्न हुआ या शूद्र से समुत्पन्न हुआ है ये दोनों चाण्डाल समझने चाहिए और जो अपने गोत्र

वाले से उत्पन्न होता है वह भी चाण्डाल होता है। हे खगेश्वर ! अपनी जाति से विदित पुत्रों को समुत्पन्न करके उन सुन्दर आचरण वालों से ही मनुष्य सुख को प्राप्त करता है। जो दुराचारी होते हैं उनसे नरक की प्राप्ति होती है। जो हीन जाति से भी समुत्पन्न हों और चरित्र एवं आचार से अच्छे होते हैं उनसे भी सुख की वृद्धि होती है ॥३८-४०॥ कलियुग के कलुष (पाप) से विमुक्त होता हुआ सिद्धों के समुदायों के द्वारा पूजित होकर तथा अप्सराओं के द्वारा देवों के चमरों से वीज्यमान होकर अर्थात् चमर ढुराये जाने वाला सैंकड़ों की संख्या में पितृगण तथा बन्धु वर्ग और अपने पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्रों को भी ऐसा यह एक ही पुरुष नरकों में निमग्न रहने वालों का उद्धार कर देता है ॥४१॥

१६—सपिण्डीकरण तथा श्राद्ध

सत्यं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ कृपां कृत्वा ममोपरि ।
मृतानाञ्चैव जन्तूनां कदा कुर्य्यात्सपिंडनम् ॥१
सपिंडत्वे कुतो यान्ति ह्यसपिंडे कुतो गतिः ।
के चैव सपिंडत्वं स्त्रीपुंसां वक्तुमर्हसि ॥२
पतिपत्नी सपिण्डत्वं प्राप्नुतः कथमुत्तमम् ।
जीवद्भर्त्तरि नारीणां सपिण्डीकरणं कुतः ॥३
भर्त्तलोके कथं याति स्वर्गलोके सुरेश्वर ।
भग्नचारोहे कथं श्राद्धं वृषोत्सर्गन्तु तद्दिने ॥४
घटदानं कथं कार्य्यं सपिण्डीकरणे कृते ।
कथयस्व प्रसादेन हिताय जगतां प्रभो ॥५
सत्यं हि कथयिष्यामि सपिंडीकरणं यथा ।
वर्षं यावत्खगश्रेष्ठ मार्गे गच्छति मानवः ॥६
ततः पितृगणैः सार्द्धं पितृलोके स गच्छति ।
तस्मात्पुत्रैः कर्त्तव्यं सपिंडीकरणं पितुः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे सुरों में श्रेष्ठ ! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह सत्य २ बतलाइये कि जो जन्तु मृत हो जाते हैं उनकी सपिण्डन क्रिया

किस समय में करनी चाहिए ? ॥१॥ सपिण्डत्व होने पर वे कहां जाया करते हैं और सपिण्डत्व न होने पर उनकी कैसी गति होती है ? स्त्री और पुरुषों में किसके द्वारा सपिण्डत्व होता है—यह सब बतलाने के योग्य होते हैं ॥२॥ पति और पत्नी किस तरह से उत्तम सपिण्डत्व को प्राप्त होते हैं। भर्त्तार के जीवित रहने पर नारियों का सपिण्डत्व कैसे होता है ? ॥३॥ हे सुरेश्वर ! वह नारी स्वर्ग लोक में अपने स्वामी के निकट भर्त्त-लोक में किस प्रकार से जाया करती है ? अग्नि आरोहण करने पर श्राद्ध कैसे होता है और उस दिन में वृषोत्सर्ग किस तरह से हुआ करता है। ॥४॥ सपिण्डी करण करने पर घट का दान कैसे किया जाता है ? हे प्रभो ! जगत् के लोगों के हित के लिये आप प्रसन्न होकर यह सब वर्णन करिये ॥५॥ श्री भगवान् ने कहा—मैं सर्वथा सत्य २ बतलाता हूं कि जिस तरह से सपिंडीकरण कर्म किया जाता है। हे खगश्रेष्ठ ! एक वर्ष पर्यन्त यह मानव मृत्यु गत होने के पश्चात् उस महान् विशाल मार्ग की यात्रा करता रहता है ॥६॥ इसके अनन्तर फिर वह पितृगण के साथ पितृ लोक में जाया करता है इससे पुत्रों के द्वारा पिता का सपिंडीकरण कर्म करना चाहिए ॥७॥

संवत्सरेण तु सम्पूर्णे कुर्य्यात्पिडप्रवेशनम् ।
पिंडप्रवेशविधिना तस्य नित्यं मृताह्निकम् ॥८

निश्चितं पक्षिशार्दूल वर्षान्ते पिण्डमेलनम् ।
सह पिण्डे कृते प्रेतस्तो याति पराङ्गतिम् ॥९

तन्नाम संपरित्यज्य ततः पितृगणो भवेत् ।
त्रिपक्षे वाथ षण्मासे मेलयेच्च पितामहैः ॥१०

ज्ञात्वा वृद्धिविवाहादि स्वगोत्रविहितानि च ।
विवाहं नैव कुर्वीत मृते च गृहमेधिनि ॥

भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति यावन्न कुर्य्यात्सपिण्डनम् ॥११
स्वगोत्रेष्वशुचिस्तावद्यावत्पिडं न मेलयेत् ।
मेलनात्प्रेतशब्दश्च निवर्त्तेत खगेश्वर ॥१२

आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ।।१३

निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे सपिंडयेत् ।
द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा ।।१४

एक संवत्सर के सम्पूर्ण हो जाने पर पिंड प्रवेश न करना चाहिए । पिंड प्रवेश की विधि से उसका नित्य मृताह्निक होता है ।।८।। हे पक्षिशार्दूल ! वर्ष के अन्त में पिंडों का मेलन निश्चय रूप से होता है । पिंडों के साथ कर देने पर फिर वह प्रेत परम गति को प्राप्त हो जाया करता है । ।।९।। फिर वह अपना 'प्रेत'—इस नाम का परित्याग करके पितृ गण हो जाया करते हैं । तीन पक्ष में अथवा छै मास में पितामहों के साथ उसका सपिंडीकरण कर्म करके मेलन अवश्य ही करा देना चाहिए ।।१०।। अपने गोत्र में वृद्धि और विवाह आदि को जानकर जोकि स्वगोत्र में विदित हों तो गृहमेधी के मृत हो जाने पर विवाह नहीं करना चाहिए जब तक सपिंडीकरण क्रिया नहीं होती है और मृत जन्तु प्रेत रूप में विद्यमान रहता है किसी भिक्षु को भी उस घर से भिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए ।।११।। अपने गोत्र में जब तक अशुचिता रहा करती है जब तक पिंडों का मेलन नहीं होता है अर्थात् सपिंडीकरण क्रिया सम्पन्न नहीं हुआ करती है । हे खगेश्वर ! पिंडों के मेलन हो जाने से प्रेत शब्द की निवृत्ति हो जाया करती है ।।१२।। कुलों के धर्मों की अनन्तता होने से अर्थात् अत्यधिक संख्या वाले कुलों के धर्म हुआ करते हैं और पुरुषों की आयु की क्षीणता होने के कारण से तथा इस शरीर की कोई भी स्थिरता के न होने से सपिंडीकरण के कर्म को करने के लिये द्वादशाह अर्थात् बारहवाँ दिन ही परम प्रशस्त होता है ।।१३।। चाहे मृतात्मा निरग्निक हो अथवा साग्निक हो बारहवें दिन में उसका सपिंडीकरण कर देना चाहिए । ये सभी काल ठीक हैं—द्वादशवें दिन में—तीन पक्ष में—छै मास में अथवा सवत्सर के अन्त में पिंडों का मेलन कर देवे जिससे मृत जीव की प्रेत संज्ञा मिटकर पितृ संज्ञा प्राप्त हो जावे ।।१४।।

सपिंडीकरणं प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
सपुत्रस्य न कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन ॥१५
सपिंडीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते।
तत्र तत्र त्रयं कार्य्यं वर्जयित्वा क्षयेऽहनि ॥१६
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
एकोद्दिष्टं त्रयाणां स्यादन्यथा पितृघातकः ॥१७
त्रिभिः कुर्य्यादशक्तस्तु पार्वणं मुनिनोदितम्।
तद्दिने तद्दिने कुर्य्यात्पितामहमुखान्यतः ॥१८
अज्ञानाद्दिनमासानां तस्मात्पार्वणमिष्यते।
अनुत्पन्नशरीरस्य न दानं पितृभिः सह ॥१९
दत्तैः षोडशभिः श्राद्धैः पितृभिः सह मोदते।
पितुः पुत्रेण कर्त्तव्यं सपिंडीकरणं सदा ॥२०
पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे सहोदरः।
भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा ॥
सपिंडनक्रियां कृत्वा कुर्य्यादभ्युदयं तता ॥२१

तत्वों के देखने वाले ऋषियों ने ये उपर्युक्त सभी समय सपिंडीकरण क्रिया के सम्पन्न करने के लिये बताये हैं। जो सपुत्र हो उसका कभी भी एकोद्दिष्ट नही करे ॥१५॥ सपिंडीकरण से पहिले जहाँ-जहाँ पर प्रदान किया जाता है, वहाँ-वहाँ पर क्षय दिन को त्याग कर त्रय करे अर्थात् तीनों का करे ॥१६॥ वे तीन ये होते हैं—पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीनों का एकोद्दिष्ट होता है अन्यथा वह पितृघातक होता है। इन तीनों का एकोद्दिष्ट न करने पर पितृगण के घात करने का महापाप होता है ॥१७॥ तीनों से करे यदि अशक्त हो तो मुनिगण ने फिर उसके लिये पार्वण श्राद्ध बताया है। उस-उस दिन में पितामह प्रमुखों का श्राद्ध करे ॥१८॥ दिन तथा मासों का ज्ञान न होने के कारण से ही पार्वण श्राद्ध अभीष्ट माना जाता है जिसके शरीर की उत्पत्ति ही नहीं हुई है उसको पितृगण के साथ दान आदि कुछ भी नही होता है ॥१९॥ षोडश श्राद्धों के दे देने पर ही वह मृत प्रेत फिर पितृगण के साथ मुदित होकर

निवास करता है। पुत्र को अपने पिता का सपिंडीकरण करना चाहिए ॥२०॥ यदि किसी के कोई पुत्र ही न हो तो उसकी पत्नी सपिंडीकरण करे और पत्नी भी न हो तो सहोदर भाई का यह कर्म कर्त्तव्य होता है। भाई न हो तो भाई का पुत्र अथवा कोई भी न हो तो जो कोई भी सपिंड जन हो वह करे या शिष्य को ही अवश्य सपिंडी करे। सपिंडीकरण की क्रिया को करके इसके अनन्तर अभ्युदय होता है ॥२१॥

ज्येष्टस्यैव कनिष्ठेन भ्रातृपुत्रेण भार्य्यया ।
सपिण्डीकरणं कार्य्यं पुत्रहीने खगेश्वर ॥२२
भ्रातृणामेकजातानां एकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वे वै तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥२३
सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्य्यात्सपिण्डनम् ।
ऋत्विजः कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥२४
कृतचूडैः सुतैश्चापि पितृश्राद्धञ्च कारयेत् ।
उच्चाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराणि वै ॥
भर्त्तादिभिस्त्रिभिः कार्य्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ॥२५
पितृवद्भ्रातृपुत्रेण सोदरेण कनीयसा ।
अर्वाक्संवत्सरादूर्ध्वं पूर्णे संवत्सरेऽपि वा ॥२६
ये सपिण्डीकृताः प्रेतास्तेषां स्यान्न पृथक्क्रिया ।
सपिंडने कृते वत्स पृथक्त्वन्तु विगर्हितम् ॥२७
यस्तु कुर्य्यात्पृथक्पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते ।
पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कुर्य्यात्सपिंडताम् ॥२८

पुत्रहीन ज्येष्ठ का सबसे छोटे भाई के पुत्र द्वारा या भार्या द्वारा, हे खगेश्वर ! सपिंडीकरण करना चाहिए क्योंकि इस क्रिया के पूर्ण न होने पर मृतात्मा का प्रेतत्व निवारण नहीं हुआ करता है। सपिंडीकरण के होने पर ही वह पितृगण के साथ मिला करता है ॥२२॥ भाइयों में यदि कोई एक ही भाई पुत्र बाला होवे तो वे सभी उस एक अपने के पुत्र से ही पुत्र बाले होते हैं—ऐसा मनु ने कहा है ॥२३॥ यदि सभी भाई पुत्र हीन हों

तो मृतात्मा की पत्नी ही सपिंडीकरण करे अथवा किसी ऋत्विज या पुरोहित के द्वारा उसे पूर्ण करा दे ॥२४॥ जिनका चूड़ाकरण संस्कार हो गया हो, उस पुत्र के द्वारा भी पितृ श्राद्ध करा दे। वह केवल स्वधाकार का उच्चारण करे और अनाधिकारी उस समय तक होने से वेद के अक्षरों का उच्चारण न करे। स्त्री का सपिंडीकरण स्वामी आदि तीनों के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए ॥२५॥ पितृ की तरह भाई के पुत्र के द्वारा तथा छोटे सहोदर के द्वारा सम्वत्सर से अर्वाक् या इसके उर्ध्व में अथवा सम्वत्सर के पूर्ण हो जाने पर सपिंडीकरण करे ॥२६॥ जिन प्रेतों का सपिंडीकरण हो गया, उनके लिये कोई पृथक् क्रिया नहीं होती। हे वत्स! सपिंडन किये जाने पर फिर उनका पृथक्त्व विगर्दित हो जाता है। अतः अलग से कुछ करना भी अनावश्यक होता है ॥२७॥ जो कोई फिर उनका पृथक् पिंड किया करता है वह पितृ घातक हो जाता है। यदि फिर कोई पृथक् पिंड आदि करता है तो उसे पुनः सपिंडता करनी चाहिए ॥२८॥

सपिंडीकरणं कृत्वा ह्येकोद्दिष्टं करोति यः
आत्मानञ्च तथा प्रेतं स नयेद्यमशासनम् ॥२९
वर्षं यावत्क्रियाः सर्वाः प्रेतत्वविनिवृत्तये।
ताः सर्वाश्चैकतःकुर्यान्नामगोत्रेण धीमता ॥३०
घटाद्यं भोजनं नित्यं दीपदानानि यानि च।
सपिंडीकरणे वृत्ते ऐकस्यैव तु दापयेत् ॥३१
अन्नं पानीयसहितं संख्यां कृत्वाब्दिकस्य च।
दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिन्घटादेर्निष्क्रयं तथा ॥३२
पिडान्ते तस्य संकल्पो वर्षाद् वृत्तिः स्वशक्तितः।
दिव्यदेहो विमानस्थः सुतृप्तो धर्मशासने ॥३३
जीवमाने च पितरि न हि पुत्रे सपिण्डता।
स्त्रीणां सपिण्डनं नास्ति भर्तृमातरि जीवति ॥३४
मृता माता पिता तिष्ठेज्जीवेदपि पितामही।
सपिण्डनं ततः कुर्य्यात्प्रपितामह्या सहैव च ॥३५

सपिंडीकरण कर्म करने के पश्चात् यदि कोई एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया करता है वह अपने आपको और प्रेत को दोनों को यम के शासन का अधिकारी बना दिया करता है ॥२६॥ एक वर्ष पर्यन्त प्रेतत्व की निवृत्ति के लिये समस्त क्रियाएं हुआ करती हैं। वे सम्पूर्ण क्रियाएं धीमान् पुरुष के द्वारा नाम-गोत्र के द्वारा एक बार ही कर देनी चाहिए ॥३०॥ घटादि का दान—भोजन—नित्य दीप दान और जो भी अन्य दान आदि हैं वे सभी सपिंडीकरण के पूर्ण हो जाने पर एक ही जगह करने चाहिए क्योंकि फिर पृथक्त्व तो रहता ही नहीं है ॥३१॥ वर्ष की संख्या करके ब्राह्मण को पानी के साथ अन्न देना चाहिए तथा हे पक्षिन् ! घटादि का निष्क्रय देना चाहिए ॥३२॥ पिंड के अन्त में उसका सङ्कल्प करे और वर्ष से अपनी शक्ति के अनुसार वृत्ति करे। इससे वह जन्तु दिव्य देह धारण कर विमान में स्थित होकर धर्म शासन में भली-भाँति तृप्त होता है ॥३३॥ पिता के जीवित रहते हुए पुत्र में सपिंडता नहीं होती है। अपने स्वामी की माता के जीवित रहते हुए स्त्रियों की सपिंडता नहीं हुआ करती है। ॥३४॥ माता की तो मृत्यु हो जावे और पितृ स्थित रहें तथा पिता मही भा जीवित होवे तो ऐसी दशा में प्रपिता मही के साथ ही सपिंडता कर देना चाहिए ॥३५॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं श्रूयतां वचनं मम।
न पिण्डो मेलितो येषां मृतानां तु नृणां भुवि ॥३६

उपतिष्ठेन्न व तेषां पुत्रैर्दत्तमनेकधा।
हन्तकारस्तदुद्देशे श्राद्धं नैव जलाञ्जलिः ॥३७

हुताशं या समारूढ़ा चतुर्थेऽह्नि पतिव्रता।
तस्या भर्तृ दिने कार्य्यं वृषोत्सर्गादिसूतकम् ॥३८

पुत्रिका पतिगोत्रा स्यादधस्तात्पुत्रजन्मतः।
पुत्रानुत्पाद्य पश्चात्तु सापि गोत्रं व्रजेत्पितुः ॥३९

पतिपत्न्योः सदैक्त्वं हुताशं याधिरोहति।
पुत्रेणैव पृथक्श्राद्धं क्षयाहे तस्य वासरे ॥४०

अपुत्रौ चेन्मृतौ स्यातां एकचित्यां समेऽहनि ।
पृथक्श्राद्धं न कुर्वीत सपिण्डं पतिना सह ॥४१
पृथक्पिण्डे तु संयोज्य दम्पती पतिना सह ।
स लिप्यति महादोषैरिति सत्यं वचो मम ॥४२

यह मेरा वचन पूर्णतया सर्वथा सत्य है—इसका तुम श्रवण करो, इस भूमण्डल में मरे हुए जिन पुरुषों की सपिंडता नहीं की जाती है उनके पुत्र के द्वारा अनेक बार भी दिया हुआ उनको कुछ भी नहीं पहुंचता है। उसके उद्देश्य में हन्तकार है श्राद्ध और जलाञ्जलि नहीं होते हैं ॥३६-३७॥ जो पतिव्रता चौथे दिन में अग्नि में समारूढ़ हो जावे उसका उसके स्वामी के दिन में ही वृषोत्सर्ग आदि सूतक करे ॥३८॥ जो पुत्री होती है वह पाणिग्रहण के पश्चात् अपने पति के गोत्र वाली हो जाती है जो पति का गोत्र होता है वही उसका भी हो जाता है। पुत्र जन्म के पीछे पुत्रों को समुत्पन्न करके वह भी पीछे से पिता के गोत्र में चली जाया करती है ॥३९॥ पति और पत्नी जब तक एक ही अग्नि में अर्थात् चित्ता में अधिरोहण करते हैं तब पुत्र के द्वारा ही क्षय होने के दिन में पृथक् श्राद्ध करना चाहिए ॥४०॥ यदि पति-पत्नी दोनों बिना पुत्र वाले ही मृत हो जावें और एक ही चिता में सम दिन में ही दाह किया जावे तो उसका पृथक् श्राद्ध नहीं करे क्योंकि पति के साथ ही सपिंडता हो जाती है ॥४१॥ दम्पती हों और पति के साथ पृथक् पिंडों का ऐसी दशा में संयोजन करे तो वह करने वाला पुरुष महान् दोषों से लिप्त हो जाया करता हैं—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य है ॥४२॥

एकचित्यां समारूढ़ौ म्रियेते दम्पती यदि ।
एकपाकं प्रकुर्वीत पिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ॥४३
वृषोत्सर्गं नवश्राद्धं पृथक्श्राद्धानि षोडश ।
घटादिपददानानि महादानानि यानि च ।
वर्षं यावत्पृथक्कुर्य्यात्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् ॥४४

एकगोत्रमृतानाञ्च स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ।
स्थण्डिलञ्चैकतः कुर्य्याद्धोमं कुर्य्यात्पृथक्पृथक् ।।४५

एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं पृथक्पिण्डांश्च भोजनम् ।
पाकैक्येन पतिस्त्रीणां अन्येषाञ्च विगर्हितम् ।।४६

एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते बहु ।
विकिरं त्वेकतः कुर्य्यात्पिण्डान्दद्याद्वाहून्यपि ।
तीर्थे वाऽपरपक्षे वा चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ।।४७

नारी भर्त्तारमासाद्य कुणपं दहते यदि ।
अग्निर्दहति गात्राणि ह्यात्मानं नैव पीड़येत् ।।४८

दह्यते धम्यमानानां धातूनां हि यथा मलम् ।
तथा नारी दहेद्देहं हुताशे ह्यमृतोपमे ।। ४९

एक ही चिता में समारूढ़ होकर यदि दम्पती मरते हैं तो एक पाक करे और दोनों के लिए पृथक्-पृथक् पिण्डों को दे ।।४३।। वृषोत्सर्ग–नव-श्राद्ध और षोड़श श्राद्ध—घटादि पदों का दान एवं जो भी अन्य महादान आदि हों वे सब जब तक पूरा वर्ष समाप्त हो, अलग-अलग ही करे । इससे प्रेत को बहुत समय पर्यन्त तृप्ति होती है ।।४४।। जो एक ही गोत्र के हों और मर जावें चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, तो स्थाण्डिल तो एक बनावे किन्तु उनके लिए होम पृथक् पृथक् करे ।।४५।। ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध दिया जाता है उसमें अलग पिण्ड और भोजन दे । पति और पत्नी के लिये तो एक ही पाक किया जा सकता है किन्तु इनके अतिरिक्त कोई हों तो उनका एक ही जगह पर पाक करना भी निषिद्ध एवं दूषित है ।।४६।। एक ही स्थान पर एक ही पाक करके जो बहुत-से श्राद्ध करता है वहाँ पर विकिर तो एक ही करे और पिण्ड बहुत-से देवे । ऐसा तीर्थ में अथवा अपर पक्ष में तथा चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में करना चाहिए ।।४७।। नारी अपने स्वामी को पाकर यदि उसके कुणप (मृत देह) का दाह करे तो अग्नि शरीर के अङ्गों का दाह किया करती है उसकी आत्मा को कुछ भी पीड़ा नहीं करती है ।।४८।। जिस तरह से धमन की जाने

वाली धातुओं का मल ही दग्ध हुआ करता है उसी तरह से अमृत के समान अग्नि में नारी स्वामी के देह का ही दाह किया करती है ।।४९।।

दिव्यादौ दिव्यदेहस्तु शुद्धो भवति ते यथा ।
तप्ततैलेन लोहेन वह्निना नावदह्यते ।।५०।।
तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन ।
अन्तरात्मा मृतस्तस्मिन्मृतेऽप्येकत्वमागताः ।।५१
भर्तृसङ्गं परित्यज्य याऽन्यत्र म्रियते यदि ।
पतिलोकं न सा याति यावदाभूतसंप्लवम् ।।५२
नारी सुतान्परित्यज्य मातरं पितरं तथा ।
मृतं पतिमनुव्रज्य सा चिरं सुखमाप्नुयात् ।।५३
दिव्यवर्षप्रमाणेन तिस्रः कोटचोऽर्द्ध कोटयः ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे नक्षत्रैः सह सर्वदा ।।५४
वदन्ते च मृते लोके कुले भवति भोगिनाम् ।
महाप्रीतिमवाप्नोति भर्त्रा सह पतिव्रता ।।५५
एवं न कुरुते नारी धर्मोढ़ा पतिसङ्गमम् ।
सप्तजन्मनि दुःखार्त्ता दुःशीलाऽप्रियवादिनी ।।५६
सा नारी गृहगोधा वा गोधा वा द्विमुखी भवेत् ।
स्वभर्त्तारं परित्यज्य परपुंसानुवर्त्तिनी ।।५७

दिव्यादि में दिव्य देह जैसे शुद्ध होता है, तप्त तैल से, लौह से और वह्नि से वह अवदग्ध नहीं होता है ।।५०।। उसी भाँति पति से संयुक्त वह नारी कभी भी दग्ध नहीं होती है । उसके मरने पर मृत अन्तरात्मा एकत्व को प्राप्त हो जाता है ।।५१।। अपने पति के संग का त्याग कर जो नारी यदि कहीं अन्यत्र मरती है तो जब तक प्रलय होता है तब तक वह नारी पतिलोक को प्राप्त नहीं होती ।।५२।। जो नारी अपने पुत्रों को, माता को और पिता को त्याग कर अपने मृत पति के साथ ही प्राणों को त्याग दिया करती है वह नारी चिरकाल तक सुख की प्राप्ति किया करती है ।।५२।। दिव्य वर्षों के प्रमाण से साढ़े तीन करोड़ वर्ष के समय तक सर्वदा नक्षत्रों के साथ वह स्वर्ग में निवास प्राप्त करती है ।।५४।।

उसके अन्त में मृत होने पर वह भोगियों के लोक में और कुल में होती है। यह पतिव्रता नारी अपने भर्त्ता के साथ महान् प्रीति का लाभ प्राप्त किया करती है ॥५५॥ धर्म पूर्वक विवाहिता नारी इस प्रकार से पति का संगम नहीं करती है वह सात जन्मों तक दुःख से पीड़ित होती हुई दुःशीला और अप्रियवादिनी होती है ॥५६॥ वह नारी गृह गोधा-गोधा अथवा द्विमुखी हुआ करती है जो अपने स्वामी का त्याग करके पराये पुरुष की अनुवर्त्तिनी रहा करती है ॥५७॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा ।
कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्गता ॥५८
जीवमाने मृते वापि किल्विषं कुरुते तथा ।
तेन नाप्नोति भर्त्तारं पुनर्जन्मनि दुर्भगा ॥५९
यद्देवेभ्यो यत्पितृभ्योऽतिथिभ्यःकुर्य्याद्भर्त्ताभ्यर्चनंसत्क्रियांच।
तस्यात्यर्द्धं केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव।६०
एव कृते तु सा नारी भर्तृलोके वसेच्चिरम् ।
यावदादित्यचन्द्रो च तावद्देवोपमा दिवि ॥६१
पुनश्चिरायुषी भूत्वा जायेत विपुले कुले ।
पतिव्रता तु सा नारी भर्तृदुःखं न विन्दति ॥६२
सर्वमेतद्धि कथितं मया तव खगेश्वर ।
विशेषं कथयिष्यामि मृतस्यैव सुखप्रदम् ॥६३
द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम् ।
पुनः कुर्य्यात्तथा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम् ॥६४
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्य्यादृते पुनः ।
चेत्करोति पुनः सम्यक्पूर्वकृत्यं विनश्यति ॥६५
मृतस्यैवं पुनः कुर्य्यात्प्रेतोऽप्यक्षयमाप्नुयात् ।
अर्वाग्वृद्धेश्च करणात्पक्षिराज सपिण्डताम् ॥६६
पूर्वोक्तकं सर्वविधिं सुयुक्तं सपिण्डनं यो हि करोति पुत्रः ।
तथापि मासं प्रति पिण्डमेकमन्नं सकुम्भं सजलञ्च दद्यात्।६७

इसलिए सभी प्रकार के प्रयत्नों से नारी को अपने स्वामी का सदा सेवन करना चाहिये। जब तक स्वामी जीवित रहे तब तक अच्छी तरह कर्म, मन और वचन से उसकी सेवा करे और मरने पर उसके ही साथ अनुगमन करे ॥५८॥ जीवित रहने पर या मृत हो जाने पर जो सदा किल्विष किया करती है अर्थात् पापाचरण करती है। इसका परिणाम यह होता है कि वह दुर्भाग्य वाली फिर दूसरे जन्म में स्वामी की प्राप्ति नहीं किया करती है ॥५९॥ जो स्वामी देवों के लिये, पितृगण के लिये, अतिथियों के लिये अभ्यर्चन और सत्क्रिया किया करता है उस सब सत्कर्म का आधा भाग केवल अनन्य चित्त वाली नारी स्वामी की शुश्रूषा से ही प्राप्त किया करती है ॥६०॥ इस प्रकार से भर्त्ता की शुश्रूषा से नारी पतिलोक में चिरकाल तक निवास किया करती है और जब तक ये चन्द्र और सूर्य स्थित रहा करते हैं तब तक दिवलोक में देवता के समान रहती है ॥६१॥ इसके अनन्तर फिर चिरायु होकर वे दोनों किसी विशाल कुल में जन्म ग्रहण करते हैं। वह पतिव्रता नारी कभी भी अपने स्वामी के दुःख को प्राप्त नहीं किया करती है ॥६२॥ हे खगेश्वर ! यह सभी कुछ मैंने तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। अब आगे मृत को सुख प्रदान करने वाला विशेष मैं बतलाऊंगा ॥६३॥ बारहवें दिन किया हुआ सब जब तक वर्ष का सपिण्ड न हो उसे पुनः करे। नित्य घटान्न और प्रतिमासिक करे ॥६४॥ प्रेतकार्य के बिना किये हुए को पुनः नहीं किया जाता है। यदि पुनः भली-भाँति किया करता है तो पूर्व कृत्य सब नष्ट हो जाता है ॥६५॥ मृत का ही पुनः इस प्रकार से करना चाहिए। इससे प्रेत अक्षय को प्राप्त हुआ करता है। हे पक्षिराज ! वृद्धि के करने से अर्वाक् (पश्चात्) सपिण्डता करे। पूर्व में वर्णित सम्पूर्ण विधि को यथोचित रूप से सपिण्डीकरण जो पुत्र किया करता है तो भी प्रति मास में एक पिण्ड, अन्न, जल से परिपूर्ण कुम्भ आदि देना चाहिए ॥६६-६७॥

१७—प्रेतत्व से मुक्ति

कथं प्रेता वसन्त्यत्र कीदृग्रूपा भवन्ति च।
महाप्रेताः पिशाचाश्च कैः कैः कर्मफलैः प्रभो ॥१

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन।
प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन हि।
सर्वं कथय मे देव मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥२

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै।
शृणुष्वावहितो भूत्वा वक्ष्मि प्रेतलक्षणम् ॥३

गुह्याद्गुह्यतरं ह्येतन्नाख्येयं यस्य कस्यचित्
भक्तस्त्वं हि महाबाहो तेन ते कथयाम्यहम् ॥४

पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजासीद्बभ्रुवाहनः।
महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥५

यज्वा दानपतिः श्रीमान्ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः।
शीलोदारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥६

प्रजाः पा यते नित्य पुत्रानिव महाबलः।
स कदाचिन्महाबाहुर्मृगयां गन्तुमुद्यतः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे प्रभो ! प्रेत यहाँ पर कैसे निवास किया करते हैं और उनके किस प्रकार के स्वरूप होते हैं ? महा प्रेत और पिशाच किन-किन कर्मों के फलों से हुआ करते हैं ॥१॥ हे मधुसूदन ! सभी प्राणियों के ऊपर अनुकम्पा करने के लिये यह मेरे सामने वर्णन कीजिये। इस भीषण प्रेतत्व से, कौनसा दान तथा सुकृत है, जिसके करने से मुक्ति हुआ करती है ? हे देव ! यदि मेरे प्रिय करने की आपकी इच्छा हो तो यह सभी मुझे बताने की कृपा कीजिए ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! तुमने यह प्रश्न तो बहुत सुन्दर किया है। इससे मनुष्यों का परम हित होगा। अब तुम अत्यन्त सावधान होकर श्रवण करो, मैं प्रेत के सम्पूर्ण लक्षण बतलाता हूँ ॥३॥ किन्तु यह बहुत ही गोपनीय से भी गोपनीय विषय है, इसे चाहे जिस किसी के सामने नहीं कहना चाहिए। हे महा बाहो ! क्योंकि तुम मेरे भक्त हो, इसलिए मैं तुमको यह सब बतलाता

हूँ ॥४॥ हे तार्क्ष्य ! पहिले त्रेता युग में एक बभ्रुवाहन नाम वाला राजा था। वह परम सुन्दर महोदय पुर में रहता था और बहुत ही धर्म में निष्ठा रखने वाला था तथा महान् बलवान् था ॥५॥ वह यजन करने वाला, दानपति, श्रीमान्, ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले और साधु-सम्मत था। शील और उदारता के गुणों से युक्त था तथा दया एवं दाक्षिण्य (कौशल) से समन्वित था ॥६॥ यह महान् बलवान् राजा अपनी प्रजा का पालन पुत्रों की भांति ही किया करता था। किसी समय में वह बड़ी-बड़ी भुजाओं वाला राजा शिकार खेलने के लिए जाने को तैयार हुआ था ॥७॥

वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम् ।
शार्दूलशतसंजुष्टं नानापक्षिनिनादितम् ॥८
वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादद्दश्यतः ।
तेन विद्धो मृगस्तीव्रो बाणेन सुदृढ़ेन च ॥९
बाणमादाय तं तस्य स वनेऽदर्शनं ययौ ।
शोणितस्रावमार्गेण स राजाऽनुजगाम ह ॥१०
ततो मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश सः ।
क्षुत्क्षामकण्ठोनृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः ॥११
जलस्थानं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत ।
पीत्वा तदुदकं शीतं पद्मदन्धाधिवासितम् ॥१२
ततोऽवतीर्य्य सलिलाद्विमलाद्बभ्रुवाहनः ।
न्यग्रोधवृक्षमासाद्य शीतच्छायं मनोहरम् ॥१३
महाविटपिनं घूर्णपक्षिसंघातनादितम् ।
वनस्पतीनां सर्वेषां केतुभूतमवस्थितम् ॥१४

वह राजा एक घने जङ्गल में प्रवेश कर गया जो अनेक तरह के विशाल वृक्षों से समन्वित था और जिस वन में सैकड़ों शार्दूल रहते थे। वहाँ विविध भाँति के पक्षियों की मधुर ध्वनि हो रही थी ॥८॥ उस वन में उस बभ्रुवाहन राजा ने दूर से ही एक मृग को देखा। उस

राजा ने सुदृढ़ तीक्ष्ण बाण के द्वारा उस तीव्र मृग को वेध दिया था। वह स्वयं विद्ध होकर उस बाण के साथ ऐसा अदृष्ट हो गया कि कहीं भी फिर दिखलाई नहीं दिया था। बाण के लगने से जो उसके शरीर से रक्त का स्राव हुआ था उसे देखते ही उसी मार्ग से वह राजा भी उसके पीछे चला गया था ॥९-१०॥ इसके अनन्तर उस मृग की तलाश करने के प्रसङ्ग से वह अन्य एक वन में प्रवेश कर गया था। उस समय में राजा से अत्यन्त पीड़ित हो गया था। उसका गला एक दम सूख गया था और श्रम के सन्ताप से मूर्छित-सा हो गया था ॥११॥ इसके पश्चात् उसे एक जलाशय मिला। वहाँ पर उसने अपने अश्व के सहित उस जल का अवगाहन किया था। उस जलाशय का परम शीतल और पद्मों की गन्ध से अविवासित जल का पान करके वह बभ्रूवाहन उस विमल जल से अवतीर्ण होकर एक बट का वृक्ष वहाँ था उसके नीचे आ गया था। उस परम मनोहर वृक्ष की बहुत ही शीतल छाया थी। वह वट महान् विशाल था और घूर्ण पक्षियों के समूह की ध्वनि हो रही थी। वह वट वृक्ष वहाँ पर ऐसा स्थित हो रहा था मानो समस्त वनस्पतियों का वह केतु भूत हो ॥१२.१४॥

तं महातरुमासाद्य निषसाद महीपतिः।
अथ प्रेतं ददर्शासौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियम् ॥१५

उत्कचं मलिनं रुक्षं निर्मांसं भीमदर्शनम्।
स्नायुबद्धास्थिचरणं धावमानमितस्ततः ॥१६

अन्यैश्च बहुभिः प्रेतैः समन्तात्परिवारितम्।
तं दृष्ट्वा चागतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः ॥१७

प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम्।
तदा हृष्टमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागमत् ॥१८

अब्रवीत्स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः।
प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
त्वत्संयोगान्महाबाहो नास्ति धन्यतरो मम ॥१९

कृष्णरूप करालाक्ष त्वं प्रेत इव दृश्यसे ।
कथयस्व मम प्रीत्या यथार्थमतितत्त्वतः ।।२०
कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव ।
प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं ममार्हसि ।।२१

उस परम विशाल वृक्ष के पास पहुंच कर वह राजा वहाँ पर बैठकर विश्राम लेने लगा था । इसके अनन्तर उसने वहाँ पर एक प्रेत को देखा था जो कि भूख और प्यास से व्याकुल इन्द्रियों वाला हो रहा था ।।१५।। ऊपर की ओर उसके केश खड़े हो रहे थे, अत्यन्त मैला-कुचैला उसका रूप था, बहुत ही रूखा, बिना माँस वाला, भयानक दिखलाई देने वाला, स्नायुओं से वद्ध अस्थिचरण वाला और इधर-उधर दौड़ लगाता हुआ था । उसके चारों ओर अन्य भी बहुत से प्रेत उसे घेरे हुए थे । ऐसे उसे आते हुए राजा ने देखा जो कि घोर रूप वाला था । उसे देखकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ था ।।१६-१७।। प्रेत को भी उस अति घोर जङ्गल में आये हुए राजा को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी और प्रसन्न चित्त होकर वह प्रेत उस राजा के समीप में उपस्थित हो गया था ।।१८।। हे तार्क्ष्य ! उस समय में वह प्रेतराज राजा से बोला-हे महाबाहो ! मैंने आज आपके सम्पर्क को पाकर अपना प्रेत भाव त्याग दिया है और मैं परम गति को प्राप्त हो गया हूं । मेरे समान कोई भी अन्य धन्यतर नहीं है ।।१९।। राजा ने कहा—काले स्वरूप वाले तथा विकराल नेत्रों वाले तुम तो प्रेत की भाँति ही दिखलाई दे रहे हो । मेरी प्रीति के लिए आप जो भी यथार्थ बात हो उसे अत्यन्त तत्व पूर्वक बतलाओ ।।२०।। प्रेत ने कहा—हे नृप श्रेष्ठ ! अब मैं सब कहता हूँ । आपको यह सब विदित ही नहीं है । इस प्रेतत्व प्राप्त होने के कारण को सुनकर आप मेरे ऊपर दया करने के योग्य होते हैं ।।२१।।

वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम् ।
नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ।।२२
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम् ।
तत्राहं न्यवसं भूप देवार्चनरतस्तथा ।।२३

वैश्यजात्यां सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते ।
हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरो मया ॥२४
विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पितास्तथा ।
आहाराश्च विहाराश्च मया वै सुनिवेशिताः ॥२५
दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा ।
तत्सर्वं विफलं तात मम दैवादुपागतम् ॥२६
न मेऽस्ति सन्ततिस्तात न सुहृन्न च बान्धवः ।
न च मित्रं हि मे तादृग्यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥२७
प्रेतत्वं सुस्थिरं तेन मम जातं नृपोत्तम ।
एकादश त्रिपक्षञ्च षाण्मासिकमथाब्दिकम् ॥२८
प्रतिमास्यानि चान्यानि एवं श्राद्धानि षोडश ।
यस्यैतानि दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥२९
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ।
एवं ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम् ॥३०

एक वैदिश नाम वाला नगर है जो सब तरह की सम्पत्ति और नाना प्रकार के रत्नों से समाकुल है तथा अनेक जनपदों से घिरा हुआ है । बहुत पुण्यों से समन्वित तथा अनेक वृक्षों से समाकुल है । हे राजन् ! वहाँ मैं देवों की अर्चना में परायण होकर निवास करता था ॥२२-२३॥ मैं वैश्य जाति में उत्पन्न हुआ था, मेरा नाम सुदेव था–यह आपको विदित होवे । मैंने हव्य के द्वारा खूब देवों को तृप्त किया और काव्य से पितृगण की तृप्ति भी की ॥२४॥ अनेक प्रकार के दानों के योग से मैंने विप्रों को भी सन्तृप्त किया । मैंने आहार और विहार भी सुनिवेशित किये थे ॥२५॥ दीन और अनाथ लोगों को विशेष रूप से मैंने अनेक भाँति के दान आदि दिये थे । हे तात ! मेरे भाग्य से वह सभी कुछ विफल होगया है ॥२६॥ हे तात ! मेरे कोई सन्तति नहीं है, न मेरा कोई सुहृत् है और न कोई मेरा बान्धव ही है । मेरा कोई मित्र नहीं है और न कोई मेरा ऐसा ही है जो कि मेरी और्ध्व दैहिक क्रिया करे अर्थात् मरने के पश्चात् होने वाले

श्राद्ध–पिण्डदान आदि कर्म करे। हे नृपोत्तम ! इससे मुझे यह प्रेतत्व प्राप्त हुआ है और अब यह प्रेतत्व सुस्थिर होगया है। एकादश, त्रिपक्ष, छःमास का और वार्षिक तथा अन्य प्रति मास में होने वाले श्राद्ध जो कुल सोलह होते हैं जिस मृत जन्तु को ये षोड़स श्राद्ध नहीं दिये जाते हैं जो कि प्रेतत्व के मुक्ति के लिये होने के कारण प्रेतश्राद्ध कहे जाते हैं, उसका प्रेतत्व सुस्थिर हो जाया करता है चाहे फिर सैकड़ों ही श्राद्ध क्यों नहीं किये जावें, उसका प्रेतत्व नहीं जाता है। हे महाराज ! इस प्रकार से आप मेरी दशा को जानकर अब इस प्रेतत्व से मुझे छुड़वाइये और मेरा उद्धार आप करिये ॥२७-३०॥

वर्णानाञ्चापि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते।
तन्मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते ॥३१
यथा मम शुभावाप्तिर्भवेन्नृपवरोत्तम।
तथा कार्य्यं महावीर्य्यं कृपा यदि ममोपरि।
आत्मनश्च कुरु क्षिप्रं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥३२
कथं प्रेता भवन्तीह कृतैरप्यौर्ध्वदैहिकैः।
पिशाचाश्च भवन्तीह कर्मभिः कैश्च तद्वद ॥३३
ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनं तथा।
ये हरन्ति नृपश्रेष्ठ प्रेतयोनिं लभन्ति ते ॥३४
तापसीञ्च स्वगोत्राञ्च अगम्याञ्च भजन्ति ये।
भवन्ति ते महाप्रेता अम्बुजानि हरन्ति ये ॥३५
प्रवालवज्रहर्त्तारो ये च वस्त्रापहारकाः।
तथा हिरण्यहर्त्तारः संयुगेऽसम्मुखे हताः ॥३६
कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिकाः शठाः।
पञ्चयज्ञविनिर्मुक्ता महादानरताश्च ये।
एवमाद्यैर्महाराज जायन्ते प्रेतयोनयः ॥३७

राजा सभी वर्णों का बन्धु होता है—ऐसा कहा जाता है। हे राजेन्द्र! आप मुझे तार दो—मैं आपको एक परमोत्तम मणिरत्न समर्पित करूँगा ॥३१॥ हे नृपवरोत्तम ! जैसे मुझे शुभ गति की प्राप्ति हो जावे वैसा ही

आपको करना चाहिये । हे महावीर्य ! यदि आप मुझ पर कृपा करें तो बहुत ही अच्छा हो । आप मेरे और्ध्वदैहिक कर्म के साथ अपना भी और्ध्व दैहिक सब कर्म शीघ्र ही करिये ॥३२॥ राजा ने कहा—यहाँ पर और्ध्व दैहिक कर्मों के किये जाने पर भी प्रेत कैसे हो जाते हैं और किन कर्मों से पिशाच इस मही मण्डल में हो जाते हैं ? यह सब मुझे बतलाइये ॥३३॥ प्रेतराज ने कहा—जो ब्राह्मण का धन, देवोत्तर सम्पत्ति स्त्रियों का धन तथा बालकों का धन हरण किया करते हैं, हे नृपश्रेष्ठ ! वे लोग प्रेत की योनि को प्राप्त किया करते हैं ॥३४॥ जो लोग किसी तापसी नारी–अपने गोत्र वाली स्त्री और जो गमन करने के अयोग्य नारी हो इनका सेवन किया करता है वे महा प्रेत हो जाते हैं । जो पुरुष कमलों का हरण करते हैं तथा प्रवल और हीरों का अपहरण किया करते हैं, वस्त्रों का हरण करते हैं तथा सुवर्ण का हरण करते हैं, जो युद्ध में असंमुख होते हुए हत हो जाते हैं ॥३५-३६॥ किये हुए को नहीं मानने वाले,ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करने वाले रौद्र,साहसिक,शठ, पाँचों प्रकार के यज्ञों से रहित होकर महादान में रति रखने वाले जो होते हैं वे इन तथा ऐसे ही अन्य कारणों से प्रेत की योनि में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥३७॥

कथं मुक्ता भवन्तीह प्रेतत्वात्कृपया वद ।
कथं चापि मया कार्य्यमोर्ध्वदैहिकमात्मनः ।
विधिना केन तत्कार्य्यं सर्वमेतद्वदस्व मे ॥३८
शृणु राजेन्द्र संक्षेपाद्विधिं नारायणात्मकम् ।
सुवर्णद्वयमाहृत्य मूर्त्ति तत्र प्रकल्पयेत् ॥३९
नारायणस्य देवस्य सर्वाभरणभूषिताम् ।
पीतवस्त्रयुगच्छन्नां चन्दना गुरुचर्चिताम् ॥४०
स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य प्रयत्नतः ।
पूर्वे च श्रीधरं देवं दक्षिणो मधुसूदनम् ॥४१
पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम् ।
मध्ये पितामहं पूज्य तथा देवं महेश्वरम् ॥४२

राजा ने कहा—यहाँ पर इस प्रेतत्व से कैसे मुक्त हुआ करते हैं?कृपा कर यह भी मुझे आप बतलाइये। मुझे अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया कैसे, किस विधि से करनी चाहिए—यह भी आप मुझे सभी कुछ बतलाने की कृपा करें ॥३८॥ प्रेतराज ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप अब नारायणात्म विधि को संक्षेप से श्रवण करिये। सुवर्ण ह्रय लाकर वहाँ पर दो सोने की मूर्त्तियों का निर्माण करावे ॥३९॥ ये मूर्त्तियाँ भगवान् नारायण की हैं और इनको समस्त अलङ्कारों से भूषित करे। दो पीत वर्ण के वस्त्र इनको धारण करावे और उस वस्त्र से उन प्रतिमाओं का समाच्छन्न कर देवे तथा फिर चन्दन और अगुरु से उन्हें भली-भांति चर्चित करदेना चाहिए ॥४०॥ अनेक प्रकार के तीर्थ जलों से उनका स्नान करावे और प्रयत्न पूर्वक फिर इन प्रतिमाओं का अधिवास करे। पूर्व दिशा में श्रीधर देव को, दक्षिण में मधुसूदन को, पश्चिम में वामन देव को, उत्तर में गदधर देव को, मध्य में पितामह को तथा महेश्वर देव को विराजमान कर अर्चा करनी चाहिए ॥४१-४२॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य अग्नौ सन्तर्प्य देवताः।
घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवास्तथा नृप ॥४३
ततः स्नातो विनीतात्मा जपमानः समाहितः।
नारायणाग्रे विधिवत्स्वां क्रियामौर्ध्वदैहिकीम् ॥४४
आरभेत विनीतात्मा क्रोधलोभविवर्जितः।
कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥४५
त्रयोदशानां विप्राणां दद्याच्छत्राण्युपानहौ।
अंगुलीयकरत्नानि भाजनासनभोजनैः ॥४६
सानाश्च सौदका देया घटाः प्रेतहिताय वै।
शय्यादानमथो दत्त्वा घटं प्रेतस्य निर्वपेत् ॥४७
नारायणेति स्वं नाम संपुटस्थं समुच्चरेत्।
एवं कृत्वाथ विधिवत्सदा शुभफलं लभेत् ॥४८
एवं सञ्जल्पतस्तस्य प्रेतस्य विनतात्मज।
सेनाऽऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला ॥४९

ततो बले समायाते प्रेतोऽदर्शनतां ययौ ।
तस्माद्वनाद्विनिःसृत्य राजापि स्वपुरं ययौ ।।५०
स्वपुरं स समासाद्य सर्वं तत्प्रेतभाषितम् ।
चकार विधियच्चैव ऊर्ध्वदेहादिकं विधिम् ।।५१

फिर प्रदक्षिणा करके और अग्नि में देवों को संतृप्त करके अर्थात् घृत, दधि, क्षीर के द्वारा आहुतियाँ देकर हे नृप ! फिर विश्वेदेवाओं को संतृप्त करे ।।४३।। इसके पश्चात् विनीतात्मा होता हुआ स्नान करे और पूर्णतया सावधान होकर भगवान् नारायण के आगे जाप करता हुआ अपनी विधि पूर्वक औध्र्वदेहिकी क्रिया को करे । इस कर्म को जब आरम्भ करे तो विनयशील और क्रोध लोभ से रहित होकर रहे । ब्राह्मणों को छत्र (छाता), उपानह (पादत्राण), अँगुलीयक (अँगूठी), रत्न, पात्र (बरतन), आसन और भोजन आदि के द्वारा तृप्त करे और ये विप्र सख्या में तेरह हों । प्रेत के हितार्थ अन्न तथा जल के सहित घट देवे । फिर शय्या का दान देकर प्रेत के घट का निर्वपन करे ।४४-४७।नारायण-यह अपने नाम का उच्चारण करे जो कि सपुटस्य हो । धस प्रकार से सम्पूर्ण कर्म विधि-विधान पूर्वक करके सदा शुभ फल को प्राप्त करे ।।४८।। हे विनिता के पुत्र ! इस प्रकार से उस प्रेत के द्वारा कहने पर हाथी, रथ और अश्वादि परिपूर्ण सेना वहाँ पर पीछे से आगई थी ।।४६।। इसके अनन्तर उस सेना के वहाँ आते ही वह प्रेत अदृष्ट हो गया था । उस वन से निकल कर वह राजा वभ्रुबाहन भी अपने पुर को चला आया था । अपने नगर में आकर उस राजा ने वह समस्त क्रिया बिधिपूर्वक सम्पन्न की थी जो राजा को उस प्रेत ने बतलाई थी और देह के पश्चात् होने वाली क्रिया विधिपूर्वक की थी ।।५०-५१।।

१८—प्रेतत्व मोचनार्थ घटादि दान

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन ।
प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन वा ।।१

शृणु दानं प्रवक्ष्यामि सर्वाशुभविनाशनम् ॥२
सन्तप्तहाटकमयं घटकं विधाय
ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या
विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ॥३
किमेत्कथितं देव विस्तरेण वदस्व मे।
भूम्यां प्रक्षिप्यते कस्मात्पञ्चरत्नं कुतो मुखे ॥४
अधस्तादास्तृतदर्भाः पादौ याम्यां व्यवस्थितौ।
किमर्थं मण्डलं भूम्यां गोमयेनोपलिप्यते ॥५

गरुड़ ने कहा—हे मधुसूदन ! समस्त प्राणियों के हित करने के लिये जिस दान के करने से तथा सुकृत से प्रेतत्व से मुक्ति होती है वह कृपा करके बतलाइये ॥१॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे गरुड़ ! मैं अब सब अशुभों के विनाश करने वाला दान बतलाता हूँ उसका तुम श्रवण करो ॥२॥ भली-भाँति तपाये हुए सुवर्ण के घट की रचना करा कर लोक पालों के सहित ब्रह्मा—ईश और भगवान् केशव से युक्त घट को क्षीर—घृत से भरकर और भक्ति-भाव से प्रणाम करके ब्राह्मण को दान करे। यह एक ही बहुत बड़ा दान है फिर अन्य सैकड़ों दानों का कोई भी प्रयोजन ही नहीं रहता है ॥३॥ गरुड़ ने कहा—हे देव आपने यह कैसा दान अभी मुझे बतलाया है ? इसे आप विस्तार पूर्वक कहिए। किस लिये भूमि में और पाँच रत्नों का प्रक्षेप किया जाता है ॥४॥ भूमि पर नीचे दर्भों का आस्तरण तथा याम्य दिशा में शव के पैरों का व्यवस्थित किया जाना तथा भूमि को गोमय से लीपना और मण्डल की रचना आदि का करना यह सब किस लिये किया जाया करता है ? ॥५॥

किमर्थं स्मर्यते विष्णुर्विष्णुसुक्तञ्च पठ्यते।
किमर्थं पुत्रपौत्राश्च तिष्ठन्ति तस्य चाग्रतः ॥६
किमर्थं दीपदानं स्यात्किमर्थं विष्णुपूजनम्।
किमर्थमातुरे दानं ददाति द्विजपुङ्गवे ॥७

बन्धुमित्राण्यमित्राणि क्षमापयति तत्कथम् ।
तिला लोहं सुवर्णञ्च कार्पासं लवणं तथा ॥८
सप्तधान्यं त्रितिर्गावो दीयन्ते केन हेतुना ।
कथञ्च म्रियते जन्तुमृते तस्य कुतो गतिः ॥९
अतिवाहं शरीरञ्च कथं विश्रमते तदा ।
सर्वमेतन्मया पृष्टो ब्रूहि लोकहिताय वै ॥१०

उस समय में भगवान् विष्णु का स्मरण तथा विष्णुसूक्त का पाठ किस के लिये किया जाता है । उसके आगे सभी पुत्र और पौत्र क्यों स्थित होते हैं ? ॥६॥ दीपों का दान और विष्णु का पूजन किस के निमित्त उस समय में किया जाता है ? आतुर द्विज पुङ्गव को किस की प्राप्ति के लिये दान दिया जाया करता है ? ॥७॥ बन्धु, मित्र और अमित्र सभी किस लिये और क्यों क्षमापन किया करते हैं तिल, लोह, सुवर्ण, कार्पास, लवण, सात धान्य, भूमि, गौ इन सबका दान किसलिये उस समय में किया जाता है । यह जन्तु किस तरह से मृत होता है और उसके देह को त्याग कर मर जाने पर कैसे गति हुआ करती है ?॥८-९॥ अति वाहन किये हुए उस शरीर को उस समय में क्यों विश्राम दिया जाता है ? हे भगवन् ! मैंने जो ये सब बातें आपसे पूछी हैं इन सबका उत्तर आप कृपा करके समस्त लोक की भलाई के लिये प्रदान करें ॥१०॥

१९—पुत्रोत्पादन फल और मुक्ति के उपाय

साधु पृष्टं त्वया भद्रमानुषाणां हिताय वै ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥१
सम्यग्विभेदरहितं श्रुतिस्मृतिसमुद्धृतम् ।
यन्न दृष्टं सुरैः सेन्द्रैर्योगिभिर्योगचिन्तकैः ॥२
गुह्याद्गुह्यतरं वत्स नाख्यातं कस्यचित्क्वचित् ।
भक्तस्त्वं हि महाभाग तेन ते कथयाम्यहम् ॥३
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य च ॥४॥

तारयेन्नकरकात्पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते ।
दाहः पुत्रेण कर्त्तव्यो ह्यग्निदाता च पौत्रकः ॥५
तिलैर्दर्भैश्च भूम्यां वैकुण्ठे तत्र मतिर्भवेत् ।
पञ्चरत्नानि वक्त्रे तु तेन जीवः प्ररोहति ॥६
सुयेप्या गोमयैर्भूमिस्तिलान्दर्भांश्च निक्षिपेत् ।
तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति दुष्कृतम् ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे भद्र ! तुमने ये सब बातें बहुत ही ठीक पूछी हैं। इनसे मनुष्यों का बड़ा हित होगा ? अब तुम बहुत ही सावधान होकर श्रवण करो। मैं और्ध्व दैहिक सभी कर्म बतलाता हूँ ॥१॥ भली-भाँति विशेष भेदों से रहित और श्रुति तथा स्मृति से समुद्धृत विषय जिसको इन्द्र के सहित देवों ने तथा योग के चिन्तन करने वाले योगियों ने भी कभी नहीं देखा है। हे वत्स ! यह परम गोपनीय से भी अत्यन्त गोपनीय है। इसे अब तक कभी भी कहीं किसी को नही बतलाया गया है। हे महाभाग ! तुम मेरे परम भक्त हो इसीलिये आज मैं तुमको यह सब बतलाता हूँ ॥२-३॥ जिसके कोई पुत्र नहीं होता है उसकी स्वर्ग में कोई भी गति किसी भी भांति नहीं हुआ करती है—यह बिल्कुल पूर्णतया सत्य कथन है। इसलिये जिस किसी भी उपाय से पुत्र के जन्म होने का उपाय अवश्य ही करना चाहिए ॥४॥ यदि मोक्ष नहीं होती है तो पुत्र नरक से उद्धार कर दिया करता है। शव का दाह पुत्र को करना चाहिए और पौत्र भी अग्नि देने वाला होता है ॥५॥ भूमि में तिल और दर्भों के विकरण करने से उस समय वैकुण्ठ में मृतात्मा की बुद्धि हो जाया करती है। पाँच रत्न जो मुख में डाले जाते हैं इससे जीव का प्ररोहण होता है ॥६॥ गोमय (गोबर) के द्वारा भली-भाँति लीपी हुई भूमि होनी चाहिए फिर उस पर तिल तथा डाभों (कुशा) का निक्षेपण करे। उसी भूमि पर जो सन्निकार मृत्यु वाला आतुर प्राणी है उसको लिटा देना चाहिए। इससे उसके समस्त दुष्कृतों का दाह हो जाता है। अर्थात् सब पाप एवं बुरे कर्म जो कि अपने जीवन में उसने किये हैं दग्ध हो जाया करते हैं ॥७॥

दर्भतूली नयेत्स्वर्गं आतुरं तुनसंशयः ।
तिलांस्तत्र क्षिपेद्वाथ दर्भे पूलिकमध्यतः ॥८
सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते ।
यत्र लेपः स्थितस्तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति ॥९
यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मगाः ।
अलिप्ते ह्यातुरं मुक्तं विशन्त्येते वियोनयः ॥१०
नित्यहोमं तथा श्राद्धं पादशौचं द्विजे तथा ।
मण्डलेन विना भूम्यां कृतमप्यकृतं भवेत् ॥११
आतुरो मुच्यते नैव मण्डलेन विना भुवि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च ॥१२
मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मंडलम् ।
अन्यथा म्रियते यस्तु वृद्धो बालो युवापि वा ॥१३
योन्यन्तरं न गच्छेत् क्रीड़ते वायुना सह ।
तस्यैवं वायुभूतस्य नो श्राद्धं नोदकक्रिया ॥१४

उस आतुर अर्थात् मृत्यु गत जन्तु को वह दर्भ की तूली स्वर्ग में ले जाती है—इसमें रञ्च मात्र भी संशय नहीं है । वहां पर दर्भों के पुलिकाओं के मध्य में तिलों का भी क्षेपण करे ॥८॥ जहाँ पर कभी लेपन नहीं हुआ है वह तो सभी भूमि शुद्ध मानी जाती है और जहाँ पर पहिले से भूमि लिपी हुई है वहाँ पर वह पुनः गोमय के द्वारा लेपन करने से ही शुद्ध हुआ करती है ॥९॥ यातुधान (राक्षस)–पिशाच और राक्षस जोकि क्रूर कर्मों के करने वाले हैं वे बिना लिपे हुए स्थान पर पड़े रहने वाले आतुर के अन्दर प्रवेश कर जाया करते हैं और ये वियोनि हो जाते हैं । ॥१०॥ नित्य होम—श्राद्ध—द्विज के पादों का शौच बिना मंडल के भूमि में किया हुआ भी न किया हुआ अर्थात् व्यर्थ हो जाया करता है ॥११॥ इसलिये आतुर (मृत्यगत) प्राणी को मडल के बिना भूमि में कभी नहीं छोड़ना चाहिए । ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—श्री और हुताशन (अग्नि देवता) ये सब मंडल में उपस्थित हुआ करते हैं । इसलिये मंडल अवश्य ही करना

चाहिए। बिना मंडल के जो भी वृद्ध-युवा और बालक मर जाता है वो अन्यन्तर को नहीं जाता वहीं पर वायु के साथ क्रीड़ा करता रहता है। इस प्रकार से उस वायुभूत के लिये न तो कोई श्राद्ध विधान है और न उदक क्रिया ही होती है ॥१२-१४॥

मम स्वेदसमुत्पन्नास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः।
असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैः स्थितैः ॥१५
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलैः समः।
तर्पणे च तथा होमे दत्तो भवति चाक्षयः ॥१६
दर्भा रोमसमुत्पन्नाः तिलाः स्वेदेषु नान्यथा।
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं वाप्युपजीवनात् ॥१७
सव्ययज्ञोपवीतेन ब्रह्माद्योस्तृप्तिमाप्नुयुः।
अपसव्येन तृप्यन्ति पितरो देवदेवताः ॥१८
दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा दर्भमध्ये तु केशवः।
दर्भाग्रे शङ्करं विद्यात्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥१९
विप्रा मन्त्राः कुशा बह्निस्तुलसी च खगेश्वर।
नैते निर्माल्यतां यान्ति भोग्यमानाः पुनः पुनः ॥२०
कुशा पिंडेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने।
मन्त्राः शूद्रेषु पतिताश्चितायाञ्च हुताशनः ॥२१

हे तार्क्ष्य ! ये तिल मेरे देह से समुत्पन्न हुए हैं अतएव ये पवित्र करने वाले होते हैं। इन तिलों के वहाँ पर स्थित रहने से सब असुर—दानव और दैत्य वहाँ से भाग जाया करते हैं ॥१५॥ एक ही दिया हुआ तिल सुवर्ण के एक द्रोण परिमाण वाले तिलों के समान होता है। तर्पण तथा होम में दिया हुआ तिल तो अक्षय हो जाया करता है ॥१६॥ ये दर्भ रोमों से समुत्पन्न होने वाले हैं। तिल स्वेदों में होते हैं—इसके अन्यथा कुछ भी नहीं है। इनके प्रयोग करने की विधि के द्वारा ब्रह्मा ने विश्व का उपजीवन किया था ॥१७॥ सव्य यज्ञोपवीत वाला होकर कर्म करने से ब्रह्माद्य सब तृप्ति को प्राप्त होते हैं। अपसव्य यज्ञोपवीत करके

तर्पण—श्राद्ध करने से पितृगण और देव देवता तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥१८॥ दर्भ के मूल में ब्रह्मा स्थित रहा करते हैं और दर्भ के मध्य भाग में भगवान् केशव रहते हैं। दर्भ के अग्र भाग में शंकर रहते हैं। इस भाँति कुशा में तीनों देवताओं की स्थिति समझनी चाहिए ॥१९॥ हे खगेश्वर ! कुशा में एक विशेषता और है और वह यह है कि—कुशा—विप्र—मन्त्र—वह्नि और तुलसी ये सब कभी भी निर्माल्य नहीं होते हैं चाहे इनका बार-बार भी भोग्य क्यों न किया जावे ॥२०॥ कुशा जब पिंडों पर रख दी जाती है तो वह निर्माल्य हो जाती है और ब्राह्मण प्रेत के भोजन से निर्माल्यता को प्राप्त हो जाया करते हैं। शूद्र के अन्दर पड़े हुए मन्त्र तथा चिता में डाली हुई अग्नि भी निर्माल्य हो जाते हैं ॥२१॥

तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग।
पञ्चप्रवाहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां सताम् ॥२२
विष्णुरेकादशी गङ्गातुलसीविप्रधेनवः।
असारे दुर्ग संसारे षट्पदी मुक्तिदायनी ॥२३
तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यपि।
निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं प्राप्तमातुरम् ॥२४
हस्ताभ्याञ्च धृतैर्दर्भैस्तोयेन प्रोक्षयेद्भुवम्।
मृयुकाले क्षिपेद्दर्भान्कारयेदातुरस्य च ॥२५
दर्भेषु क्षिप्यते योऽसौ दर्भैस्तु परिवेष्टितः।
विष्णुलोकं स वै याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः ॥२६

हे खग ! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु और एकादशी ये पाँच इस संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए सत् पुरुषों के तारक हैं ॥२२॥ भगवान् विष्णु, एकादशी तिथि, गङ्गा, तुलसी विप्र और धेनु ये षट्पदी इस सार हीन दुर्ग रूप संसार में मुक्ति के देने वाली होती है ॥२३॥ तिल अनुपम पवित्र होते हैं—इसी प्रकार से दर्भ और तुलसी भी परम पवित्र हैं। ये सब दुर्गति को प्राप्त होने वाले आतुर अर्थात् मृत प्राणी को दुर्गति से निवारण कर दिया करते हैं ॥२४॥ हाथों में रक्खे हुए दर्भों से जल लेकर

भूमि का प्रोक्षण करना चाहिए। मृत्यु के समय में आतुर के निकट उन दर्भों को क्षिप्त कर देना चाहिए या आतुर को उन पर डाल देवे ॥२५॥ जो दर्भों पर प्रक्षिप्त कर दिया जाता है और दर्भों से परिवेष्टित होता है वह मानव मन्त्रों से हीन होकर भी सीधा विष्णु लोक को जाया करता है ॥२६॥

दर्भतूलीगतः प्राणी संस्थितो भूमिपृष्टतः।
प्रायश्चित्तविशुद्धोऽसौ संसारे सारसागरे ॥२७
गोमयेनोपलिप्ते च दर्भस्यास्तरणे स्थिते।
तत्र दत्तेन दानेन सर्वं पापं व्यपोहति ॥२८
लवणं सदृशं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्।
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना ॥२९
पितृणाञ्च प्रियं भाव्यं तस्मात्सर्वप्रदं भवेत्।
विष्णुदेहसमुत्पन्नो यतोऽयं लवणो रसः ॥३०
एतत्सलवणं दानं तेन शंसन्ति योगिनः
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्त्रीणां शूद्रजनस्य च ॥३१
आतुरस्य यदा प्राणान्नयन्ति वसुधातले।
लवणं तु तदा देयं द्वारस्योद्घाटन दिवः ॥३२

दर्भों की तूली पर, भूमि के पृष्ठ भाग पर रहने वाला प्राणी इस सारों के सागर संसार में प्रायश्चित्त से पूर्णतया विशुद्ध होजाता है ॥२७॥ गोमय से लिपे दर्भ के आस्तरण पर स्थित होने पर जो भी दान दिया जाता है, उससे सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है ॥२८॥ लवण के सदृश मनुष्यों को सब कामों के प्रदान करने वाला अन्य दिव्य रस नहीं है लवण के बिना सब अन्नों के रस उत्कट नहीं होते हैं ॥२९॥ यह पितृगण को भी परम प्रिय है उससे यह सर्वप्रद होता है क्योंकि यह लवण रस भगवान् विष्णु के देह से समुत्पन्न होने वाला है ॥३०॥ योगीगण लवण के सहित यह दान परम प्रशस्त कहा करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र जन आतुर के जब वसुधा तल में प्राणों को ले जाते हैं दिवलोक के द्वार को उद्घाटित करने के लिये लवण देना चाहिए ॥३१-३२॥

२०—प्रेतसौख्यकर दान

शृणु ताक्ष्यं प्रवक्ष्यामि दानानां दानमुत्तमम् ।
येन दत्तेन प्रीणन्ति भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् ।।१
ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे शङ्कराद्यमरास्तथा ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वे दानाद्वै प्रीतिमाप्नुयुः ।।२
देयमेतन्महादानं प्रेतोद्धरणहेतवे ।
रुद्रलोके चिरं वासस्ततो राजा भवेदिह ।।३
रूपवान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः ।
विहाय यमलोक सः स्वर्गं ताक्ष्यं प्रगच्छति ।।४
तिलांश्च गां क्षितिं हेम यो ददाति द्विजोत्तमे ।
तस्य जन्मार्जितं पाप तत्क्षणादेव नश्यति ।।५
तिला गावो महादानं महापातकनाशनम् ।
तद्द्वयं दीयते विप्रे नान्यवर्णे कदाचन ।।६
कल्पितं दीयते विप्रे तिला गावश्च मेदिनी ।
अन्येषु नैव वर्णेषु पौष्यवर्गे कदाचन ।।७

श्री कृष्ण ने कहा—हे ताक्ष्यं ! अब मैं सब दानों में उत्तम दान बतलाता हूँ तुम उसका श्रवण करो। जिसके देने से भूः—भुवः—स्वः-ये क्रम से प्रसन्न एवं संतृप्त होते हैं ।।१।। ब्रह्मादि सब ऋषिगण—शङ्करादि समस्त अमरगण और इन्द्र आदि सब देवता ये सभी दान से प्रीति को प्राप्त हुआ करते हैं ।।२।। प्रेतत्व के उद्धार के लिए यह महा दान अवश्य ही देना चाहिए। इससे रुद्र लोक में चिर काल पर्यन्त निवास होता है और इसके पश्चात् संसार में राजा हुआ करता है ।।३।। हे ताक्ष्यं ! परम रूप—लावण्य वाला—सुन्दर भाग्य से समन्वित-वाग्मी (बोलने वाला)—श्री सम्पन्न और अतुल विक्रम वाला वह यमलोक का त्याग करके सीधा स्वर्ग को जाता है ।।४।। जो किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को तिल, गौ, भूमि, सुवर्ण का दान करता है उसके जन्म जन्मातर के इकट्ठे हुए पाप उसी क्षण नष्ट हो जाया करते हैं ।।५।। तिल और गौ-ये महा-

दान होते हैं जोकि साधारण ही पाप नहीं प्रत्युत महान् पातकों के पापों को नष्ट कर दिया करते हैं। ये दोनों पदार्थों का दान केवल ब्राह्मण को ही देने चाहिए। अन्य वर्ण वाले को कभी भी न देवे ॥६॥ तिल-जो-पृथिवी इनका संकल्प करके विप्र को दान करे। अन्य वर्ण वालों को तथा अपने पोषण के योग्य किसी वर्ग को कभी भी इन उपर्युक्त वस्तुओं का दान नहीं देवे ॥७॥

पोष्यवर्गे तथा स्त्रीषु दानं देयमकल्पितम् ।
आतुरे चोपरागे तु दानं देयमशेषतः ॥८
आतुरे दीयते दानं यावद्देहोपतिष्ठति ।
जीवता च पुनर्दत्तमुपतिष्ठत्यसंवृतम् ॥९
सत्य सत्यं पुनः सत्यं तद्दत्तं विकलेन्द्रिये ।
यच्चानुमोदते पुत्र तच्च दानमनन्तकम् ॥१०
अतो दद्यात्सुपुत्रेण यावज्जीवत्यसौ चिरम् ।
अतिवाहस्तथा प्रेतो भोगांश्च लभते यतः ॥११
अस्वस्थातुरकाले तु देहपाते क्षितिस्थते ।
देहे तथातिवाहस्य परतः प्रीणनं भवेत् ॥१२
तिलं लोहं हिरण्यञ्च कार्पास लवणं तथा ।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥१३
तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् ।
हेतदानात्सुखं स्वर्गे भूमिदानान्नृपो भवेत् ॥
हेमभूमिप्रदानाच्च न पीड़ा नरके भवेत् ॥१४

पोष्य वर्ग को और स्त्रियों को जो भी कुछ दान देवे वह कल्पित न करके ही देना चाहिये। आतुर को और ग्रहण के समय में तो सभी को पूर्ण दान दे देने चाहिए ॥८॥ आतुर में जो दान दिया जावे वह तभी तक देवे जब तक यह देह उपस्थित रहे। जीवित रहते हुए के द्वारा पुनः दिया हुआ असंवृत होकर उपस्थित होता है ॥९॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्णतया सत्य है कि विकलेन्द्रिय को वह दिया हुआ जोकि अनु-

मोदित किया जाता है अनन्त दान होता है ।।१०।। इसलिए सत्पुत्र के द्वारा जब तक वह जीवित रहता है तभी तक दान देना चाहिए जिससे कि अतिवाह प्रेत भोगों को प्राप्त करता है ।।११।। अस्वस्थ और आतुर के समय में—देह के पात हो जाने पर तथा देह के भूमि पर उतार लेने पर अतिवाह का आगे प्रीणन (संतृप्ति) होता है ।।१२।। तिल, लोह, सुवर्ण, वस्त्र, लवण, सातों प्रकार के धान्य, भूमि, गौ ये सब एक से एक अधिक पावन दान हैं। ऐसा कहा गया है ।।१३।। गौ तीन प्रकार के पातक से मनुष्य को तार देती है। हेम (सोना) के दान से स्वर्ग में सुख प्राप्त होता है और भूमि के दान से नृप होता है। हेम, भूमि के दान देने से नरक में कोई पीड़ा नहीं होती ।।१४।।

सर्वेऽपि यमदूताश्च यमरूपातिभीषणाः ।
सर्वे ते वरदा यान्ति सप्तधान्येन प्रीणिताः ।।१५
विष्णोः स्मरणमात्रेण प्राप्यते परमांगतिम् ।
भूमिस्थं पितरं दृष्ट्वा अर्द्धोन्मीलितलोचनम् ।।१६
तस्मिन्काले सुतो यस्तु सर्वदानानि दापयेत् ।
स्वस्थानाच्चलिते श्वासे दानं यच्चातुरे ददेत् ।।१७
अश्वमेधो महायज्ञो कलां नार्हति षोडशीम् ।
धर्मात्मा स च पुत्रोऽपि देवताभिः प्रपूज्यते ।।१८
दापयेद्यस्तु दानानि ह्यातुरं पितरं प्रति ।
लोहनदानञ्च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना ।।१९
यमं भीमं स नाप्नोति न गच्छेत्तस्य वेश्मनि ।
कुठारं मुसलं दण्डः खंगश्च छुरिका तथा ।।२०
एतानि यमहस्तेषु निग्रहे पापकर्मणाम् ।
तस्माल्लोहस्य दानं तु आतुरे सततं ददेत् ।।२१

स्वर्ग में भी यम के दूत यम जैसे रूप वाले और महान् भीषण होते हैं, किन्तु वे सब सात प्रकार के धान्य के दान से प्रसन्न होकर वर देने वाले हो जाते हैं ।।१५।। भगवान् विष्णु के स्मरण मात्र कर लेने

से परम गति की प्राप्ति की जाया करती है। भूमि पर स्थित आधी आँखें मुँदी हुई और आधी खुली हुई आँखों वाले अपने पिता को देखकर उस समय में जो पुत्र उपर्युक्त सभी दानों को दिलाता है तथा श्वास के अपने स्थान को छोड़कर वहाँ चल देने पर जो उस आतुर की दशा में दान देता है या उस समय किसी आतुर (दुखिया) को दान देता है उस दान की बराबरी क्या उसकी सोलहवीं कला को भी महान् अश्वमेध यज्ञ भी प्राप्त करने के योग्य नहीं होता है। वह पुत्र भी परम धर्मात्मा है और देवों के द्वारा पूजित होता है ॥१६-१८॥ जो अपने आतुर (मरणासन्न) पिता के प्रति दानों को दिलवाता है लोह का दान भूमि युक्त हाथ से देना चाहिए ॥१९॥ वह अति भीम यम को प्राप्त नहीं होता है और उसके घर में अर्थात् यमपुरी में भी नहीं जाया करता है। कुठार—मुसल —दण्ड—खङ्ग–छुरिका ये सब आयुध यमराज के हाथों में पाप कर्म करने वालों के निग्रह करने के लिए रहा करते हैं। इसलिये आतुर के प्रति लोह का दान निरन्तर देना चाहिए ॥२०-२१॥

यमायुधानां सन्तुष्टयै दानमेतदुदीरितम् ।
गर्भस्थाः शिशवो ये तु युवानः स्थविरास्तथा ॥२२
एभिर्दानविशेषैस्तु निर्दहेयुः स्वपातकम् ।
कुरिणाः सार्वसूत्रापाः शण्डा मर्कास्त्वनुर्वराः ॥
शबलाः श्यामदूताश्च लोहदानेन प्रीणिताः
पुत्राः पौत्रास्तथा बन्धुः सगोत्रः सुहृदः स्त्रियः ।
ददन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नाः सुसमाहितम् ॥२४
पञ्चत्वे भूमियुक्तस्य शृणु तस्य च या गतिः ।
अतिवाहः पुनः प्रेतो वर्षस्य सुकृतं लभेत् ॥२५
पादादुर्ध्वं कटी यावद् तावद् ब्रह्माधितिष्ठति ।
ग्रीवा यावद्धरिर्नाभिः शरीरे मनुजस्य तु ॥२६
मस्तके तिष्ठते रुद्रो व्यक्ताव्यक्तो महेश्वरः ।
एकमूर्त्तेस्त्रयो भेदा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ॥२७

अहं प्राणिशरीरस्थो भूतग्रामचतुष्टये ।
धर्माधर्मे मतिं दद्यात्सुखदुःखे कृताकृते ॥२८
जन्तोर्बुद्धिं समास्थाय पूर्वकर्माधिवासिताम् ।
अहमेव तथा जीवान्प्रेरयामि च कर्मसु ॥२९
स्वर्गं मोक्षञ्च नरकं यान्ति च प्राणिनस्तथा ।
स्वर्गस्थनरकस्थानां श्राद्धैराप्यायनं भवेत् ॥
तस्माच्छ्राद्धानि कुर्वीत विविधानि विचक्षणः ॥३०

यमराज के आयुधों की सन्तुष्टि के लिये यह दान बताया गया है। गर्भ में स्थित रहने वाले बच्चे—शिशु—युवा तथा वृद्ध इनके द्वारा विशेष दानों से अपने पातकों का निर्दहन करना चाहिए। कुरिणा—सार्व सूत्राप—शण्ड—मर्क—अनुर्वर—शवल और श्याम दूत लोह के दान से परम प्रसन्न होते हैं ॥२२-२३॥ पुत्र—पौत्र—बन्धु—सगोत्र—सुहृद और स्त्रियाँ जो भी इनमें से आतुर के लिये धन नहीं दिया करते हैं वे ब्रह्मघ्न होते हैं। यह दान भी सुक्षमाहित होना चाहिए अर्थात् विधिवत् सावधानी से दिये जावे ॥२४॥ पञ्चत्व प्राप्त होने पर अर्थात् मर जाने पर उस भूमि से युक्त की जो गति होती है उसका श्रवण करो वह अतिवाह प्रेत एक वर्ष के सुकृत को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ पैरों से ऊपर कटि पर्यन्त ब्रह्मा अधिष्ठित रहते हैं। कमर से ऊपर ग्रीवा तक अर्थात् नाभि से लेकर गरदन पर्यन्त मनुष्य के शरीर में हरि अधिष्ठित रहा करते हैं ॥२६॥ व्यक्त और अव्यक्त महेश्वर रुद्र मस्तक में स्थित रहते हैं। सिद्धान्ततः इन तीनों की प्रतिमाएं ही पृथक् पृथक् हैं वैसे ये तीनों ही एक हैं। तीन मूर्त्तियों के स्वरूप में जब ये अलग अलग होते हैं तो ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ये इनके तीन नाम हो जाते हैं ॥२७॥ मैं प्राणियों के शरीर में स्थित रहता हूँ। भूत ग्राम चतुष्टय में अर्थात् चार प्रकार के भूतों के समुदाय में मैं धर्म—अधर्म में—सुख-दुःख में और कृत—अकृत में मति देता हूँ ॥२८॥ पूर्व कर्मों के द्वारा अधिवासित जन्तु की बुद्धि को समास्थित करके मैं ही स्वयं कर्मों के करने में उस भाँति से जीवों को प्रेरणा दिया करता हूँ ॥२९॥ इससे प्राणी वर्ग फिर स्वर्ग—

मोक्ष और नरक में जाते हैं। जो स्वर्ग में स्थित रहते हैं अथवा नरकों में वेदना सहते हैं उन सबको श्राद्धों के द्वारा सन्तृप्ति हुआ करती है अतएव विचक्षण पुरुष को विविध भाँति के शास्त्रोक्त श्राद्ध अवश्य ही करने चाहिए ॥३०॥

मत्स्यः कर्मो वराहञ्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किस्तथैव च ॥३१
एतानि दश नामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधैः।
स्वर्गञ्चैव स वै याति च्युतः स्वर्गाच्च मानवः ॥३२
लब्ध्वा सुखञ्च वित्तञ्च दयादाक्षिण्यसंयुतः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो जीवेत् स शरदां शतम् ॥३३
आतुरे च ददेन्न्यासं विष्णुपूजाञ्च कारयेत्।
अष्टाक्षरं महामन्त्रं जपेद्वा द्वादशाक्षरम् ॥३४
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च नैवैद्यैर्घृतपाचितैः।
तथा गन्धैश्च धूपैश्च श्रुतिसूक्तैरनेकशः ॥३५
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः।
यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र मे किं प्रयोजनम् ॥३६
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥३७
वयमापो वयं पृथ्वी वयं दर्भा वयं तिलाः।
वयं गावो वयं राजा वयं वायुवयं प्रजाः ॥३८

मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि इन दशावतारों के दश नामों का स्मरण करे, वह मानव स्वर्ग से च्युत होता हुआ भी पुनः स्वर्ग को ही जाता है ॥३१-३२॥ वह पुरुष सुख, सम्पत्ति को प्राप्त करके दया-दाक्षिण्य से युक्त होता हुआ, पुत्र-पौत्र आदि से समन्वित होकर सौ वर्ष की पूर्ण आयु का भोग करता है ॥३३॥ आतुर में न्यास दे और विष्णु का पूजन करावे। अष्टाक्षर मन्त्र अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय)का जाप करे ॥३४॥ घृत में परिपाचित

नैवेद्यों के द्वारा और शुक्ल वर्ण के सुगन्धित पुष्पों से, गन्ध, धूप और अनेक श्रुत्युक्त सूक्तों के द्वारा पूजनार्चन करे ।।३५।। विष्णु ही माता, विष्णु ही पिता, तथा स्वजन एवं बान्धव भी विष्णु ही हैं । जहाँ विष्णु का दर्शन मैं नहीं करता हूँ वहाँ मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।।३६।। जल, स्थल में, पर्वतों की चोटियों और ज्वाला-माला कुल में सर्वत्र भगवान् विष्णु विद्यमान हैं और यह समस्त जगत् ही पूर्ण विष्णुमय है । हम ही जल, पृथ्वी, दर्भ, तिल, गौ, राजा, वायु और प्रजा हैं अर्थात् ये विभिन्न स्वरूप में हम ही विद्यमान हैं ।।३७-३८।।

वयं हेम वयं धान्यं वयं मधु वयं घृतम् ।
वयं विप्रा वयं देवा वयञ्चैव स्वभूर्भुवः ।।३९
अहं दाता अहं ग्राही अहं याजी अहं क्रतुः ।
अहं कर्त्ता ह्यहं हर्त्ता अहं धर्मो अहंगुरुः ।।४०
धर्माधर्मे मतिं दद्यां कर्मभिस्तु शुभाशुभैः ।
यत्कर्म कुरुते क्वापि पूर्वजन्मार्जितं खग ।।४१
धर्मे चिन्तामहं कर्त्ता ह्यधर्मे यम एव च ।
यतीनां कुरुते सोऽपि धर्मे मुक्ति ददाम्यहम् ।।४२
मनुजनां हितं तार्क्ष्य अन्ते वैतरणी नदी ।
तया निहत्य पापौघं विष्णुलोकं स गच्छति ।।४३

यह सुवर्ण के स्वरूप में भी हम हैं—धान्य, मधु, घृत, विप्र, देवगण और भूः, भुवः, और स्वः यह सब हम ही हैं । दान देने वाला—दानों का ग्रहण करने वाला—यज्ञों का यजन कर्त्ता—यज्ञ—कर्त्ता—हर्त्ता—धर्म और गुरु ये सभी मैं ही हूँ । इस सब कुछ कथन का तात्पर्य यही है कि इस जगत् में जो भी कुछ जिस रूप में स्थित है वह सभी मेरा स्वरूप है ।।३९-४०।। हे खग ! जीवों के शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार मैं ही धर्म और अधर्म में बुद्धि को प्रेरित करता हूँ । जो भी कोई कुछ कर्म करता है वह अपने पूर्व जन्म में अर्जित के अनुसार ही करता है । धर्म में मैं चिन्ता का कर्त्ता हूँ और अधर्म में यमराज करता है । वह भी यतियों

का करता है। मैं धर्म में मुक्ति देता हूँ ॥४१-४२॥ हे तार्क्ष्य ! अन्त में मनुष्यों का हित वैतरणी नहीं है। उसके द्वारा पापों का निहन न करके वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥४३॥

बालत्वे यच्च कौमारे वयः परिणतौ तथा।
पूर्वावस्थाकृतं यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि ॥४४
यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः।
सन्ध्ययोर्यत्कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा ॥४५
दत्त्वा वरं सकृदपि कपिलां सर्वकामिकाम्।
उद्धरेदन्तकाले सा ह्यात्मानं पापसञ्चयात् ॥४६
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥४७
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥४८

बाल भाव में जो कुछ किया है तथा कौमारावस्था में और अवस्था के परिपाक होने की दशा (वृद्धावस्था) में जो कुछ किया है। पूर्व अवस्था में और अन्य पहिले जन्म-जन्मान्तरों में जो भी कुछ किया है। रात्रि में, प्रातःकाल में, मध्याह्न और अपराह्न में जो भी कुछ किया है तथा दोनों सन्धि कालों में जो भी कुछ मन-वाणी और कर्मों के द्वारा किया है इन सभी प्रकार के पापों के सञ्चय से मनुष्य उद्धार की प्राप्ति कर लेता है यदि उसने अन्तकाल में परम श्रेष्ठ समस्त कामनाओं की पूर्त्ति करने वाली कपिला गौ का दान कर दिया है। वह अपनी आत्मा का सब पापों से उद्धार कर लेता है। वही गौ वैतरणी से उद्धार कर देती है ॥४४-४६॥ गौऐं मेरे आगे रहें और गौऐं ही मेरे पीठ पीछे हों। गौऐं मेरे सदा हृदय में नित्य ही निवास करती हैं और मैं गौओं के ही मध्य में रहता हूं। जो लक्ष्मी समस्त प्राणियों की है और जो देव में व्यवस्थित है वही धेनुरूप से देवी मेरे सम्पूर्ण पापों का व्यपोहन करे। इस प्रकार से गौ के दान के समय में चिन्तन करे। इससे परम श्रेय होता है ॥४७-४८॥

२१—शारीरिक स्थान निर्णय और चतुर्विध शरीर

ये नराः पापसंयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम् ।
अन्तकाले च गौर्दत्ता ह्यनन्तफलदा भवेत् ॥१

पादक्रमप्रमाणाब्दं स्वर्गे वसति भूमिदः ।
अश्वारूढ़ाश्च ते यान्ति ददते ये ह्यु पानहो ॥२

अत्यातपश्रमयुता दह्यन्ते यत्र मानवाः ।
छत्रदानेन वै प्रेता विचरन्ति यथासुखम् ॥३

तमुद्दिश्य ददेदन्न तेन चाप्यायितो भवेत् ।
अन्धकारे महाघोरे अमूर्त्ते लक्ष्यवर्जिते ॥
उद्योतेनैव ते यान्ति दीपदानेन मानवाः ॥४

आश्विने कार्त्तिके मासि माघे मासि मृताश्च ये ।
चतुर्दश्याञ्च दीयेत दीपदान सुखाय वै ॥५

प्रत्यहञ्च प्रदातव्य मार्गेषु विषमे नरैः ।
यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥६

कुले मार्गे च शुद्धात्मा प्रकाशत्वञ्च गच्छति ।
ज्योतिषामपि पूज्योऽसौ दीपदानरतो नरः ॥७

श्री भगवान् ने कहा—जो मनुष्य पाप कर्मों से युक्त हुआ करते हैं वे यमालय को जाते हैं। अन्तकाल में दान की हुई गौ अनन्त फल प्रदान करने वाली होती है ॥१॥ भूमि के दान करने वाला पुरुष पैरों के क्रम के प्रमाण वाले वर्षों तक स्वर्ग में निवास किया करता है। जो उपानहों का दान करते हैं वे जन्तु अश्व पर आरूढ़ होते हुए परलोक में जाया करते हैं ॥२॥ जिस मार्ग में अत्यन्त उग्र आतप से मानव दाह को प्राप्त किया करते हैं और श्रम से अति भ्रान्त हो जाते हैं उसमें छत्र के दान करने से प्रेत गण सुखपूर्वक विचरण किया करते हैं ॥३॥ उसका उद्देश्य करके अन्न का दान करना चाहिए उससे प्रेत आघामित (सन्तृप्त) होता है। दीपों के दान करने से मनुष्य उस महान् घोर लक्ष्य से हीन अमूर्त्त अन्धकार में

प्रकाश से युक्त होकर यात्रा किया करते हैं ।।४।। जो आश्विन—कार्तिक और माघ मास में मृत्युगत होते हैं उनके सुख प्राप्त करने के लिये चतुर्दशी के दिन में दीप दान करना चाहिए ।।५।। विमष में मनुष्यों के द्वारा मार्गों में प्रतिदिन प्रेत के सुख की हाह से जब तक वर्ष पूर्ण हो दीप दान करना चाहिए ।।६।। कुल में और मार्ग में जो शुद्ध आत्मा वाला होता है, जो मनुष्य दीपों के दान में रति रखने वाला है वह ज्योतियों में भी परम पूज्य हुआ करता है ।।७।।

प्राङ्मुखोदङ्मुखो दीपो देवागारे द्विजालये ।
यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे ।।
स गच्छति महामार्गं सर्वक्लेशविवर्जितः ।।८
आसन भाजन भोज्यं दीयते च द्विजातये ।
सुखेन भुञ्जमानस्तु सुख गच्छति वै पथि ।।९
कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ।
भाजन चान्नदानञ्च कुसुमं चांगुलीयकम् ।।१०
एकादशाहे दातव्यं प्रेतो याति पराङ्गतिम् ।
त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतत्य शुभमिच्छता ।।११
दातव्यानि यथाशक्ति प्रेतोऽसौ प्रीणितो भवेत् ।
भाजनानि पदञ्चैव कुम्भांश्चैव त्रयोदश ।।१२
मुद्रिका वस्त्रयुग्मञ्च तथा छत्रमुपानहौ ।
एतावन्तः पदार्था हि प्रेतोद्देशेन दापयेत् ।।१३
वृषोत्सर्गे कृते तार्क्ष्य प्रेतो याति पराङ्गतिम् ।
योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे यदि दापयेत् ।।१४
स्वमहिम्नोऽनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् ।
नानालोकान्विचरति महिषीं यो ददाति च ।।१५

इस लोक में जो कोई मनुष्य पूर्व की ओर मुख वाला या उत्तर की ओर मुख वाला दीप किसी देवालय में या द्विजालय में दिया करता है चाहे वह मृत के उद्देश्य से हो या जीवित रहते हुए अपने ही कल्याण के लिये

हो वह उस महामार्ग की यात्रा में सब प्रकार के क्लेशों से रहित होता हुआ यात्रा किया करता है ।।८।। आसन–भोजन–भाजन द्विजाति के लिये दानों में दिये जाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि सुख से खाता हुआ मार्ग में जाया करता है ।।९।। कमण्डलु के दान करने से तृषित हो कर जल पीया करता है । भाजन (पात्र) और अन्न का दान—कुसुम तथा अँगूठी का दान ग्यारहवें दिन में करना चाहिए । इससे प्रेत परम गति को प्राप्त किया करता है । तेरह पद इस प्रकार से प्रेत के कल्पना की इच्छा से देने चाहिए और इन पदों को अपनी शक्ति के अनुसार ठीक विधि से देवे । इनके देने से प्रेत परम प्रसन्न होता है । भाजन—पद और तेरह कुम्भ मुद्रिका–दो वस्त्र–छत्र—उपानह (पदत्राण) ये इतने पदार्थ हैं जो कि प्रेत के उद्देश्य से दिलाने चाहिए ।।१०-१३।। हे तार्क्ष्य ! वृषोत्सर्ग के करने पर प्रेत परम गति को प्राप्त होता है जो अश्व–रथ अथवा गज ब्राह्मण को दान में देता है वह अपनी महिमा के अनुरूप उस-उसी सुख की प्राप्ति किया करता है । जो महिषी को देता है वह नाना लोकों में विचरण किया करता है ।।१४-१५।।

यमवाहस्य जननी महिषी सुगतिप्रदा ।
ताम्बूलं पुष्पदानेन याम्यानां प्रीतिवर्द्धनम् ।।१६

तेन संप्रीणिताः सर्वे तस्मिन्क्लेशं न कुर्वते ।
गोभूतिलहिरण्यादिदानानि निजशक्तितः ।।१७

मृतोद्देशेन यो दद्याज्जलपात्रञ्च मृण्मयम् ।
उदपात्रसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।।१८
यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः ।
न भीषयन्ति तं तार्क्ष्य वस्त्रदाने कृते सति ।।१९

मार्गे वै गम्यमानस्तु तृषार्त्तः श्रमपीड़ितः ।
घटान्न दानयोगेन सुखी भवति निश्चितम् ।।२०

शय्यातूलीपट्टयुता दद्याद्देवद्विजातये ।
तया प्रेतत्वमुक्तोऽसौ मोदते सह दैवतैः ।।२१

यमराज के वाहन (महिष) भैंसा की महिषी (भैंस) माता होती है अतएव वह सुगति के प्रदान करने वाली होती है । ताम्बूल और पुष्पों के दान से यमलोक के यात्रियों के सुख की वृद्धि होती है तथा वे परम प्रसन्न हुआ करते हैं ।।१६।। इससे वे सभी प्रीणित अर्थात् प्रसन्न होकर उस मार्ग में कोई भी क्लेश प्राप्त नहीं किया करते हैं । गौ—भूमि—तिल—सुवर्ण आदि के दान अपनी पूर्ण शक्ति से मृतक के उद्देश्य से दिया करता है और मिट्टी का सुन्दर पात्र जल से पूर्ण करके दान किया करता है वह एक सहस्र जल के पात्रों के फल को प्राप्त किया करता है ।।१७-१८।। यमराज के दूत महान् रौद्र अर्थात् भयानक स्वरूप वाले होते हैं—कराल और कृष्ण एवं पिङ्गल वर्ण वाले हुआ करते हैं । हे तार्क्ष्य ! वस्त्रों के दान करने पर वे महान् भीषण यम के दूत उसको नहीं डराया करते हैं ।।१९।। उस यम पुरी के महान् विशाल मार्ग में गम्यमान (जाता हुआ) प्यास से दुःखित और श्रम से पीड़ित होता है उसके लिये जो घट और अन्न का दान किया जाता है उससे वह निश्चित रूप से सुखी होता है ।।२०।। तूली और पट्ट से युक्त शय्या देव द्विजाति के लिये दान में देनी चाहिए उससे यह प्रेतत्व की योनि से मुक्त होकर देवों के साथ आनन्द का लाभ किया करता है ।।२१।।

एतत्ते कथितं तार्क्ष्य दानमन्त्येष्टिकर्मजम् ।
अधुना कथयिष्येऽहं देहे मृत्युप्रवेशनम् ।।२२

जातस्य मर्त्यलोकेऽस्मिन्प्राणिनो मरणं ध्रुवम् ।
पूर्वकाले मृतानां तु प्राणिनाञ्च खगेश्वर ।।२३

सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यस्य तद्गलात् ।
नवद्वारै रोमभिश्च जातानां तालुरन्ध्रकात् ।।२४

पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम् ।
कुणपं पतते पश्चान्निर्गते मरुदीश्वरे ।।२५

कालाहतः पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः ।
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथाप्सु च ।।२६

तेजस्तेजसि लीयेत समीरे च समीरणः ।
आकाशे च तथाकाशं सर्वव्यापी तु शङ्करे ॥२७
तत्र कामादयः पञ्च काये पञ्चेन्द्रियाणि च ।
एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ॥२८

हे तार्क्ष्य ! यह तुम्हारे सामने अन्त्येष्टि कर्म में उत्पन्न दान का वर्णन सब कर दिया है । अब इसके अनन्तर देह में मृत्यु के प्रवेश को बतलाता हूँ ॥२२॥ यह अटल सिद्धान्त है कि जो मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ है उसकी मौत निश्चिय रूप से होती है । हे खगेश्वर ! पूर्व काल में मृत प्राणियों का यह वायु सूक्ष्म होकर उसके कण्ठ से निकल जाया करता है । जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है उनके प्राण वायु निकलने के अन्य भी मार्ग हैं । इस देह में नौ द्वार हैं—रोम हैं और तालु रन्ध्र है—इनसे भी प्राण प्रयाण किया करते हैं ॥२३-२४॥ जो पापी होते हैं और घोर पाप कर्मों के करने वाले हैं उनका जीव अपान मार्ग से निश्चय ही निकलता है । इस वायु के स्वामी अर्थात् प्राण के निकल जाने पर पीछे यह कुणय (मृत देह—शव) पड़ा रहा करता है ॥२५॥ काल से आहत होकर अर्थात् काल का कवलित होता हुआ यह मृत देह बिना आधार वाले वृक्ष की भाँति गिर जाता है । इस पाँच भौतिक शरीर का पृथिवी तत्व का भाग तो इस पृथ्वी में लीन हो जाता है—जल का भाग जाकर जल में लय होता है । तेज-तेज में—वायु-वायु में और आकाश-आकाश में लीन हो जाता है । सर्व व्यापी शंकर में लीन होता है ॥२६-२७॥ इस शरीर में कामादि पांच और पाँच इन्द्रियां हैं । हे तार्क्ष्य ! ये इस देह में तस्कर बताये गये हैं ॥२८॥

कामक्रोधौ ह्यहङ्कारो मनस्तत्रैव नायकः ।
संहारकश्च कालोऽसौ पुण्यपापेन संयुतः ॥२९
जगतश्च स्वरूपञ्च निर्मितं स्वेन कर्मणा ।
गच्छेद्देहं पुनः सोऽपि सुकृतैर्दुष्कृतैर्युतम् ॥३०
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं सकलैर्विषयैः सह ।
प्रविवेश नवे गेहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥३१

शरीरे ये समासीना: सम्भवे सर्वधातव: ।
मूत्रं पुरीषं तद्योगाद्ये चान्ये धातवस्तथा ।।३२
पित्तं श्लेष्मा तथा मज्ज्जा मांसं मेदस्तथैव च ।
अस्थि शुक्रञ्च स्नायुश्च देहेन सह दह्यते ।।३३
एतेषां कथिता तार्क्ष्य सस्थिति: सर्वदेहिनाम् ।
कथयामि पुनस्तेषां शरीरञ्च तथा भवेत् ।।३४
एकस्तम्भस्नायुबद्धं स्थूणाद्वयविभूषितम् ।
इन्द्रियैश्च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम् ।।३५

काम-क्रोध और अहंकार उनमें यह मन इन सबका नायक (मुखिया) होता है । यह काल सबका संहारक होता है जो पुण्य और पाप से संयुत होता है ।।२६।। इस सम्पूर्ण जगत् का स्वरूप अपने ही कर्म के द्वारा निर्मित हुआ है । इसके पश्चात् यह जीवात्मा इस शरीर को त्याग कर पुन: यह सुकृत तथा दुष्कृतों युक्त अन्य देह को प्राप्त किया करता है ।।३०।। जिस तरह कोई गृही अपने पहिले घर के जल जाने पर तथा अग्नि से दग्ध हो जाने पर रहने के लिये किसी नवीन घर में प्रवेश किया करता है वैसे ही समस्त विषयों के सहित पाँचों इन्द्रियों से युक्त यह जीवात्मा भी नूतन देह में प्रवेश किया करता है ।।३१।। समुत्पन्न शरीर में समस्त धातुऐं समास्थित रहा करती हैं—मूत्र और मल भी रहता है तथा उसके योग से अन्य धातु हैं वे भी रहा करती हैं ।।३२।। पित्त-श्लेष्मा (कफ)—मज्जा—मांस—मेद—अस्थि—शुक्र और स्नायु ये सभी इस देह के साथ ही दग्ध हो जाया करते हैं ।।३३।। हे तार्क्ष्य ! इन सब देह धारियों की ऐसी ही संस्थिति हुआ करती है जो कि तुमको सब बतलादी है । अब मैं तुमको यह बतलाता हूँ कि इनको शरीर कैसे प्राप्त होता है ।।३४।। एक स्तम्भ वाला जो कि स्नायुओं के जाल से भली भाँति संबद्ध हो रहा है और स्थूणाद्वय से अलंकृत है । यह शरीर सब इन्द्रियों से युक्त और नौ द्वारों वाला होता है ।।३५।।

विषयैश्च समाक्रान्तं कामक्रोधसमाकुलम् ।
रागद्वेषसमाकीर्णं तृष्णादुर्गतिसंयुतम् ।।३६

लोभजालपरिच्छिन्नं मोहवस्त्रेण वेष्टितम् ।
सुबद्धं मायया चैव चेतनाधिष्ठित पुरम् ॥३७
षाट्कौशिकसमुत्पन्नं पुरं पुरुषसंश्रितम् ।
एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं सर्वदेहिनाम् ॥३८
तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनानि चतुर्दश ।
आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः ॥३९
एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम् ।
चतुरशीतिलक्षाणि निर्मितानि मया पुरा ॥४०
स्वेदजा उद्भिज्जाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः ।
एतत्तो सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥४१

यह मानव का शरीर विभिन्न विषयों से समाक्रान्त और काम, क्रोध आदि से घिरा हुआ होता है। इस शरीर में किसी के प्रति राग और किसी के प्रति द्वेष भरा रहा करता है। इस शरीर में एक तृष्णा अर्थात् विषयों के भोगों की पिपासा ऐसी भरी हुई रहा करती है कि उसकी दुर्गति से यह समन्वित रहता है ॥३६॥ इस मानव के शरीर में लोभ का बहुत बिशाल जाल बिछा हुआ है जिससे यह परिच्छिन्न रहता है तथा मोह रूपी वस्त्र से यह ढका लिपटा रहा करता है। संसार की वस्तुओं में अपने पन का मिथ्या ज्ञान इसे लपेटे हुए रहता है। इसी को मोह कहते हैं। यह शरीर माया से अर्थात् "मैं मेरा—तू तेरा"—इस प्रकार के प्रपञ्च से अच्छी तरह बँधा हुआ है। यह शरीर रूपी नगर एक चेतन तत्त्व के द्वारा अधिष्ठित होता है ॥३७॥ षाट् कौशिक समुत्पन्न अर्थात् छः कुशाओं से उत्पन्न होने वाला यह पुर पुरुष के संश्रय से युक्त होता है। इस प्रकार के गुणगण से समायुक्त शरीर सभी देह धारियों का हुआ करता है। समस्त देवता स्थित हैं और चौदह भुवन हैं। जो मनुष्य अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते हैं वे निरे पशु ही कहे गये हैं ॥३८-३९॥ इसी प्रकार से चार प्रकार के शरीरों का वर्णन तुमको बता दिया है। ये चौरासी लाख शरीर होते हैं जिनका निर्माण मैंने पहिले ही कर दिया है ॥४०॥ चार प्रकार के शरीरों में

पसीने से उत्पन्न स्वेदज होते हैं, उद्भिज्ज होते हैं जो जमीन का भेदन करके वृक्षादि जड़ जीव पैदा होते हैं। स्वेदजों में जूँआ आदि आते हैं। तीसरे अणुज अण्डे के रूप में उत्पन्न होकर फिर उनमें से शरीर प्राप्त करते हैं जैसे पक्षी आदि हैं। चतुर्थ प्रकार के शरीर जरायुज होते हैं जो जेर में लिपटे हुए माता के उदर से उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य आदि हैं। हे अनघ ! तुम्हारे सामने यह सभी बतला दिया है जो कि तुमने मुझसे पूछा था ॥४१॥

२२—देहनिर्णय और उत्पत्ति

कथमुत्पद्यते जन्तुर्भूतग्रामचतुष्टये ।
त्वचा रक्तं तथा मांस मेदो मज्जास्थि जीवितम् ॥१
पाणिपादौ तथा जिह्वा गुह्यं केशा नखास्तथा ।
सन्धिमार्गाश्च बहुशो रेखानानाविधा तथा ॥२
कामक्रोधौ भयं लज्जा मनो हर्षः सुखासुखम् ।
चित्रितं छिद्रितं वापि वसाजालेन वेष्टितम् ॥३
इन्द्रजालमहं मन्ये संसारेऽसारसागरे ।
कर्त्ता कोऽत्र महाबाहो सर्वं वद मम प्रभो ॥४
कथयामि परं गुह्यं कालोद्धारविनिर्णयम् ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥५
साधु पृष्टं त्वया लोके यदिदं जीवकारणम् ।
वैनतेय शृणुष्व त्वमेकाग्रकृतमानसः ॥६
ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम् ।
तिष्ठत्यस्मिन्ब्रह्महत्या पुराकृतसमुद्भवा ॥७

गरुड़ ने कहा—इस भूत चतुष्टय में यह जन्तु कैसे समुत्पन्न होता है ? त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और जीवित—हाथ, पैर, जिह्वा, गुह्य, केश, नख, जोड़ों के मार्ग तथा अनेक प्रकार की रेखाऐं काम, क्रोध, भय, लज्जा, मन, हर्ष, सुख, दुःख यह सब चित्रित तथा छिद्रित है और वसा के जाल से वेष्टित है ॥१-३॥ इस सार शून्य संसार

के सागर में मैं तो शरीर की रचना को एक इन्द्रजाल (जादू) जैसा ही मानता हूं। हे प्रभो! हे महान् बाहुओं वाले! इस शरीर के निर्माण करने वाला कौन है—यह सब आप बतलाने की कृपा करें ॥४॥ श्री भगवान् ने कहा—अब मैं तुमको काल के उद्धार का विनिर्णय कहता हूं जोकि परम गोपनीय है। इसके ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से ही मनुष्य को सर्वज्ञत्व हो जाया करता है। अर्थात् इसके जानने से फिर वह सभी कुछ का ज्ञाता हो जाता है ॥५॥ हे गरुड़! तुमने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है कि लोक में यह जो जीव का कारण है। हे वैनतेय! अब तुम एकाग्र मन वाले होकर इसका श्रवण करो ॥६॥ नारियों को जब मास में ऋतुकाल हो तो चार दिन आरम्भ के त्याग देने चाहिएं। इन चार दिनों में नारियों पर पहिले उत्पन्न की हुई ब्रह्म हत्या स्थित रहा करती है ॥७॥

वेधाः शक्रात्समुत्सार्य्य चतुर्थांशेन दत्तवान्।
तावन्नालोक्यते वक्त्रं यावत्पापश्चतिष्ठति ॥८
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥९
सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने।
सप्ताहमध्ये यो गर्भस्तत्सम्भूतिर्मलिम्लुचा ॥१०
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
पूर्वसप्तकमुत्सृज्य ततो युग्मेषु संविशेत् ॥११
षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां सामान्यात्समुदाहृताः।
या चतुर्दशमी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र चेत् ॥१२
गुणभाग्यनिधिस्तत्र पुत्रो जायेत धार्मिकः।
सा निशा तत्र सामान्यैर्न लभ्येत कदाचन ॥१३
आयशः सम्भवन्त्यत्र गर्भास्त्वष्टाहमध्यतः।
पञ्चमेऽहनि नारीणां गौल्ममाधुर्य्य भोजनम् ॥१४

ब्रह्मा ने इन्द्र से इस ब्रह्म हत्या को हटा कर इसका चौथा भाग नारियों को दे दिया था। इसीलिये तब तक इन नारियों का ऋतु काल

में मुख भी नहीं देखा जाता है जब तक कि वह ब्रह्म हत्या का पाप इनमें स्थित रहा करता है ॥८॥ ऋतु काल में प्रथम दिन में यह चाण्डाली के समान होती है—दूसरे दिन में ब्रह्म घातिनी हुआ करती है—तीसरे दिन में यह नारी धोबिन के तुल्य हुआ करती है इन तीन दिन के समाप्त हो जाने पर चौथे दिन में नारी स्नान करके शुद्ध हुआ करती है ॥९॥ एक सप्ताह से यह नारी व्रत तथा अर्चन में पितृगण और देवों के निमित्त कर्म के योग्य हुआ करती है। इस सप्ताह के बीच में जो गर्भ होता है उसकी समुत्पत्ति मलिम्लुचा हुआ करती है। अर्थात् चौह कर्म से युक्त होती है ॥१०॥ युग्म रात्रियों में जो गर्भ स्थित होती है उससे पुत्र की उत्पत्ति होती है और अयुग्म रात्रियों में जो गर्भ का आधान होता है उसमें कन्या उत्पन्न हुआ करती है। ऋतुकाल के प्रथम दिन से युग्म और अयुग्म की गणना मानी जाया करती है। अतएव ऋतुकाल के प्रथम सप्ताह का त्याग करके दूसरे सप्ताह में युग्म रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिए ॥११॥ साधारण रूप से नारियों के गर्भ धारण करने की सोलह ऋतु-निशा बताई गई हैं। जो यदि चौदहवीं रात्रि में गर्भ की स्थित हो जाती है तो उस गर्भ से गुण और सौभाग्य समायुक्त परम धार्मिक पुत्र हुआ करता है। वह रात्रि सामान्य पुरुषों के द्वारा कभी प्राप्त ही नहीं हुआ करती है ॥१२-१३॥ बहुधा जितने भी गर्भ होते हैं वे आठ दिन के ही मध्य में हुआ करते हैं। पाँचवें दिन में नारियों को गौल्म माधुर्य भोजन होना चाहिए ॥१४॥

कटुकारश्च तीक्ष्णश्च साज्यं युवतिभोजनम् ।
स्त्री क्षेत्रमौषधी पात्रं बीजं वाप्यमृताशनम् ॥१५
तत्र वप्ता नरः सम्यग्जन्तुस्तत्र निषिच्यते ।
तस्याश्च वातपो वर्ज्यः शीतलं केवलं चरेत् ॥१६
ताम्बूलगन्धश्रीखण्डैः समं सङ्गः शुभेऽहनि ।
निषेकसमये यादृङ् नरचित्ते विकल्पना ॥१७
तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्वसति कुक्षिगः ।
शुक्रशोणितसंयोगे पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते ॥१८

वर्द्धते जठरे जन्तुस्तारापतिरिवाम्बरे।
चैतन्यं बीजरूपे हि शुक्रे नि.यं व्यवस्थितम् ।।१६
कामं चित्तञ्च शूक्रञ्च यदा ह्यकत्वमाप्नुयुः।
तदा द्रवमवाप्नाति योषागर्भाशये नरः ।।२०
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेन्नरः।
शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भः षण्डत्वमाप्नुयात् ।।२१

स्त्रीयों में युवतियों का भोजन कटुकार, तीक्ष्ण और घृत सहित होता है। स्त्री क्षेत्र है, औषधी पात्र है और अमृताशन बीज है ।।१५।। वहाँ पुरुष उस बीज का वपन करने वाला है। वहां पर भली-भाँति जन्तु का निषेक होता है। उसको आतप का वर्जन है। केवल शीतल का चरण करे ।।१६।। ताम्बूल, गन्ध और श्रीखण्ड के साथ का शुभ दिन में सङ्ग करे। निषेक के समय में पुरुष के चित्त में जैसी विशेष कल्पना होती है वैसे स्वभाव से युक्त जन्तु की समुत्पत्ति होती है जो कि कुक्षि में स्थित रहा करता करता है। पुरुष के वीर्य्य और स्त्री के शोणित (रज) के संयोग से ही गर्भ-पिंड की उत्पत्ति हुआ करती है ।।१७-१८।। आकाश में चन्द्रमा की भाँति वह जन्तु नित्य ही पेट में बढ़ता रहता है। बीज रूप वीर्य में यह चैतन्य नित्य ही व्यवस्थित रहा करता है ।।१६।। काम-चित्त और शुक्र (वीर्य्य) जब ये तीनों एकत्व रूप को प्राप्त हो जाते हैं उस समय में नर स्त्री के गर्भाशय में द्रवरूप को प्राप्त हुआ करता है ।।२०।। रक्त अर्थात् स्त्री के रज की अधिकता होती है तब नारी होती है और शुक्र अर्थात् पुरुष के वीर्य की अधिकता होती है तो पुत्र होता है। शुक्र और शोणित दोनों ही जब समान होते हैं तो गर्भ षण्डत्व को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ऐसी दशा में स्त्री तथा पुरुष न होकर नपुंसक उत्पन्न हुआ करता है ।।२१।।

अहोरात्रेण कलिलं बुद्बुदं पञ्चभिर्दिनैः।
दशमेऽह्नि भवेन्मांसमिश्रधातुसमन्वितम् ।।२२
घनमांसञ्च विंशाहे गर्भस्थो वर्द्धते क्रमात्।
पञ्चविंशतिपूर्णाहे बल पुष्टिश्च जायते ।।२३

तथा मासे तु सम्पूर्णे पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ।
मासद्वये तु सम्पूर्णे त्वचा मेदश्च जायते ॥२४
मज्जास्थीनि त्रिभिर्मासैः केशा गुल्फश्चतुर्थके ।
कर्णौ च नाशिकाकुक्षी जायेते मासि पञ्चके ॥२५
कण्ठरन्ध्रं तथा पृष्ठं गुह्याख्यं मासि सप्तमे ।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो गर्भो मासैरथाष्टभिः ॥२६
नवमे मासि सम्प्राप्ते गर्भस्थस्य रतिः स्वयम् ।
इच्छा सञ्जायते तस्य गर्भवासविनिःसृतौ ॥२७
नारी वाथ नरो वाथ नपुंसकं वाभिजायते ।
नवमे दशमे वापि जायते यश्च भौतिकः ॥२८
प्रसूतवायुनाऽऽकृष्टः पीड़या विह्वलीकृतः ।
क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च ॥२९
एभिर्भूतैः पीड़ितस्तु निबद्धः स्नायुबन्धनैः ।
त्वचास्थिनाड्यो रोमाणि मांसञ्चैवात्र पञ्चमम् ॥३०
एते पञ्च गुणाः प्रोक्ताः मया भूमेः खगेश्वर ।
यथा पञ्च गुणा आपस्तथा शृणु च काश्यप ॥३१

एक दिन और रात्रि में वह गर्भ आरम्भ में कलिल के स्वरूप में होता है पांच दिन में वह बुल बुल्ला बन जाता है । दशमे दिन में वह माँस से मिला हुआ धातु से युक्त लोथड़ा जैसा हो जाया करता है ॥२२॥ बीस दिन में घने माँस वाला गर्भ में स्थित क्रम से बढ़ता है । पच्चीस दिन में उसमें कुछ बल और पुष्टि होती है ॥२३॥ इसी प्रकार से एक मास के पूर्ण हो जाने पर वह पांचों तत्त्वों को धारण कर लेता है । दो मास का समय पूरा हो जाने पर उस गभस्थ में त्वचा तथा मेद समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥२४॥ तीन मास में मज्जा और अस्थियाँ एवं चौथे मास में केश और गुल्फ पैदा हो जाते हैं । पांचवें मास में दोनों कान, कुक्षि, नाक उत्पन्न होते हैं ॥२५॥ कण्ठ का छिद्र—पीठ—गुह्येन्द्रिय ये सब सप्तम मास में होते हैं । शरीर सम्पूर्ण अंग और प्रत्यंग आठवें मास में उत्पन्न होकर गर्भ पूर्ण हो जाया करता है ॥२६॥

नवम मास के सम्प्राप्त हो जाने पर गर्भस्थ की स्वयं रति और इच्छा समुत्पन्न हो जाती है कि वह गर्भ के वास से विनिःसृत हो जावे ।।२७।। इसके अनन्तर वह नर हो या नारी अथवा नपुंसक हो उत्पन्न हो जाया करता है । नवम मास में अथवा दशवें मास में वह उत्पन्न हुआ करता है और जो भौतिक शरीर होता है वह प्रसूत की वायु से आकृष्ट होता हुआ पीड़ा से विह्वल होता है । भूमि—वारि—हवि भोक्ता (अग्नि)—वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं इनसे पीड़ित और स्नायुओं से बँधा हुआ तथा त्वचा–नाड़ियाँ––रोम और मांस ये पाँच इसमें गुण बताये गये हैं और हे खगेश्वर ! ये पाँच गुण भूमि के हैं ऐसे ही पाँच गुण जल के भी होते हैं उन्हें भी हे काश्यप ! तुम मुझसे श्रवण करलो ।।२८-३१।।

लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तश्च पञ्चमम् ।
अपां पञ्च गुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः ।।३२
क्षुधा निद्रा च तृष्णा च आलस्यं कान्तिरेव च ।
तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ।।३३
धावनं श्वसनञ्चैव आकुञ्चनप्रसारणम् ।
निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः ।।३४
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्तथैव च ।
इत्येतत्कथितं तार्क्ष्य वायुजं गुण पञ्चकम् ।।३५
घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सवसंश्रयः ।
आकाशस्यं गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्तार्क्ष्य यत्नतः ।।३६
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च ।
पाणिपादौ गुदं वाक्चोपस्थं कर्मेन्द्रियाणि च ।।३७
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ।
गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशा तथा ।।३८
अलम्बुषा कुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा ।
पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाड़यः ।।३९

लाला (लार)–मूत्र–शुक्र (वीर्य)—मज्जा और पाँचवें रक्त ये पाँच गुण इस भौतिक शरीर में जल के हुआ करते हैं सो इन्हें भी भली

भांति समझ लेना चाहिए ।।३२।। क्षुधा (भूख)–नींद-प्यास—आलस्य और कान्ति तथा तेज ये पांच गुण हे ताक्ष्यं ! योगियों ने सर्वत्र अग्नि या तेज के बताये हैं ।।३३।। धावत (दौड़ना)–श्वास लेना—आकुञ्चन (सिकुड़जाना)–प्रसारण (फैल जाना) और निरोध (एक जगह रुक जाना) ये पाँच गुण इस शरीर में वायु के होते हैं जो कि ज्ञाता पुरुषों के द्वारा बताये गये हैं ।।३४।। राग (किसी से प्रेम करना)–द्वेष-लज्जा–भय और मोह हे ताक्ष्यं ! ये पाँच गुण भी वायु से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं ।।३५।। ध्वनि करना–छिद्रों का होना गम्भीरता–सुनना और सबका संश्रय हे ताक्ष्यं ! ये पाँच गुण आकाश तत्त्व के इस शरीर में जान लेने चाहिए ।।३६।। इस शरीर में पांच ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें बुद्धीन्द्रिय-इस नाम से कहा जाया करता है और वे श्रोत्र—त्वचा—चक्षु–जिह्वा और नासिका ये हैं। इनके अतिरिक्त इस मानस के शरीर में पांच कर्मेन्द्रिय अर्थात् काम करने वाली इन्द्रियाँ होती हैं उनके नाम हाथ–पैर–गुदा–वाक् और उपस्थ (गुह्येन्द्रिय) ये होते हैं ।।३७।। इस शरीर में दश प्रधान नाड़ियाँ होती हैं उनके नाम इड़ा—पिंगल-सुषुम्ना–गान्धारी–गजा जिह्वा–पूषा–यशा–अलम्बुषा–कुहू और शंखिनी ये होते हैं जो कि इस मनुष्य के पिंड के मध्य में स्थित रहा करती हैं ।।३८-३९।।

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।।४०
इत्येते वायवः प्रोक्ता दश देहेषु संस्थिताः ।
केवलं भुक्तमन्नञ्च पुष्टिदं सर्वदेहिनाम् ।।४१
नयति प्राणदो वायुः शरीरे सर्वसन्धिषु ।
आहारो भुक्तमात्रस्तु वायुना क्रियते द्विधा ।।४२
सम्प्रविश्य गुदे याति पृथगन्नं पृथग्जलम् ।
ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा तदन्नञ्च जलोपरि ।।४३
अग्नेश्चाधः स्थितः प्राणो ह्यग्निं तं तु धमेच्छनैः ।
वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम् ।।४४

मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहात्पृथग्भवेत् ।
कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्गुदं वपुः ।।४५
नखा मलाश्रयञ्चेदं विण्मूत्रं वेत्यनन्तरम् ।
शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः षाट्कौशिकः स्मृतः ।।४६

इस शरीर में दश प्रकार की वायु स्थित रहती हैं–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ।।४०।। इतनी ये दश प्रकार की वायु देह में स्थित रहने वाली बताई गई हैं। खाये हुए अन्न को जो समस्त देहधारियों को पुष्टि का देने वाला है उसे केवल प्राण देने वाला वायु सब सन्धियों में ले जाया करता है। जो आहार खाया जाता है उसको यह वायु दो भागों में कर दिया करता है ।।४१-४२।। गुदा में प्रवेश करके अन्न पृथक् और जल पृथक् हो जाया करता है। अग्नि के ऊपर जल को करके उसके ऊपर उस खाये हुए अन्न को कर देता है और उस अग्नि के नीचे स्थित प्राण वायु धीरे-धीरे उस अग्नि का धमन किया करता है। प्राण वायु के द्वारा धमन किया हुआ जठराग्नि उस भुक्त अन्नादि पदार्थ के रस को अलग कर देता है और उसका किट्ट भाग (फुजला) है उसे अलग कर दिया करता है। बारह प्रकार के मल होते हैं। वह किट्ट भाग (फुजला) इस शरीर से भिन्न होकर निकला करता है। भोजन का सार भाग तो रस ही होता है जिससे इस देह की पुष्टि एवं वृद्धि होती है। वे बारह मल कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, गुदा, वपु (शरीर), नख, मलाश्रय, विष्ठा और मूत्र ये होते हैं अर्थात् इनसे बाहिर हुआ करते हैं। शुक्र और शोणित के संयोग से विरचित यह देह "षाट् कौषिक"–इस नाम से कहा गया है ।।४३-४६।।

रोमकोटिस्तथा तिस्रो ह्यर्द्धकोटिसमन्विता ।
द्वात्रिंशद्दशनास्तत्र सामान्याद्विनतासुत ।।४७
विंशतिस्तु नखाः केशास्त्रिलक्षं मुखमूर्द्धजाः ।
मांसं पलसहस्रंकं सामान्याद्देहसंस्थितम् ।।४८

रक्तं पलशतं तार्क्ष्य बद्धमेतत्पुरातनैः ।
पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समः ।।४९
पलं द्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम् ।
शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं शोणितं कुडवं स्मृतम् ।।५०
श्लेष्मणश्च षडर्द्धश्च विण्मूत्रं तत्प्रमाणतः ।
एष पिण्डः समाख्यातो वैभवं सम्प्रचक्ष्महे ।।५१
ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति शरीरे ते व्यवस्थिताः ।
पातालभूधरा लोकास्तथा द्वीपाः ससागराः ।
आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ।।५२
पादाधस्तु तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा ।
जानुभ्यां सुतलं विद्धि जंघासु च तलातलम् ।।५३
तथा रसातलञ्चोर्वोर्गुह्यदेशे महातलम् ।
पातालं कटिसंस्थं तु पादतो लक्षतेद्बुधः ।।५४

इस शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोमों की श्रेणी होती है । इसमें बत्तीस दाँत हुआ करते हैं । हे विनिता के पुत्र ! ये सामान्य रूप से सभी के शरीरों में इनकी संख्या बताई गई है ।।४७।। बीस इसमें नख होते हैं और मुख तथा मस्तक में होने वाले केश तीन लाख हुआ करते हैं । सामान्य तथा इस शरीर में एक सहस्र पल माँस हुआ करता है जो कि इसमें स्थित रहता है ।।४८।। एक सौ पल इस देह में रक्त होता है, ऐसा हे तार्क्ष्य ! पुरातन पुरुषों ने यह सब बताया है । दश पल इसमें मेद होता है और त्वचा भी मेद के ही समान हुआ करती है ।।४९।। बारह पल मज्जा होती है । महा रक्त तीन पल हुआ करता है । दो कुडव शुक्र होते हैं और शोणित एक कुडव होता है ।।५०।। श्लेषमा छै पल होता है और उसका आधा विट् और मूत्र होता है जो उसके प्रमाण से हुआ करता है । इस प्रकार का यह पिंड कहा गया है । अब इसका वैभव बतलाते हैं ।।५१।। इस समस्त ब्रह्माण्ड में जो भी गुण होते हैं वे सब इस मानव के शरीर में स्थित हुआ करते हैं । पाताल, भूधर, लोक द्वीप और सागर, आदित्य से आदि लेकर समस्त ग्रह इस पिंड के मध्य

में स्थित रहा करते हैं ।।५२।। पादों से नीचे तल जानना चाहिए और पैरों से ऊपर वितल, जानुओं से सुतल समझो तथा जाँघों में तलातल है ।।५३।। ऊरुओं में रसातल और गुह्य देश में महातल, कटि प्रदेश में स्थित पाताल है । इस प्रकार से बुध पुरुष को देखना चाहिए ।।५४।।

भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्द्धतः ।
स्वर्लोकं हृदये विन्द्यात्कण्ठदेशे महस्तथा ।।५५

जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके ।
सत्यलोकं महारन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ।।५६

त्रिकाणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः ।
दक्षिणे चैव कैलासो वामकोणे हिमाचलः ।।५७

निषधश्चोर्ध्वभागे तु दक्षिणे गन्धमादनः ।
रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः ।।५८
अस्थिस्थाने स्थितो जम्बुः शाकं मज्जासु संस्थितम् ।
कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरःस्थितः ।।५९

त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये ।
नखस्थं पुष्करद्वीपं सागरास्तदनन्तरम् ।।६०

नाभि के मध्य में भूर्लोक है । उसके ऊपर भुवर्लोक है । हृदय में स्वर्लोक है तथा कण्ठ देश में महर्लोक है ।।५५।। मुख प्रदेश में जनलोक है और ललाट में तपोलोक है । महारन्ध्र में सत्यलोक स्थित रहता है । इस तरह से इस देह में चौदह भुवन विद्यमान रहा करते हैं ।।५६।। त्रिकोण में मेरु और अधःकोण में मन्दर स्थित है । दक्षिण में कैलाश है तथा वाम कोण में हिमाचल महागिरि है ।।५७।। ऊर्ध्व भाग में निषध है और दक्षिण भाग में गन्धमादन है । वाम रेखा में रमणगिरि है । इस प्रकार से ये सातों कुल पर्वत इस देह में स्थित रहते हैं ।।५८।। अस्थियों के स्थान में जम्बु द्वीप होता है और मज्जाओं में शाक द्वीप है । मांस में कुश द्वीप है और शिर में क्रौञ्च द्वीप स्थित रहा करता है ।।५९।। त्वचा में शाल्मली द्वीप है तथा रोमों के सञ्चय में गोमेद है । नखों में

स्थित पुष्कर द्वीप है। इसके अनन्तर इस देह में सागरों की स्थिति बताई जाती है ॥६०॥

क्षीरोदश्च तथा मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः।
सुरोदधि श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः ॥६१
रसोदधि रसे विन्द्याच्छोणिते दधिसागरम्।
स्वादूदकश्च विट्स्थाने गर्भोदं शुक्रसंस्थितम् ॥६२
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्र तु चन्द्रमाः।
लोचनाभ्यां कुजो ज्ञेयो हृदये च बुधः स्मृतः ॥६३
विष्णुस्थाने गुरुं विन्द्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः ॥६४
नाभिस्थाने स्मृतो मन्दो मुखे राहुः स्मृतः सदा।
पादस्थाने स्मृतः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम् ॥६५
विभक्तश्च समाख्यातं आपादतलमस्तका।
उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियन्ते ते न संशयः ॥६६
बुभुक्षा च तृषा रौद्रादाद्योद्भूता च मूर्च्छना।
यत्र पीड़ास्त्विमा रौद्राः सर्पवृश्चिकदंशजाः ॥६७
तप्तवालुकमध्येन प्रज्वलद्वह्निमध्यतः।
केशग्राहैः समाक्रान्ता नीयन्ते यमकिङ्करैः ॥६८

मूत्र में क्षीरोद है और क्षीर में क्षीरोद सागर है। श्लेष्मा में स्थित सुरोदधि है तथा मज्जा में घृत सागर स्थित रहा करता है ॥६१॥ रस में रसोदधि और शोणित में दधि सागर जान लेना चाहिए। विट् स्थान में स्वादूदक एवं शुक्र में संस्थित गर्भोद है। इस तरह ये सब सागर इस शरीर में स्थित रहा करते हैं ॥६२॥ अब आदित्य आदि सब ग्रहों की स्थिति बताते हैं—नाद चक्र में सूर्य स्थित रहते हैं और विन्दु चक्र में चन्द्र ग्रह की स्थिति है। दोनों नेत्रों मङ्गल तथा हृदय में बुध स्थित रहा करता है ॥६३॥ विष्णु के स्थान में गुरु रहते हैं और शुक्र में शुक्र ग्रह की स्थिति रहती है ॥६४॥ नाभि के स्थान में शनि का निवास है तथा मुख में सदा राहु विराजमान रहा करता है। पैरों के स्थान में केतु ग्रह की स्थिति रहती है। इस प्रकार इस शरीर में ग्रह मण्डल

विराजमान रहता है। पाद तल से मस्तक पर्यन्त विभक्त इस शरीर का वर्णन किया गया है। जो इस संसार में उत्पन्न हुए हैं वे सभी अवश्य ही मृत्यु के ग्रास हुआ करते हैं ।।६५-६६।। भूख और प्यास आदि में होने वाली मूर्च्छना रौद्र से होती हैं। जहाँ ये पीड़ायें हैं वहाँ सर्प, बिच्छुओं के दंशन से उत्पन्न रौद्र हैं ।।६७।। तपी हुई बालू के मध्य में और जलती हुई आग के बीच में होकर यम के दूत चोटी पकड़ कर घेरे हुए वहाँ ले जाया करते हैं ।।६८।।

पापिष्ठास्त्वधमास्तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः ।
यमलोके वसन्त्येव कुट्यां जन्म च विद्यते ।।६९
एवं सञ्जायते तार्क्ष्य मर्त्ये जन्तुः स्वकर्मभिः ।
आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ।।७०
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ।।७१
अधोमुख चोर्ध्वपादं गर्भाद्वायु प्रकर्षति ।
जन्मतो वैष्णवी माया सम्मोहयति सत्वरम् ।।७२
स्वकर्मकृतसम्बन्धो जन्तुर्जन्म प्रपद्यते ।
सुकृतादुत्तमो भोगी भाग्यवान्सुकुले भवेत् ।।७३
यथा दुष्कृतकर्मा हि कुले हीने प्रजायते ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः पापकृद्दुःखभाजनः ।
उत्पत्तेर्लक्षणं जन्तोः कथितं ऋषिपुत्रक ।।७४

हे तार्क्ष्य ! जो बड़े भारी पापिष्ठ पुरुष होते हैं और महान् अधम होते हैं जिनके दया और धर्म नाम मात्र को भी नहीं हुआ करते हैं वे उस यमराज के लोक में निवास किया करते हैं और उनका जन्म कुटी में हुआ करता है ।।६९।। हे गरुड़ ! इस प्रकार से इस मनुष्य-लोक में यह जन्तु अपने ही किये हुए कर्मों के विपाक के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं। मनुष्य की आयु, उसका कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये कब-कितना और किस प्रकार के होंगे ?-इन सब पाँचों बातों को

जब यह जीवात्मा गर्भ में स्थित रहा करता है तभी सृजन हो जाता है ।।७०।। कर्म के अनुसार ही जन्तु का जन्म होता है और कर्मों के अनुरूप ही उसका लय अर्थात् मृत्यु हुआ करती है । सुख, दुःख, भय, क्षेम ये सभी कर्मों के अनुकूल ही हुआ करते हैं ।।७१।। नीचे की ओर मुख वाले तथा ऊपर की तरफ पैरों वाले इसको वायु गर्भाशय से खींचकर लाता है । जन्म होते ही यह वैष्णवी माया इसको बहुत ही शीघ्र सम्मोहित कर दिया करती है ।।७२।। अपने कर्मों के अनुसार सम्बन्ध वाला यह जन्तु जन्म ग्रहण किया करते हैं । यदि उसके कुछ सुकृत होते हैं तो वह उत्तम कुल में जन्म लेकर भोगों के भोगने वाला होता है और बड़ा भाग्यवान् हुआ करता है ।।७३।। यदि दुष्कृत से युक्त कर्म होते हैं तो वह हीन कुल में जन्म लेता है और सदा दरिद्र तथा व्याधियों से ग्रसित, महान् मूर्ख एवं पापों के करने वाला और पूर्ण दुःखों का पात्र हुआ करता है । हे ऋषि के पुत्र ! मैंने यह सब इस प्राणी की उत्पत्ति का लक्षण तुमको बता दिया है ।।७४।।

२३—यमलोक विवरण

यमलोकं कियन्मात्रं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
विस्तार तस्य मे ब्रूहि अध्वा चैव कियान्स्मृतः ।।१
कैः कैः पापैः कृतैर्देव केन वा शुभकर्मणा ।
गच्छन्ति मानवास्तत्र कथयस्व जनार्दन ।।२
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ।
यमलोकस्य चाध्वानं ह्यन्तरा मानुषस्य च ।।३
ध्मातताम्रमिवातप्तो ज्वलन्दुर्गो महापथः ।
तत्र गच्छन्ति पापिष्ठा मानवा मूढ़चेतसः ।।४
कण्टकास्तीक्ष्णकाश्चैव विविधा घोरदारुणाः ।
तत्तु वर्त्म क्षितिव्याप्तं हुताशश्च तथोल्वणः ।।५
वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः ।
गृहीतकालपाशैस्तु कृतैः कर्मभिरुल्वणैः ।।६

तस्मिन्मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान्प्रपोषयेत् ।
जलं न दृश्यते तत्र तृषा येन विलीयते ॥७

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! इस चर और अचर से युक्त त्रैलोक्य में यमलोक कितना विस्तृत है और उसका पूर्ण स्वरूप तथा विस्तार बतलाइये और यह भी बताने की कृपा करें कि उसका मार्ग कितना कहा गया है ? ॥१॥ हे जनार्दन देव ! किये हुए किन-किन पापों के द्वारा अथवा शुभ कर्मों से मनुष्य वहाँ जाया करते हैं यह भी वर्णन कीजिए । ॥२॥ श्री भगवान् बोले—इस मनुष्य लोक और यमलोक के बीच का अन्तर छयासी हजार योजन का है । इतना ही लम्बा यमपुरी का मार्ग होता है ॥३॥ धमाये हुए ताम्र के समान तप्त जलता हुआ दुर्ग कठिन वह महा पथ होता है । वहाँ पर उस महा मार्ग में अत्यन्त पापी मूढ़ वित्त वाले मानव जाया करते हैं ॥४॥ वे मार्ग ऐसे भीषण हैं कि उनमें बहुत तीक्ष्ण काँटे होते हैं और वे भी अनेक प्रकार के घोर एवं दारुण हुआ करते हैं । इन कण्टकों से उस मार्ग की भूमि व्याप्त रहती है तथा उसमें महान् उल्वण अग्नि रहा करती है ॥५॥ उस मार्ग में वृक्षों का बिल्कुल अभाव है वहाँ ऐसी कोई छाया नहीं है जहाँ पर मनुष्य विश्राम कर लेवे । किये हुए अत्यन्त तीव्र एव उल्वण कर्मों के द्वारा मनुष्य कालपाश से बंधे हुए रहा करते हैं ॥६॥ उस मार्ग में भोजन के योग्य अन्न आदि कुछ भी नहीं होता है जिसके द्वारा मनुष्य अपने प्राणों को पोषण कर सके । वहाँ उस महा विशाल मार्ग में कहीं भी जल दिखलाई नहीं देता है जिसे पान कर प्यास को शान्त किया जा सके ॥७॥

क्षुधया पीड़ितो याति तृषया च महापथि ।
शीतेन कम्पितः क्वापि यममार्गेऽतिदुर्गमे ॥८

यद्यस्य यादृशं पापं स पन्थास्तस्य तादृशः ।
सुदीनाः कृपणा मूढ़ा दुखैर्व्याप्तास्तरन्ति वै ॥९

रुदन्ति करुणं केचित्केचिद्रौद्रं वदन्ति वै ।
आत्मकर्मकृतैर्दोषैस्तप्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१०

ईदृग्विधः स वै पन्था विज्ञेयो दारुणः खग ।
वितृष्णा ते नरा लोके सुखं तस्मिन्व्रजन्ति ते ।।११
यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः ।
तानि तान्युपतिष्ठन्ति यमलोके पुरःसरम् ।।१२
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दत्ता श्राद्धजलाञ्जलिः ।
भ्रमन्ति वायुभूताश्च ये क्षुद्राः पापकर्मिणः ।।१३
ईदृशं वर्त्म वै रौद्रं कथितं तव सुव्रत ।
पुनश्च कथयिष्यामि यमलोकस्य या गतिः ।।१४

उस महापथ में मनुष्य क्षुधा और प्यास से पीड़ित होकर गमन किया करता है। कहीं पर इतना अधिक शीत उस मार्ग में होता है कि उसके कारण काँपने लगता है और उस दुर्गम यमपुरी की यात्रा करता रहता है ।।८।। वह महामार्ग सभी के लिये समान नहीं हुआ करता है। वह तो जिसका जैसा पाप होता है उस जन्तु के लिए उसी प्रकार का मार्ग हो जाया करता है। जो अत्यन्त दीन, कृपण और मूढ़ होते हैं वे दुःखों से व्याप्त होकर उसे पार किया करते हैं ।।९।। कुछ लोग मार्ग का असह्य वेदना से रुदन किया करते हैं—कुछ ऐसे लोग भी हैं जो रौद्र भाषण किया करते हैं और अपने किये हुए पाप कर्मों का स्मरण करके बार-बार सन्तप्त होते रहते हैं ।।१०।। हे खग ! वह मार्ग इस प्रकार का बहुत ही दारुण होता है। जो मनुष्य बिना तृष्णा वाले होते हैं वे उस मार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करते हैं ।।११।। इस भू-लोक में मनुष्यों के द्वारा जो-जो भी दान दिये जाते हैं वे-वे सब यमलोक में आगे ही मिला करते हैं। ।।१२।। दी हुई श्राद्ध की जलाञ्जलि पापियों को वहाँ नही उपस्थित हुआ करती है। जो क्षुद्र पाप कर्मों के करने वाले होते हैं वे वायुभूत होकर इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं ।।१३।। हे सुन्दर व्रत वाले ! यमलोक का मार्ग इस तरह का महान् रौद्र स्वरूप वाला होता है जिसका वर्णन हमने तुम्हारे सामने कर दिया है अब मैं फिर यमलोक की जो गति होती है उसे तुमको बतलाता हूँ ।।१४।।

यास्यनैर्ऋ तयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य च।
सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं यत्सुरासुरैः ॥१५
चतुरस्रं चतुर्द्वारं सप्तप्राकारतोरणम्।
स्वयं तिष्ठति तस्यान्तर्यमो दूतैः समन्वितः ॥१६
योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तु दृश्यते।
सर्वं रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥१७
तद् गृहं धर्मराजस्य विस्तीर्णं काञ्चनप्रभम्।
पञ्चविंशप्रमाणेन योजनानि समुच्छ्रितम् ॥१८
वृतं स्तम्भसहस्रैस्तु वैदूर्य्यमणिमण्डितम्।
मुक्ताजालं गवाक्षं तु पातकाशतभूषितम् ॥१९
घण्टाशतनिनादाढ्यं तोरणानां शतैर्वृतम्।
एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा ॥२०
तत्रस्थो भगवान्धर्म आसने नियमे शुभे।
दशयोजनविस्तीर्णे नीलजीमूतसन्निभे ॥२१

याम्य और नैर्ऋत्यु दिशाओं के मध्य में यमराज का पुर है । वह पूरा नगर वज्रमय, अत्यन्त दिव्य और सुर यथा असुरों के द्वारा भी भेदन न करने के योग्य है ॥१५॥ वह नगर चौकोर, चार द्वारों वाला और सात प्रकार और तोरणों से युक्त है । उस पुर में यमराज स्वयं भीतर अपने दूतों से समन्वित होकर रहा करते हैं ॥१६॥ वह यमराज का पुर एक सहस्र योजनों के प्रमाण वाला है और वह सब परम दिव्य रत्नों से पूर्ण है तथा विद्युत् की ज्वाला एवं सूर्य के वर्चस के सदृश देदीप्यमान है । ॥१७॥ वह धर्मराज का घर अति विस्तीर्ण तथा सुवर्ण की प्रभा के समान प्रभा वाला है पच्चीस योजन प्रमाण की उसकी ऊँचाई है ॥१८॥ सहस्रों स्तम्भों से युक्त एवं वेदूर्य मणियों से मण्डित है । उस नगर में मोतियों की लड़ियों के जाल लगे हुए हैं—सुन्दर गवाक्ष (झरोके) हैं और सैकड़ों पातकाओं से वह विभूषित है ॥१९॥ यमराज के नगर में सैकड़ों घण्टे लगे हुए हैं जिनकी "टन-टन" की घोर ध्वनि से सारा पुर निनादित रहा करता है । सैकड़ों तोरणों से वह युक्त है। एवमादि तथा अन्य विविध

भूषणों से वह सदा विभूषित रहता है ॥२०॥ वहाँ पर भगवान् धर्मराज अपने शुभ आसन पर स्थित नियमों में समास्थित रहते हैं। वह उनका आसन दश योजन विस्तार वाला और नील जीमूत (मेघ) तुल्य है ॥२१॥

धर्मज्ञो धर्मशीलश्च धर्मयुक्तहितो यमः।
भयदः पापयुक्तानां धर्मिणाञ्च सुखप्रदः ॥२२
मन्दमारुतसंयोगैर्विविधैरुत्सवैस्तथा।
व्याख्याभिर्बहुभिर्युक्तः शङ्खवादित्रनिस्वनैः ॥२३
पुरमध्ये प्रवेशे तु चित्रगुप्तस्य वै गृहम्।
पञ्चविंशतिसंख्यानां योजनानां प्रमाणतः ॥२४
दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम्।
प्रतोलीशतसञ्चारं पताकाशतशोभितम् ॥२५
दीपिकाशतसंकीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम्।
चित्रितं चित्रकुशलैश्चित्रगुप्तस्य व गृहम् ॥२६
मणिमुक्तामये दिव्ये आसने परमाद्भुते।
तत्रस्थो गणयत्यायुर्मानुषेष्वितरेषु च ॥२७
न मुह्यति कथञ्चित्सः सुकृते दुष्कृतेऽपि च।
जन्मनोपार्जितं यावत्सदसद्वेत्ति तस्य तत् ॥२८

धर्मराज धर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं और उनका स्वभाव भी धर्म से युक्त है। धर्मराज धर्म से युक्त हित वाले हैं। जो पाप कर्मों से युक्त प्राणी होते हैं उनको भय देने वाले और जो धर्म से युक्त जन्तु होते हैं उनको सुख प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥२२॥ मन्द वायु के संयोग से युक्त तथा अनेक तरह के उत्सवों से परिपूर्ण बहुत तरह की व्याख्याओं से सम्पन्न और शंख तथा बहुत से वादित्रों की ध्वनि से पूर्ण वह पुर होता है ॥२३॥ यमराज के पुर में प्रवेश करने में चित्रगुप्त का गृह आता है जो पच्चीस योजनों के प्रमाण वाला है ॥२४॥ चित्रगुप्त के गृह की ऊँचाई दश योजन है और यह महान् दिव्य है तथा लोह के प्रकार से वेष्टित है अर्थात् चारों ओर लोहे की दीवार बनी हुई है। इस गृह में एक सौ

प्रतीली (गली) हैं जिनमें सञ्चार होता है और सौ पताकाओं से शोभा युक्त है ॥२५॥ सैकड़ों दीपिकाओं से यह गृह सङ्कीर्ण हैं तथा चारों ओर इसमें गीतों की ध्वनि भरी रहा करती है बड़े कुशल चित्रकारों के द्वारा चित्रगुप्त का गृह चित्रित किया हुआ है ॥२६॥ उस गृह में एक अत्यन्त अद्भुत मणियों और मोतियों के द्वारा निर्मित परम दिव्य आसन है उस पर विराजमान चित्रगुप्त मनुष्यों तथा इतर प्राणियों की आयु की गणना किया करते हैं ॥२७॥ वह सुकृत और दुष्कृत में भी किसी समय में किसी भी प्रकार से मोह को प्राप्त नहीं होते हैं जन्मों में उपार्जित उसका कर्म सद् हो या असत् हो जितना भी होता है उस पर भली-भांति विचार किया करते हैं। जो कर्म अठारह दोषों से रहित होता है उसे यह लिख लेते हैं। चित्रगुप्त के घर से पूर्व दिशा में ज्वर का महान् गृह है ।२८-२९।

दशाष्टदोषरहितं कृतं कर्म लिखत्यसौ ।
चित्रगुप्तगृहात्प्राच्यां ज्वरस्यास्ति महागृहम् ॥२९
दक्षिणे चापि शूलस्य लूताविस्फोटकस्य च ।
पश्चिमे कालपाशस्य अजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥३०
मध्यपीठोत्तरे ज्ञेया तथा चान्या विसूचिका ।
ऐशान्यां वै शिरोऽर्त्तिः स्यादाग्नेय्यां चैव मूर्च्छना ॥३१
अतिसारस्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां दाहसंज्ञकः ।
एभिः परिवृतो नित्यं चित्रगुप्तः स तिष्ठति ।
यत्कर्म क्रियते यैश्च तत्सर्वं तु लिखत्यसौ ॥३२
धर्मराजगृहद्वारि दूतास्ताक्ष्र्य तथा दिशि ।
तिष्ठन्ति पापकर्माणः पीढ़यन्तो नराधमान् ॥३३
यमदूतैर्महापाशैस्ताडयमानाश्च मुद्गरैः ।
बध्यन्ते विविधैः पाशैः पूर्वकर्मकृतैर्नराः ॥३४
नानाप्रहरणैश्चैव नानायन्त्रै स्तथापरैः ।
पीड्यन्ते पापकर्माणः क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा ॥३५

चित्रगुप्त के गृह से दक्षिण में शूल और लूता विस्फोटक का तथा पश्चिम में कालपाश, अजीर्ण और अरुचि का गृह है ॥३०॥ मध्य पीठ

के उत्तर में विसूचिका की स्थिति जाननी चाहिए। ऐशानी दिशा में शिरो वेदना और आग्नेयी दिशा में मूर्च्छना स्थित है ॥३१॥ नैऋर्त्य दिशा में अतिसार और वायव्य उपदिशा में दाह संज्ञा वाली व्याधि रहा करती है। इस प्रकार से इन सब रोगों से नित्य ही परिवृत रहने वाले चित्रगुप्त वहाँ समास्थित होते हैं। जिन्होंने जो भी कर्म किया है या किया करते हैं उन सबको यह चित्रगुप्त लिखा करते हैं ॥३२॥ हे तार्क्ष्य ! धर्मराज के गृह के द्वार पर दिशाओं में दूत स्थित रहा करते है और जो अधम नर पाप कर्म करने वाले होते हैं उन्हें वे दूत बराबर पीड़ा दिया करते हैं ॥३३॥ मनुष्य अपने पहिले किए हुए कर्मों के कारण से उन दूतों के द्वारा अनेक प्रकार के पाशों से बाँध दिये जाया करते हैं तथा महापाशों से और मुद्गरों से वे अच्छी तरह ताड्यमान (पीटे हुए) हुआ करते हैं ॥३४॥ अनेक प्रहरणों से व दूसरे विविध यन्त्रों से और क्रकचों से पाप कर्म करने वाले प्रताड़ित एवं दो भागों में काष्ठ की भाँति कर दिये जाते हैं ॥३५॥

अन्ये च ज्वलमानैस्तु अङ्गारैः परितो भृशम् ।
पूर्वकर्मविपाकेन श्रायन्ते लोहपिण्डवत् ॥३६
क्षिप्ताश्चान्ये धरापृष्ठे कुठारेण च कर्त्तिताः ।
क्रन्दमानाश्च दृश्यन्ते पूर्वकर्मविपाकतः ॥३७
केचिन्निगढ़पाशैश्च तैलपाकैस्तथापरे ।
हन्यन्ते यमदूतैश्च पापिष्ठाः सुभृशं नराः ॥३८
ऋणानि प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहीति कोटिशः ।
यमलोके मया दृष्टाः स्वमांसं भक्षयन्ति हि ॥३९
इत्येवं बहवस्तार्क्ष्य नरकाः पापिनां स्मृताः ।
किमेभिर्विस्तरप्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः ।
दानोपकारं वक्ष्यामि यथा तत्र सुखं भवेत् ॥४०

अन्य पापी जलते हुए अङ्गारों से चारों ओर पूर्वकृत कर्मों के विपाक से लोहे के पिण्ड की भाँति अत्यन्त तपाये एवं सताये जाते हैं ॥३६॥ कुछ दूसरे पाप-कर्मी भूमि के ऊपर फेंके गये कुठार के द्वारा कर्त्तित (काटे हुए) किये जाते हैं और वे अपने पहिले कर्मों के विपाक से

रुदन करते हुए वहाँ दिखलाई देते हैं ॥३७॥ कुछ पापिष्ठ लोग निगड़ पाशों से बद्ध होते हैं और कुछ दूसरे लोग तैल में पाकों के द्वारा हनन किये जाते हैं। यम के दूत अधिक पापियों को इस प्रकार से बहुत ही ज्यादा ताड़ित करते हैं ॥३८॥ अन्य लोग "हमको कुछ दो—हमको कर्ज दे दो"—इस तरह कहकर करोड़ों की संख्या में ऋण की प्रार्थना किया करते हैं। यमलोक में मैंने स्वयं देखा है कि लोग वहाँ माँस का भक्षण किया करते हैं ॥३९॥ हे तार्क्ष्य ! इस तरह से पापियों को अपने किए हुए बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये बहुत से नरक बतलाये गये हैं। इन सबका बहुत अधिक विस्तार पूर्वक वर्णन करने से क्या प्रयोजन है ?क्योंकि ये सब तो सभी शास्त्रों में बताये गये हैं। अब हम दानोपकार के विषय में वर्णन करते हैं जिससे कि वहाँ पर प्राणियों को सुख प्राप्त हो सके ॥४०॥

२४—धर्माधर्म लक्षण

शृणु तार्क्ष्य यथान्यायं धर्माधर्मस्य लक्षणम् ।
सुकृतं दुष्कृतं नृणामग्रे धावति धावति ॥१

कृते तपः प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानसाधनम् ।
द्वापरे यज्ञदानञ्च दानमेकं कलौ युगे ॥२

गृहस्थानां स्मृतौ प्रोक्तान्धर्मानाल्पतां तथा ।
इष्टापूर्त्ते स्वया शक्त्या कुर्वतां नास्ति पातकम् ॥३

वृक्षास्तु रोपिता येन तड़गादि जलाशयाः ।
कृता येन हि मार्गेऽस्मिन्सुखं याति स मानवः ॥४

हिमे तुषारशीताभ्यां पीड्यते न यमालये ।
तप्यमानः सुखं याति इन्धनानि ददाति यः ॥५

तृप्ता विभूषिताश्चैव गन्धपुष्पसमन्विताः ।
भूमिदानैः सुखं यान्ति सर्वकामैश्च पूरिताः ॥६

सुवर्णमणिमुक्तादिवस्त्राण्याभरणानि च ।
तेन सर्वमिदं दत्तं येन दत्ता वसुन्धरा ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! अब तुम न्याय के अनुसार धर्म और अधर्म का लक्षण श्रवण करो । मनुष्यों का सुकृत और दुष्कृत आगे दौड़ लगाया करता है ॥१॥ पृथक् पृथक् युगों में पृथक्-पृथक् साधन हुआ करते हैं । कृतयुग में तपश्चर्या करने की प्रशंसा की जाती थी—त्रेता में ज्ञान ही कल्याण का साधन माना जाता था । द्वापर युग में यज्ञ—यागादि का करना तथा दान देना आत्म कल्याण का साधन होता था और कलियुग में केवल एक दान ही धर्म का साधन माना गया है ॥२॥ स्मृति में बताये हुए धर्मों का आलपन करने वाले गृहस्थों को अपनी शक्ति से इष्टापूर्ति करने वालों को कोई पातक नहीं होता है ॥३॥ जिसने वृक्ष आदि का आरोपण किया है, तड़ाग आदि जलाशयों का निर्माण कराया है । इसके पुण्य का यह फल होता है कि मनुष्य इस यमपुरी के महामार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करता है ॥४॥ जो ईंधन का दान किया करता है वह हिम में तुषार और शीत से यमालय में कभी पीड़ित नहीं होता है,वह तपता हुआ उस शीतकाल में भी बहुत ही सुख पूर्वक जाया करता है ॥५॥ भूमि के दान के द्वारा अति तृप्त एवं गन्ध तथा पुष्पों से संयुत होते हुए परम समलंकृत होकर समस्त कामनाओं से परिपूर्ण हो सुख के साथ गमन किया करते हैं ॥६॥ भूमि के दान का बहुत अधिक महत्त्व होता है । जिसने इस वसुन्धरा(पृथ्वी)का दान दिया है उसने सोना,मणि, मोती आदि सब प्रकार के रत्न तथा वस्त्र और आभरण इन सभी का दान कर दिया है ॥७॥

यानि यानि च दानानि कृतानि भुवि मानवैः ।
यमलोकपथे तानि तिष्ठन्त्यग्रे समीपतः ॥८
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
विधिना ददते पुत्रैः पित्रे तदुपतिष्ठति ॥९
आत्मा वै पुत्रनामा हि पुत्रस्त्राता यमालये ।
नरकात्पितरं त्रायेत्तेन पुत्र इति स्मृतः ॥१०
अतो देयञ्च पुत्रेण श्राद्धमाजीवितावधि ।
अतिवाहस्तदा प्रेतो भोगांश्च लभते हि सः ॥११

दह्यमानस्य प्रेतस्य स्वजनैर्यैर्जलाञ्जलिः ।
दीयते प्रीतरूपोऽसौ प्रेतो याति यमालयम् ॥१२
आपक्वे मृण्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम् ।
काष्ठत्रयं गुणैर्बद्ध्वा प्रेतप्रीत्यै चतुष्पथे ॥१३
प्रथमेऽह्नि द्वितीये च तृतीये च तथा खग ।
आकाशस्थः पिबेद्दुग्धं प्रेतो वायुबपुर्धरः ॥१४

इस भू-मण्डल में मनुष्यों के द्वारा जो जो भी दान किये जाते हैं वे सभी यमलोक के उस महा मार्ग में पहिले से ही पहुंच कर समीप में उपस्थित हो जाया करते हैं ॥८॥ विविध भाँति के अद्भुत व्यञ्जन तथा भक्षण करने के योग्य पदार्थ और भोज्य वस्तुऐं जो भी पुत्रों के द्वारा पिता के हितार्थ विधि पूर्वक दान किये जाते हैं वे भी सब यहाँ समुपस्थित हुआ करते हैं ॥९॥ आत्मा ही पुत्र के नाम वाला होता है अर्थात् स्वयं ही पुत्र के स्वरूप में हुआ करता है। पुत्र जो भी दानादिक करता है वह भी मानों स्वयं ही किया करता है। अतएव यमालय में पुत्र त्राण करने वाला होता है। पु नाम नरक का है उससे जो त्राण किया करता है इसी से 'पुत्र'— यह नाम कहा गया है ॥१०॥ इसी लिये पुत्र के द्वारा जब तक वह जीवित रहे पिता के निमित्त में श्राद्ध देना चाहिए। अतिवाह वह प्रेत उस समय में भोगों का लाभ किया करता है ॥११॥ दाह किये गये प्रेत के अपने जनों के द्वारा जो जल की अञ्जलि दी जाती है वह प्रेत परम प्रसन्न होता हुआ उससे यमालय को गमन किया करता है ॥१२॥ बिना पकाये गये मिट्टी के पात्र में तीन दिन तक दूध देना चाहिए और तीन काष्ठों डोरी से बाँधकर प्रेत की प्रीति के लिये चौराहे पर रख कर उस पर वह दुग्ध पात्र रखना चाहिए। प्रथम-द्वितीय और तीसरे दिन में उसे इसी प्रकार से रख देवे। हे खग ! आकाश में स्थित वायु के शरीर को धारण करने वाला वह प्रेत उस दूध का पान किया करता है और प्रसन्न होता है ॥१३-१४॥

चतुर्थे सञ्चयः कार्य्यः सर्वैस्तु सह गोत्रजैः ।
ततः सञ्चयनादूर्ध्वं गङ्गास्पर्शो विधीयते ॥१५

द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे वापि साग्निकैः ।
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दद्याज्जलाञ्जलिं ततः ॥१६
न पूर्वाह्णे न मध्याह्ने नापराह्णे च सन्धिषु ।
प्रातः प्रथमयामेषु दद्यादाद्यजलाञ्जलिम् ॥१७
पुत्रेण दत्तैस्तैः स्वैर्गोत्रजैः सह बान्धवैः ।
स्वजात्यैः परजात्यैश्च देय आद्यजलाञ्जलिः ॥१८
गन्तव्यं नैव विप्रेण दातुं शूद्रे जलाञ्जलिम् ।
निवृत्ताश्च यदा तीराल्लोकाचारस्ततो भवेत् ॥१९
पञ्चत्वञ्च गते शूद्रे यः काष्टं नयते चिताम् ।
अनुव्रजेत्तथा विप्रास्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२०
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२१

चौथे दिन में सबके द्वारा जिनमें गोत्र में उत्पन्न होने वाले भी सब सम्मिलित हो सञ्चय करना चाहिए, अर्थात् अस्थियों का सञ्चय करें और फिर गङ्गा का स्पर्श किया जाता है। अर्थात् गङ्गा में उनका प्रवाह किया जाता है ॥१५॥ दूसरे-तीसरे और चौथे दिन में भी साग्निकों के द्वारा अस्थि—सञ्चयन से ऊपर फिर जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥१६॥ पूर्वाह्न में–मध्याह्न में–अपराह्न में और सन्धिकालों में नहीं देवे वल्कि प्रातःकाल के प्रथम प्रहरों में ही जलाञ्जलि दे देनी चाहिए ॥१७॥ आद्य जलाञ्जलि पुत्र के द्वारा ही देनी चाहिए। इसके अनन्तर उन सबके द्वारा जो गोत्रज हों–बान्धव हों और अपनी जाति के हों तथा पर जाति के हों जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥१८॥ शूद्र को जलांजलि देने के लिये विप्र को कभी नहीं जाना चाहिए। जब तीर से निवृत्त होते हैं तो इसके अनन्तर लोकाचार हुआ करता है ॥१९॥ किसी शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति के पञ्चत्त्व प्राप्त हो जाने पर अर्थात् मर जाने पर जो चिता के लिये काष्ठ ले जाता है तथा विप्र उसके पीछे-पीछे जाता है तो यह तीन रात्रि तक अशुचि हो जाया करता है ॥२०॥ तीन रात्रियों के पूर्ण हो जाने पर समुद्र गामिनी नदी में

जाकर एक सौ बार प्राणायाम करे और घृत का प्राशन करे तब वह विशुद्ध हुआ करता है ।।२१।।

शूद्रो गच्छति सर्वेषु वैश्यस्त्रिषु द्वयेऽपरः ।
गच्छति स्वेषु वर्णेषु विप्रो दातुं जलाञ्जलिम् ।।२२
अधरोत्तरवस्त्राभ्यां वस्त्रग्रन्थिञ्च दापयेत् ।
एकवस्त्रः प्रदद्यात्तु सदर्भञ्च तिलाञ्जलिम् ।।२३
यदा दातुञ्च गच्छन्ति दन्तधावनपूर्वकम् ।
त्यजन्ति गोत्रजाः सर्वे दिनानि नव काश्यप ।।२४
जलाञ्जलिं यदा दातुं गच्छति द्विजसत्तम ।
यस्मिन्स्थाने मिलेद्यस्तु अध्वन्यपि गृहेऽपि वा ।।२५
विश्लेषस्तु ततः स्थानादादाहाद्विहितो बुधैः ।
स्त्रीजनश्चाग्रतो गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः ।।२६
तत आचमनं कार्य्यं पाषाणोपरि संस्थितैः ।
यावांश्च सर्षपान्दूर्वां पूर्णपात्रे विलोकयेत् ।।२७
प्राशयेन्निम्बपत्राणि स्नेहस्नानं समाचरेत् ।
गोत्रजेन च कर्त्तव्यं गृहान्नं नैव भोजयेत् ।।२८

शूद्र सभी वर्णों में जाता है—वैश्य तीन वर्णों में जाया करता है—क्षत्रिय दो में और विप्र अपने ही वर्णों में जलांजलि देने को जाया करता है ।।२२।। अधो वस्त्र और उपरि वस्त्रों से वस्त्र की ग्रन्थि दिलावे । एक ही वस्त्र वाला दर्भों के सहित तिलांजलि देवे ।।२३।। जिस समय में जलांजलि देने के लिये जावें तो दाँतुन आदि करके ही जाना चाहिए । हे काश्यप ! गोत्रज सब नौ दिन को त्याग दिया करते हैं ।।२४।। द्विज श्रेष्ठ जिस समय में जलांजलि देने के लिये जाता है तो जिस स्थान में जो भी मिले—मार्ग में और गृह में भी उस स्थान से दाह से लेकर बुध जनों के द्वारा विश्लेष बताया गया है । स्त्री जनों को आगे अर्थात् पहिले जाना चाहिए और उनके पृष्ठ (पीछे) में पुरुषों के समुदाय को जाना चाहिए ।।२५-२६।। फिर पाषाण के ऊपर संस्थित होते हुए पहुंचने वालों को आचमन करना चाहिए ।

और जितनी भी सर्षय हों उन्हें तथा दूर्वा (दूभ) को पूर्ण पात्र में विलोकन करें ।।२७।। नीम के पत्र सबको खाने चाहिए फिर स्नेह स्नान करे। इसके पश्चात् किसी गोत्रज के द्वारा खाने की व्यवस्था करनी चाहिए। उस दिन घर का अन्न नहीं खाना चाहिए ।।२८।।

भुञ्जीत मृण्मये पात्रे उत्तानञ्च विवर्जयेत् ।
मृतकस्य गुणा ग्राह्या यमगार्था समुद्गिरेत् ।।२९
शुभाशुभौ च ध्यायन्तः पूर्वकर्मोपसञ्चितौ ।
अलब्धेन च देहेन भुङ्क्ते सुकृतदुष्कृते ।।३०
वायुरूपो भ्रमत्येव वायुः कुटयां स गच्छति ।
दशाहे कर्म क्रियते जायते तेन सा कुटी ।।३१
क्षुधाविभ्रममापन्नो दशाहे यो न तर्पितः ।
पिण्डैस्तस्य तदाऽन्नञ्च आकाशे भ्रमते तु सः ।।३२
दिनत्रयं वसेत्तोये अग्नौ चापि दिनत्रयम् ।
आकाशे च वसेत्त्रीणि दिननेकञ्च वासवे ।।३३
गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवालये तथा ।
यत्रादौ दीयते पिण्डस्तत्र सर्वान्समापयेत् ।।३४
एकादशाहे यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् ।
चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धये स्नानमिष्यते ।।३५

मिट्टी के बरतन में ही भोजन करे और उत्तान का विशेष रूप से वर्जन कर देवे। उत्तान थाह जल को कहते हैं। जो पुरुष मृत्युगत हुआ है उसके गुणों को ग्रहण करे अर्थात् गुणों का बखान करना चाहिए। तथा यमराज की गाथा को कहना चाहिए ।।२९।। मृतात्मा के पूर्व कर्मों के द्वारा उप सञ्चित किये गये शुभ और अशुभ का ध्यान करे। अप्राप्त देह के द्वारा अपने शुकृत तया दुष्कृतों का भोग किया करता है ।।२९।। मृत प्राणी वायु स्वरूप होकर भ्रमण किया करता है और वह वायु कुटी में जाती है। दशवें दिन में जो दश गात्र का कर्म किया जाता है उससे वह कुटी उत्पन्न हुआ करती है ।।३१।। क्षुधा के विभ्रम को प्राप्त होने

वाला दशवें दिन में जो तृप्त नहीं किया जाता है उस समय वह उसके पिण्डों के साथ और वह अन्न आकाश में भ्रमण किया करता है ।।३२।। तीन दिन तक जल में निवास करता है, फिर अग्नि में तीन दिन रहता है। आकाश में तीन दिन पर्यन्त वास करता है और एक किन वासव में रहता है ।।३३।। घर के द्वार पर—श्मशान में—तीर्थ में और देवालय में जहाँ भी आदि में पिण्ड दिया जाता है वहाँ वह सब को समापित किया करता है ।।३४।। ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध किया जाता है वह सामान्य बताया गया है। चारों वर्णों की शुद्धि के लिये स्नान करना ही अभीष्ट होता है ।।३५।।

कृत्वा चैकादशाहं तु पुनः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ।
न भवेच्च यदा गोत्री परोऽपि विधिमाचरेत् ।।३६
स्त्री वापि पुरुषः कश्चिदिष्टये कुरुते क्रियाम् ।
श्राद्धं कृतं तु यैर्वस्त्रैस्तानि त्यक्त्वा गृहं विशेत् ।।३७
अगोत्रश्च सगोत्रो वा नरो नार्य्यप्यथापि च ।
प्रथमेऽहनि यः कुर्य्यात् स दशाहं समापयेत् ।।३८
अशौचं यावदेव स्यात्तावत्पिण्डोदकक्रिया ।
चतुर्णामपि वर्णानामेष एव विधिः स्मृतः ।।३९
एकादशाहे प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम् ।
सिद्धान्नं तस्य दातव्यं शर्करापूपकादयः ।।४०
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा ।
त्रिपक्षं सञ्चयञ्चैव द्वे रिक्ते खग षोडश ।।४१
मासः प्रति प्रदातव्यं मृताहे या तिथिः स्मृता ।
स मासः प्रथमो ज्ञेय अहरेकादशं तु यः ।।४२

एकादशाह करके स्नान करे तो शुद्ध होता है। कोई गोत्र वाला न हो तो पर को भी यह सब विधि करनी चाहिए। स्त्री हो या पुरुष, वह इष्टि के लिये अर्थात् कल्याण के लिये क्रिया को करता है। जिन वस्त्रों को धारण कर श्राद्ध किया है उनका त्याग करके ही घर में प्रवेश करे ।३६-३७। बिना गोत्र का हो या सगोत्र, स्त्री हो या पुरुष, प्रथम दिन में जो

कर्म का आरम्भ करे उसी को दशाह कर्म समाप्त करना चाहिऐ ॥३८॥ जब तक पिण्डादक क्रिया चलती है तभी तक आशौच भी रहता है। चारों वर्णों की यही एक विधि बताई गई है ॥३९॥ ग्यारहवें दिन में प्रेत के लिये जो पिण्ड देवे वह मन्त्रों के सहित ही देने चाहिये। उसको शर्करा अपूय आदि सिद्धान्न ही देना चाहिये ॥४०॥ बारह प्रति मास में होने वाले श्राद्ध तथा एकादश–तीन पक्ष वाला–सञ्चय और दो रिक्त– इस तरह हे खग ! कुल सोलह श्राद्ध होते हैं ॥४१॥ मृत्यु होने की जो तिथि होती है उस में प्रति मास में श्राद्ध देना चाहिए। जो एकादश दिन है वह प्रथम मास जानना चाहिये ॥४२॥

सा तिथिर्मासिके श्राद्धे मृतो यस्मिन्दिने नरः।
रिक्तासु च त्रिपक्षे च तां तिथिं नाचरेद्बुधः ॥४३
पूर्णमास्यां मृतो योऽसौ चतुर्थी तस्य ऊनका।
चतुर्थ्याञ्च मृतो योऽसौ तिथिरूना चतुर्दशी ॥४४
नवम्याञ्च मृतो योऽसौ तिथिरूना चतुर्दशी।
एता रिक्ताश्च विज्ञेया अन्त्येष्टौ कुशलेन च ॥४५
एकादशाहोद्धरितं प्रेतोद्देशेन पाचितम्।
चतुष्पथे त्यजेदन्नं पुनः स्नानं समाचरेत् ॥
शय्यादानं प्रशसन्ति सर्वे देवा द्विजोत्तम।
अनित्यं जीवितं यस्मात्पश्चात्कोऽनु प्रदास्यति ॥४७
तावद्बन्धुः पिता तावद्यावज्जीवति मानवः।
मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्त्तते ॥४८
आत्मा वै ह्यात्मनो बन्धुरात्मा चैवात्मनो रिपुः।
जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य पूर्वं धममनुस्मरेत् ॥४९

मासिक श्राद्ध में वही तिथि ले, जिस दिन मनुष्य की मृत्यु हुई है। रिक्ताओं में और त्रिपक्ष में बुध उस तिथि का आचरण नहीं करे ॥४३॥ पूर्णमासी में जिसकी मृत्यु हुई है उसकी चतुर्थी तिथि ऊनका होती है और जो चतुर्थी तिथि में मृत्यु गत हुआ है उसकी चतु-

दशी तिथि ऊनका होती है। और नवमी में जो मृत हुआ है उसकी भी चतुर्दशी तिथि ऊनका होती है। यह रिक्ता जाननी चाहिए। कुशल पुरुष के द्वारा अन्त्येष्टि कर्म में इनका विचार आवश्यक है ।।४४-४५।। एकादशाह में जो उद्धरित हो और प्रेत के उद्देश्य से पाक किया गया हो उस अन्न को चौराहे पर त्याग देवे और फिर स्नान करना चाहिए ।।४६।। हे द्विजोत्तम ! समस्त देवगण शय्या के दान की प्रशंसा किया करते हैं। यह जीवित तो अनित्य है फिर पीछे कौन देगा ? समस्त बन्धु गण और पिता आदि तभी तक हैं जब तक मनुष्य जीवित रहा करता है। मरने के पश्चात् मृतों के अन्तर को जान कर एक ही क्षण में सारा स्नेह निवृत्त हो जाया करता है मृत पुरुष इतनी दूर कहों का कहीं हो जाता है कि फिर उससे भेंट ही नहीं हो सकती है-यह अन्तर समझ कर फिर गहरा स्नेह भी एक दम जरा सी देर में श्वास निकलने के साथ समाप्त हो जाया करता है। ।।४७-४८।। अपनी मदद करने वाला अपना ही आत्मा होता है अर्थात् अपना कल्याण स्वयं अपने ही द्वारा किया जा सकता है। अपनी आत्मा का अधः पतन भी हम अपने ही द्वारा असत्कर्म करके किया करते हैं अतएव अपने हम आप ही रिपु बन जाते हैं। अतएव जीवित रहते हुए ही पुष्पों का सञ्चय करना चाहिए—यही सोच विचार कर धर्म का स्मरण करे ।।४९।।

मृतानां कः सुतो यच्चेच्छुभशय्यां सूतलिकाम् ।
एवं जीवति सर्वस्वं स्वहस्तेनैव दापयेत् ।।५०
तस्ताच्छय्यां समासाद्य सरदारुमयीं शुभाम् ।
दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टै रलंकृताम् ।।५१
रक्ततूलिप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानकाम् ।
प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासिताम् ।।५२
तस्यां संस्थाप्य हैमञ्च हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ।
घृतपूर्णञ्च कलशं तत्रैव परिकल्पयेत् ।।५३
ताम्बूलं कुंकुमाक्षोदं कर्पूरागुरुचन्दनम् ।
दीपकोपानहौ छत्रं चामरासनभाजनम् ।।५४

पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ।
शयनस्थञ्च भवति यच्च स्यादुपकारकम् ।।५५
भृङ्गारकादर्शपञ्चवर्णवितानिशोभितम् ।
शय्यामेवविधां कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।५६
सपत्नीकाय सम्पूज्य स्वर्लोकसुखदायिनी ।
वस्त्रैः सुशोभनैः पूज्य चोलकं परिधापयेत् ।।५७

मृत पुरुषों के निमित्त कौन सा ऐसा सत्पुत्र है जो तूलिकाओं से युक्त बहुत अच्छी शय्या का दान किया करता है ? तात्पर्य अच्छी शय्या का दान विरला ही कोई सपूत किया करता है अन्यथा खाना पूरी मात्र सब करते हैं। इस प्रकार से जीवित दिशा में ही सर्वस्व का दान अपने ही हाथ से सविधि अच्छी तरह से कर लेना चाहिए ।।५०।। अतएव साल की लकड़ी की बनी हुई बहुत ही अच्छी शय्या बनवा कर जोकि दन्त पत्रों से चित हो—परम सुन्दर हो और सोने के पट्टों से स्वलंकृत हो तथा रक्त तूलि से प्रतिच्छिन्न की हुई और बहुत अच्छे तकिये वाली ढाँपने के वस्त्र से युक्त करावे और उसे गन्ध धूप से अधिवासित करावे । उस पर सुवर्ण की निर्मित श्री हरि की तथा लक्ष्मी को प्रतिमा को विराजमान करे । वहाँ पर ही एक घृत से भरा हुआ कलश भी परि कल्पित करे ।।५१-५२-५३।। ताम्बूल—कुंकुमा क्षोद—कर्पूर—अगुरु—चन्दन—दीपक—उहानह—छत्र (छाता)—चमर—आसन भाजन (पात्र) आदि समस्त साहित्य—सामग्री उस शय्या के पास में स्थापित करे तथा पूर्ण भक्ति भाव के साथ सातों धान्य भी वहाँ पर स्थित करने चाहिए। ये सब शय्या पर शयन करने वाले के उपकारक पदार्थ होंगे ।।५४-५५।। भृङ्गारक (झारी)—आदर्श (शीशा) और पाँचों वर्णों से युक्त वितान से उसे शोभित करावे इस प्रकार की शय्या को सुसम्पन्न कराके फिर ब्राह्मण के लिये दान में देवे ।।५६।। ब्राह्मण को उसकी पत्नी के सहित समाहूत कर उसका भली-भाँति पूजन करे। इस तरह करने से यह शय्या स्वर्ग लोक में सुख प्रदान करने वाली होती है। ब्राह्मण की पूजा परम सुन्दर वस्त्र आदि से करे और चोलक उसे धारण करावे ।।५७।।

ततोऽर्घ्यश्च प्रदातव्यः पञ्चरत्नजलाक्षतैः ।
यथा कृष्ण त्वदीया हि अशून्या क्षीरसागरे ।।५८
शय्या भूयान्ममापीयं तथा जन्मनि जन्मनि ।
एवं तल्प तथा कृष्णं क्षमाप्य च विसर्जयेत् ।।५९
एकादशाहे सम्प्राप्ते विधिरेषः प्रकीर्त्तितः ।
ददाति यदि धर्मार्थे बान्धवो बान्धले मृते ।।६०
तैस्तैराप्यायितः प्रेतः परलोके सुखी भवेत् ।
विशेषमत्र पक्षीन्द्र कथ्यमानं मया श्रृणु ।।६१
उपयुक्तं तु तस्यासीद्यत्किञ्चिद्धि गृहे पुरा ।
तस्या गात्रे च यल्लग्नं वस्त्रं भाजनवाहनम् ।।६२
अभीष्टं यच्च तस्यासीत् तत्सर्वं परिकल्पयेत् ।
पुरन्दरपुरे चैव सूर्य्यपुत्रालये तथा ।।६३
उपतिष्ठेत्सुखं जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ।
पीड़यन्ती न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ।।६४

फिर अर्घ्य दे जोकि पाँचों प्रकार के रत्न, जल और अक्षतों से युक्त हो। इसके अनन्तर निवेदन करे, हे कृष्ण। जिस प्रकार से क्षीर सागर में आपकी शय्या अशून्य रहती है वैसे ही यह मेरी शय्या भी जन्म-जन्मान्तरों में होवे, इस प्रकार से तल्प और श्री कृष्ण से क्षमा याचना करके फिर उसे विसर्जित करे। ।।५८-५९।। एकादशाह के प्राप्त होने पर यह विधि बताई गई है यदि कोई बन्धु अपने बान्धव के मृत हो जाने पर धर्मार्थ ऐसा दान किया करता है ।।६०।। उन-उन दानों से परम आप्यायित (तृप्त) प्रेत परलोक में सुखी हुआ करता है। हे पक्षीन्द्र! इसमें जो विशेष तत्त्व की बात है उसे मैं कहता हूं तुम उसका श्रवण करो ।।६१।। उस मृत पुरुष के जो कुछ भी पदार्थ पहिले घर में उपयोग में होने वाले हों और उसके गात्र से जो भी संलग्न हुए हों जैसे कोई वस्त्र, भाजन और वाहन आदि होते हैं। उस मृत पुरुष को जो भी कुछ प्रिय और अभीष्ट हो उस सबको परिकल्पित कर देना चाहिए अर्थात् दान में दे देवे। इससे इन्द्रदेव की पुरी में तथा यमराज के नगर में वह जन्तु शय्या

के दान के प्रभाव से सुख पूर्वक रहा करता है। वहाँ पर यमराज के महा भीषण दूत उसको पीड़ित नहीं किया करते हैं ।।६२-६४।।

न घर्मेण न शीतेन बाध्यते सः नरः क्वचित् ।
शय्यादानप्रभावेण प्रेतो मुच्येत बन्धनात् ।।६५
अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोके स गच्छति ।
विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।।६६
आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठेत्पातकवर्जितः ।
नवकं षोडशश्राद्धं शय्या संवत्सरक्रियाम् ।।६७
भर्तुर्या कुरुते नारी तस्याः श्रेयो भवेदिह ।
उपकाराय सा भर्त्तुर्जीवन्ती च मृता तथा ।।६८
उद्धरेज्जीवमाना सा पतिं सत्यवती सती ।
स्त्रियोदद्याच्च शयने पुत्रो वापि गुणान्वितः ।।६९
प्रेतस्य प्रतिमां हैमीं कुंकुमञ्चैवमञ्जनम् ।
वस्त्रं भूषां तथा शय्यामेवं कृत्वा च दापयेत् ।।७०
उपकारकरं स्त्रीणां यद्भवेदिह किञ्चन ।
भूषणं तत्र संलग्न वस्त्रभोगादिकश्च यत् ।।७१
तत्सर्वं मेलयित्वा तु स्वे स्वे स्थाने निधापयेत् ।
पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहदेवान्विनायकम् ।।७२

इस दान के प्रभाव से वहां प्राणी घाम और शीत से कभी भी बाधित नहीं होता है। शय्या के दान का ऐसा विशेष प्रभाव होता है कि वह प्रेत बन्धन से मुक्त हो जाया करता है ।।६५।। चाहे पापों से भी युक्त क्यों न हो किन्तु इस दान का ऐसा प्रभाव होता है कि यह स्वर्गलोक में गमन किया करता है। विमानों में अति श्रेष्ठ विमान पर समारूढ़ होता है और अप्सराऐं उसकी सेवा करती हैं ।।६६।। जब तक भूत संप्लव (प्रलय काल) होता है तब तक वह समस्त पातकों से रहित होकर वहाँ समास्थित रहा करता है। जो नारी अपने स्वामी के लिये नवक, षोड़श श्राद्ध शय्या दान और सम्वत्सर की समस्त क्रिया किया करती है उस नारी का इस लोक में भी परम श्रेय हुआ करता है। वह नारी जीवित

रहती हुई अथवा मृत अपने स्वामी के उपकार के लिये ही होती है ।।६७-६८।। वह नारी जीवित रहती हुई परम सत्य वाली और सती होने के कारण अपने पति का उद्धार किया करती है । स्त्री को शय्या का दान करना चाहिए अथवा गुणों से युक्त पुत्र हो तो उसे शय्या का दान करना चाहिए ।।६९।। प्रेत की सुवर्ण की प्रतिमा निर्मित करा कर उसे कुंकुम अञ्जन, वस्त्र, भूषण इन सबसे संयुत करके शय्या का दान दिलाना चाहिए ।।७०।। यहाँ पर जो भी कुछ स्त्रियों के उपकार करने वाला होवे वह भूषण उसमें संलग्न करे और जो वस्त्र आदि भोग के योग्य पदार्थ हों वह सब मिला कर अपने-अपने स्थान पर रक्खे और सब लोकपालों को, ग्रहों को, देवगणों को तथा गणेश को पूजित करे ।।७१-७२।।

ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतो बुधः ।।७३
प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता ।
सर्वरत्न समायुक्ता तव विप्र निवेदिता ।।७४
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह ।
तस्माच्छय्या प्रदातव्या एष आत्मा प्रसीदतु ।।७५
आचार्य्याय प्रदातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
गृहीत्वा ब्राह्मणः शय्यां कोऽदादिति च कीर्त्तयेत् ।।७६
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।
विभक्तदक्षिणा ह्येते दातारं पातयन्ति ते ।।७७

फिर शुक्ल वर्ण के वस्त्र धारण कर, स्नान कर, पुष्पों की अञ्जलि ग्रहण करके बुध विप्र के सामने निम्न मन्त्र को उच्चारण करे ।।७३।। यह प्रेत की प्रतिमा सम्पूर्ण उपकरणों से युक्त और समस्त रत्नों से समन्वित है । इसे हे विप्रदेव ! आपकी सेवा में समर्पित किया है ।।७४।। आत्मा शम्भु, शिवा, गौरी और सुर समुदाय सहित इन्द्र इसलिये यह शय्या दी जाती है कि यह आत्मा प्रसन्न हो ।।७५।। कुटुम्ब वाले आचार्य ब्राह्मण के लिये शय्या दान करे । ब्राह्मण शय्या का दान ग्रहण करके किसने

यह शय्या दी है—इसका कीर्त्तन करे। गौ, गृह, शयन और स्त्री ये वस्तुएं बहुतों को नहीं देनी चाहिए। विभक्त दक्षिणा वाले ये सब दान देने वाले का अधःपतन कराया करते हैं। इसका तात्पर्य यह होता है कि उपर्युक्त वस्तुओं का दान किसी एक ही सुयोग्य सत्पात्र के लिये करना चाहिये ॥७६-७७॥

एव यो वितरेत्ताक्ष्र्य शृणु तस्य च यत्फलम् ।
साग्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके महीयते ॥७८
यत्पुण्यञ्च व्यतीपाते कार्त्तिक्यामयने तथा ।
द्वारकायाञ्च यत्पुण्यञ्चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥७९
प्रयागे नैमिषे यच्च कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे ।
गङ्गायां यमुनायाञ्च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥८०
शय्यादानप्रभावेण तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
यत्रासौ जायते जन्तुर्भुङ्क्ते तत्रैव तत्फलम् ॥८१
कर्मक्षये क्षितौ जातो मानुषः शुभदर्शनः ।
महाधनो च धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥८२
पुनः स याति वैकुण्ठं मृतोऽसौ नरपुङ्गवः ।
दिव्यविमानमारुह्य अप्सरोभिः समावृतः ।
अर्होऽसौ हव्यकव्येषु पितृभिः सह मोदते ॥८३

हे ताक्ष्र्य ! इस रीति से जो वितरण किया करता है उसके करने से जो फल होता है उसका तुम श्रवण करो। वह आगे आने वाले दिव्य सौ वर्ष तक स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होकर सुखोपभोग करती है ॥७८॥ जो पुण्य व्यतीपात में, कार्त्तिकी पूर्णिमा में, अयन में, द्वारका में होता है तथा जो पुण्य चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय में होता है ॥७९॥ प्रयाग में, नैमिष क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, अर्बुद में, गङ्गा में, यमुना में और सिन्धु तथा सागर के संगम में जो पुण्य होता है वही पुण्य शय्या के दान के प्रभाव से प्राप्त हुआ करता है। जहां यह जन्तु उत्पन्न होता है वहां पर ही उसका फल भी भोगा करता है ॥८०-८१॥ कर्मों के क्षय हो जाने पर यह शुभ दर्शन मानव भूमि पर उत्पन्न होता है। जब यह इस

भूमि पर जन्म लेकर आता है तो बहुत बड़ा धनी, धर्म का पूर्ण ज्ञाता और सब शास्त्रों का महान् पण्डित होता है। जब यह मनुष्यों में परम श्रेष्ठ पुरुष, यहाँ मनुष्य जीवन के सुखों का उपभोग करके पुनः मृत होकर बैकुण्ठ को जाता है तो एक दिव्य पर समारूढ़ होकर अनेक अप्सराओं के द्वारा समावृत होकर जाया करता है। यह फिर हव्य और कव्यों में योग्यता प्राप्त करने वाला होकर पितृगण के साथ मोद प्राप्त किया करता है ॥८२-८३॥

२५—श्राद्ध विधान वर्णन

अपरं मम सन्देहं कथयस्व जनार्दन ।
पुरुषस्य च दृष्ट्वा वै मातर मृतिमागतम् ॥१
पितामही जीवति च तथैव प्रपितामही ।
वृद्धप्रपितामही तद्वन्मातृसक्तः पिता तथा ।।
पितामहप्रपितामहौ वृद्धश्च प्रपितामहः ।
केन सा मेलयते माता एतत्कथय मे प्रभो ॥३
पुनरुक्तं प्रवक्ष्यामि सपिण्डीकरणं खग ।
उमा लक्ष्मीर्महावाणी सैवाभिर्मेलयेद्ध्रुवम् ॥४
त्रयः पिंडभुजो ज्ञेयास्त्याजकाश्च त्रयः स्मृताः ।
त्रयः पिंडानुलेपाश्च दशमः पक्तिसन्निधौ ॥५
इत्येते पुरुषाः ख्याता पितृमातृकुलेषु च ।
तारयेद्यजमानस्तु दशपूर्वान्दशापरान् ॥६
सपिंडः स भवेदादौ सपिंडीकरणे कृते ।
अन्त्यस्तु त्यजको ज्ञेयो वृद्धस्तत्प्रपितामहः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे जनार्दन ! मुझे एक और सन्देह को आप कहिए। यह सन्देह पुरुष की मृत्यु को प्राप्त माता को देखकर हो गया है ॥१॥ हे प्रभो ! पितामही, प्रपितामही और वृद्ध प्रपितामही जीवित हैं तथा मातृभक्त पिता, पितामह और प्रपितामह भी जीवित हैं तो ऐसी दशा में सपिण्डी करण कर्म में वह माता किसके साथ मेलित की जाती है ? इसे

कृपा कर समझाइये ॥२-३॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे खग! पहिले कहे हुए इस सपिण्डी करण को फिर बतलाता हूँ। ऐसी माता को उमा—लक्ष्मी और सरस्वती के साथ सम्मिलित करना चाहिए ॥४॥ तीन पिंडों के उपभोग करने वाले जानने चाहिऐ और त्याजक भी तीन बताये गये हैं। तीन पिंडानुलेप होते हैं तथा दशवाँ पक्ति सन्निधि में होता है ॥५॥ पिता और माता के कुलों में ये इतने पुरुष ख्यात हैं। यजमान दश पूर्व के और दश आगे होने वाले पुरुषों (पीढ़ियों) को तार दिया करता है ॥६॥ सपिंडी करण करने पर आदि में वह सपिंड होता है। जो अन्त्य होता वह त्याजक होता हैं जैसे वृद्ध प्रपितामह है ॥७॥

अन्त्यस्तु त्याजको यस्तु लेपकः प्रथमो भवेत् ।
लेपकस्त्वन्तिमो यस्तु स भवेत्पक्तिसन्निधौ ॥८
यजमानो भवेदको दशपूर्वे दशापरे ।
इत्येते पितरो ज्ञेया एकविंशतिशाश्वताः ॥९
विधिना कुरुते यस्तु संसारे श्राद्धमुत्तमम् ।
ददते नात्र सन्देहः शृणु तस्यापि तत्फलम् ॥१०
पिता ददाति पुत्रान्वै गोधनञ्च पितामहः ।
हेमदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः ॥११
कृते श्राद्धे गुणा ह्येते पितृणां तर्पणे स्मृताः ।
दद्याद्विपुलमन्नाद्यं वृद्धस्तु प्रपितामहः ॥१२
यस्य पुंसश्च मर्त्ये वैं विच्छिन्ना सन्ततिः खग ।
स वसेन्नरके नित्यं पङ्के मग्नः करी यथा ॥१३
योन्यन्तरे हि यो जातो वृक्षः पक्षी सरीसृपः ।
न सन्ततिविनाशेऽपि मुच्यते नरकाद्ध्रुवम् ॥१४

अन्त्य त्याजक होता है तो लेपक प्रथम होता है। जो लेपक अन्तिम होता है तो पंक्ति सन्निधि में होता है ॥८॥ एक यजन कर्त्ता यजमान और दश प्रथम पुरुष और दश आगे होने वाले पुरुष इस प्रकार ये सब कुल मिल कर इक्कीस शाश्वत पितृगण होते हैं उन्हें समझ लेना

चाहिए ।।६।। जो उस संसार में विधि के साथ उत्तम श्राद्ध किया करता है वह फल अवश्य ही देता हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं होता है उसका भी वह फल श्रवण करो ।।१०।। पिता पुत्रों को देता है—पितामह गोधन देता है । जो उसका प्रपितामह होता है वह हेम (सुवर्ण) का देने वाला होता है ।।११।। श्राद्ध के करने पर ये गुण होते हैं जो पितृगण के तर्पण होने पर हुआ करते हैं । जो वृद्ध प्रपितामह होता है वह सन्तृप्त होकर विपुल (बहुत) अन्न आदि दिया करते हैं ।।१२।। हे खग ! जिस पुरुष की इस मनुष्य लोक में सन्तति विछिन्न हो जाती है वह नित्य ही नरक में दल-दल में निमग्न हाथी के तरह निवास किया करता है ।।१३।। जो दूसरी योनि में जैसे वृक्ष-पक्षी और सरी सर्प आदि में उत्पन्न हो गया है वह सन्तति के विनाश होने पर भी निश्चय ही नरक से मुक्ति नहीं पाया करता है ।।१४।।

आचार्य्यस्तस्य शिष्यो वा दूरतोऽपि हि गोत्रजः ।
नारायणबलिं कुर्य्यात्तस्योद्देशेन भक्तितः ।।१४
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मुक्तः स नरकाद्ध्रुवम् ।
स्वर्गे च स वसेन्नित्यं नात्र कार्या विचारणा ।।१६
आदौ कृत्वा धनिष्ठाञ्च एतन्नक्षत्रपञ्चकम् ।
रेवत्यन्तं सदा तस्य अशुभ सर्वदा भवेत् ।।१७
दाहस्तत्र न कर्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु ।
दीयते न जलं तत्र अशुभं सर्वदा भवेत् ।।१८
लोकयात्रा न कर्तव्या दुःखार्त्तः स्वजनो यदि ।
पञ्चकानन्तरं तस्य कर्त्तव्यं सर्वमन्यथा ।।१६
पुत्राणां गोत्रिणां तस्य सन्तापो ह्युपजायते ।
गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतस्य च ।।२०
तथापि ऋक्षमध्ये तु दाहश्च विधिपूर्वकः ।
मानुषाणां हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात् ।।२१

ऐसे पुरुष का आचार्य या उसका कोई शिष्य अथवा दूर में रहने वाला कोई गोत्रज उसके उद्देश्य से भक्ति-भाव के साथ नारायण बलि

करता है तो वह सब तरह के पापों से विमुक्त होता हुआ निश्चय ही नरक से छुटकारा पा जाता और फिर वह नित्य ही स्वर्ग में जाकर के निवास प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।।१५-१६।। आदि में धनिष्ठा और इससे लेकर रेवती के अन्त तक पाँच नक्षत्र सदा उसके लिये अशुभ होते हैं। इस पञ्चक में विप्र आदि सम्पूर्ण जातियों में दाह नहीं करना चाहिए। इन पाँचों नक्षत्रों में जल भी नहीं दिया जाता है क्योंकि यह भी सर्वदा अशुभ होता है ।।१७-१८।। इस समय में लोकयात्रा भी नहीं करनी चाहिए। यदि कोई स्वजन दुःख से आर्त्त हो तो पञ्चकों के पश्चात् उसका सभी कुछ करे। नहीं तो उसके पुत्रों को और गोत्र वालों को सन्ताप उत्पन्न हो जाता है। इन उक्त नक्षत्रों में मृत होने वाले के घर में भी हानि होती है ।।१९-२०।। तो भी नक्षत्रों के मध्य में विधि पूर्वक दाह हो जाता है। तुरन्त आहुति के कारण से मनुष्यों के हित के लिये ही वह होता है ।।२१।।

सद्य आहुतिदं पुण्यं तीर्थं तद्ग्राह्यमुत्तमम् ।
विप्रैर्नियमितः कार्यो मन्त्रैस्तु विधिपूर्वकम् ।।२२

शवस्य तु समीपे च क्षिप्यन्ते पुत्तलास्ततः ।
दर्भमयाश्च चत्वार ऋक्षमन्त्राभिपूजिताः ।।२३

ततो दाहश्च कर्त्तव्यः तैश्च पुत्तलकैः सह ।
सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्य्याच्छान्तिकमुत्तमम् ।।२४

पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः ।
तिलान्गाञ्च हिरण्यञ्च तस्योद्देशे घृतं ददेत् ।।२५

विप्राणां दीयते दानं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सूतकान्ते सुतैरेवं स प्रेतो लभते गतिम् ।।२६

भोजनोपानहौ छत्रं हेम मुद्रा च वाससी ।
दक्षिणा दीयते विप्रे भवपातकमोचनी ।।२७

यूनो वृद्धस्य बालस्य पञ्चकेषु मृतस्य च ।
विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते ॥२८

सद्यः आहुति के देने वाला पुण्य है । उसका दाह तीर्थ में परम उत्तम होता है । विप्रों के द्वारा मन्त्रों से विधि के सहित यह कार्य नियमित होता है । शव के समीप में इसके अनन्तर दर्भों से पूर्ण चार पुत्तल नक्षत्रों के मन्त्रों द्वारा अभिपूजित करके प्रक्षिप्त किये जाया करते हैं ॥२२-२३॥ इसके पश्चात् उन पुत्तलकों के सहित उस शव का दाह करना चाहिए । जब इस मृतक का आशौच समाप्त हो जाय तब पुत्र को उन पञ्चकों की उत्तम सविधि शान्ति भी करनी चाहिए ॥२४॥ पञ्चकों में जो मनुष्य मर जाता है सुगति को प्राप्त नहीं किया करता है । उस मृतक के उद्देश्य से तिल, गौ, सुवर्ण और घृत का दान करे ॥२५॥ विप्रों को जो दान दिया जाता है उससे सभी प्रकार के उपद्रवों का पूर्णतया विनाश हो जाया करता है । सूतक के अन्त में पुत्रों के द्वारा इस प्रकार पञ्चक शान्ति के लिए विप्रों को दान देने पर वह प्रेत सुगति को प्राप्त हो जाता है ॥२६॥ भोजन, उपानह (जूती), छाता, सुवर्ण, मुद्रा, वस्त्र और दक्षिणा ये सब जिस समय विप्र को दिये जाते हैं तो इस संसार में होने वाले पातकों से मोचन (छुटकारा) हो जाया करता है ॥२७॥ चाहे कोई युवा हो या वृद्ध हो तथा बालक हो यदि धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में मर जाता है तो उसकी शान्ति अवश्य ही करानी चाहिए । यदि कोई पञ्चक-शान्ति के विधान को प्रमाद से, अश्रद्धा से या अन्य किसी भी कारण से नहीं करता है तो उसको विघ्न अवश्य ही हो जाया करते हैं ॥२८॥

अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ।
आशिषो द्विगुणा दर्भाः स्वस्त्यस्तु प्रणवस्तथा ॥२९
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै भैश्वदेविकम् ।
विकिरश्च स्वधाकारः पितृशब्दो न चोच्यते ॥३०
अनुशब्दं न कुर्वीत नावाहनमथोल्मुकम् ।
आसीमान्त न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम् ॥३१

न कुर्य्यात्तिलहोमंच द्विजः पूर्णाहुतिं तथा।
न कार्य्यो वैश्वदेवश्च कर्त्ता गच्छत्यधोगतिम्।
मलिनश्राद्ध एतानि पूर्वं षोडश काश्यप ॥३२
स्थाने चार्द्धपथेऽतीते चितायां शवहस्तके।
श्मशानवासिभूतेभ्यः पंचमः प्रातिवेश्यकः ॥३३
षष्ठः संचयने प्रोक्तो दशपिण्डा प्रशाह्नि च।
श्राद्धं षोडशकंचैव प्रथमं परिकीर्त्तितम् ॥३४
अन्यत् षोडशकं तत्र द्वितीयं ताक्ष्यं मे शृणु।
कर्त्तव्यानीह विधिना श्राद्धान्येकादशैव तु ॥३५

प्रेत के निमित्त किये गये श्राद्ध में अठारह वस्तुओं को वर्जित कर देना चाहिए। आशीर्वाद, द्विगुण दर्भ, स्वस्त्यस्तु, प्रणव, अग्नौकरण, उच्छिष्ट श्राद्ध, वैश्वदैविक, विकिर, स्वधाकार, पितृ शब्द का उच्चारण, अनुशब्द, आवरहन, उल्मुक, आसीमान्त प्रदक्षिण विसर्जन, तिलों का होम, पूर्णाहुति और वैश्वदेव ये सब नहीं करने चाहिये। इनके करने वाला अधोगति को गमन किया करता है। हे काश्यप! षोड़श के पूर्व ये सब मलिन श्राद्ध में होती हैं ॥२९-३२॥ दश दिन में दश पिण्ड होते हैं—सर्व प्रथम स्थान पर, फिर आधा मार्ग समाप्त होने पर, चिता में, शव के हाथ में, पांचवां प्रातिवेश्यक श्मशान में निवास करने वाले भूतों के लिये होता है ॥३३॥ छटा सञ्चयन में बताया गया है। सर्व प्रथम षोड़श श्राद्ध परिकीर्त्तित किये गये हैं ॥३४॥ हे ताक्ष्यं! वहां पर दूसरे और षोड़शक भी हैं, उन्हें तुम मुझसे श्रवण करो। यहां पर एकादश श्राद्ध विधि-विधान के साथ ही करने चाहिये ॥३५॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यंच तथान्यच्छ्राद्धपंचकम्।
एवं षोड़शश्राद्धानि विदुस्तत्त्वविदो जनाः ॥३६
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा।
त्रिपक्षसम्भवंचैव द्वे रिक्ते खग षोडश ॥३७
आद्यं शवविशुद्ध्यर्थं कृत्वान्यच्च तु षोडश।
पितृपंक्तिविशुद्ध्यर्थं शतार्द्धेन च योजयेत् ॥३८

शताद्धंश्राद्धहीनश्च मेलितः पितृभाङ् न हि ।
चत्वारिंशद्भिरष्टाभिः श्राद्धैः प्रेतत्वसाधनम् ॥३९
सकृदूनशताद्धेन न भवेत् पितृसन्निधिः ।
मेलनीयः शताद्धेन सद्भिः श्राद्धेन तत्वतः ॥४०
शवस्य शिविकायाः करच्छेदेन सहितं करचरणयोर्बन्धनं तत्र कर्त्तव्यम् ॥४१

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अन्य पांच श्राद्ध होते हैं इस प्रकार से तत्त्व वेत्ता लोग षोड़श श्राद्धों को जाना करते हैं ॥३६॥ हे खग ! बारह प्रति मास में होने वाले श्राद्ध, एकादश में, तीन पक्ष में होने वाला और दो रिक्त इस तरह से सोलह श्राद्ध हैं ॥३७॥ आदि में होने वाला शव की विशुद्धि के लिए ही होता है। अन्य षोड़श श्राद्ध पितृ-पंक्ति के विशुद्धि के लिये होते हैं। एस तरह शताद्धं से योजित करे ॥३८॥ शताद्धं श्राद्ध से जो हीन होता है वह पितृभाक् मेलित होकर नहीं होता है। चालीस और आठ इष्टाओं से श्राद्धों के द्वारा प्रेतत्व का साधन होता है ॥३९॥ एक बार उन शताद्धं से पितृगण की सन्निधि नहीं हुआ करती है। शताद्धं श्राद्ध के द्वारा सत्पुरुषों के साथ तत्त्वतः मेलन करना चाहिए ॥४०॥ अथ शव-विधि—शव का शिविका से करच्छेद के सहित वहाँ पर कर और चरणों का बन्धन करना चाहिए ॥४१॥

एवञ्चेन्न विधानं विधीयते तत्र पिशाचपरिभवम् ।
सञ्जायते रजन्यां शवनिर्गमने खेचरादिभयम् । ४२
शून्यं शवं न मुच्येत संस्पर्शाद् दुर्गतिर्भवेत् ॥४३
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते ह्यन्ने भुङ्क्ते यदिच्छया ।
तदन्नं मांसवत् ज्ञेयं तोयञ्च रुधिरोपमम् ।।४४
ताम्बूलं दन्तकाष्ठञ्च भोजनं ऋतुसेवनम् ।
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते वर्जयेत् पिण्डपातनम् ।।४५
स्नानं दानं जपो होमस्तर्पणं सुरपूजनम् ।
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते तद्वद्यथं ज्ञातिधर्मतः ।।४६

ज्ञातिसम्बन्धिनामेवं व्यवहार: खगेश्वर ।
विलुप्य ज्ञातिधर्मंश्च प्रेत: पापेन लिप्यते ।।४७

इस भाँति से यदि शव का विधान नहीं किया जाता है तो वहां पर पिशाचों का परिभव उत्पन्न हो जाता है। रात्रि में शव के निर्गमन करने में खेचर आदि का भय होता है। किसी भी समय में शव को सूना नहीं छोड़ देना चाहिए। संस्पर्श करने से दुर्गति होती है ।।४२-४३।। ग्राम के मध्य में प्रेत के स्थित रहने पर अर्थात् गाँव में किसी मृतक का शव रक्खा रहे और कोई अपनी इच्छा से अन्न को खा लेता है तो वह अन्न माँस की ही भाँति हुआ करता है। और जो जल पीता है वह जल खून के सदृश होता है ।।४४।। ताम्बूल का चर्वण करना, दन्त धावन, भोजन और ऋतुकाल का सेवन करना ये काम ग्राम के मध्य में प्रेत के स्थित होने पर अर्थात् जब तक मृतक का देह ग्राम मे रहे वर्जित कर देवे। इसी तरह पिंडों का पातन भी न करे ।।४५।। स्नान, दान, जप, होम, तर्पण और देवों का पूजन करना ये भी सब ग्राम के मध्य में प्रेत के रहते हुए करना व्यर्थ अर्थात् फल शून्य हुआ करते हैं। ज्ञाति के धर्म से इनका करना निष्प्रयोजन होता है। हे खगेश्वर ! ज्ञाति और सम्बन्धियों के व्यवहार को तथा ज्ञाति के धर्म को विलुप्त करके प्रेय पाप से लिप्त होता है ।।४६-४७।।

२६—तीर्थ माहात्म्य और अनशन व्रत

कस्मादनशनं पुण्यमक्षयं गतिदायकम् ।
स्वगृहन्तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते तु यः ।।१
अप्राप्य तीर्थं म्रियेत गृहे मृत्युवशङ्गतः ।
भूत्वा कुटीचरो यस्तु स कां गतिमवाप्नुयात् ।।२
संन्यास कुरुते यस्तु तीर्थे वापि गृहेऽपि वा ।
कथं तस्य प्रकर्त्तव्यं अप्राप्ते निधने तथा ।।३
नियमे यत्कृते देव चित्तभङ्गो हि जायते ।
केन तस्य भवेत् सिद्धिर्यत्कृतैरन्यथाकृतैः ।।४

कृत्वा निरशनं यो वै मृत्युमाप्नोति कोऽपि चेत् ।
मानुषीं तनुमुत्सृज्य मया तुल्यो विराजते ।।५
यावन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते ।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि समग्रवरदक्षिणैः ।।६
तीर्थे गृहे वा संन्यासं नीत्वा चेन्म्रियते यदि ।
प्रत्यहं लभते सोऽपि पूर्वोक्ताद्द्विगुणं फलम् ।।७

गरुड़ ने प्रश्न किया कि जो अपने गृह का परित्याग करके तीर्थ में जाकर मरता है उसका अनशन करना कैसे अक्षय पुण्य होता सुगति का प्रदान करने वाला होता है ।।१।। ? किसी तीर्थ में न पहुंच कर घर में ही मृत्यु के वशीभूत जो हो जाता है और कुटीचक संन्यासी होकर रहता है वह किस गति को प्राप्त हुआ करता है ? ।।२।। जो पुरुष किसी तीर्थ स्थल में या गृह में संन्यास धारण कर लेता है और निधन (मृत्यु) के अप्राप्त होने पर उसका किस प्रकार से करना चाहिए ? ।।३।। हे देव ! जिस नियम के करने पर चित्त का भंग हो जाता है तो उसके होने पर किससे उसकी सिद्धि हुआ करती है । उनके किये जाने पर या अन्यथा किये जाने पर ? ।।४।। श्री भगवान् ने कहा—यदि कोई भी निरशन करके मृत्यु को प्राप्त किया करता है वह इस मनुष्य का परित्याग करके मेरे तुल्य होकर विराजमान रहा करता है ।।५।। निरशन व्रत करने पर जितने दिन तक जीवित रहता है वे दिन समस्त वर दक्षिण ऋतुओं के सदृश हुआ करते हैं ।।६।। यदि कोई पुरुष तीर्थ में या घर में सन्यास ग्रहण करके मृत्यु को प्राप्त होता है वह भी प्रतिदिन पहिले बताये हुए दुगना फल प्राप्त करता है ।।७।।

महारोगोपपत्तौ च गृहीतेऽनशने मृतः ।
पुनर्न जायते रोगो देववद्दिवि मोदते ।।८
आतुरः सन्स सन्न्यासं गृह्णाति यदि मानवः ।
पुनर्जातिश्च संयुक्तो भवेद्रोगैश्च पातकैः ।।९
अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणाञ्च भोजनम् ।
तिलपात्रं यथाशक्ति दीपदानं सुरार्चनम् ।।१०

एवं दत्तस्य दह्यन्ते पापान्युच्चावचानि च ।
मृतोऽमृतत्वमाप्नोति यथा सर्वे महर्षयः ॥११
तस्मादनशनं नृणां वैकुण्ठपददायकम् ।
स्वस्थाऽस्थेन देहेन साधनं मोक्षलक्षणम् ॥१२
पुत्रद्रव्यादि सन्त्यज्य तीर्थं व्रजति यो नरः ।
ब्रह्माद्या देवतास्तस्य तुष्टिपुष्टिप्रदायकाः ॥१३
यस्तीर्थं सम्मुखो भूत्वा व्रते ह्यनशने कृते ।
स म्रियेदन्तरालेऽपि ऋषीणां मण्डले वसेत् ॥१४

किसी महान् रोग के उत्पन्न होने पर और अनशन के ग्रहण कर लेने पर मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे फिर वह रोग कभी नहीं होता है । फिर दिवलोक में वह देवों को भांति आनन्द प्राप्त करता है ॥८॥ यदि वह आतुर होकर संन्यास ग्रहण करता है तो पुनः उत्पन्न होकर रोगों और पातकों से संयुक्त हो जाता है ॥९॥ दिन प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन दे । अपनी शक्ति के अनुसार तिल पात्र-दीप दान और सुरों का अर्चन करे ॥१०॥ इस प्रकार से देने वाले पुरुष के छोटे-मोटे समस्त पाप दग्ध हो जाते हैं और मृत हुआ भी प्राणी अमृत्व को प्राप्त हो जाता है जिस तरह से सब महर्षिगण हुआ करते हैं ॥११॥ इसलिये अनशन वैकुण्ठ के पद का देने वाला होता है । स्वस्थ देह के द्वारा ही मोक्ष के लक्षण वाला साधन होता है ॥१२॥ अपने पुत्र, पौत्र, धन, सम्पत्ति सबका त्याग करके जो मनुष्य तीर्थों को जाता है उसके लिये ब्रह्मा आदि सब देवता तुष्टि, पुष्टि के देने वाले हो जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य तीर्थ के सम्मुख होकर अनशन के व्रत को करने पर अपने प्राणों का त्याग करता है वह अन्तराल में ही ऋषियों के कमण्डल में निवास प्राप्त करता है ॥१४॥

व्रतं निरशनं कृत्वा स्वगृहे म्रियते यदि ।
स्वकुलानि परित्यज्य एकाकी विचरेद्दिवि ॥१५
अन्नं चैव तथा तोयं परित्यज्य नरो यदा ।
पीत्वा मत्पादतोयं स न पुनर्जायते क्षितौ ॥१६

त्यक्ताशनं तीर्थगतं रक्षन्ति कुलदेवताः।
यमदूता विशेषेण न याम्यास्तस्य यातनाः ॥१७

तीर्थसेवी सदा यस्तु सर्वकिल्विषनाशनः।
म्रियते तञ्च दह्येत स तीर्थफलभाग्भवेत् ॥१८

तीर्थसेवी सदा तीर्थादन्यत्र म्रियते यदि।
शुभे देशे कुले धीमान्स भवेद्वेदविद्द्विजः ॥१६

कृत्वा निरशनं तार्क्ष्यं पुनर्जीवति यः पुमान्।
ब्राह्मणान्स समाहूय सर्वस्वञ्च परित्यजेत् ॥२०

चान्द्रायणञ्चरेत्कृच्छ्रमनुज्ञातश्च तैर्द्विजैः।
अनृतं न वदेत्पश्चात्सर्वतो धर्ममाचरेत् ॥२१

अशन (भोजन) न करने वाला व्रत करके यदि अपने घर में ही कोई मरता है वह अपने कुलों का परित्याग करके अकेला ही दिवि लोक में विचरण किया करता है ॥१५॥ अन्न तथा जल का त्याग करके जब मनुष्य केवल मेरा ही चरणामृत का पान करके प्राण त्याग करता है वह फिर इस मही मण्डल में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥१६॥ अपने अशन का त्याग करने वाले और तीर्थों में जाकर निवास करने वाले पुरुष की रक्षा कुल देवता किया करते हैं ? यमदूत विशेष रूप से उसे यम द्वारा दी हुई यातनाऐं नहीं दिया करते हैं ॥१७॥ जो पुरुष सदा—सर्वदा तीर्थों का सेवन करने वाला होता है उसके सभी किल्विषों का नाश हो जाया करता है। जब वह मरता है तो उसका जो दाह करता है वह तीर्थ के फल का भागी हो जाया करता है ॥१८॥ जो सदा तीर्थों का सेवन करने वाला हो और यदि संयोग से वह तीर्थ से अन्य किसी स्थान में मर जाता है तो किसी शुभ देश और परम शुभ कुल में अत्यन्त बुद्धिमान् वेदों का वेत्ता द्विज होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥१९॥ हे तार्क्ष्य ! जो पुरुष निरशन करके पुनः जीवित हो जाता है उसे ब्राह्मणों को बुला कर सर्वस्व का परित्याग कर देना चाहिए ॥२०॥ उसे द्विजों के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके कृच्छ्र चान्द्रायण

व्रत को करना चाहिए और पीछे कभी भी मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए और सब प्रकार से धर्म का आचरण करना चाहिए ॥२१॥

तीर्थे गत्वा तु यः कोऽपि पुनरायाति वै गृहे।
अनुज्ञातः शुभैर्विप्रैः प्रायश्चित्तमथाचरेत् ॥२२
दत्त्वा सुवर्णदानानि गोमहीगजवाजिनः।
तीर्थं यदि लभेद्यस्तु मृत्युकाले स भाग्यभाक् ॥२३
गृहात्प्रचलितस्तीर्थं मरणे समुपस्थिते।
पदे पदे तु गोदानं हिंसा नो वर्त्तते यदि ॥२४
स्वगृहे यत्कृतं पापं तीर्थस्नानैर्विशुध्यति।
तत्र देयानि दानानि ह्यक्षयानि सदा खग ॥२५
कुरुते तत्र चेत्पापं वज्रलेपसमं हि तत्।
क्लिश्येत्पापैर्न संदेहो यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२६
आतुरे सति देयानि निर्धनैरपि मानवैः।
गावस्तिला हिरण्यञ्च सप्तधान्यं विशेषतः ॥२७
दानवन्त नरं दृष्ट्वा हृष्टाः सर्वे दिवौकसः।
ऋषिभिः सह धर्मेण चित्रगुप्तेन वै तथा ॥२८

तीर्थ में जाकर जो कोई फिर घर में आता है तो वह विप्रगण की आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करे ॥२२॥ सुवर्ण, गौ, भूमि, हाथी और अश्व का दान देकर जो कोई मृत्यु के समय में तीर्थ का लाभ प्राप्त करता है वह बड़ा भाग्यशाली होता है ॥२३॥ मृत्यु काल के उपस्थित हो जाने पर जो अपने घर से किसी तीर्थ को चल दिया है और यदि कोई भी हिंसा का भाव विद्यमान नहीं होता है तो उसके एक-एक क़दम पर गोदान का पुण्य-फल हुआ करता है ॥२४॥ अपने घर में जो भी कुछ पापाचरण किया है वह सभी तीर्थ के स्नान करके विशुद्ध हो जाया करता है। हे खग ! तीर्थ में दिये हुए दान सदा अक्षय हुआ करते हैं ॥२५॥ यदि तीर्थ में पहुँच कर कोई पाप का कर्म किया जाता है तो वह वज्रलेप अर्थात अत्यंत सुदृढ़ हो जाया करता है। उन पापों से जब तक सूर्य और चन्द्र स्थिर रहा करते

हैं जब तक उन तीर्थ में किये हुए पापों से यह जीवात्मा क्लेश भोगा करता है—इसमें तनिक सन्देह नहीं है ॥२६॥ आतुर की अवस्था प्राप्त होने पर दान-हीन मनुष्यों को भी गौ, तिल, सुवर्ण और विशेष रूप से सात धान्यों का दान अवश्य ही करे ॥२७॥ दान-शील नर को देख कर सब देवगण परम प्रसन्न होते हैं। समस्त ऋषीगण धर्मराज और चित्र-गुप्त को भी बहुत हर्ष हुआ करता है ॥२८॥

स्वतन्त्रं हि धनं यावत्तावद्विप्रे समर्पयेत्।
पराधीनं मृते सर्वं कृपया को हि दास्यति ॥२९
पित्रुद्देशेन यैः पुत्रैर्धनं विप्रकरेऽर्पितम्।
आत्मनः साधनं तैस्तु कृतं पुत्रप्रपौत्रकैः ॥३०
पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरुच्यते।
भगिन्यै शतसाहस्रं सोदर्य्ये दत्तमक्षयम् ॥३१
यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके।
मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्य्याः पापिनस्तथा ॥३२
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥३३
मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुन्धरा।
दुश्चरित्रेव हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम् ॥३४
उदारो धार्मिकः सौम्यः प्राप्यापि विपुलं धनम्।
तृणवन्मन्यते तार्क्ष्य आत्मानं वित्तमित्यपि ॥३५
न चैवोपद्रवस्तस्य मोहजालं न चैव हि।
मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥३६
समाःसहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ तपने च षोडश।
महाहवे षष्ठिरशीतिगोग्रहे अनाशकेभारत चाक्षयागतिः ॥३७

जितना धन स्वतन्त्र है उतना सब विप्र की सेवा में समर्पित कर दे। मृत्यु हो जाने पर तो सभी कुछ जो तुम्हारा है पराये अधीन हो जायगा फिर कृपा करके कौन देगा ॥२९॥ अपने पिता के कल्याण होने के

उद्देश्य से जिन पुत्रों ने धन को विप्रों के हाथ में दान रूप में अर्पित किया है उन पुत्र—पौत्रों ने अपनी आत्मा का साधन सम्पन्न कर लिया है ॥३०॥ पिता के उद्देश्य से दिये हुए का शतगुण फल होता है। माता के लिये दिया हुआ हजार गुना होता है—भगिनी के लिये दिया हुआ सौ सहस्र गुना और सगे भाई के उद्देश्य से दिया हुआ अक्षय होता है ॥३१॥ यदि लोभ के वशीभूत होकर आतुर की संज्ञा वाले के समय में नहीं देते हैं तो मृत होकर वे सब कदर्भ और पापात्मा सोचा करते हैं ॥३२॥ अत्यन्त क्लेश के द्वारा प्राप्त होने वाले और प्रकृति से चञ्चल इस धन की एक ही उत्तम गति दान करना है और अन्य सब विपत्तियाँ ही हैं ॥३३॥ शरीर की रक्षा करने वाले और धन की रक्षा करने वाले को यह वसुन्धरा पुत्र पर प्रेम करने वाले अपने पति को दुष्ट चरित्र वाली स्त्री के समान हँसा करती है ॥३४॥ उदार, धार्मिक और सौम्य भी पुरुष विपुल धन प्राप्त करके हे तार्क्ष्य ! उस बहुत से धन को और अपने आपको भी एक तृण की भाँति समझा करता है ॥३५॥ ऐसे उस पुरुष को कोई भी उपद्रव नहीं होता—न कोई मोह का जाल होता है और मृत्यु के समय आने पर उसे किसी भी प्रकार का भय भी नहीं होता। जो यमदूतों के द्वारा समुत्पन्न आम तौर पर सबको हुआ करता है ॥३६॥ एक हजार सात वर्ष जल में—एक सहस्र ग्यारह अग्नि में और एक सहस्र सोलह तपन में—साठ महाहव में और अस्सी अनाशक गोग्रह में हे भारत ! उसकी अक्षय गति होती है ॥३७॥

२७—उदकुम्भ प्रदान विधि

उदकुम्भप्रदानं मे कथयस्व यथातथम् ।
विधिना केन दातव्याः कुम्भास्ते कतिसंख्यया ॥१
किंलक्षणाः केन पूर्णाः कस्मैः देया जनार्दन ।
कस्मिन्काले प्रदातव्याः प्रेततृप्तिप्रदायकाः ॥२
सत्यं तार्क्ष्यं प्रवक्ष्यामि उदकुम्भप्रदानकम् ।
प्रेतोद्देशेन दातव्यमन्नपानीयसंयुतम् ॥३

मानुषस्य शरीरे तु अस्थ्नामेव तु सञ्चयः ।
संख्यातः सर्वदेहेषु षष्ट्यधिकशतत्रयम् ।।४
उदकुम्भेन पुष्टानि तान्यस्थीनि भवन्ति हि ।
एतस्माद्दीयते कुम्भः प्रीतिः प्रेतस्य जायते ।।५
द्वादशाहे च षण्मासे त्रिपक्षे वाथ वत्सरे ।
उदकुम्भाः प्रदातव्या मार्गे तस्य सुखाय वै ।।६
सुलिप्ते भूमिभागे तु पक्वान्नजलपूरिताः ।
प्रेतस्य तत्र दातव्यं भोजनञ्च यदृच्छया ।।७

श्री गरुड़ देव ने निवेदन किया—हे भगवन् ! जल कुम्भ के दान के विषय में ठीक-ठीक मुझको समझाइये । वे जल के कुम्भ संख्या में कितने होने चाहिए और किस विधि से उनका दान करना चाहिए ? ।।१।। हे जनों की पीड़ा के अर्दन करने वाले ! वे कुम्भ किस स्वरूप के होते हैं और किससे पूर्ण किये जाते हैं तथा किसको वे दान में देने चाहिए ? कृपा कर यह भी बताइये—उनका दान किस समय में करना चाहिए जिससे वे प्रेत की तृप्ति के करने वाले होते हैं ? ।।२।। श्री भगवान् ने उत्तर दिया—हे तार्क्ष्य ! यह सर्वथा तुम्हारा पूछना सत्य एवं यथार्थ है । मैं अब उदकुम्भ के प्रदान के सम्बन्ध में बतलाता हूँ । प्रेत के उद्देश्य से अन्न और जल से समन्वित करके ही दान करना चाहिए ।।३।। इस मानव के शरीर में अस्थियों (हड्डियों) के संचय को ही संख्यात किया जावे तो तीन सौ साठ होती हैं ।।४।। उदकुम्भ से वे अस्थियाँ परिपुष्ट हुआ करती हैं । इसलिये ही कुम्भ दिया जाता है और इससे प्रेतात्मा को प्रसन्नता हुआ करती है । ।।५।। उस प्रेत को यमपुरी के महा मार्ग में सुख की प्राप्ति के लिये द्वादशाह में, षण्मास में, त्रिपक्ष में और उस दिन में उदकुम्भ देने चाहिए । ।।६।। भूमि के भाग को भली-भाँति लीपकर उस पर पक्वान्न और जल से पूरित करके उदकुम्भों का दान करे । वहाँ पर यदृच्छा से प्रेतात्मा का भोजन भी देना चाहिए ।।७।।

सुप्रीतस्तेन दानेन प्रेतो याम्यैः सह व्रजेत् ।
द्वादशाहे विशेषेण घटान्द्वादश संख्यकान् ।।८

एकापि वर्धनी तत्र पक्वान्नजलपूरिता ।
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सङ्कल्प्य ब्राह्मणाय वै ॥९
एका वै धर्मराजाय तेन दत्तेन मुक्तिभाक् ।
चित्रगुप्ताय चैकां तु गतस्तत्र सुखी भवेत् ॥१०
षोडशार्घ्याः प्रदातव्या माषान्नजलपूरिताः ।
उत्क्रान्तिश्राद्धमारभ्य श्राद्धे षोडशके कृते ॥११
षोडश ब्राह्मणांश्चैव एकैकं विनिवेदयेत् ।
एकादशाहात्प्रभृति देयो नित्यं घटोदकः ॥१२
पक्वान्नजलसम्पूर्णा यावत्संवत्सरं दिनम् ।
एकाञ्च वर्द्धनीं तत्र वंशपात्रोपरिस्थिताम् ॥१३
वस्त्रैराच्छादिताञ्चैव संयुक्ताञ्च सुगन्धिभिः ।
ब्राह्मणाय विशेषेण जलपूर्णां प्रदापयेत् ॥१४
अहन्यहनि सङ्कल्प्य विधिपूर्वं घटं खग ।
ब्राह्मणाय कुलीनाय वेदव्रतयुताय च ॥१५
सत्पात्राय प्रदातव्या न मूर्खाय कदाचन ।
समर्थो वेदवित्ताढ्यस्तरणे तारणेऽपि च ॥१६

उस दान से परम प्रसन्न होता हुआ प्रेत यम के दूतों के साथ उस परलोक के महान् मार्ग में गमन करता है । बारहवें दिन में विशेष रूप से बारह घटों का दान करे ॥८॥ एक वर्धनी भी उस दिन में पक्व अन्न-जल से परिपूर्ण कर भगवान् विष्णु के उद्देश्य से सङ्कल्प करके ब्राह्मण को दे ॥९॥ एक धर्मराज के लिये दे । इसके देने से मुक्ति का भागी होता है । एक चित्रगुप्त का उद्देश्य करके भी दे, जिससे वहाँ जाने पर वह सुख वाला होवे ॥१०॥ माष अन्न और जल से पूरित करके षोड़श अर्घ्य देने चाहिए । उत्क्रान्ति श्राद्ध का आरम्भ करके षोड़शक श्राद्ध करने पर सोलह ब्राह्मणों को एक-एक निवेदित करे । एकादशाह से लेकर वर्ष भर नित्य घट देवे ॥११-१२॥ सम्वत्सर में जितने दिन हों उतने ही घट पक्व अन्न जल से पूरित करके देवे और एक

वंशपात्र के ऊपर में स्थित करके देवे ॥१३॥ उस वर्धनी को वस्त्रों से समाच्छादित करे और सुगन्धित पदार्थों से संयुत करे फिर विशेष रूप से जल से पूर्ण करके ब्राह्मण के लिये दान देवे ॥१४॥ हे खग ! दिन प्रतिदिन सङ्कल्प करके विधि के साथ घट को किसी अच्छे कुल में उत्पन्न और वेद-व्रत से युक्त ब्राह्मण के लिये दान करना चाहिये। यह दान किसी सत्पात्र को ही देवे, मूर्ख ब्राह्मण को नहीं देना चाहिये। ऐसे किसी सुयोग्य विप्र को दान देवे जो वेद के धन से सम्पन्न हो और स्वयं तरण में तथा अन्य के तारण में समर्थ होवे ॥१५-१६॥

२८—दान तीर्थ और मोक्ष कथन

दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गञ्च वद मे प्रभो।
केन मोक्षमवाप्नोति केन स्वर्गे वसेच्चिरम्।
केनासौ च्यवते जन्तुः स्वर्लोकात्सप्तलोकनः ॥१
मानुष्य भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु।
सम्प्राप्य म्रियते तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥२
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥३
सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि।
मृतो विष्णुपुरं याति पुनर्जन्म न विद्यते ॥४
सुकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥५
कृष्णः कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥६
शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा।
तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥७

तार्क्ष्य ने कहा—हे प्रभो ! दानों तथा तीर्थों के आश्रित मोक्ष और स्वर्ग का वर्णन मुझसे करिये। किससे मृतात्मा मोक्ष की प्राप्ति करता है और किससे स्वर्ग का निवास पाया करता है और किस कारण से यह

जन्तु स्वर्लोक और सप्तलोक से च्यवन किया करता है अर्थात् च्युत हो जाता है ? ॥१॥ भगवान् बोले—भारतवर्ष में तेरह जातियों में मनुष्य जन्म पाकर जो तीर्थ में प्राण त्याग करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥२॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती, पुरी ये सातों मोक्ष प्रदान करने वाली बताई गई हैं ॥३॥ प्राणों के कण्ठ गत होने पर भी जो "सन्न्यस्तम्" अर्थात् संन्यास किया है—ऐसा बोलता है वह मृत होकर विष्णुपुर को चला जाता है और फिर उसका जन्म संसार में नहीं होता ॥४॥ जिसने एक बार भी "हरि" इस भगवन्नाम के दो अक्षरों का उच्चारण किया है, उसने मोक्ष प्राप्त करने के लिये परिकर बद्ध कर लिया है ऐसा समझ लेना चाहिये ॥५॥ कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण—इस तरह मेरे नाम का बारम्बार उच्चारण करके जो नित्य ही मेरा स्मरण करता है उसका मैं जल का भेदन करके कमल जैसे बाहर निकल कर अपना सौरभ, सौन्दर्य प्रदान किया करता है वैसे ही उस पुरुष का नरक से उद्धार कर दिया करता हूँ ॥६॥ समस्त पापों के दोषों के क्षय करने वाली शालग्राम की शिला जहाँ पर विराजमान हो और उसकी सन्निधि में कोई अपने प्राणों का परित्याग करता है उसकी निश्चय ही मुक्ति हो जाती है इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ॥७॥

शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ।
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥८
रोपणात्पालनात्सेकान्नम.स्पर्शनकीर्त्तनात् ।
तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग ॥९

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः ॥१०
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न मृत्सु च ।
भावे हि वसते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥११
प्रातः प्रातः प्रपश्यन्ति नर्मदां मत्स्यघातिनः ।
न तेषां शुद्धिमायाति चित्तवृत्तिर्गरीयसी ॥१२

याद्दशी चित्तवृत्तिः स्यात्ताद्दक्कर्मफलं नृणाम् ।
परलोके गतिस्ताद्दक्प्रतीतिः फलदायिका ।।१३
गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च ।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।१४

तुलसी का बड़ा भारी माहात्म्य होता है। तुलसी के पौधे के रोपण करने से, तुलसी वृक्ष के सेचनादि से, पालन करने से, इसके केवल सींचने से तुलसी को नमस्कार करने से, इसके स्पर्श मात्र करने से और तुलसी के गुण तथा महिमा के कथन करने से हे खग ! यह तुलसी मनुष्यों के जन्म-जन्मान्तर के अर्जित पापों को जला दिया करती है ।।८-९।। ज्ञान रूपी ह्रद (जलाशय) में, सत्य रूपी जल में जो कि राग और द्वेष के मलों का अपहरण करने वाला है, ऐसे मानस स्वरूपी तीर्थ में जो स्नान करता है वह पातकों से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है ।।१०।। देवता न तो काष्ठ में है, न शिला में है, न मृत्तिका में ही रहता है । देव तो भावना में रहा करते हैं। मनुष्य की भावना जहाँ भी होगी वहीं देव साक्षात् स्वरूप में व्यक्त हो सकते हैं अतएव भाव ही सबका मुख्य कारण होता है ।।११।। नित्य ही प्रातःकाल ही में मत्स्यों के घात करने वाले लोग नर्मदा का दर्शन किया करते हैं किन्तु उनके हृदय की दूषित भावना होने के कारण उनकी गरीयसी चित्त की वृत्ति कभी भी शुद्ध नहीं होती है ।।१२।। जिस प्रकार की मनुष्यों की चित्त की वृत्ति होती है वैसा ही उनके कर्मों का फल भी हुआ करता है और फिर परलोक में उनकी गति भी उसी तरह की होती है क्योंकि प्रतीति फल देने वाली होती है ।।१३।। गुरु के लिये, ब्राह्मण के लिये, स्त्रियों के लिये और बाल वधों के लिये जो अपने प्राणों के त्याग करने को तत्पर हो जाता है वह प्राणी निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।।१४।।

अनशने मृतो यस्तु विमुक्तः सर्वबन्धनैः ।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।१५
एते वै मोक्षमार्गाश्च स्वर्गमार्गास्तथैव च ।
गोग्रहे देशविध्वंसे देवतीर्थे विपत्सु च ।।१६

जीवितं मरणञ्चैव उभयोः श्रेष्टमुच्यते ।
जीवितं दानभोगाभ्यां मरणं रणतीर्थयोः ।।१७
उत्तमाधममध्याश्च वध्यमानाश्च प्राणिनः ।
आत्मानं सम्परित्यज्य स्वर्गवासं लभन्ति ते ।।१८
हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे तथैव च ।
प्रभास श्रीफले चैव अर्बुदे च त्रिपुष्करे ।।१९
भूतेश्वरो मृतो यस्तु स्वर्गे वसति मानवः ।
ब्राह्मणो दिवसं यावत्ततः पतित भूतले ।।२०
वर्षवृत्तिञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे व्रतसंयुते ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ।।२१

अनशन करने में जिसकी मत्यु हो जाती है वह सभी प्रकार के बन्धनों से विमुक्त हो जाता है । विप्रों को दान देकर वह मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।।१५।। ये सभी मोक्ष के प्राप्त करने के मार्ग हैं । इसी भाँति स्वर्ग प्राप्त करने के भी मार्ग होते हैं । गौओं के ग्रहण करने में, देश के विध्वंस होने में, देव, तीर्थ की विपत्तियों में जीवित रहना तथा मरना, दोनों ही श्रेष्ठ होते हैं । दान और भोग से जीवित और रण भूमि तथा तीर्थ में मृत्यु का होना श्रेष्ठ होता है । वध्यमान प्राणी उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के हुआ करते हैं । वे आत्मा का त्याग करके स्वर्ग निवास का लाभ किया करते हैं ।।१६-१८।। हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास क्षेत्र, श्रीफल, अर्बुद और त्रिपुष्कर क्षेत्र में तथा भूतेश्वर में जो मृत्युगत होता है वह मनुष्य स्वर्ग में वास किया करता है । और ब्रह्मा का जब तक एक दिन पूरा होता है तब तक उसको स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है । इस अवधि के समाप्त होने पर वह पुनः भूतल पर गिर कर आता है ।।१९-२०।। व्रत से संयुत ब्राह्मण को जो कोई एक वर्ष की पूरी वृत्ति का दान करता है वह अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करके अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हो जाता है ।।२१।।

कन्यां विवाहयेद्यस्तु ब्राह्मणे वेदवित्तमे ।
इन्द्रलोके वसेत्सोऽपि स्वकुलैः परिवेष्टितः ।।२२

महादानानि दत्त्वा च नरस्तत्फलमाप्नुयात् ।
वापीकूपतडागानामारामसुरसद्मनाम् ॥२३
जीर्णोद्धारं प्रकुर्वाणः पूर्वकर्त्तुः फलं हि यत् ।
तस्यैव द्विगुणं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥२४
कर्णकण्ठाङ्गुलीबाहुभूषणैश्चित्रवर्णकैः ।
गृहोपकरणैर्युक्तं गृहं धेनुसमन्वितम् ॥२५
शीतवातातपहरमपि यत्र कुटीरकम् ।
कृत्वा विप्राय विदुषे प्रददाति कुटुम्बिने ॥ २६
तिस्रः कोटयर्द्धकोटीश्च समाः स्वर्गे महीपते ।
या स्त्री सवर्णा संशुद्धा मृतं पतिमनुव्रजेत् ।
सा मृता स्वर्गमाप्नोति वर्षाणां पूर्वसंख्यया ॥२७
पुत्रपौत्रादिकं हित्वा स्वपतिं याधिरोहति ।
स्वर्गं लभते तौ चोभौ कुलैस्त्रिभिः समन्वितौ ॥२८

जो वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण को कन्या देकर उसका विवाह कर देता है वह भी अपने समस्त कुलों से परिवेष्टित होकर इन्द्रलोक में निवास करता है ॥२२॥ महादानों को देकर मनुष्य उनके फलों की प्राप्ति करता है। बावड़ी, कुआ, तालाब, उद्यान और देवालय इन सबका या इनमें से किसी एक का जीर्णोद्धार करने वाला मनुष्य इनको जिसने पहिले बनाया था उसका पुण्य-फल होता है उससे द्विगुण पुण्य प्राप्त करता है—इसमें सन्देह नहीं है ॥२४॥ कण्ठ—कर्ण—अंगुलि और बाहु के चित्र-विचित्र भूषणों से युक्त–गृह में उपयोगी समस्त आवश्यक उपकरणों से समन्वित–दूध देने वाली धेनु से संयुत–शीत, वात और आतप के हरण करने वाले कुटीर वाले गृह का निर्माण कराकर किसी कुटुम्बी विद्वान् ब्राह्मण को जो दान में देता है वह पुरुष साढ़े तीन करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहा करता है। जो सवर्णा एवं सम्यक् प्रकार से शुद्ध स्त्री मृत पति का अनुगमन किया करती है अर्थात् उसी के साथ सती हो जाती है वह मरकर पूर्वोक्त संख्या वाले साढ़े तीक करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में निवास किया करती

है ।।२५-२७।। जो पुत्र-पौत्रादिक का त्याग कर अपने ही पति की चित्ता में अधिरोहण करती है वे दोनों ही स्त्री–पुरुष अपने तीन कुलों के सहित स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ।।२८।।

कृत्वा पापन्यनेकानि भर्तृद्रोहे मतिः सदा ।
प्रक्षालयति सर्वाणि या स्वं पतिमनुव्रजेत् ।।२९
महापापसमाचारो भर्त्ता चेद्दुष्कृती भवेत् ।
तस्याप्यनुव्रता नारी नाशयेत्सर्वकिल्विषम् ।।३०
ग्राममात्रं तु यच्चान्नं नित्यदानं करोति यः ।
छत्रचामरसंयुक्ते स विमानेऽधिगच्छति ।।३१
यत्कृतं हि मनुष्येण पापञ्च मरणान्तिकम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति वर्षवृत्तिप्रदानतः ।।३२
भूतं भावि वर्त्तमानं पापं जन्मत्रयार्जितम् ।
प्रक्षालयति तत्सर्वं विप्रकन्याविवाहनात् ।।३३

जो अनेक पापों को करके सर्वदा अपने पति के द्रोह में बुद्धि रखा करती थी वह भी यदि अपने मृत पति का अनुगमन कर लेती है तो अपने सम्पूर्ण पापों का प्रक्षालन कर लिया करती है ।।२९।। यदि उसका पति जो नारी अपने पति का अनुगमन करती है महान् पापों के आचरण करने वाला भी हो और पूर्णतया दुष्कृती हो तो भी वह अनुव्रता नारी उसके भी पापों का प्रक्षालन कर दिया करती है ।।३०।। जो ग्राम मात्र को ही नित्य अन्न का किया करता है वह छत्र और चमरों से समन्वित विमान में अधिरोहण कर स्वर्ग को जाया करता है। जो वर्ष भर की वृत्ति किसी का दिया करता है उसने प्रारम्भ से मृत्यु तक जो भी कुछ पाप किया है वह सब नाश को प्राप्त हो जाया करता है ।।३१-३२।। किसी विप्र की कन्या का विवाह करा देने से तीन जन्म का भूत—भवि और वर्त्तमान सम्पूर्ण पाप का मनुष्य प्रक्षालन कर दिया करता है ।।३३।।

दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः ।
दशानां सरसां साम्यं प्रपा तार्क्ष्य विनर्जले ।।३४

प्रपापि निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे ।
प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेल्लोकनायकः ॥३५
एवमादिभिरन्यैश्च सुकृतैः स्वर्गभाग्भवेत् ।
सर्वधर्मफलं प्राप्य प्रतिष्ठां परमां लभेत् ॥३६
फल्गु कार्य्यं परित्यज्य सततं धर्मवान्भवेत् ।
दानं सत्यं दया चेति सारमेतज्जगत्त्रये ॥३७
दानं साधु दरिद्रस्य शून्ये लिङ्गस्य पूजनम् ।
अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलं लभेत् ॥३८

दश कुओं के निर्माण करा देने के तुल्य पुण्य एक बावड़ी के निर्माण कराने का होता है। दश बावड़ियों के समान एक सर होता है और दश सरोवरों के समान किसी बिना जल वाले स्थान में एक प्याऊ के निर्माण का पुण्य होता है ॥३४॥ प्रपा (प्याऊ) वहाँ ही बनवानी चाहिए जहाँ जल का अभाव हो और दान उसी ब्राह्मण को देना चाहिए जो निर्धन हो। जो प्राणियों पर दया किया करता है वह लोक का नायक होता है ॥३५॥ एवमादि पुण्यों से तथा अन्य सुकृतों से मनुष्य स्वर्ग के निवास का अधिकारी हुआ करता है। सब धर्म के फल को प्राप्त कर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया करता है ॥३६॥ फलशून्य व्यर्थ के कार्य का त्याग कर निरन्तर धर्म के करने वाला हो। इस जगत् में दान, सत्य और दया ये तीन ही सार वस्तु हैं ॥३७॥ दरिद्र को दान दे, शून्य में लिङ्ग का पूजन करे और अनाथ व्यक्ति के प्रेत संस्कार करे—इनसे एक करोड़ यज्ञों का फल प्राप्त हुआ करता है ॥३८॥

२९—अशौच विधि कथनम्

सूतकानां विधिं ब्रूहि दयां कृत्वा ममोपरि ।
विवेकाय हि चित्तस्य मानवानां हिताय च ॥१
मृते जन्मनि पक्षीन्द्र सपिण्डानां हि सूतकम् ।
चतुर्णामपि वर्णानां सर्वकर्मविवर्जनम् ॥२
उभयत्र दशाहानि कुलस्याशु विवर्जयेत् ।
दानं प्रतिग्रह होम स्वाध्यायञ्च निवर्त्तयेत् ॥३

देशकालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।
उपपत्तिमथावस्थां ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ।।४

मृते पतौ वनस्थे च देशान्तरमृतेषु च ।
स्नानं सचैलं कर्त्तव्यं सद्यः शौचं विधीयते ।।५

स्रावगर्भाश्च ये जीवा ये च गर्भाद्विनिःसृता ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ।।६

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचानुकारिणः ।।७

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! अब मानवों के हित के लिये और चित्त के विवेक के वास्ते मुझ पर कृपा करके सूतकों की विधि बताने की उदारता कीजिए । श्री भगवान् ने कहा–हे पक्षीन्द्र ! किसी की मृत्यु और जन्म होने पर जो सपिंड पुरुष एवं स्त्री होते हैं उनको सूतक हुआ करता है । इन जात का शौच और मृत का शौच की दशा में चारों वर्णों में सम्पूर्ण प्रकार के कर्मों का विशेष रूप से निषेध हुआ करता है ।।१-२।। दोनों प्रकार के सूतक में दश दिन कुल के दान प्रतिग्रह—होम और स्वाध्याय अर्थात् वेदों का अध्ययन इनका शीघ्र वर्जन कर देना चाहिए ।।३।। देश, काल,आत्मा,द्रव्य प्रयोजन,उत्पत्ति और अवस्था इनका ज्ञान करके शौच को प्रकल्पित करे ।।४।। वन में स्थित पति के मृत होजाने पर और अन्य देश में मृत्यु गत होने पर वस्त्रों के सहित स्नान करना चहिए । इसी से तुरन्त शुद्धि हो जाया करती है ।।५।। जिन जीवों के गर्भ का स्राव होगया है और जो गर्भ से विनिः सृत हो गये हैं उनका न तो कोई अग्नि संस्कार होता है और न उदक क्रिया ही की जाया करती करती है ।।६।। कारु लोग(कारीगर), शिल्पी (दस्तकार), वैद्य, दासी, दास, राजा लोग और भृत्य वर्ग ये तुरन्त ही शौच के अनुकारी हो जाते हैं ।।७।।

सव्रतो मन्त्रपूतश्च आहिताग्निर्नृपस्तथा ।
एतेषां सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ।।८

प्रसवेन गृहस्थानां न कुर्य्यात्सङ्करं द्विजः ।
दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥९

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृत सूतके ।
पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥१०

हर्वेषामेवमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥११

अन्तर्दशाहे चेत्स्यातां पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तस्य दशाह्निकम् ॥११

क्षुधिते नियमादानं आर्त्ते विप्रे निवेदयेत् ।
तथैव ऋषिभिः प्रोक्तं यथाकालं न दुष्यति ॥१३

दानं परिषदे दद्यात्सुवर्णं गां वृषं द्विजः ।
क्षत्रियो द्विगुणं दद्याद्वैश्यस्तु त्रिगुणं तथा ॥१४

व्रत से युक्त, मन्त्रों से पवित्र, अहित अग्नि वाला, और नृप इनको सूतक नहीं होता है और जिनको ब्राह्मण चाहते हैं उनको भी सूतक नहीं होता है ॥८॥ द्विज को प्रसव के द्वारा सङ्कट नहीं करना चाहिए। माता की शुद्धि दश दिन में होती है और पिता अवगाहन करके शुचि हो जाता है ॥९॥ विवाह—उत्सव और यज्ञों में मध्य में मृतक के सूतक हो जाने पर पूर्व संकल्पित जो द्रव्य है उसको उपभोग में ले आना चाहिए—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥१०॥ सबको आशौच होता है और माता पिता को सूतक होता है। सूतक माता को ही होता है। पिता तो उपस्पर्शन करके शुद्ध हो जाया करता है ॥११॥ दशाह के मध्य में यदि अन्य किसी का मरण या जन्म हो जाता है तो विप्र तब तक अशुचि रहता है जब तक उसका दशाह्निक कर्म पूर्ण होता है ॥१२॥ क्षुधा से युक्त को नियम से दान और आर्त्त को तथा विप्र को देवे। उसी प्रकार से ऋषियों ने कहा है तो काल के अनुसार दोष नहीं होता है ॥१३॥ परिषद में दान देवे। द्विज को गौ, सुवर्ण और वृष का दान करना चाहिए। क्षत्रिय को दुगुना ब्राह्मण से दान देना चाहिए और वैश्य को तिगुना दान देना चाहिए ॥१४॥

चतुर्गुणं तु शूद्रेण दायव्यं ब्राह्मणे धनम् ।
एवञ्चानुक्रमेणैव चातुर्वर्ण्यं विशुध्यति ॥१५

हप्ताष्टमन्तरे शीर्णो ब्रतसंस्कारवर्जिते ।
अहानि सूतकं तस्य अब्दानां संख्यया स्मृतम् ॥१६

ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गो गृहेषु च ।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रं हि सूतकम् ॥१७

अनाथप्रेतसंस्कारं ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।
न तेषामशुभं किञ्चिद्विप्रेण सहकारिणा ॥
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शुद्धिरुदाहृता ॥१८

विनिवृत्ता यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
तदा विप्रेण द्रष्टव्या इति वेदविदो विदुः ॥१९

शूद्र को चतुर्गुण ब्राह्मण को धक देना चाहिए। और इसी वर्णित क्रम के अनुसार चारों वर्ण शुद्ध हो जाया करते हैं ॥१५॥ सातवें और आठवें मास में यदि गर्भ शीर्ण हो जाता है जो कि व्रत संस्कार से रहित सात या आठवें वर्ष में मृत हो जाता है तो वर्षों की संख्या के अनुसार ही उसका उतने दिन का सूतक होता है ॥१६॥ ब्राह्मणार्थ में अर्थात् ब्राह्मणों के हित में—नारियों की भलाई के लिये-गौओं के लिये और युद्धों में जो विपन्न हो जाते हैं अर्थात् मर जाया करते हैं उनका सूतक केवल एक रात्रि का ही होता है ॥१७॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य किसी अनाथ पुरुष के प्रेत संस्कार को करते हैं उन को कुछ भी अशुभ नहीं होता है। सहकारी विप्र के द्वारा जल में अवगाहन (स्नान) करने से ही तुरन्त उनकी शुद्धि बतलाई गयी है ॥१८॥ जब शूद्र विनिवृत्त होकर जल के समीप उपस्थित हो जाते हैं तब विप्र के द्वारा उन्हें देखना चाहिए, ऐसा वेदों के वेत्ता लोग कहते हैं ॥१९॥

३०—अपमृत्यु फल

भगवान् ब्राह्मणाः केचिदहमृत्युवशङ्गताः ।
कथं तेषां भवेन्मार्गः किं स्थानं का गतिर्भवेत् ॥१

किञ्च युक्तं भवेत्तेषां विधानञ्चापि कीदृशम् ।
तददं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे मधुसूदन ॥
प्रेतीभूते द्विजातीनां संभूते मृत्युवैकृते ॥२

तेषां मार्गं बिधि स्थानं विविधं कथयाम्यहम् ।
शृणु तार्क्ष्य परं गोप्यं कृतं दुर्मरणे तु यत् ॥३
लंघनैर्ये मृता विप्रा दंष्ट्रिभिर्धायिताश्च ये ।
कण्ठग्राहिविलग्नाश्च क्षीणाश्च गुरुघातिनः ॥४

वृकाग्निर्विषविप्रभ्यो विसूच्या चात्मघातकाः ।
पतनोद्बन्धनजले मृताश्च शृणु सस्थितम् ॥५
यान्ति ते नरके घोरे ये च म्लेच्छादिभिर्हताः ।
श्वशृगालादिभिः स्पृष्टा अदग्धाः कृमिसंकुलाः ॥६

उल्लङ्घितमृता ये च महारोगैश्च ये मृताः ।
लोकेऽसत्यास्तथा व्यङ्गा युक्ता. पापेन योषितः ॥७
चाण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च वृक्षादिपतनान्मृताः ॥८

उदक्यासूतकशूद्ररजकादिविदूषिताः ।
तेत पापेन नरकान्मुक्ताः प्रेतत्वभागिनः ॥९

तार्क्ष्य ने कहा—हे भगवान् ! कुछ ब्राह्मण यदि अप मृत्यु के वंशगत हो जाया करते हैं तो उनका मार्ग कैसे होता है-उनका क्या स्थान है और उनकी क्या गति हुआ करती है?उनके लिये क्या युक्त होता है और उनका विधान भी कैसा हुआ करता है ? हे मधुसूदन ! मैं अब यह श्रवण करना चाहता हूँ । आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये । द्विजातियों के प्रेत हो जाने पर और मृत्यु से विकृत होने पर क्या होता है ओर उस दशा में क्या करना चाहिए ? ॥१-२॥ श्री भगवान् ने कहा—उनका मार्ग–विधि और विविध स्थान मैं अब तुमको बतलाता हूँ । हे तार्क्ष्य ! तुम इसे सुनो, यह विषय बहुत ही गोपनीय है जो कि दुर्मरण करने पर होता है ॥३॥ जो विप्र लघन करके मृत हो जाते हैं और जो दाढ़ों वाले हिंस्र पशुओं के द्वारा

मार दिये जाते हैं,कण्ठ ग्राही विलग्न अर्थात् फाँसी लग कर जो मरते हैं-जो क्षीण होकर मरते हैं, जो गुरुओं की घात करने वाले हैं, वृक(भेड़िया), अग्नि और विप्रों से विसूच्य होते हैं तथा आत्मघात करने वाले हैं,गिर कर उद्बन्धन से और जल में जिनकी मृत्यु होती है उनकी जो स्थिति होती है उसे सुनो ॥४-५॥ जो म्लेच्छ आदि के द्वारा हत होते हैं वे घोर नरक में जाते हैं। कुत्ता-शृगाल आदि के द्वारा स्पर्श किये हुए-अदग्ध और कृमियों से संकुल और कीड़ों से घिरे हुए जो उल्लंघित मृत हो जाते हैं और जो महारोगों के द्वारा मृत्युगत होते हैं। लौक में जो असत्य हैं-व्यङ्ग हैं अर्थात् विगत अंग वाले हैं और स्त्रियों के पाप से युक्त हैं। चाण्डाल से-जल से-सर्प से-ब्राह्मण से —विद्युत् से—दाढ़ वाले जानवरों से—पशुओं से और वृक्षादि के ऊपर से गिर कर जो मृत होते हैं। उदक्या (रजस्वला स्त्री)-सूतक—शूद्र और रजक आदि से विदुषित हो जाते हैं। उस पाप से वे नरक से मुक्त होते हुए प्रेतत्व योनि के भागी हुआ करते हैं ॥६-९॥

न तेषां कारयेद्दाहं सूतकं नोदकक्रियाम् ।
न विधानं मृताद्यञ्च न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम ॥१०
तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् ।
सर्वलोकहितार्थाय शृणु पापभयापहाम् ॥११
षण्मासं ब्राह्मणस्याथ त्रिमासं क्षत्रियस्य च ।
सार्द्धमासं तु वैश्यस्य सद्यः शूद्रस्य सा भवेत् ॥१२
गङ्गायां यमुनायाञ्च नैमिषे पुष्करेषु च ।
तड़ागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमले जले ॥१३
वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे गृहे वा प्रतिमालये ।
कृष्णाग्रे कारयेद्विप्रैर्विधिं नारायणात्मकम् ॥१४

उनका दाह नहीं करे उनका कोई सूतक नहीं होता और न कोई उदक क्रिया ही होती है। इनका मृताद्य कोई विधान नहीं है और न और्ध्वदैहिक ही उनका कुछ कर्म करे। हे तार्क्ष्य ! उनके लिये नारायण बलि की क्रिया करनी चाहिए। यह समस्त लोक के हित के लिये

होती है और पापों के भय को अपहरण करने वाली है। इसका तुम श्रवण करो ॥११॥ ब्राह्मण की छै मास तक—क्षत्रिय की तीन मास—वैश्य की डेढ़ मास और शूद्र की वह तुरन्त ही होती हैं ॥१२॥ गङ्गा में—यमुना में—नैमिष में—पुष्कर में—जल से पूर्ण तड़ाग में अथवा जल वाले ह्रद में—वावड़ी में—कूप में—गौओं के गोष्ठ में अथवा देवालय में या श्री कृष्ण की प्रतिमा के आगे यह नारायणात्मक बलि की विधि विप्रों के द्वारा करानी चाहिए ॥१३-१४॥

पूर्णे तु तर्पणं कार्य्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकः।
सर्वौषधिकृत्तैश्चैव विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत् ॥१५
कार्य्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरेत् ॥१६
अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः।
अव्यय पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत् ॥१७
तर्पणस्यावसाने तु वीतरागो विमत्सरः।
जितेन्द्रियमना भूत्वा शुचिमान्धर्मतत्परः ॥१८
दानधर्मरतश्चैव प्रणम्य वाग्यतः शुचिः।
यजमानो भवेत्तार्क्ष्य शुचिर्बन्धुसमन्वितः ॥१९
भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु।
सर्वकर्मविधानेन एककार्य्यसमाहितः ॥२०
तो यव्रीहिपदान्दद्याद्गोधूमांश्च प्रियङ्गवान्।
हविष्यान्नं शुभां मुद्रां छत्रोष्णीञ्च चेलकम् ॥२१
दापयेत्सर्वशस्यानि क्षीरक्षौद्रसमन्वितम्।
वस्त्रोपानहसंयुक्तं दद्यादष्टविधं पदम् ॥२२

नारायण बलि के पूर्ण हो जाने पर पौराणिक और वैदिक मन्त्रों के द्वारा तर्पण करना चाहिए। सर्वौषधिकृत के द्वारा भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके तर्पण करे ॥१५॥ पुरुष सूक्त के द्वारा अथवा वैष्णव मन्त्रों के द्वारा दक्षिण की ओर मुख करके प्रेत विष्णु का स्मरण करे ॥१६॥

जिसका कभी आदि नहीं है और न कभी निधन ही होता है ऐसे शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले देव जो अव्यय हैं और पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले हैं वे भगवान् विष्णु प्रेत की मोक्ष के प्रदान करने वाले होवें ।।१७।। तर्पण के अन्त में वीतराग होने वाले अर्थात् वैराग्य युक्त—मात्सर्य से रहित—इन्द्रियों और मन के जीतने वाला होकर शुचिता से युक्त—धर्म में तत्पर होवे । दान और धर्म में रति रखने वाला होकर मौन व्रत वाला एवं शुद्ध हो प्रणाम करे । हे तार्क्ष्य ! यजमान बन्धुओं से युक्त शुचि होवे ।।१८-१९।। भक्ति-भाव से वहाँ पर एकादश श्राद्धों को करे । सम्पूर्ण कर्मों के विधान से एक ही कार्य्य में सावधान होकर रहे ।।२०।। जल व्रीहि और पदों को देवे । गोधूम और प्रियङ्गव—हविष्मान्न—शुभ मुद्रा—छत्र—उष्णीष—चेचल दिलावे । सभी धान्यों को देवे । क्षीर—क्षौद्र से समन्वित वस्त्र और उपानह से युक्त आठ प्रकार का पद देना चाहिए ।।२१-२२।।

दापयेत्सर्वविप्रेभ्यो न कुर्य्यात्पंक्तिवञ्चनम् ।
भूमौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ।।२३
दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्रप्रमाणतः ।
शङ्खे पात्रेऽथवा ताम्रे तर्पणञ्च पृथक् पृथक् ।।२४
वाताधारेण संयुक्तो जानुभ्यामवनीं गतः ।
स चादौ दापयेदर्घ्यं एकोद्दिष्टं पृथक् पृथक् ।।२५
आपो देवी मधुमती आदिपिण्डे प्रकल्पिता ।
उपयामगृहतोऽसि द्वितीये च निवेदयेत् ।।२६
येनापावकवामत्क तृतीये पिण्डकल्पना ।
ये देवा स चतुर्थे तु समुद्रं गच्छ पञ्चमे ।।२७
अग्निर्ज्योतिस्तथा षष्ठे हिरण्यगर्भश्च सप्तमे ।
यमाय त्वष्टमेज्ञेयं यज्जाग्रन्नवमे तथा ।।२८
दशमे याः फलिनीति पिण्डे चैकादशे ततः ।
भद्रं कर्णेभिरिति च कुर्य्यात्पिण्डविसर्जनम् ।।२९

कृत्वैकादशदैवत्यं श्राद्धं कुर्य्यात्परेऽह्नि ।
विप्रानावाहयेत्पश्चादर्घ्यं दद्याद्विशारद ॥३०

सभी विप्रों को दिलवाना चाहिए । इनमें पंक्ति भेद नहीं करे । भूमि में स्थित पिण्डों में वेद शास्त्र के प्रमाण से गन्ध—पुष्प और अक्षत से युक्त सभी विप्रों को देना चाहिए । शंख में—पात्र में अथवा ताम्र में पृथक्—पृथक् तर्पण करे ॥२३-२४॥ वाताधार से संयुक्त हो जानुओं (घुटनों) से भूमि पर गत होकर आदि में उसे अर्घ्य देना चाहिए । एको-द्दिष्ट में पृथक्-पृथक् अर्घ्य देवे ॥२५॥ आदि पिण्ड में "आपो देवी मधु-मती"—इससे प्रकल्पित करे और दूसरे पिण्ड में "उपयाम गृही तोऽसि" इससे निवेदन करना चाहिए ॥२६॥ "येना पावक वामक्त"—इससे तीसरे पिण्ड की कल्पना करे तथा "ये देवा स"—इससे चौथे पिंड को देवे । "समुद्रं गच्छ"—इससे पाँचवां पिंड देवे ॥२७॥ "अग्नि ज्योतिः"—इससे छटवाँ पिंड और "हिरण्य-गर्भश्च"—इससे सातवाँ पिंड निवेदित करे । "यमाय"—इससे अष्टम पिंड और "यज्जाग्रान्"—इससे नवम पिंड देवे ।२८। "याः फलिनी"—इससे दशवाँ और "भद्रं कर्णेभिः"—इससे एकादश पिंड का विसर्जन करना चाहिए ॥२९॥ इस प्रकार से एकादश करके दूसरे दिन में श्राद्ध करना चाहिए । विप्रों का आवाहन करना चाहिए और इसके पीछे विशारद को अर्घ्य देना चाहिए ॥३०॥

विद्याशीलगुणोपेतान्स्वकीयसुकुलोत्तमान् ।
अव्यङ्गांश्च प्रशस्तांश्च हि वर्ज्यान्किदाचन ॥३१
विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा ।
ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥३२
सीसकं तु भवेत्प्रेते अथवा दर्भकं तथा ।
यमाय त्वेति मन्त्रेण सहितं सामवेदिवम् ॥३३
अग्न आयाहि मन्त्रेण गोविन्दं पश्चिमे न्यसेत् ।
अग्निमीलेति मन्त्रेण पूर्वेणैव प्रजापतिम् ॥३४

इषेत्वा इति मन्त्रेण दक्षिणे स्थापयेद्यमम् ।
मध्ये च मण्डलं कृत्वा स्थाप्यो दर्भमयो नरः ॥३५

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो यमः प्रेतस्तु पञ्चमः ।
पृथक्कुम्भे ततः स्थाप्यं पञ्चरत्नसमन्विते ॥३६

वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ्मुद्रायुतानि च ।
जपं कुर्य्यात्पृथक्तत्र ब्रह्मादौ देवतासु च ॥३७

जो विप्र विद्या-शील और गुण से युक्त हों और अपने कुल में उत्तम हों तथा अव्यङ्ग एवं प्रशस्त हों उनको कभी वर्जित न करे । विष्णु की प्रतिमा सुवर्ण की बनवावे तथा रुद्र की प्रतिमा ताम्रमय करावे और ब्रह्मा चाँदी के निर्मित करावे तथा यम लौह का बनवावे । प्रेत में शीशा हो या दर्भों का होवे । "यमायला"—इस मन्त्र से साम वेदी को—"अग्न आयाहि"—इस मन्त्र से गोविन्द को पश्चिम में न्यस्त करे और "अग्नि मील" इस मन्त्र से पूर्व दिशा में प्रजापति को स्थापित करना चाहिए । ॥३१-३४॥ "इषेत्वा"—इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में यम की स्थापना करे और मध्य में मण्डल करके दर्भयम नर की स्थापना करनी चाहिए । ॥३५॥ ब्रह्मा-विष्णु-रूद्र-यम और पाँचवाँ प्रेत इनको इसके अनन्तर पाँच रत्नों से युक्त पृथक् कुम्भ में स्थापित करना चाहिए ॥३६॥ वस्त्र-यज्ञोपवीत मुद्रा से युक्त पृथक् रक्खे । वहाँ पर जब भी पृथक् करे जो कि ब्रह्मा आदि देवताओं के लिये है ॥३७॥

पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि ।
जलधारां ततः कुर्य्यात्पिण्डे पिण्डे पृथक् पृथक् ॥३८
शंखे वा ताम्रपात्रे वा अलाभे मृण्मयेऽपि वा ।
तिलोदकं समादाय सर्वौषधिसमन्वितम् ॥३९

आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिकाञ्च कमण्डलुम् ।
भाजनं भोज्यधान्यञ्च वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥४०

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्यं सदक्षिणम् ।
दद्याद्ब्राह्मणमुख्याय विधियुक्तं खगेश्वर ॥४१

ऋग्वेदपाठके दद्याज्जातशस्यां वसुन्धराम् ।
यजुर्वेदमये विप्रे गाञ्च दद्यात्पयस्विनीम् ॥४२
सामगाय शिवोद्देशे प्रदद्याद्वस्त्रधौतकम् ।
यमोद्देशे तिलान् लोहं ततो दद्याच्च दक्षणिाम् ॥४३
पश्चात्पुत्तलवकः कार्य्यः सर्वौषधिसमन्वितः ।
पलाशस्य च वृन्ताना भागं कृत्वा च काश्यप ॥४४
कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ।
शतत्रयषष्टियुतैर्वृतैः प्रोक्तोऽस्थिसञ्चयः ॥४५
विन्यस्य तानि वध्नीयात् कुशरङ्गे पृथक् पृथक् ।
चत्वारिंशच्छिरोभागे ग्रीवायाञ्च दश न्यसेत् ॥४६
विंशत्युरःस्थले देयं विंशतिर्जठरे तथा ।
ऊरद्वये शतं दद्यात कटिदेशे च विंशतिः ॥४७

विधि पूर्वक देवताओं के पाँच श्राद्ध करे । फिर पिंड पिंड पर पृथक् पृथक् जलधारा करे । शंख पर या ताम्रपत्र पर और इन दोनों के न होने पर मृण्मय पर सर्वौषधि से समन्वित तिलोदक लाकर हे खगेश्वर ! फिर मुख्य ब्राह्मण के लिये आसन-उपानह—छत्र—मुद्रिका—कमण्डलु–भाजन –भोज्य, धान्य और वस्त्र इस तरह आठ प्रकार का पद तिलों से परिपूर्ण ताम्र का पात्र जिसमें सुवर्ण और दक्षिणा भी हो, विधि पूर्वक दान दे ॥३८-४१॥ जो ऋग्वेद का पाठक ब्राह्मण हो उसे शस्यों को समुत्पन्न करने बाली भूमि का दान करे । जो यगुर्वेद का ज्ञाता विप्र हो उसे दूध देने वाली गौ का दान करे ॥४२॥ सामवेद के विद्वान द्विज को शिव के उद्देश्य से वस्त्रधौतक का दान देवे । यम के उद्देश्य से तिल—लौह और दक्षिणा का दान करना चाहिए ॥४३॥ हे काश्यप ! इसके अनन्तर सर्वौ-षधि से समन्वित, पुत्तलक बनाना चाहिए । पलाश (ढाक) के वृन्तों का भाग करे । कृष्ण अजिन (मृग चर्म) को बिछाकर एक पुरुष की आकृति के तीन सौ साठ अस्थियाँ कुशों से सञ्चित करे । इतनी हड्डियों का सञ्चय बताया गया है ॥४४-४५॥ उनका विन्यास करके अङ्ग में कुशों से

अलग-अलग बाँधे । चालीस शिरोभाग में—ग्रीवा में दशों न्यास करे। ॥४६॥ उरः स्थल में बीस—उदर में बीस—दोनों ऊरुओं में सौ और कटि देश में बीस अस्थियों का बन्धन करे ॥४७॥

दद्याच्चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये ।
दश पादांगुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत् ॥४८
नारिकेलं शिरःस्थाने तारं दद्याच्च तालुके ।
पञ्चरत्नं मुखे दद्याज्जिह्वायां कदलीफलम् ॥४९
अन्त्रेषु वालुकां दद्याद् वाह लीकं घ्राणे चैव हि ।
वसायां मृत्तिकां दद्याद्गोमूत्रं मूत्रके तथा ॥५०
गन्धकं धातवे देयं हरितालं मनःशिलाम् ।
यवपिष्टं तथा मांसे मधु शोणिते चैव हि ॥५१
केशेषु च जटाजूटं त्वचायाञ्च मृगत्वचम् ।
पारद रेतसः स्थाने पुरीषे पित्तलं तथा ॥५२
मनःशिलां तथा गात्रे तिलकल्कञ्च सन्धिषु ।
कर्णयोस्ताड़पत्रञ्च स्तनयोश्चैव गुञ्जकौ ॥५३
नासायां शतपत्रञ्च कमलं नाभिमण्डले ।
वृन्ताकं वृषणे दद्याल्लिङ्गे स्याद्गृञ्जनं शुभम् ॥५४
घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम् ।
मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुंकुमेन विलेपनम् ॥५५
कर्पूरा गुरुधूपैश्च शुभैर्माल्यैः सुगन्धिभिः ।
परिधाने पट्टसूत्रं हृदये रुक्मकं न्यसेत् ॥५६

शिश्न में चार—वृषभों में छै—पैर की अंगुलियों के भाग में दश अस्थियों का विन्यास करे । पुत्तल निर्माण करने के लिये शिरोभाग में नारियल दे, और तालु में तार दे । मुख में पाँचों रत्न और जिह्वा में केले का फल देना चाहिए ॥४८-४९॥ अन्त्रों में बालु का, घ्राण में वाह्लिक, वसा के स्थान में मृत्तिका तथा मूत्र स्थान में गौ मूत्र दे ॥५०॥ धातु के लिये गन्धक—हरिताल और मैनसिल देवे ।

मांस के स्थान पर यवपिष्ट और शोणित में मधु देवे ॥५१॥ केशों के स्थान में जटाजूट और त्वचा में भृग की त्वचा देवे। वीर्य के स्थान में पारद देवे तथा पुरीष के स्थान में पित्तल देवे ॥५२॥ सम्पूर्ण गात्र में मैनसिल और सन्धियों में तिल का कल्क देना चाहिए। कानों के स्थान में ताड़ पत्र तथा स्तनों में गुञ्जा फल लगाना चाहिए ॥५३॥ नासिका में शत पत्र और नाभि मण्डल में कमल—वृषण के स्थान में वृन्ताक (वैंगन) और लिङ्ग के स्थान में गृञ्जन(गाजर)देवे ॥५४॥ नाभि में घृत देवे और कौपीन में त्रपु देवे। स्तनों में मौक्तिक (मोती) तथा माथे में कुंकुम से विलेपन करना चाहिए ॥५५॥ कपूर-अगुरु और धूप देवे तथा सुगन्ध युक्त सुन्दर मालाओं से सुसज्जित करे। परिधान के लिये यह सूत्र देवे और हृदय में रुक्मक देवे ॥५६॥

ऋद्धि वृद्धिभुजौ द्वौ च मेत्रयोश्च कपर्दिकाम्।
सिन्दूर नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्युपहारकैः ॥५७
सर्वौषधियुतां प्रेतपूजां कृत्वा यथोदिताम्।
साग्निकैश्चापि विधिना यज्ञपात्राणि विन्यसेत् ॥५८
शन्नोदेवी पुनन्तु मे इमं मे वरुणेति च।
प्रेतस्य पावन कृत्वा शालग्रामशिलोदकैः ॥५९
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी।
महादानानि देयानि तिलपात्रं तथैव च ॥६०
ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता।
कर्त्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्तयर्थमात्मना ॥६१
प्रेतमोक्षं ततः कुर्य्याद्धरिं विष्णुं प्रकल्पयेत्।
त्वं विष्णुरिति संस्मृत्य प्रेतं तं मृतमेव च ॥६२
अग्निदाह ततः कुर्य्यात् सूतकं तु दिनत्रयम्।
दशाहं गतपिण्डाश्च कर्त्तव्या विधिपूर्वकम्।
सर्वं वर्षाविधि कुर्य्यादेवं प्रेतः स मुक्तिभाक् ॥६३

ऋद्धि, वृद्धि की दोनों भुजाऐं बनावे और नेत्रों में कौड़ी लगावे। नेत्रों के कोणों में सिन्दूर लगावे। ताम्बूल आदि उपहारों के द्वारा सर्वो-

षधि से युक्त यथोक्त प्रेत की पूजा करके साग्निकों के द्वारा विधि पूर्वक यज्ञ पात्रों का न्यास करना चाहिए ।।५७-५८।। "शन्नो देवी पुनन्तु मे" "इमं मे वरुण"–इन मन्त्रों से शालग्राम शिला के जल से प्रेत को पावन करके भगवान् विष्णु के उद्देश्य से अत्यन्त सीधे स्वभाव वाली दुधारू गौ का दान करे। महादान भी दे तथा तिल-पात्र का दान करे ।।५९-६०।। फिर वैतरणी का दान करे जो समस्त आभरणों से विभूषित हो। अपने द्वारा प्रेत की मुक्ति के लिये वैष्णव श्राद्ध करे ।।६१।। इसके अनन्तर प्रेत की मोक्ष को करे और हरि एवं विष्णु को प्रकल्पित करे। आप विष्णु हैं–ऐसा संस्मरण करके उस मृत प्रेत को ही अग्नि दाह करे। इस दाह का तीन दिन तक सूतक होता है। दशाह और गत पिंड ये सब विधि पूर्वक करना चाहिए। एक वर्ष की अवधि में होने वाला जितना भी कर्म कलाप हुआ करता है वह सभी इस प्रकार से करना चाहिए तो वह प्रेत मुक्ति के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है ।।६२-६३।।

३१—भूमि-स्वर्ण-गोदान फल

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ।।१
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।
शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ।।२
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः ।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।।३
अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं भूर्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः ।
लोकत्रयं तेनभवेत्प्रदत्तं यःकाञ्चनङ्गाञ्च महीं प्रदद्यात् ।।४
त्रीण्याहरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येते जयवापनदोहनात् ।।५
कृत्वा बहूनि पापानि रौद्राणि विपुलान्यपि ।
अपि गोदानमात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ।।६

अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यमिति वेद विदो विदुः ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—जिस प्रकार से सहस्रों धेनुओं में बछड़ा छूटकर अपनी ही माता के पास जाकर लगता है और उसी का दूध पीने लगता है उसी भाँति पूर्व जन्म-जन्मान्तर में किया हुआ कर्म उसके करने वाले को ही प्राप्त होता है अर्थात् उसे ही और अवश्य ही भोगना पड़ता है.॥११॥ आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, सोम, हुताशन, और भगवान् शूलपाणि भूमि के दान करने वाले का अभिनन्दन करते हैं ॥२॥ भूमि के दान के समान और भूमि के तुल्य निधि कोई भी नहीं है । सत्य के समान कोई धर्म नहीं और असत्य से बड़ा कोई पातक नहीं है ॥३॥ प्रथम अग्नि का अपत्य हिरण्य, वैष्णवी भू, सूर्यसुता गौ उसने लोकत्रय का दान कर दिया है जो काञ्चन,गौ और मही का दान किया करता है ॥४॥ जो गौ पृथ्वी और सरस्वती इन तीन दानों का आहरण करता है । ये जप,वापन और दोहन से नरक से उद्धार किया करते हैं ॥५॥ बहुत सारे महान् रौद्र एवं भीषण पापों को करके भी केवल एक गौ के दान से तथा भूमि के दान से मनुष्य शुद्ध हो जाया करता है ॥६॥ वेदों के विद्वान् लोगों का यही कथन है कि जो करने के योग्य कर्म नहीं है उस अकर्त्तव्य कर्म को प्राणों के कण्ठगत हो जाने पर भी कभी नहीं करना चाहिए और जो समुचित कर्त्तव्य है वही करना चाहिये ॥७॥

अधर्मप्रवर्त्तने वै पापं गोसहस्रवधतुल्यम् ।
वृत्तिच्छेदेऽपि तथा वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलम् ॥८
वरमेकापि स दत्ता न तु दत्तं गवां शतम् ।
एकां हृत्वां शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत् ॥९
स्वयमेव तु यो दद्यात्स्वयमेव तथा हरेत् ।
स पापी नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०
न चाश्वमेधेन तथा पूतः स्याद्दक्षिणावता ।
अवृत्तिकर्शिते दीने ब्राह्मणे रक्षिते यथा ॥११

न तद्भवति वेदेषु यज्ञे च बहुदक्षिणे ।
यत्पुण्यं दुर्बले विप्रे ब्राह्मणे परिरक्षिते ॥१२
ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च ।
युद्धकाले विशीर्य्यन्ति सिकतासेतवो यथा ॥१३
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥१४

अधर्म की ओर प्रवृत्ति के करने में ही एक सहस्र गौ के वध के समान पाप होता है । तथा वृत्ति के छेदन करने में भी ऐसा ही होता है । वृत्ति के करने में एक लक्ष धेनु के दान का फल प्राप्त होता है ॥८॥ एक गौ का दिया हुआ दान भी परम श्रेष्ठ होता है और सौ गौ का दान भी उतना श्रेष्ठ नहीं होता है । एक का हरण करके सौ का दान देना भी उसकी समता नहीं करती है ॥९॥ जिस गौ का दान स्वयं करे और स्वयं ही उसका हरण कर लेवे तो वह ऐसा पापी हो जाता है कि जब तक भूत सँप्लव होता है तब तक नरक में निवास करना पड़ता है ॥१०॥ बिना वृत्ति के कर्शित दीन ब्राह्मण के रक्षित करने पर जैसा जो महान् पुण्य होता है वह दक्षिणा से युक्त अश्वमेध यज्ञ के करने से भी पवित्र नही होता है ॥११॥ वेदों में बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञ में भी उतना पुण्य नहीं होता है जैसा कि किसी दुर्बल ब्राह्मण के परिरक्षण करने पर होता है ॥१२॥ ब्रह्म स्वरस से पुष्ट वाहन और बल युद्ध के काल में सिकता के सेतुओं के समान विशीर्ण हो जाया करते हैं ॥१३॥ अपने ही द्वारा दी हुई तथा किसी अन्य के द्वारा प्रदान की हुई भूमि का जो अपहरण किया करता है वह इस महापाप के प्रभाव से साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा का कीड़ा रहा करता है अर्थात् मल के कृमि के रूप में जन्म ग्रहण किया करता है ॥१४॥

ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।
तदेव चौर्य्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥१५
लोहचूर्णाश्मचूर्णञ्च विषञ्च जरयेद्बुधः ।
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥१६

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥१७

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे विद्याविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य भस्मन्यपि न हूयते ॥१८

संक्रान्तौ यानि दानानि हव्यकव्यानि यानि च ।
सप्तकल्पक्षयं यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ॥१९

प्रतिग्रहाध्यापनयाजनेषु प्रतिग्रहं श्रेष्ठतम वदन्ति ।
प्रतिग्रहाच्छुध्यति जाप्यहोमैर्न याजकं कर्म पुनन्ति वेदाः॥२०

नित्यजापी सदा होमी परपाकविवर्जितः ।
रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते ॥२१

किसी भी ब्राह्मण के धन को जो बड़े प्रेम से उपभोग किया करता है वह अपने सात कुलों का दाह कर दिया करता है। वह ही ब्रह्मस्व (ब्राह्मण का धन) यदि चोरी के रूप में उपभोग करता है तो वह जब तक चन्द्र और तारागण विद्यमान रहते हैं तब तक दाह किया करता है ॥१५॥ लोहे का चूर्ण तथा पत्थर के चूर्ण और विष को बुधपुरुष पचाजाते हैं किन्तु ब्रह्मस्व इतना उग्र होता है कि इसको तीनों लोकों में कौन पुरुष पचा सकता है ? अर्थात् ऐसा कोई भी शक्तिशाली नहीं है ॥१६॥ देवता के द्रव्य का विनाश कर देने से और ब्रह्मस्व के हरण करने से तथा ब्राह्मण का अतिक्रमण करने से कुल के कुल अकुलता अर्थात् विनाश को प्राप्त हो जाते हैं ।१७। विद्या से रहित विप्र में ब्राह्मणातिक्रम नहीं होता है। जलती हुई अग्नि का त्याग करके भस्म में हवन करने के समान ही विद्या-विहीन ब्राह्मण को दानादि करना होता है ॥१८॥ सक्रान्ति के अवसर पर जो दान होते हैं और जो हव्य-कव्य होते हैं उनका पुण्य फल का ऐसा प्रभाव होता है कि सात कल्पों का जब तक क्षय होता है तब तक वह दान दाता स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ॥१९॥ प्रतिग्रह, अध्यापन और याजन इनमें प्रतिग्रह सबसे अधिक श्रेष्ठ होता है। प्रतिग्रह से शुद्धि होती है और जाप्य, होमों से वेद याजक कर्म को पुनीत नहीं किया करते हैं।

॥२०॥ नित्य जप करने वाला, सदा होम करने वाला परिपाक से वर्जित रत्नों से परिपूर्ण पृथ्वी का भी प्रतिग्रह लेकर लिप्त नहीं होता है ॥२१॥

३२—विविध श्राद्ध कथन

जलाग्निविधिना भ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ।
इन्द्रियाणां विशुध्यर्थं दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥१
ऊनद्वादशवर्षस्य चतुर्वर्षाधिकस्य च ।
प्रायश्चित्तं चरेन्माता तथान्योऽपि च बान्धवः ॥२
अतो बालतरस्यास्ति नापराधो न पातकम् ।
राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३
रक्तस्य दर्शने जाते आतुरा स्त्री भवेद्यदि ।
चतुर्थें हविषं स्पृष्ट्वा वस्त्रं त्यक्त्वा विशुध्यति ॥४
आतुरे स्नानमुत्पन्नं दश कृत्वा ह्यनातुरः ।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धः स आतुरः ॥५
प्रत्यब्दं श्राद्धमथ ते कथयामि खगोत्तम ।
प्रत्यब्दं पार्वणेनैव कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसो ॥६
एकोद्दिष्टं प्रकुर्य्यातां प्रत्यब्दं प्रति केन तु ।
यदय हि मृतः साग्निः पुत्रो वापि तथाविधः ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—जल अग्नि की विधि से भ्रष्ट और प्रव्रज्या नाशक से च्युत जो हैं उनकी इन्द्रियों की विशुद्धि के लिये धेनु का दान करके तथा वृष को देकर करे ॥१॥ जो बारह वर्ष से कम हो और चार वर्ष से अधिक हो उसका प्रायश्चित उसकी माता को करना चाहिये या कोई उसका अन्य बान्धव भी कर सकता है ॥२॥ इससे छोटा जो बालक है उसका न तो कोई अपराध ही होता है और न कोई पातक ही हुआ करता है। ऐसे छोटे बालक को कोई भी राजा के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड का विधान नहीं होता है और न कोई प्रायश्चित ही हुआ करता है ॥३॥ रज के दर्शन होने पर यदि स्त्री आतुर हो जाती है तो चतुर्थ दिन में हवि का स्पर्श करके वस्त्र का त्याग करके वह शुद्ध हो

जाया करती है ।।४।। आतुर में उत्पन्न स्नान होता है। दश करके, अनातुर स्नान करके इसका स्पर्श करे । इसके अनन्तर वह आतुर शुद्ध हो जाता है ।।५।। हे खगोत्तम ! अब हम प्रति वर्ष होने वाले श्राद्ध के विषय में तुमको बतला रहे हैं। प्रति वर्ष पार्वण के द्वारा ही क्षेत्रज और औरस पुत्रों को श्राद्ध करना चाहिए ।।६।। प्रतिवर्ष किसी के द्वारा एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए । यदि यह मृत हो गया हो तो साग्नि पुत्र अथवा उसी प्रकार का पुत्र श्राद्ध करे ।।७।।

प्रत्यब्दं पार्वणं तत्र कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ ।
अनग्नय: साग्निका वा पितरोऽपि तथा मृता: ।।८
एकोद्दिष्टं तथा कार्य्यं क्षयाह इति केचन ।
दर्शकाले क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुन: ।।९
प्रत्यब्दं पार्वणं कार्य्यं तेषां सर्वैः सुतैरपि ।
एकोद्दिष्टमपुत्राणां पुंसां स्याद्योषितामपि ।।१०
कर्त्तव्ये पार्वणे श्राद्धे अशौचं जायते यदि ।
अशौचगमने प्राप्ते कुर्य्याच्छ्राद्धं तत: परम् ।।११
एकोद्दिष्टे च सम्प्राप्ते यदि विघ्न: प्रजायते ।
मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्यां कुर्य्याच्छ्राद्धं तथैव हि ।।१२
तूष्णीं श्राद्धञ्च शूद्राणां भार्य्यायास्तत्सुतेन वा ।
कन्यायाश्च द्विजातीनां मनुरेतद्विचक्षते ।।१३
एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः ।
मन्त्रेण स्नपनं कुर्य्याच्छ्राद्धं कुर्य्यात्पृथक् पृथक् ।।१४
पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य तत: पुन: ।
तृतीयस्य तत: पश्चात्सन्निपातेष्वयं क्रम: ।।१५

क्षेत्रज और औरस पुत्रों को प्रति वर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। चाहे पितर अनग्नि हों या साग्निक, जो भी मृत हो गये हैं उनका श्राद्ध करे ।।८।। कुछ विद्वानों का मत है कि एकोद्दिष्ट क्षय दिन में करे। दर्श काल में जिसका क्षय होता है, अथवा फिर प्रेत पक्ष में प्रतिवर्ष

उनके समस्त पुत्रों द्वारा पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। जिनके कोई भी पुत्र न हो उनका चाहे वे पुरुष हों या स्त्री हों सबका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये ॥६-१०॥ पार्वण श्राद्ध जो कि कर्त्तव्य है उस समय में यदि दैवात् कोई भी किसी प्रकार का अशौच हो जाता है तो उस अशौच के दूर हो जाने पर शुद्धि करके फिर श्राद्ध करना चाहिये ॥११॥ और एकोद्दिष्ट श्राद्ध के सम्प्राप्त होने पर यदि कोई अशौच आदि का ऐसा ही विघ्न आ जाता है तो फिर दूसरे मास में उसी तिथि में श्राद्ध करे किन्तु किसी भी दशा में समय टल जाने पर श्राद्ध का लोप नहीं करना चाहिये ॥१२॥ शूद्रों का श्राद्ध, भार्या का श्राद्ध अथवा उसके पुत्र द्वारा किया हुआ श्राद्ध, कन्या का श्राद्ध और द्विजातियों का श्राद्ध तूष्णी भाव से ही करना चाहिए—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥१३॥ एक ही समय में जिन बहुत से मनुष्यों का अथवा दो का देहान्त हुआ हो उनका मन्त्र के द्वारा स्वपन करे और पृथक्-पृथक् श्राद्ध करना चाहिये ॥१४॥ पहिले जो मृतक हुआ हो उसका पहिले और फिर दूसरे का, तीसरे का फिर एक साथ जिनका निपात हुआ हो उनका इसी क्रम से श्राद्ध करे ॥१५॥

३३—नित्य श्राद्ध कथन

नित्यश्राद्धे हि गन्धाद्यैर्द्विजानभ्यर्च्य शक्तितः।
सर्वान्पितृगणान्सम्यक्सदैवोद्दिश्य पूजयेत् ॥१
आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौ करणादिकम्।
ब्रह्मचर्य्यादिनियमान्विश्वेदेवांस्तथैव च ॥२
नित्य श्राद्धे त्यजेदेतान्भोज्यमन्नञ्च कल्पयेत्।
न दद्याद्दक्षिणाञ्चैव नमस्कारैर्विसर्जयेत् ॥३
देवानुद्दिश्य विश्वादीन्दद्याच्च द्विजभोजनम्।
नित्यश्राद्धं तदेवेति देवश्राद्धं तदुच्यते ॥४
मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्कर्माहन्येव पैतृकम्।
उत्तरेऽहनि वृद्धस्य मातामहगणस्य च ॥५

इसके अनन्तर नित्य श्राद्धों का विवेचन किया जाता है। भगवान् ने कहा—नित्य श्राद्ध में अपनी शक्ति के अनुसार गन्धाक्षत पुष्पादि

के द्वारा द्विजों का अभ्यर्चन करके समस्त पितृगणों का भली-भाँति उद्देश्य करके पूजन करना चाहिए ।।१।। आवाहन, स्वधाकार, पिण्डाग्नि में करणादिक, ब्रह्मचर्यादि नियम तथा विश्वेदेवाओं को इन सबको नित्य श्राद्ध में त्याग देना चाहिए और भोज्य अन्न की कल्पना करनी चाहिए । दक्षिणा नही देनी चाहिए केवल नमस्कार करके ही विसर्जन कर देवे ।।२-३।। विश्वादि देवों का उद्देश्य करके द्विजों को भोजन देवे । उसी को नित्य श्राद्ध कहा जाता है । अब देवश्राद्ध बतलाया जाता है ।।४।। माता का श्राद्ध पहिले होता है । दिन में ही पैतृक कर्म होता है । उत्तर दिन में वृद्ध और मातामह गण का श्राद्ध होता है ।।५।।

पृथग्दिने च शक्तश्चेदेकस्मिन्नेव वासरे ।
श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवव्रतत्रिकम् ।।६
पितृभ्यः कल्पयेत्पूर्वं मातृभ्यस्तदनन्तरम् ।
मातामहेभ्यश्च ततो दद्यादित्थं क्रमेण तु ।।७
मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे तु कुलान्विताः ।
पतिपुत्रान्विताः साध्व्यो योषितोऽष्टौ च भोजयेत् ।।८
इष्टापूर्त्तादिकारम्भे तदा श्राद्धं समाचरेत् ।
उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धदेव तु ।।९
नित्यं दैवं तथा वृद्धं काम्यं नैमित्तिकं तथा ।
श्राद्धान्युक्तप्रकारेण कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।।१०

अलग दिन में श्राद्ध करने की शक्ति न हो तो एक ही दिन में वैश्वदेव तीन व्रतों के तीनों श्राद्धों को कर देना चाहिए ।।६।। पहिले पितृगण के लिए और फिर मातृ वर्ग के लिये कल्पित करना चाहिए । इसके अनन्तर मातामह आदि के लिये इसी क्रम से श्राद्ध देना चाहिए ।।७।। माता के श्राद्ध में विप्रों के लाभ न होने पर कुलों से अन्वित तथा पति और पुत्रों से युक्त आठ परम साध्वी स्त्रियों को भोजन कराना चाहिए ।।८।। जब इष्टापूर्त्त आदि का आरम्भ हो उस समय में श्राद्ध करना चाहिए । उत्पात आदि निमित्तों के होने पर नित्य श्राद्ध की भाँति ही करना चाहिए ।।९।। नित्य श्राद्ध, दैव, वृद्ध, काम्य तथा नैमित्तिक श्राद्ध इतने प्रकार के होते हैं ।

इन सबको यथोक्त विधि-विधान से करने वाला मनुष्य अवश्य ही सिद्धि की प्राप्ति किया करता है ।।१०।।

३४—मनुष्यों के कर्म-विपाक कथन

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो गानाविधो नृणाम् ।
भोगसौख्यादिरूपञ्च बलं पुष्टिः पराक्रमः ।।१
सत्यं पुण्यवतां देव जायतेऽत्र परत्र च ।
सत्यं सत्य पुनः सत्यं देववाक्यं तु नान्यथा ।।२
धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् ।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः ।।३
एतत्सत्यं मया ज्ञातं सुकृताच्छोभनं भवेत् ।
यथोत्कृष्टतम पुण्यं तथा कृष्णपरो भवेत् ।।४
एकञ्च श्रोतमिच्छामि पापयोनिश्च जायते ।
येन कर्मविपाकेन यथा निरयभाग्भवेत् ।।५
यां यां योनिमवाप्नोति यथारूपः प्रजायते ।
तन्मे वद सुरश्रेष्ठ समासेनापि कांक्षितम् ।।६
शुभाशुभफलैस्ताक्ष्यं मुक्तभोगा नरास्त्विह ।
जायन्ते लक्षणैर्यैस्तु तानि मे शृणु काश्यप ।।७

गरुड़ ने कहा—मनुष्यों को किये हुए सुकृत के प्रभाव से अनेक प्रकार का स्वर्ग प्राप्त होता है। हे देव ! इस लोक में और परलोक में पुण्यशाली लोगों को भोग—सौख्य आदि स्वरूप वाला—बल—पुष्टि—पराक्रम और सत्य उत्पन्न हो जाता है। यह सत्य है और सर्वथा सत्य है और पूर्ण रूप से सत्य है—क्योंकि देव वाक्य कभी भी अन्यथा नहीं हुआ करते हैं ।।१-२।। धर्म की जय होती है अधर्म की नहीं होती-सदा सत्य की विजय होती है मिथ्या की कभी नहीं होती-क्षमा जयशील है क्रोध नहीं-विष्णु विजयी होते हैं असुर नहीं ।।३।। यह मैंने बिल्कुल जान लिया है कि सुकृत से ही भलाई होती है। जितना उत्कृष्टतम अर्थात् सबसे उच्चपुण्य होगा वैसा ही कृष्ण

परायण होगा ।।४।। अब मैं केवल एक बात और सुनना चाहता हूं कि जिस कर्म के विपाक से पाप योनि में उत्पन्न होता है और जिस प्रकार से वह नरक वास का अधिकारी बन जाता है ।।५।। जिस-जिस योनि को प्राप्त किया करता है और जिस रूप वाला होता है। हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! यह मेरा अभीष्ट प्रश्न है इसका उत्तर कृपा कर मुझे देवें ? ।।६।। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! इस संसार में शुभ और अशुभ कर्मों के फलों के त्याग कर देने से मनुष्य भोगों से मुक्त होते हैं। हे काश्यप ! जिन लक्षणों से वे उत्पन्न हुआ करते हैं उन्हें तुम अब मुझसे श्रवण करलो ।।७।।

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ।।८
प्रायश्चित्तेष्वजीर्णेषु यमलोके ह्यनेकधा ।
यातनान्ते विमुक्तास्ते अनेकां जीवसन्ततिम् ।।९
गत्वामानुषयोनौ तु पापचिह्ना भवन्ति ते ।
तान्यह तव चिह्नानि कथयिष्ये खगोत्तम ।।१०
गन्ददोऽनृतवादी स्यान्मूकश्चै व गवानृते ।
ब्रह्महा च क्षयी कुष्ठी श्यावदन्तस्तु मद्यपः ।।११
कुनखी स्वर्णहारी च दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ।
संयोगी हीनवर्णः स्यात्काकोऽनिमन्त्रभोजनात् ।।१२
दिगम्बरा दुराचारा सर्वदेवान्ननिन्दकाः ।
यान्ति ते नरके घोरे ये च मिथ्या वदन्ति हि ।।१३
अन्नं मय्युषितं विप्रे प्रयच्छन्कुब्जतां व्रजेत् ।
मात्सर्य्यादपि जात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन् ।।१४

आत्मवानों के लिये शासक गुरु है और दुरात्मा दुष्टों के ऊपर राजा शासन किया अरता है। इस संसार में जो छिप कर पाप कर्म करते हैं या जिनके पाप कर्म प्रकट नहीं होपाते हैं, उनका शासक यमराज हुआ करता है ।।८।। प्रायश्चितों के अजीर्ण रहने पर यमलोक में अनेक प्रकार से यातनाओं को भोगने के अन्त में अनेक जीवों की सन्तति से वे विमुक्त

होते हैं। फिर उन्हें मानुष योनि मिलती है तो उसमें भी वे पूर्व कृत पापों के चिह्नों से युक्त हुआ करते हैं। हे खगोत्तम ! अब हम उन पापों के चिह्नों को तुमको बतलाते हैं ॥६-१०॥ जो पहिले मिथ्याभार्षा होता है। गौओं के लिये अनृत बोलने वाला मूक (गूँगा) होता है। जो ब्राह्मण की हत्या करने वाला होता है वह क्षय रोग का शिकार होता है और कोढ़ी होता है। मद्य पीने वाला श्याव दन्त अर्थात् काले दाँतों वाला होता है ॥११॥ सुवर्ण के हरण करने वाला कुनखी (बुरे नाखूनों वाला) होता है। जो गुरु पत्नी गामी पहिले होता है वह दोष युक्त चर्म वाला हुआ करता है। जो संयोगी होता है वह हीन वर्ण वाला हुआ करता है। बिना निमन्त्रण के भोजन करने वाला काक (कौआ) होता है ॥१२॥ दिगम्बर (नंगे)—बुरे आचार वाले और समस्त देवों की निन्दा करने वाले और जो मिथ्या भाषण किया करते हैं वे घोर नरक में जाया करते हैं ॥१३॥ विप्र को पर्युषित (बासी) अन्न प्रदान करने वाले कुब्जता प्राप्त किया करते हैं। मात्सर्य (डाह) आदि से जात्यन्ध होता है और पुस्तकों का हरण करने वाला पुरुष जन्म से ही अन्धा होता है ॥१४॥

फलानि हि हरन्नित्यं म्रियते नात्र संशयः।
मृतो वानरतां याति तन्मुक्तो गलगण्डवान् ॥१५
अदत्तभक्षमश्नाति अनपत्यो भवेन्नरः।
बणिक्चैव महामूढ़ः सर्वदर्शननिन्दकः ॥१६
न जानाति धर्मतत्त्वं स पतेद्घोरसागरे।
हरन्स्वर्णं भवेद्नोधा गरदः पवनाशनः ॥१७
प्रव्रज्यागमनात्पक्षिन्भवेन्नरपिशाचकः।
चातको जलहर्त्ता च धान्यहर्त्ता च मूषकः ॥१८
अप्राप्तयौवनां सेव्य भवेत्सर्प इतिश्रुतः।
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेद्ध्रुवम् ॥१९
जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान्मत्स्यो भवेन्नरः।
अविक्रेयान्विक्रयन्वै विकाटाक्षो भवेन्नरः ॥२०

कुयोनिनिन्दको हि स्यादुलूकः स्त्रीप्रवञ्चनात् ।
मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वाभिजायते ।।२१

जो नित्य ही फलों का हरण करता है वह मर जाता है—इसमें संशय नहीं । फिर बानर की योनि प्राप्त करता है और इससे मुक्त होकर गलगण्ड रोग वाला हुआ करता है ।।१५।। जो बिना दिये हुए भक्ष पदार्थों को खा जाता है वह मनुष्य सन्तानहीन हुआ करता है और महा-मूढ़ बनिया होता है, जो समस्त दर्शनों की निन्दा किया करता है ।।१६।। वह धर्म के तत्त्व को नहीं जानता और उसका घोर सागर में पतन हो जाता है । सुवर्ण की चोरी करने वाला गोधा की योनि और विष देने वाला सर्प होता है ।।१७।। प्रव्रज्या के गमन से हे पक्षिन् ! नर पिशाच होता है । जल के हरण करने से चातक और धान्य के हरण से मूषक होता है ।।१८।। जिस नारी को यौवन की प्राप्ति न हुई हो उसका सेवन करने से सर्प की योनि प्राप्त होती है—ऐसा श्रुति कहती है । गुरुपत्नी के गमन की इच्छा वाला पुरुष निश्चय ही कृकलास होता है ।।१९।। जो मनुष्य जल के प्रस्रवण का भेदन करता है वह मत्स्य होता है । जो विक्रय न करने के योग्य पदार्थों का विक्रय करता है यह नर विकट नेत्रों वाला होता है ।।२०।। कुयोनि की निन्दा करने वाली स्त्री का प्रवञ्चन करने से उलूक (उल्लू) हुआ करता है । मृतक के ग्यारहवें दिन में भोजन करने वाला पुरुष कुत्ता की योनि प्राप्त किया करता है ।।२१।।

प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददञ्जम्बुको भवेत् ।
सर्पं हत्वा भवेद्दुष्टः शूकरो विड्वराहकः ।।२२
परिवादाद्द्विजातीनां लभते काच्छपीं तनुम् ।
लभेद्देवलकस्तार्क्ष्य योनिं चाण्डालसंज्ञकाम् ।।२३
दुर्भगः फलविक्रेता वृषश्च वृषलीपतिः ।
मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान्परमांसभुक् ।।२४
सोदर्य्यागमनात्षण्ढो दुर्गन्धश्च सुगन्धहृत् ।
यद्वातद्वापि पारक्यं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
हृत्वा वै योनिमाप्नोति तैत्तरीं नात्र संशयः ।।२५

एवमादीनि चिह्नानि अन्यान्यपि खगेश्वर ।
स्वकर्मविहितान्येव दृश्यन्ते मानवादिषु ॥२६

एवं दुष्कृतिकर्त्ता हि भुक्त्वा च नरकान्क्रमात् ।
जायते कर्मशेषेण ह्युक्तास्वेतासु योनिषु ॥२७

ततो जन्मशतं मर्त्यः सर्वजन्तुषु काश्यप ।
जायते नात्र सन्देहः समीभूते शुभाशुभे ॥२८

वचन देकर अर्थात् प्रतिज्ञा करके द्विजों को धन आदि न देने वाला गीदड़ होता है। सर्प का हनन करके मल खाने वाला शूकर हुआ करता है ॥२२॥ जो द्विजातियों की निन्दा किया करता है वह कछुआ का शरीर प्राप्त किया करता। हे ताक्ष्र्य ! जो देवलक (पुजारी) होता है वह चाण्डाल संज्ञा वाली योनि की प्राप्ति किया करता है ॥२३॥ फलों के विक्रय का करने वाला दुर्भागी और वृषली (शूद्रा) का पति वृष हुआ करता है। अग्नि को पैर से स्पर्श करने वाला मनुष्य मार्जार (बिल्ली) हुआ करता होता है तथा पर मांस का खाने वाला रोगी होता है ॥२४॥ सोदर्या अर्थात् सगी बहिन के साथ गमन करने से पुरुष षण्ढ (नपुंसक) होता है और सुगन्धित पदार्थों के हरण करने से दुर्गन्ध वाला होता है। जो कुछ भी दूसरे का थोड़ा हो या बहुत हो हरण करने से तैत्तरी योनि प्राप्त हुआ करती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२५॥ हे खगेश्वर ! इस प्रकार के पूर्व जन्म में किये हुए पापों के चिह्न होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी लक्षण होते हैं जो मानव आदि प्राणियों में अपने किये हुए कर्मों से ही हुआ करते हैं ॥२६॥ इस प्रकार से दुष्कर्मों के करने वाला प्राणी भोग कर और क्रम से नरकों की यातना सह कर शेष जो कुछ भी कर्म रह जाया करते हैं उनके भोगने के लिये इन निकृष्ट योनियों में जीवात्मा जन्म धारण किया करता है ॥२७॥ हे काश्यप ! फिर यह जन्तु सैंकड़ों जन्म धारण करके फिर शुभ-अशुभ कर्मों के समान होने पर इसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥

स्त्रीपुंसयोः प्रसङ्गे च विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पञ्चभूतसमोपेतः सुपुष्टः परमः पुमान् ।।२९
धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छा संहार एव च ।
प्रयत्नाकृतिवर्णाश्च रागद्वेषौ भवाभवौ ।।३०

तस्येदमात्मानः सर्वमनादेरादिमिच्छतः ।
स्वकर्मबद्धस्य तदा गर्भे वृद्धि हि विन्दति ।।३१
पुरा मया यथा प्रोक्तं तव जन्तोर्हि लक्षणम् ।
एवं प्रवर्त्तते चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे ।।३२

समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते तार्क्ष्य देहिनाम् ।
ऊर्ध्वा गतिस्तु धर्मेण नधर्मेण ह्यधोगतिः ।।३३
जायते सर्ववर्णानां स्वकर्माचरणात्खग ।
देवत्वे मानुषत्वे च दानभोगादिकाः क्रियाः ।।३४

यद्यदृदृश्य वैनतेय तत्सर्वं कर्मजं फलम् ।
कुकर्मविहितो घोरे कामक्रियार्जितेऽशुभे ।
नरके पतितो भूयो यस्योत्तारो न विद्यते ।।३५

स्त्री-पुरुष के प्रसंग होने पर तथा शुक्र और शोणित के विशुद्ध होने पर यह पाँच तत्वों से (पृथ्वी, आकाश, तेज, जल, वायु) समन्वित परम पुष्ट पुरुष जन्म लिया करता है ।।२९।। धारणा, प्रेरणा, दुःख, इच्छा संहार, प्रयत्न, आकृति, वर्ण, राग, द्वेष, भव, अभव, यह सब अनादि और आदि की इच्छा करने वाले अपने कर्म से बद्ध उसके समय गर्भ में वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।।३०-३१।। पहिले मैंने जो तुमको जन्तु के लक्षण बतलाये हैं । इस प्रकार से चार प्रकार से भूत ग्राम में यह चक्र चलता है ।।३२।। हे तार्क्ष्य ! देह धारियों की उत्पत्ति होती है और विनाश भी होता है । धर्म से गति ऊर्ध्व गामिनी होती है और अधर्म से अधोगति हुआ करती है ।।३३।। हे खग ! समस्त वर्णों की देवत्व और मानुषत्व में अपने कर्मों के आचरण से दान एवं भोग आदि की क्रिया होती हैं ।।३४।। हे वैनतेय ! जो-जो अदृश्य है वह सब कर्मों से जन्य फल होता

है। कुत्सित कर्मों से विहित काम क्रिया से अर्जित अशुभ एवं घोर नरक में पतित होता है जिसका फिर कोई प्रतिकार नहीं है ॥३५॥

३५—विविध पाप कथन

भगवन्देवदेवेश कृपया परथा वद।
दानं दानस्य महात्म्यं वैतरण्याः प्रमाणकम् ॥१
या सा वैतरणीनाम्नो यमद्वारे महासरित्।
यत्प्रमाणा च सा देवी श्रृणु तां मे भयावहाम् ॥२
शतोयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महानदी।
दुर्गन्धा दुस्तरा पापैर्द्दष्टमात्रभयावहा ॥३
पूयशोणिततोयाढ्या मांसकर्दमसंकुला।
पापिनंह्यागतं दृष्ट्वा नानाभयसमागतन् ॥४
दृश्यते सत्वरं तोयं पात्रमध्ये यथा घृतम्।
कृमिभिः संकुलं पूयं वज्रतुण्डैः समाहृतम् ॥५
शिशुमारैश्च मत्स्याद्यैर्वज्रकर्त्तरिकायुतैः।
अन्यैश्च जलजीवैश्च हिंसकैर्मांसभेदिभिः ॥६
तपन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा हि ते।
पतन्ति तत्र वै मर्त्या क्रन्दमानास्तु पापिनः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे देवों के भी देवेश्वर ! हे भगवन् ! आप अब परम कृपा करके दान और दान का माहात्म्य तथा वैतरणी का प्रमाण बतलाइये ॥१॥ श्री भगवान् ने कहा—जो वैतरणी नाम वाली एक महान् नदी है वह यमराज के द्वार पर है। उसका जितना प्रमाण है उसे तुम मुझसे श्रवण करो। वह वैतरणी देवी बहुत ही भय की देने वाली है ॥२॥ वह वैतरणी नदी सौ योजन के विस्तार वाली है पृथुत्व में वह एक सबसे बड़ी महानदी है। उस नदी में बहुत अधिक दुर्गन्ध आती है और वह बहुत ही कठिनता से पार किये जाने वाली है। पापियों को उसे देखने मात्र से ही बड़ा भय लगा करता है ॥३॥ उस वैतरणी नदी में पूय (मवाद) रक्त और जल भरा हुआ रहता है तथा मांस की कीचड़

भरी हुई है। आये हुये पापी को देखकर नाना प्रकार के भय आ जाते हैं ।।४।। उसमें शीघ्र ही जल ऐसा दिखलाई दिया करता है जैसे किसी पात्र में रखा हुआ। पूय कृमियों से घिरा रहता है तथा वज्रतुण्डों के द्वारा समाहृत होता है ।।५।। शिशुमार, मत्स्य आदि, वज्र कर्त्तरिका और अन्य मांस भेदी हिंसक जल के जीवों से वह वैतरणी परिपूर्ण रहती है ।।६।। वहाँ पर बारह सूर्य जिस तरह प्रलय के अन्त में तपा करते हैं वैसे ही ताप देते हैं। पापी लोग उसमें गिरते, रोते, चिल्लाते और क्रन्दन करते हैं ।।७।।

हा भ्रात पुत्रमातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः ।
प्रतरन्ति निमज्जन्ति तत्र गच्छन्ति जन्तवः ।।८

चतुर्विधैः प्रिणेगणैर्द्दष्ट्व्या सा महानदी ।
तरन्ति तत्र दानेन चान्यथा ते पतन्ति वै ।।९
मातरं येऽवमन्यन्ते आचार्य्यं गुरुमेव च ।
अवमन्यन्ति ते मूढ़ास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ।।१०

पतिव्रतां धर्मशीलां व्यूढ़ां धर्मे विनिश्चिताम् ।
परित्यजन्ति ये मूढ़ास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ।।११
विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ।
स्त्रीबालविकलादीनां छिद्रमन्वेषयन्ति हि ।
पच्यन्ते पूयमध्ये तु क्रन्दमानास्तु पापिनः ।।१२

प्राप्तं बुभुक्षितं विप्रं यो विघ्नायोपसर्पति ।
कृमिभिभक्ष्यते तत्र यावदाभूतसम्प्लवम् ।।१३
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः ।
यज्ञविध्वंसकश्चैव राज्ञीगामी च पैशुनी ।।१४

कथाभंगकरश्चैव कूटसाक्षी च मद्यपः ।
आहूय नास्ति यो ब्रूते तस्य वासोऽत्र सन्ततम् ।।१५

पापात्मा मनुष्तरणी में गिरते हैं, तब वे "हा भाई ! हा पुत्र ! हा माता !"—इस तरह बार-बार बुरी तरह प्रलाप किया करते हैं। उस

नदी में प्रतरण करते हैं--डुबकियाँ लगाते हैं और रुदन करते हुए जन्तु उसमें जाया करते हैं ॥८॥ वह महानदी चार प्रकार के प्राणियों से युक्त देखी जाती है। वहाँ पर दान से ही लोग उसे पार किया करते हैं अन्यथा वे सब उसमें गिर जाया करते हैं ॥९॥ जो अपनी माता का तिरस्कार किया करते हैं और आचार्य तथा गुरु का अपमान करते हैं उन महा मूढ़ मानवों का इस वैतरणी नदी में निरन्तर वास रहा करता है ॥१०॥ धर्म शीला-विवाहिता और धर्म में विशेष निश्चय वाली पतिव्रता पत्नी का जो त्याग कर देते हैं उन मूढ़ों का निवास इस वैत-रणी में सर्वदा रहा करता है ॥११॥ विश्वास में स्थित रहने वाले स्वामी–मित्र–तपस्वी–स्त्री–बालक और विकल आदि का जो छिद्र खोजा करते हैं वे महा पापी प्राणी क्रन्दन करते हुए पूय (मवाद) के बीच में पच्यमान होकर नारकीय यातनाऐं सहन किया करते हैं ॥१२॥ किसी भूखे ब्राह्मण को प्राप्त हो जाने पर जो विघ्न उपस्थित करता है वह वहाँ पर जब तक भूत-संप्लव होता है अर्थात् महा लय होता है तब तक कृमियों के द्वारा खाया जाया करता है ॥१३॥ जो किसी ब्राह्मण को प्रतिश्रुति करके फिर यथार्थ नहीं दिया करता है और जो यज्ञ का विध्वंस तथा राज्ञी का गमन करता और जो चुगली किया करता है—कथा का भंग करने वाला है—झूँठी गवाही देता है—मद्य पान करता तथा जो बुलाकर फिर भाषण नहीं करता है उस मनुष्य का वास भी इस वैतरणी में निरन्तर रहता है ॥१४-१५॥

अग्निदो गरदश्चैव स्वयं दत्तापहारकः।
क्षेत्रसेतुविभेदी च परदाराप्रधर्षकः ॥१६

ब्राह्मणो रसविक्रेता तथा च वृषलीपतिः।
गोधनस्य तृषार्त्तस्य विभेदं कुरुते तु यः ॥१७

कन्याविदूषकश्चैव दानं दत्त्वा तु तापकः।
शूद्रस्तु कपिलानो ब्राह्मणो मांसभोजकः।
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथाः क्वचित् ॥१८

कृपणो नास्तिकः क्षुद्रः स तस्यां निवसेत्खग ।
सदामर्षी सदा क्रोधी निजवाक्यप्रमाणकृत् ।।१९
परोक्तच्छेदको नित्यं वैतरण्यां वसेच्चिरम् ।
यस्त्वहङ्कारवान्पापः स्वविकत्थनकारकः ।।
कृतघ्नो विश्वासघाती वैतरण्यां वसेच्चिरम् ।।२०
कदाचिद्भाग्ययोगेन तरणेच्छा भवेद्यदि ।
सानुकूला भवेद् येन तदाकर्णय काश्यप ।।२१

अग्नि लगाने वाला—विष देने वाला—स्वयं दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला—क्षेत्र तथा सेतु (पुल) का भेदन करने वाला—पराई स्त्री के साथ प्रधर्षण (बलात्कार) करने वाला—ब्राह्मण होकर रस का विक्रय करने वाला—वृषली (शूद्रा) स्त्री का पति विप्र—जो गो धन का तथा प्यास से आर्त्त का विभेद करने वाला है—कन्या को विशेष रूप से दूषित करने वाला—दान देकर ताप देने वाला-शूद्र होकर कपिला गौ का पान करने वाला और ब्राह्मण होकर मांस खाने वाला—ये सब उस महा भयावह वैतरणी नदी में निरन्तर निवास किया करते हैं—इसमें कहीं भी कुछ अन्यथा विचार नहीं है ।।१६-१८।। हे खग ! जो कृपण है—नास्तिक है और क्षुद्र प्रकृति वाला है वह उस वैतरणी में वास किया करता है । जो सर्वदा क्रोध करने वाला है—अमर्ष करने वाला है और अपने ही वाक्य को प्रमाण मानने वाला है तथा जो दूसरे के कथन का छेदन करने वाला है वह नित्य ही वैतरणी में चिर काल तक निवास किया करता है जो बहुत ही अहंकार वाला और अपना विकत्थन करने वाला पापी है तथा कृतघ्नी और विश्वासघाती पुरुष होता है वह वैतरणी में बहुत समय तक निवास किया करता है ।।१९-२०।। कदाचित् भाग्य के योग से यदि तरण करने की इच्छा होती है तो जिसके द्वारा वह सानुकूल होती है उसे हे काश्यप! अब श्रवण करो।।२१।।

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।
चन्द्रसूर्य्योपरागे च संक्रान्तौ दर्शवासरे ।।२२

अयने पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम् ।
यदा कदा भवेद्वापि श्रद्धा दानं प्रतिध्रुवम् ।।
तदैव दानकाल: स्याज्जाता सम्पत्तिरस्थिरा ।।२३
अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वत: ।
नित्यं सन्निहितो मृत्यु: कर्त्तव्यो धर्मसञ्चय: ।।२४
कृष्णां वा पाटलां वापि दद्याद्वैतरणीं शुभाम् ।
हेमशृङ्गीं रौप्यखुरीं काँस्यपात्रोपदोहनीम् ।।२५
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम् ।
कार्पासद्रोणशिखरे आसीनं ताम्रभाजने ।।२६
यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्डसमन्वितम् ।
इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा तूडुपं दृढ़बन्धनै: ।।२७
उडुपोपरि तां धेनुं सूर्य्यदेहसमुद्भवाम् ।
कृत्वा विकल्पयेद्विद्वान्छत्रोपानत्समन्विताम् ।।२८

विषुव अयन, पुण्य व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्र और सूर्य केग्रहण, संक्रान्ति, दर्शवासर, अयन और पुण्य कालों में जो कुछ उत्तम दान दिया जाता है। अथवा जब कभी दान के प्रति श्रद्धा का भाव होता है वह ही दान का काल स्थिर सम्पत्ति हो जाती है ।।२२-२३।। ये शरीर भी अस्थिर है और विभव भी सदा रहने वाले नहीं होवे । मृत्यु नित्य ही सन्निहित रहा करता है इसलिये धर्म का सञ्चय अवश्य ही करे ।।२४।। इस महानदी वैतरणी से निस्तार पाने के लिये तारण कराने वाली वैतरणी गौ का दान करना चाहिए चाहे वह श्यामा गौ हो या पाटला हो। ऐसी किसी शुभ गौ का दान करे। गौ के सींग सुवर्ण से मण्डित हों और उसके खुर चांदी से मढ़े हुए होने चाहिए। उसके दोहन के लिये कांसे का एक पात्र भी उसके साथ देना चाहिए ।।२५।। कृष्ण वर्ण के दो पुत्रों से उसे आवृत करे। उसके साथ सात प्रकार के धान्य भी देवे। कार्पास द्रोण सिखर पर ताम्र पात्र में स्थित एक हेम (सोने का) यम बनावे जो लोह के दण्ड से युक्त हो। ईख के दण्डों से पूर्ण एक उडुप बनाकर उसे दृढ़ बन्धनों से बांध देवे। उस उडुप के ऊपर सूर्य देह से

समुत्पन्न उस धेनु को करके जो कि छत्र और उपानह से समन्वित हो, इसका दान किसी विद्वान् को देवे ।।२६-२८।।

अंगुरीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं संगृह्य सजलान्कुशाम् ।।२९
यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम् ।
तर्त्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीञ्च गाम् ।।३०
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पङ्क्तिपावन ।
सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौः ।।३१
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।३२
धर्मराजञ्च सर्वेशं वैतरण्याख्यकां तु गाम् ।
सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।३३
पुच्छं संगृह्य धेनोश्च अग्रे कृत्वा तु वै द्विजम् ।
धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये ।।३४
उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमो नमः ।
अनुव्रजेद्द्विजं यातं सर्वं तस्य गृहं नयेत् ।।३५

अंगुलीयक (अँगूठी) और वस्त्र जल के सहित कुशाऐं लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करता हुआ ब्राह्मण के लिये दान देवे ।।२९।। मन्त्र—यम के द्वार पर जो कि महान् घोर स्वरूप वाला है वैतरणी नदी का श्रवण करके मैं उससे पार होने की इच्छा वाला हूँ। इसीलिये इस वैतरणी गौ का दान तुमको करता हूं ।।३०।। हे द्विज श्रेष्ठ ! आप विष्णु के स्वरूप वाले हैं। आप भू मण्डल के देवता हैं और पंक्ति के पावन करने वाले हैं। इसलिये दक्षिणा के सहित यह वैतरणी गौ मैंने आपको दान में दी है ।।३१।। मेरी अभिलाषा है कि ये गौऐं मेरे आगे और पीछे रहें। मेरे हृदय में भी गौऐं निवास करे और मैं गोओं के मध्य में ही निवास किया करूँ ।।३२।। सबके ईश धर्मराज को और वैतरणी नाम वाली गौ को सबकी प्रदक्षिणा करके फिर पीछे ब्राह्मण को दान दे ।।३३।। फिर धेनु की पूँछ ग्रहण करके और ब्राह्मण को आगे करके

निवेदन करे कि हे धेनुके ! उस महान् भयानक यमराज के द्वार पर तुम मेरी प्रतिक्षा करना ॥३४॥ हे देवेशि ! महानदी से उत्तारण प्राप्त करने के लिये वैतरणी आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है उस द्विज के पीछे-पीछे गमन करे और सब कुछ उसके घर में प्राप्त करा देवे॥३५॥

एवं कृते वैनतेय सा सरित्सुखदा भवेत् ।
सर्वं कामानाप्नुवन्ति ददते ये च मानवाः ॥३६
सुकृतस्य प्रभावेण सुखञ्चेह परत्र च ।
स्वस्थे सहस्रगुणितं आतुरे शतसम्मितम् ॥३७
मृतस्यैव तु यद्दानं परोक्षे तत्समं स्मृतम् ।
स्वहस्तेन ततो देयं मृते कः कस्य दास्यति ॥३८
दानधर्मविहीनानां कृपणं जीवतं क्षितौ ।
अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं कर्म समाचरेत् ॥
अवश्यमेव यास्यन्ति प्राणाः प्राघूर्णिका इव ॥३९
इतीदमुक्तं तव पक्षिराज विडम्बनं जन्तुगणस्य सर्वम् ।
प्रेतस्य मोक्षाय तदौर्ध्वदैहिकं
हिताय लोकस्य शुभार्थबोधनम् ॥४०

हे वैनतेय ! इस प्रकार से करने पर वह महानदी सुख देने वाली हो जाती है । जो मनुष्य ऐसा दान करते हैं वे समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करते हैं ॥३६॥ सुकृत के प्रभाव से इस लोक में और परलोक में सुख होता है । स्वस्थ रहते हुए स्वयं जो भी कुछ सुकृत किया करता है उसका पुण्य फल सहस्र गुना होता है । आतुरावस्था में जो भी कुछ सुकृत कराया जाता है उसका पुण्य–फल सौ गुना होता है ॥३७॥ मृत हो जाने पर परोक्ष में जो दान-पुण्य उसके निमित्त किया जाता है वह उसी के समान बतलाया गया है । अतएव अपने हाथ से ही सदा दान-पुण्य करना या देना चाहिए—यही सबसे उत्तम है । मर जाने पर कौन किसके लिये दिया करता है ? ॥३८॥ जो मनुष्य दान और धर्म से विहीन हुआ करते हैं उनका जीवन इस भू मण्डल में कृपणता से पूर्ण होता है । यह शरीर तो सदा स्थिर रहने

वाला नहीं है अतएव इस शरीर से स्थिर कर्म जो दान-पुण्य है वह अवश्य ही करना चाहिए। ये प्राण तो अवश्य ही एक दिन मेहमान की भाँति चले ही जांयगे ॥३९॥ हे पक्षिराज ! यह मैंने तुमको सब जन्तुगण की विडम्बना बतलादी है। प्रेत की मुक्ति के लिये उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया—कलाप लोक के हित के लिये भी है और यह शुभ अर्थ का ज्ञान कराने वाला है ॥४०॥

एवं विप्राः समादिष्टं विष्णुना प्रभविष्णुना।
गरुड़ः प्रेतचरितं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसः ॥४१
व्रततीर्थादिकं पुण्यं पुनः पप्रच्छ केशवम्।
ध्वात्वा मनसि सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ॥४२
ऋषयः सर्वमेतत्तु जन्तूनां प्रभवादिकम्।
मया प्रोक्तं हि वै मुक्त्यै प्रेतस्य चौर्ध्वदैहिकम् ॥
निदानं वच्मि लोकानां हिताय परमौषधम् ॥४३
लाभस्तेषाँ जयस्तेषाँ कुतस्तेषाँ पराजयः।
येषामिन्दीबरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥४४
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवः।
येषामेवं स्थिरा बुद्धिर्न तेषाँ दुर्गतिर्भवेत् ॥४५
मंगलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनं हरिः ॥४६

सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! भगवान् विष्णु ने इस प्रकार समादेश किया। गरुण इस सम्पूर्ण प्रेत चरित्र को श्रवण कर परम सन्तुष्ट होगया था ॥४१॥ फिर मन में समस्त कारणों के भी कारण सर्व स्वामी का ध्यान करके व्रत, तीर्थ आदिक पुण्य कार्य के विषय में भगवान् से पूछा था ॥४२॥ हे ऋषिगण ! जन्तुओं का यह सब प्रभव आदि मैंने बतला दिया और प्रेत की मुक्ति के लिये देह के समाप्त हो जाने के बाद में होने वाला और्ध्वदैहिक कर्म भी कह दिया है। अब लोकों के हित के लिये जो निदान है और परम औषध स्वरूप है उसे बतलाता हूँ ॥४३॥ जिनके हृदय तल में इन्दीवर के समान श्याम वर्ण वाले भग-

वान् जनार्दन विराजमान रहते हैं उनको ही लाभ होता है—उनकी विजय होती है । ऐसे लोगों का पराजय तो कभी हो ही नहीं सकता है ॥४४॥ भगवान् विष्णु वस्तुत: माता-पिता और स्वजन एवं बान्धव हैं । जिन मनुष्यों की बुद्धि इस प्रकार की स्थिर रहा करती है उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है ॥४५॥ भगवान् विष्णु का स्वरूप मंगल-मय है और गरुड़ध्वज मगल रूप है । पुंडरीकाक्ष भी मंगल रूप हैं हरि पूर्णतया मंगलों के आधार हैं ॥४६॥

हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः :
भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेतज्जगत्त्रये ॥४७

सर्वेषाँ मंगलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥४८

इति गरुड़पुराणे प्रेतकल्पे प्रजानां
हितमभिहितमादौ सूतपुत्रेण पुण्यम् ।
क्रतुकरणगतानां नैमिषे सन्मुनीनां
श्रवणगतमकुर्वन् किं विजानाति मर्त्यः ॥४९

हरि-भागीरथी और विप्र तथा विप्र-भागीरथी और एवं हरि भागीरथी-हरि और विप्र तीनों जगत् श्री हरि भगवान् ने कहा—हमने यह गरुड़ पुराण विधि के साथ तुमको भली-भाँति समझा दिया है । इस परम पुण्यमय गरुड़ महा पुराण को जो भी कोई श्रद्धा-भक्ति के भाव से पढ़ता है और इसका श्रवण किया करता है वह पुरुष भी इस संसार के सर्वदा जन्म-मरण के आवागमन के बन्धन से मोक्ष प्राप्त कर भगवान् की सन्निधि में नित्य निवास किया करता है ॥५२॥

उपसंहार

परलोकवाद और स्वर्ग-नर्क

हिन्दू धर्म की विशेषताओं में से एक परलोकवाद भी है और वह भारतीय धर्म में प्रवाहित अध्यात्म धारा का एक सुदृढ़ प्रमाण है। हम सभी जानते हैं कि सामान्य मनुष्य का ध्यान मुख्य रूप से भोजन, वस्त्र, आवास, मनोरञ्जन आदि की तरफ जाता है और यदि उसकी ये आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं तो फिर उसे ईश्वर और परलोक आदि की याद कदाचित् ही आती है। यह हिन्दू धर्म के प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही महत्ता थी कि उन्होंने किसी प्रकार का भौतिक स्वार्थ न होने पर आत्म तत्त्व और उसके साथ ही परलोक तत्त्व को अच्छी तरह छान डाला और उसमें से ऐसे-ऐसे अमूल्य मणि-मुक्ता ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाले जिनके बल पर आज भी अध्यात्म-क्षेत्र में हमारा गौरव स्थिर है।

परलोक का सिद्धान्त पुनर्जन्म से सम्बन्धित है। जो लोग आत्मा की अमरता और उसके भिन्न-भिन्न स्थूल रूपों में प्रकट होने के विधान को समझ सकने में असमर्थ होते हैं, वे परलोक के स्वरूप को भी नहीं जान सकते। इसीलिये संसार के दो बहु प्रचलित धर्म ईसाई और मुसलमान स्वर्ग और नर्क का नाम लेने पर भी उनके विषय में किसी तरह का स्पष्ट वर्णन नहीं कर पाये। उन्होंने मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया, पर साथ में यह भी कहा कि शरीर से पृथक् होने के पश्चात् उसे एक शून्य स्थान में बन्द कर दिया जाता है। जब 'कयामत' आयेगी तो भगवान् सब मनुष्यों को अपने सामने खड़ा करके उनके कर्मानुसार दण्ड या पुरस्कार देंगे। सार रूप से यह बात सन्तोषजनक हो सकती है, पर इससे यह प्रकट नहीं होता कि इसके प्रचार करने वालों ने इस समस्या को ठीक तरह से समझा था। वास्तव में पुनर्जन्म को स्वीकार किये बिना आत्मा की अमरता और मरने के बाद शुभ तथा अशुभ कर्मों के फल भोगने की बात का कोई अर्थ ही नहीं है।

हिन्दू शास्त्रों में इस विषय का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। उसमें आत्मा की अमरता को एक अकाट्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है और बतलाया है कि वह विभिन्न योनियों में प्रकट होकर विकास की यात्रा को पूरा करती है। यह भारतीय मनीषियों की योग-दृष्टि की ही शक्ति थी कि उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि केवल मनुष्यों में ही नहीं पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तक में एक ही आत्म-तत्त्व व्याप्त है। उन्होंने जीवात्मा के रूप में उसकी पथकता भी स्वीकार की और यह भी कहा कि शुभ और अशुभ कर्मों के फल स्वरूप उसका उत्थान और पतन भी होता है। उन्होंने बताया कि मनुष्य में वह शक्ति है कि जिससे वह शुभ कर्म करते हुए चाहे तो भगवान्‌ के समकक्ष पदवी प्राप्त कर सकता है और साथ ही पाप-कर्म करके अपने को नाली के कीड़े की स्थिति तक भी गिरा सकता है। मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी शक्ति होने का विश्वास उसके लिये एक बहुत बड़ा संबल है और इसी के आधार पर यहाँ ऊंचे ऊंचे अध्यात्म शक्ति सम्पन्न महापुरुषों का आविर्भाव हो सका है।

मरणोपरान्त जीवन—

मरने के बाद आत्मा का क्या होता है और किस प्रकार वह उत्तम और नीच गति को प्राप्त होती है? इसके मूल का सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भिन्न-भिन्न विद्वानों ने उसका वर्णन विविध प्रकार से किया है जिसमें प्रत्यक्षतः बड़ा अन्तर जान पड़ता है 'कठोपनिशद्' में नचिकेता ने आत्म ज्ञान की जिज्ञासा करते हुये यम से पूछा था—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नाममस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥

अर्थात्—"मृतकों के सम्बन्ध में जो यह संशय है कि कोई कहता है कि मरने के पश्चात् आत्मा जीवित रहती है और कोई कहता है कि आत्मा भी जीवित नहीं रहती। मैं इसका वास्तविक रहस्य जानना चाहता हूँ और यही तीसरा वर आपसे मांगता हूँ।"

इससे विदित होता है कि अब से हजारों वर्ष पूर्व आर्य सभ्यता के आरम्भिक काल में ही ऋषियों को इस समस्या का निर्णय करना आवश्यक जान पड़ा था कि आत्मा अमर है या नाशवाश ? यदि अमर है तो मरने के पश्चात् उसको किन परिस्थितियों में रहना पड़ता ? 'कठोपानिषद्' के ऋषि ने इसका जो विवेचन किया, वह सर्वथा तर्क और बुद्धि सङ्गत है और इससे बढ़कर आत्मा के स्वरूप की व्याख्या करने में आज तक कोई समर्थ नहीं हो सका है। उन्होंने कहा—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चन्नि वभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।
अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहिते गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः ।।
(क० १-२-१८, २०)

अर्थात्—"आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, वह तो नित्य है। वह न किसी के द्वारा उत्पन्न हुआ है और न उसके द्वारा कोई उत्पन्न किया जाता है। वह तो अजन्मा, नित्य, सदा रहने वाला और सनातन है। शरीर के नष्ट किये जाने पर भी वह नहीं मरता ।।१८।। जो व्यक्ति प्राणी के हृदय के अन्तरतम भाग में निहित सूक्ष्मातिसूक्ष्म और विशाल परमेश्वर के अंश रूप इस जीवात्मा और उसकी महिमा को देख पाता है वही पूर्णतया कामना, दुःख और शोक से रहित होकर परमात्मा का कृपा पात्र होता है।"

वास्तव में आत्मतत्त्व इतना सूक्ष्म है कि मानवीय स्थूल इन्द्रियों अथवा यन्त्रों से उसको किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता, न प्रमाणित किया जा सकता है। हमारे ऋषियों के कथनानुसार तो वह मानवीय विचार-क्षेत्र से भी बाहर का विषय है इसलिये उन्होंने उसके विषय में स्वमतानुसार कुछ कह कर अन्त में 'नेति-नेति' कह दिया है। इसका आशय यही है कि आत्म तत्त्व इतना सूक्ष्म और साथ ही महान् है कि मानव बुद्धि उसे पूर्ण रूप से जानने का दावा कदापि नहीं कर सकती।

यही कारण है कि पुराणकारों ने इस विषय में तर्क, बुद्धि और प्रमाण के अतिरिक्त कल्पना से बहुत काम लिया और उसे ऐसा रूप दिया जिससे सामान्य व्यक्ति भी उसके सम्बन्ध में कुछ अनुमान कर उसे अपने जीवन-व्यहार में ला सके। जब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आत्मा अमर है और उसका लक्ष्य क्रमशः ऊँचा उठाना है, तो उन्होंने लोगों को वही शिक्षा दी है जो इस लक्ष्य के अनुकूल और स्वाभाविक है। योगियों ने अनेक अवसरों पर अपनी दिव्य-दृष्टि से भूत, वर्त्तमान और भविष्य की जानकारी प्राप्त करके उसे प्रकट भी किया है। इन सबके आधार पर ही पुराणों में आत्मा के उत्थान, पतन, शुभ-अशुभ कर्मों के परिणाम और स्वर्ग—नर्क के विषय में वर्णन किया है और उसी पर हमारे यहाँ की सामान्य जनता पूर्ण विश्वास रखती है।

'गरुड़-पुराण' की गणना परलोक वर्णन की दृष्टि से सर्व प्रथम है। यह मुख्य रूप से इसी के लिये प्रसिद्ध है और अनेक प्रदेशों की हिन्दू जनता द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमें अधिकांश यमलोक में पापियों को मिलने वाले कष्टों का वर्णन किया गया है और उनसे बचने के लिये दान आदि का विधान बतलाया गया है। इसके आधार पर अनेक आलोचकों ने इसका महत्त्व घटाने की चेष्टा की है और कहा है कि ये बातें दान के लोभी ब्राह्मणों की गढ़ी हुई हैं, इससे विश्वसनीय नहीं मानी जा सकतीं। यह तो हम भी जानते हैं कि पुराणों के वर्णन में अतिशयोक्ति की शैली से काम लिया गया है और अनेक स्थानों में कवि-कल्पना की बहार भी दिखाई गई है। पर इन कारणों से कोई तथ्य झूठा या सच्चा नहीं हो सकता। विद्वान् लोग बिना किसी कठिनाई के यह समझ सकते हैं कि उनका कितना अंश वास्तविक है और कितना कवि-कल्पना का। इस दृष्टि से विचार करके कितने हो आधुनिक विद्वानों ने मृत्यु की वास्तविकता और परलोक में जीव की स्थिति के सम्बन्ध में गहराई से विचार किया है और कितने ही एसे तथ्यों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो थोड़े-से हठधर्मी प्रवृत्ति वाले लोगों को छोड़ कर प्रायः सभी को उचित जान पड़ते हैं। यदि उनके विचारों का निष्पक्ष मनन किया जाय तो

मनुष्य की मृत्यु विषयक धारणा में बड़ा परिवर्तन हो जाता है और जो बात आज हमको एक बहुत बड़ी विपत्ति अथवा सर्वनाश की तरह जान पड़ती है वही एक स्वाभाविक और उपयोगी परिवर्तन की तरह प्रतीत होने लगती है। इसका विश्लेषण करते हुए एक विद्वान का कहना है—

"एक दृष्टिकोण से यह भी कहा जा सकता है कि मृत्यु वास्तव में शोक का अवसर न होकर आनन्द का विषय है। पर यह दृष्टिकोण तब प्राप्त हो सकेगा जब हम जीवन-मरण की समस्या को भौतिक देह की दृष्टि से नहीं, वरन् उसके भीतर निवास करने वाले 'देही' (आत्मा) की दृष्टि से देखने की कोशिश करेंगे। देही अथवा जीव का इस शरीर में रहना ऐसा है, जैसा किसी को चारों तरफ से खूब बाँध—छाँह देकर किसी अँधेरी कोठरी में बन्द कर देना इस शरीर रूपी कोठरी में जहाँ-तहाँ बहुत छोटी-छोटी, मैली-कुचैली खिड़कियाँ लगी हुईं हैं। जब जीव शरीर को छोड़कर बाहर निकल जाता है तो वह अपने आपको इन बन्धनों से पृथक् पाता है। यद्यपि इस शरीर के छूटने पर भी जीव के ऊपर और कई पर्दे (कोष) लगे रहते हैं,तो भी जो सबसे भद्दा स्थूल पर्दा है उससे उसकी रिहाई हो जाती है। इस प्रकार जीव की दृष्टि से इस शरीर का छूटना आनन्द का ही अवसर है।"

मनुष्य को पारलौकिक जीवन को समझने के लिये विभिन्न स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी आवश्यक है। यह तो सभी जानते हैं कि स्थूल शरीर नाशवान है, पर उसके नष्ट हो जाने पर भी दो अंश बचे रहते हैं एक 'जीवात्मा' (ईगो) और दूसरा 'आत्मा' (मोनाड)। तीसरा देहात्मक जीव (परसनैलिटी) कहा जाता है जो परिवतनशील है। मनुष्य के मृत्यु-काल और परलोक-जीवन का निर्णय बहुत कुछ इसके द्वारा होता है कि वह अपने इन तीन रूपों में से किस को प्रधानता देता है। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त लेखक का मत है—

"यदि हम स्वयं अपनी आत्मा के स्वरूप में जानने लगें, जैसा कि आत्मज्ञानी करते हैं, तो उस हालत में हम अपने आपको जन्म-मरण से बिल्कुल परे पायेंगे। उस स्थिति में हम भी भगवान् कृष्ण की तरह कह

सकते हैं कि न तो हम जन्म लेते हैं, न मरते हैं।" पर वह अभी हम लोगों के लिये बहुत दूर की बात है। ऋषि, महात्मा और तत्त्व ज्ञानी पुरुषों को ही ऐसा अनुभव प्राप्त होता है। हम तो अभी अपने आपको भली-भाँति जीवन के स्वरूप में भी नहीं जानते। यदि हम जानते होते तो मृत्यु हम लोगों को ऐसे भयंकर स्वरूप में नहीं दीख पड़ती। उस समय हम पुनर्जन्म की वास्तविकता समझते तथा मृत्यु को केवल एक परिवर्तन के रूप में समझते। आज कल हम इस सम्बन्ध में जो इतना अधिक दुःख अनुभव करते हैं उसका प्रधान कारण यही है कि अभी हम अपने को देहात्मक-जीव के रूप में ही जानते हैं।

पुनर्जन्म के प्रमाण-

इतना ही क्यों, आज कल संसार में ऐसे की भी कमी नहीं, जो 'जड़वाद' में ही विश्वास रखते हैं और पुनर्जन्म, परलोक आदि की बातों को 'भ्रम' या 'निरर्थक' बतलाते हैं। इनमें से कुछ तो 'विज्ञानवादी' बनने के लिये ऐसा भाव प्रकट करते हैं और कुछ विचार-शून्यता के कारण इस विषय पर कुछ सोच समझने की शक्ति ही नहीं रखते। पर इन दिनों एक तो कितने ही खोज करने वालों ने देश और विदेशों की पुनर्जन्म की ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है कि जिनकी प्रत्यक्षता से कोई इनकार नहीं कर सकता। और दूसरा प्रमाण उन बच्चों का है जो तीन चार वर्ष की आयु में ही बड़े-बड़े ग्रन्थों अथवा विभिन्न भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दी के दैनिक 'आज' के ८ मई १९४० के अङ्क में एक समाचार छपा था—

"कनारा जिला के एक गांव का लड़का जिसकी आयु मुश्किल से ६ वर्ष की होगी, शेक्सपियर के समस्त (३६) नाटकों के अध्याय के अध्याय मुँह जवानी सुना देता है। इस लड़के का नाम 'वेंकप्पा बुरुद' है। वह अँगरेजी, फ्रेंच, मराठी, तेलगू, हिन्दी, कोंकाणी आदि कई भाषाओं का का विद्वान् है। जिन लोगों ने उसको देखा है उन सभी ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि उसकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण है। वह ईसा के

५५ वर्ष से पूर्व से लेकर अबतक की सभी ऐतिहासिक घटनाओं पर काफी प्रकाश डालता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक परिस्थिति पर जब लोग उससे वार्तालाप करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो वह राजनीति का कोई आचार्य हो। बुरुद स्वयं अपनी इस विलक्षण प्रतिभा के विषय में उदासीन है। उसका कहना है कि 'एम० ए० उसने बहुत पहले कर लिया है।' अधिकांश व्यक्तियों की सम्मति है कि वह पूर्व जन्म में अच्छा विद्वान रहा होगा।"

इसी तरह अब से पचास-साठ वर्ष पूर्व जो 'मास्टर मदन' नाम का एक बालक हुआ था वह चार वर्ष की आयु में ही भारतीय सङ्गीत का उत्तम ज्ञाता बन गया था और बड़े-बड़े समारोहों में मन को मुग्ध करने वाला गायन करता था। वह राग रागनियों और सङ्गीत-शास्त्र की अनेक बारीक बातों के सम्बन्ध में अन्य सङ्गीताचार्यों से बात-चीत भी करता था जब कि हम देखते हैं कि अच्छे, समझदार बड़ी आयु के लड़के वर्षों तक अभ्यास करके 'सातों स्वरों' का ज्ञान और थोड़े से राग-रागनिया का अभ्यास कर पाते हैं, तब एक चार-पाँच वर्ष की आयु के बालक का सङ्गीत शास्त्र-मर्मज्ञ होना और इस क्षेत्र में बरसों तक नाम हासिल कर सकना सिवाय पूर्व जन्म की विद्या और प्रतिभा के और किसी तरह संभव नहीं जान पड़ता।

प्रेत-योनि का अस्तित्त्व—

'गरुड़—पुराण' का मुख्य विषय 'प्रेत-योनि' से सम्बन्धित है। अन्य पुराणों में भी प्रेतों के सैकड़ों उपाख्यान मिलते हैं। हम यह हर्गिज नहीं कहते हैं कि वे सब ज्यों के त्यों ठीक हैं या उस प्रकार की घटनायें अवश्य हुई हैं। वे तो सामान्य—जनता को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से किसी भी छोटी या बड़ी घटना को उपदेशप्रद कथाओं का रूप देकर प्रस्तुत किये गये हैं। पर अनेक लोग प्रेतों के अस्तित्त्व से ही इनकार करते हैं और उसे अनभिज्ञ व्यक्तियों का भ्रम अथवा कुछ लोगों की मनगढ़न्त बातें बतलाते हैं। ऐसे लोगों की सम्मति पर विचार करने

के लिये यह आवश्यक है कि 'प्रेत-योनि' के विषय में तथ्यों और तर्कों के आधार पर विवेचना की जाय।

सबसे प्रथम विचारणीय बात तो यह है कि यदि हम आत्मा के अमरत्व में विश्वास रखते हैं और उसका पुनर्जन्म होना भी मानते हैं तो यह भी पता लगाना होगा कि क्या प्रत्येक मनुष्य मरने के पश्चात् उसी समय दूसरा जन्म ले लेता है। अभी तक जिन बालक—बालिकाओं ने अपने पूर्व जन्म की घटनायें बतलाई हैं उनकी जाँच करने से ज्ञात हुआ है कि यप्रः सभी मृतात्माओं के जन्म लेने में गर्भकाल के नौ महीने से कुछ महीने या वर्षों का अधिक समय लगा है। इससे विदित होता है कि वे आत्माऐं बीच के समय में किसी अन्य स्थान में रहती हैं। यह कोई जरूरी बात नहीं कि उनके रहने के दूसरे स्थान पृथ्वी की तरह ठोस (स्थूल रूप वाले) हवा, पानी, वनस्पति, आवास गृह आदि से युक्त हों। मरने के बाद आत्मा जिस सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित रहती है वह स्वयं छाया की तरह, वायु से भी हलका रहता है, इसलिये उसे टिकने के लिये किसी स्थूल जगत् की तनिक भी आवश्यकता नहीं होती। ये स्थान किस तरह के होते हैं अथवा छाया शरीरी आत्माऐं किस स्थति में रहती हैं इस सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के अभिमत प्रकट किये हैं। उनमें से दो-तीन का सारांश नीचे दिया जाता है—

"परलोक-जीवन के रहस्य को समझने के लिये तीन विषयों का कुछ ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है—(१) स्वर्ग-नरक अर्थात् प्राकृतिक लोकों से क्या अभिप्राय है? (२) मनुष्य की आध्यात्मिक रचना कैसी है? (३) क्रम से मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् जीवन व्यतीत करना पड़ता है?

"मृत्यु के बाद के जीवन को समझने के लिये नीचे के तीन लोकों—भूः, भुवः और स्वः की स्थिति को कुछ अधिक स्पष्ट समझना आवश्यक है, साधारणतः हमारे जीवन का विशेष सम्बन्ध इन्हीं तीन लोकों से रहता है। भू- लोक के दो प्रधान विभाग हैं—स्थूल और सूक्ष्म। इसके सूक्ष्म विभाग को 'ईथरिक विभाग' भी कहते हैं। भुवःलोक के भी तीन प्रधान विभाग हैं, लेकिन उनके विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है। इसी

भुवर्लोक के कुछ भाग को 'नरक' कहते हैं। स्वर्लोक के भी दो विभाग हैं —सूक्ष्म और स्थूल। स्थूल विभाग को रूप-विभाग या स्वर्ग कहते हैं और सूक्ष्म विभाग को 'अरूप विभाग' कहते हैं।

'वैज्ञानिक दृष्टि से मृत्यु का तात्पर्य स्थूल तथा छाया-देह के सम्बन्ध विच्छेद से है। समस्त जीवन में यह सम्बन्ध सदा लगा रहता है, केवल मृत्यु के द्वारा ही छूटता है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि मृत्यु का समय मनुष्य के लिये बहुत महत्त्व का होता है। भगवान् कहते हैं कि मरने के समय जिसका जैसा भाव होता है वह वैसी ही गति को प्राप्त करता है—

यं य वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद् भाव भावितः

(गीता८-६)

अर्थात् हे अर्जुन! अन्त समय में जो जिसको स्मरण करता हुआ शरीर-त्याग करता है, उसी भाव से सदा भावित होने के कारण वह उसी के पास पहुंच जाता है।"

"आधुनिक अनुसंधान करने वाले मनीषियों ने पता लगाया है कि अन्त समय के महत्त्व का प्रधान कारण यह है कि मृत्यु के कुछ देर पहले प्राकृतिक रूप से मनुष्य में ऐसी शक्ति आ जाती है, जिसकी वजह से जन्म से लेकर मरने के दिन तक की अपनी सारी कार्यवाहियों और सारे सम्बन्धों को वह देख सकता है। इस लोक से प्रस्थान करने के पूर्व जीव मानो अपने इस जन्म-मरणके लेखे का हिसाब-किताब समझता है। अपनी कारवाईयों का महत्त्व पूर्ण सिंहावलोकन करता है। इस कारण अपने सभी जीवन-कृत्यों का निचोड़ उसके हृदय में बैठ जाता है और उसी के अनुसार उसकी गति होती है। इस लिये किसी की मृत्यु होते समय हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम मृतक के समीप हल्ला—गुल्ला और रोना-पीटना न कर उसके समीप शान्तिपूर्ण तथा उच्च भावों से पूर्ण वातावरण बनाये रखें।

"भगवत् वाणी" पुस्तक के लेखक ने इस सम्बन्ध में कहा है—"इस पृथ्वी से एक करोड़ मील की दूरी पर सात नरक लोक हैं। इनमें पापियों को दण्ड देने की व्यवस्था है। वे साधारण नहीं है और उनमें अत्यन्त तीव्र यन्त्रणा दी जाती है। मृत्यु के बाद मनुष्य का स्थूल शरीर यहीं छूट जाता है और वह सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में पहुँच जाता है। इस सूक्ष्म-देह में उसके तीन धड़ और तीन ही मस्तक होते हैं, पर तीनों में पैर केवल दो ही होते हैं। कर्त्तव्यनिष्ठ और पवित्रात्मा सीधे स्वर्ग को चले जाते हैं। जिन्होंने संसार में सामान्य जीवन बिताया है और कोई बड़ा पाप नहीं किया है वे पुनः पृथ्वी पर ही जन्म ग्रहण करते हैं। पापियों को प्रेत योनि में लाखों वर्ष तक लुढ़कना पड़ता है और उसके बाद भी उसको तरह-तरह की योनियों में जन्म और मृत्यु की शृंखला में भ्रमण करना पड़ता है।"

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

'गरुड़ पुराड़' में प्रेतों के बहुत से उपाख्यान दिये गये हैं जिनमें उनके वीभत्स स्वरूप और क्रूर कर्मों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। पर उसमें अतिशयोक्ति का विशेष पुट होने के कारण हम एक आधुनिक विद्वान पं० रामदास गौड़ एम० ए० के लेख के आधार पर प्रेतों के स्वरूप का विवेचन करेंगे। पंडित जी विज्ञान के प्रोफेसर थे और बहुत वर्षों तक सुप्रसिद्ध 'विज्ञान' मासिक पत्र का सम्पादन करते रहे थे। उन्होंने अनेक प्रकार की परीक्षायें करके तथा अन्य विदेशी लेखकों के मत का विश्लेषण करके प्रेतों के विषय में कुछ मुख्य बातें प्रकट की थीं—

"स्थूल देह धारियों की भाँति सूक्ष्म देहधारी प्रेत भी शब्द उच्चारण करते हैं, पर वे हमको सुनाई नहीं पड़ते। कारण जिस तरह उनका शरीर सूक्ष्म होता है उसी प्रकार उनका वायु-मण्डल भी सूक्ष्म होता है, जिसका स्पन्दन हमारे कानों तक नहीं पहुँचता। पर किसी-किसी व्यक्ति को प्रेत का शब्द सुनने और उसका रूप देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उस समय उनको जो सुनाई या दिखाई देता है, वह उन्हीं के पास बैठे दूसरे मनुष्य को कुछ भी मालूम नहीं देता।

प्रेत शरीर की स्पर्श शक्ति भी हमारी स्पर्श शक्ति से भिन्न है। हम तो स्पर्श से ठण्डे गरम और कड़े-नरम का पता लगाते हैं, पर किसी व्यक्ति पर प्रेतावेश होने की अवस्था में देखा जाता है कि आविष्ट शरीर के पास की वायु को मारने और काटने का भी प्रभाव पड़ता है। इससे यह अनुमान होता है कि प्रेत शरीर के सर्वाङ्ग में समाया रहता है तब उसका कुछ अंश त्वचा के बाहर भी फैला रहता है। पर यह भी देखा जाता है कि जब अंशावेश होता है तब मनुष्य स्थूल शरीर के किसी एक अङ्ग में ही प्रेत शरीर संकुचित हो जाता है। इससे यह जान पड़ता है कि साधारणतया प्रेत शरीर स्थूल शरीर से बड़ा और वायु की तरह फैलने और सिकुड़ने वाला होता होगा। प्रेत शरीर का विवेचन करते समय यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस प्रकार प्रेतावस्था का वायु मण्डल सूक्ष्म होता है उसी प्रकार उसके पृथ्वी,जल,अग्नि तथा प्रकाश आदि तत्त्व भी सूक्ष्म होते हैं।

परलोक-विज्ञान के ज्ञाताओं ने प्रेतों के रूप-दर्शन की विधि भी निकाली है और उनके फोटो लिये हैं। यातना-भोगी नीच-प्रेतों के रूप बड़े भयंकर होते हैं, परन्तु अच्छे प्रेत अधिक सौम्य रूप के होते हैं। यह सच है कि परलोकवादी-चक्रों में प्रेतों का रूप देखना सम्भव होता है, पर यह हर्गिज नहीं कहा जा सकता कि प्रेतों का जो रूप देखने में आता है वह उनका वास्तविक रूप ही होता है।

प्रेत अंधकार और उजाला—दोनों में बराबर देख सकते हैं, क्योंकि प्रेतों के विचरने का समय घनघोर अँधेरी रात्रि भी होती है और दिन की चिलचिलाती दोपहरी भी। पूर्ण और अल्प आवेश के अवसर पर प्रेतों ने यह प्रमाण दिया है कि वे मनुष्यों से कहीं अधिक देखने की शक्ति भी रखते हैं।

नीच प्रकृति के प्रेत गन्दी से गन्दी चीज खाने में भी घृणा नहीं करते। ऊँची प्रकृति वाले प्रेत शुद्ध, सात्त्विक पदार्थ पसन्द करते हैं। परन्तु यह नियम व्यापक नहीं है। आवेश के रूप में लगने वाले प्रेतों का कभी बिश्वास नहीं किया जा सकता। मानव-संसार में यदि झूठा प्रदर्शन करने

वाले सौ में से नब्बे होंगे तो प्रेत-संसार में निन्यानवे से भी अधिक होंगे। जो प्रेत रक्त, मांस, मज्जा के भीतर रहता है, वह भी अपनी जाति ब्राह्मण बताकर अपने लिये शुद्ध और पवित्र भोजन माँगता है। इस प्रकार वह यह दिखलाना चाहता है कि हम इस प्राणी के शरीर में रहते अवश्य हैं पर इसका खून नहीं चूसते और न इसको किसी प्रकार की हानि पहुंचाते हैं। परन्तु उनका कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रेत योनि अहङ्कार-प्रधान और अत्यन्त मक्कार होती है।

"किसी के स्थूल शरीर में आविष्ट होकर प्रेत तोल में अत्यधिक खा सकता है, परन्तु अपने प्रेत शरीर से वह खाद्य-पदार्थ का केवल रस ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि प्रेतग्रस्त परिवार की रसोई स्वादिष्ट नहीं होती और उसकी पौष्टिकता भी नष्ट हो जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रेत केवल भोजन की गन्ध ग्रहण करते हैं, पर यह ठीक नहीं, वे भोजन का सार ग्रहण कर लेते हैं और सीठा छोड़ देते हैं, जिसमें फिर कोई तत्त्व नहीं रह जाता।

"वैज्ञानिकों ने प्रेतों की गति-सम्बन्धी परीक्षाऐं भी की हैं। उनका वेग प्रति सेकेण्ड ५०० से २००० मील तक होता है। प्रेत उड़ते हैं, दौड़ते नहीं। फिर भी यह नहीं कह सकते कि उनके पैर नहीं होते। इसी प्रकार पङ्ख होना भी प्रत्येक प्रेत के लिये आवश्यक नहीं।

"क्रोध और अहङ्कार की मात्रा प्रेतों में अन्य सभी योनियों के प्राणियों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। मरने के बाद प्रेतयोनि में सभी वृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। अतः जिस प्रकार अतृप्त वासना के कारण प्रेत, मनुष्य शरीर में आवेश करता है, उसी तरह जीवित—काल में उसका जिन व्यक्तियों से झगड़ा होता है, मरने के बाद भी वह उनको ढूँढ़ता और हानि पहुंचाने की भरपूर चेष्टा करता है। प्रेत का प्रेम भी अच्छा नहीं होता। वह अपने प्रेम पात्र के शरीर में घर कर लेता है और निरन्तर उसके साथ रहता है। कभी-कभी उसका प्रेम इतना बढ़ जाता है कि उसे जीवित व्यक्ति को मार कर और प्रेत बनाकर साथ रखने की

उत्कट कामना हो जाती है। इसलिये वह अपने प्रेम पात्र को मार डालने का प्रयत्न करने लगता है।

यद्यपि वैज्ञानिक बिना परीक्षा किये भूत—प्रेतों के सभी किस्सों को सत्य नहीं मानते, क्योंकि उनमें से बहुतों का कारण हमारे दिमाग की खराबी या भ्रम हुआ करता है, तो भी पहिले जमाने की तरह अब वे कोरे 'जड़वादी' नहीं रहे हैं। वे यह जान गये हैं कि जिस प्रकार स्थूल पदार्थों का कभी नाश नहीं होता केवल स्वरूप बदल जाता है, उसी प्रकार शक्ति का भी नाश नहीं होता। कोयला, तेल, भाप बिजली आदि को जो शक्ति मशीनों को चलाती है, उसका उसी समय अन्त नहीं होजाता, वरन् अपना काम पूरा करदेने के बाद भी वह किसी दूसरे रूप में बनी रहती है।

संसार में पाये जाने वाले सभी पदार्थों का निर्माण सूक्ष्म अणुओं से हुआ है। इनमें प्रत्येक अणु के दो भाग होते हैं—एक कोष(सेल)और दूसरा शक्ति (फोर्स)। जब किसी अणु का कोष जीर्ण होकर नष्ट होजाता है तो उसकी शक्ति दूसरे कोष में प्रविष्ट हो जाती है। इस नये कोष को पुराना कोष अपनी जीवितावस्था में ही तैयार करता रहता है। उत्पत्ति और परिवर्तन का जो क्रम एक सूक्ष्म अणु में पाया जाता है वही हमारे शरीर और जीवात्मा का भी है। इस बात को यों भी समझाया जा सकता है कि हमारे शरीर में ही अणुओं के नष्ट होने और बनने के रूप में असंख्यों जन्म,मृत्यु और परिवर्तन नित्य प्रति होते रहते है। अन्त में एक दिन ऐसा आता है जब अणुओं के नष्ट होने का परिमाण बढ़कर हमारा समस्त शरीर ही उसी प्रकार के रूपान्तर की स्थिति को प्राप्त होजाता है। प्रथम प्रकार का परिवर्तन अर्थात् अणुओं का जन्म-मरण अत्यन्त सूक्ष्म रूप में होता है और इसलिये हम उसे अनुभव नहीं कर पाते, पर दूसरे प्रकार का परिवर्तन अर्थात् प्राणी के शरीर का जन्म और मरण ऐसा स्थूल विषय है जिसे हम सहज में देख और समझ सकते हैं।

इस विवेचन से यह परिणाम निकलता है कि वस्तुओं का जो बाहरी स्वरूप हमको दिखलाई देता है वास्तविक नहीं है। हम किसी प्राणी की उत्पत्ति और उसके लय हो जाने को मरण या सर्वथा नाश होना समझते

हैं वह भ्रम पूर्ण अथवा बहुत ही अपूर्ण ज्ञान का परिचायक है। वास्तव में हमारी शक्ति अथवा शरीर को बनाने वाले अणुओं का नाश जन्म काल से ही होने लगता है। पर जब वह नष्ट होना चरम सीमा पर पहुंच जाता है और एक साथ होता दिखलाई पड़ता है तब हम उसे 'मृत्यु' कह देते हैं।

कर्मों के संस्कार और प्रारब्ध—

अब हम इस बात को समझ सकते हैं कि यह संसार मूल रूप से अविनाशी है और इसमें हमको जो छोटे या बड़े परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं उनका आशय किसी पदार्थ या शक्ति का पूर्णतया नष्ट होना नहीं है, वरन् एक प्रकार का रूपान्तर होना ही है। इसके पश्चात् स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक शरीर के नष्ट होने पर जो आत्मा किसी अन्य शरीर में जन्म लेती है उसका पूर्व जन्म के कर्मों से कुछ सम्बन्ध रहता है या नहीं ? भारतीय शास्त्रों ने'कर्मफल'के सिद्धान्त को अटल और अकाट्य रूप से स्वीकार किया है। 'कर्म प्रधान विश्व कर राखा' की उक्ति यहां के सभी लोगों का पूर्ण विश्वास है। यहाँ के ऋषि-मुनियों ने मानव-जीवन की भली-बुरी घटनाओं को केवल एक जन्म के ही कर्मों का फल नहीं बतलाया है वरन् वे उसका सम्बन्ध अनेक जन्मों के कर्मों से जोड़ते हैं।'कर्म' और प्रारब्ध की समस्या पर विचार करते हुए लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' में हिन्दू धर्म का सिद्धान्त इस प्रकार प्रकट किया है।

"यह सच है कि कर्म-प्रवाह अनादि है और जब एक बार कर्म का चक्कर शुरु हो जाता है तब परमेश्वर भी हस्तक्षेप नहीं करता। तथापि अध्यात्म शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि दृश्य सृष्टि केवल नाम-रूप या कर्म ही नहीं है, किन्तु इन 'नाम रूपात्मक' आवरण के लिये आधारभूत एक आत्म रूपी स्वतन्त्र और अविनाशी ब्रह्म सृष्टि है तथा मनुष्य की आत्मा उस नित्य एवं स्वतन्त्र परब्रह्म का ही अंश है। मनुष्य जो भी अनुचित अथवा पर पीड़ा दायक कार्य करता है उसी से वह अशुभ कर्म बन्धन में बँधता है। मनु भगवान् ने इनके तीन भेद किये हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। व्यभिचार, हिंसा, चोरी को 'कायिक'पाप कहा है, कटु मिथ्या,

ताना मारना और असंगत बोलना—इन चारों को वाचिक पाप बतलाया है—परद्रव्याभिलाषा, दूसरों का अहित चिन्तन और व्यर्थ आग्रह करना-इन तीनों को मानसिक पाप कहते हैं। सब मिलाकर दश प्रकार के अशुभ या पाप कर्म बतलाये गये हैं (मनु० १२—५,७)।

"परन्तु अन्य विद्वानों ने समस्त मानवीय कर्मों को तीन अन्य विभागों में बाँटा है-(१)संचित(२)प्रारब्ध और(३)क्रियमाण। किसी मनुष्य द्वारा इस क्षण तक किया गया जो कर्म है-चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्म में, वह सब 'संचित' अर्थात् 'एकत्रित' कर्म कहा जाता है। इसी 'संचित' को कुछ लोग'अदृष्ट'भी कहते हैं। इन सब कर्मों का फल एक दम भोगना असम्भव है, क्योंकि फल की दृष्टि से ये परस्पर विरोधी अर्थात् भले और बुरे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणार्थ कोई संचित कर्म स्वर्गप्रद और कोई नरकप्रद भी होते हैं,इसलिये इन दोनों के फलों को एक साथ ही भोगना सम्भव नहीं है—इन्हें एक के बाद एक भोगना पड़ता है। अतएव 'संचित' में से जितने कर्मों का फल भोगना पहले शुरू होता है उतने ही को 'प्रारब्ध' कहते हैं। 'संचित' में से जिन कर्मों का फल भोगना अभी आरम्भ नहीं हुआ है उनको'अनारब्ध-कर्म'का नाम दिया गया है।

"संचित में से जो कर्म 'प्रारब्ध'बन चुके हैं उनको भोगे बिना छुटकारा नहीं है—'प्रारब्ध कर्मणां भोगादेव क्षयः।' जब एक बार हाथ से बाण छूट जाता है,तब वह लौटकर नहीं आ सकता,अन्त तक चला ही जाता है। ठीक इसी तरह 'प्रारब्ध' कर्मों की अर्थात् जिनके फल का भोगना शुरू हो गया है, उनकी भी अवस्था होती है। जो शुरू होगया है उसका अन्त होना ही चाहिए, इसके सिवा दूसरी गति नहीं है। परन्तु 'अनारब्ध' कार्य कर्म का ऐसा हाल नहीं है—इन सबका ज्ञान से पूर्णतया नाश किया जा सकता है।"

मीमांसा शास्त्र वालों ने कर्मों के चार भेद माने हैं—नित्य,नैमित्तिक काम्य और निषिद्ध। इनमें से नित्य कर्म (संध्या आदि) के न करने से आत्मा का पतन होता है और नैमित्तिक कर्म तभी करने पड़ते हैं जब

उनकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये मीमांसकों के मतानुसार इन दोनों को करना तो आवश्यक ही है। शेष रहे काम्य और निषिद्ध कर्म। इनमें से निषिद्ध कर्मों के करने से पाप लगता है इसलिये उनको न करना चाहिए। काम्य कर्मों के करने से उनके फल भोगने के लिये फिर जन्म लेना पड़ता है, इसलिये इन्हें भी न करना चाहिए। इस प्रकार भिन्न-कर्मों के तारतम्य का विचार करके यदि मनुष्य कुछ कर्मों को छोड़दे और कुछ कर्मों को छोड़ दे और कुछ को शास्त्रोक्त रीति से करता रहे, तो वह अपने आप मुक्त हो जायगा।

इस शास्त्रीय विवेचन द्वार विदित होता है कि कर्म फल प्राकृतिक नियम के अनुसार स्वभावतः संस्कार रूप में आत्मा के साथ लिपटा रहता है और एक जन्म के कर्मों के प्रभाव से आगामी जन्म में भी नये-नये कर्म होते रहते हैं और कर्म-शृङ्खला अनन्त काल तक चलती रहती है। केवल वे थोड़े से व्यक्ति जो अनासक्त योग और ज्ञान—साधन द्वारा—बन्धन को बिल्कुल काट देते हैं वे ही कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा सकते हैं।

इस प्रकार जब हमने कर्मफल, परलोक और पुनर्जन्म को मान लिया और यह भी मालूम होगया कि हम जैसा कृत्य करेंगे वैसा ही अच्छा वा बुरा फल प्राप्त होगा तो इस दृष्टि से सृष्टि में स्वर्ग और नरक का मानना अनुचित नहीं है,फिर चाहे उनको स्थूल अथवा सूक्ष्म लोकों के रूप में माना जाय, अथवा भली या बुरी परिस्थितियों के रूप में, अथवा आनन्द या कष्ट प्रद मानसिक स्थिति के रूप में। हमने अभी तक वैज्ञानिकों के द्वारा शुक्र, मङ्गल, वृहस्पति आदि ग्रहों का जो आनुमानिक वर्णन सुना है,उससे यह ख्याल किया जासकता है कि शायद वहाँ किसी अन्य प्रकार से निकृष्ट जीव-धारी हों जिनको अत्यधिक गर्मी,दम घोटने वाली विषाक्त वायु अथवा हड्डियों को कड़कड़ा देने वाली ठंड को सहन करना पड़ता हो। फिर यह भी आवश्यक नहीं कि जिन स्थानों को 'नरक' कहा गया है वे सब स्थूल रूप में ही हों। आत्मा का सूक्ष्म शरीर वायु से भी हलका होता है। वह विशाल अन्तरिक्ष के किसी भी कोने में रहता हुआ अपनी भावनानुसार तरह तरह के कष्टों और यन्त्रणाओं को अनुभव करता हो तो इसमें भी

कुछ असम्भव नहीं है। यदि पृथ्वी के कुछ जीवात्माओं को वहाँ जाकर ऐसे कष्टदायक वातावरण में रहना पड़े तो वह पौराणिक नरकों के वर्णन के अनुसार ही होंगे।

इसके अतिरिक्त हम पृथ्वी पर भी पागलों, उन्मादियों,महाभ्रष्ट आचरण वालों की जो दशा देखते हैं वह भी नरकवास से कम नहीं है। हमने ऐसे नरतन धारियों को गन्दी नाली का पानी पीते, वहाँ पड़े हुए रोटी के टुकड़ों आदि को खाते देखा है। 'अघोरी' नामधारी कितने ही व्यक्ति मल मूत्र और अन्य अत्यन्त घृणित पदार्थ खा जाते हैं और असह्य गन्दगी की हालत में बने रहते हैं। अन्य ऊपर से सामान्य श्रेणी के मनुष्य जान पड़ने वालों के भी आचरण ऐसे भ्रष्ट और गन्दे होते हैं कि वे गुप्त रूप से अत्यन्त गन्दे और घृणोत्पादक पदार्थों का सेवन करने में ही तृप्ति अनुभव करते हैं। ऐसे मस्तिकीय अथवा मानसिक विकृति वाले व्यक्तियों की संख्या पृथ्वी पर करोड़ों है और सज्जन तथा बुद्धिमान लोगों की दृष्टि में वे नारकीय जीवन ही व्यतीत करते हैं।

काम, क्रोध, मोह, अहङ्कार आदि के कारण भी अनेक व्यक्तियों की मानसिक दशा ऐसी अस्त-व्यस्त और यन्त्रणादायक बनजाती है कि प्रत्यक्ष में वैभवपूर्ण स्थिति में रहने पर भी वे अपने अन्तः क्षेत्र में महा अशान्ति और जलन का अनुभव करते हैं। यदि आपने राज्य-परिवारों से सम्बन्धित कहानी-उपन्यास आदि के रूप में लिखे गये वर्णनों को पढ़ा हो तो आप जान सकते हैं कि ऊपर से आमोद–प्रमोद में रहते हुए इन लोगों के हृदय में कितनी भयंकर अग्नि जलती रहती है और अनेक बार उनका दुष्परिणाम हत्या—आत्मघात आदि कैसे भयंकर कृत्यों और दृश्यों के रूप में प्रकट होता है। हमने एकाध लखपति को यह कहते सुना है कि महाशय, आपकी निगाह में तो हम बड़े साधन-सम्पन्न और सुखी हैं, पर विपरीत व्यापारिक और अन्य परिस्थितियों के कारण हमारे चित्त में तो प्रायः यह आता रहता है कि किसी प्रकार मर कर इन आपत्तियों से छुटकारा पा जायें। इस परिस्थिति का सब से प्रत्यक्ष उदाहरण अमरीका का देश है जो

संसार में सबसे अधिक मालदार आमोद-प्रमोद के साधनों से युक्त और विषय-भोग सम्बन्धी सब प्रकार बन्धनों से मुक्त माना जाता है। वहाँ करोड़ों स्त्री-पुरुष स्वच्छन्द भाव से व्यभिचार, मद्यपान, धूम्रपान आदि दोषों में लिप्त रहते हैं, पर सरकारी रिपोर्टों के अनुसार आत्म हत्याओं की संख्या भी वहीं पर सबसे ज्यादा है।"

इस तरह हम यदि संसार नीच मनोवृत्ति और विकृत मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के वाह्य और अन्तः जीवन में झाँकें तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि वे 'नारकीय जीवन ही व्यतीत कर रहे हैं और मरने के पश्चात् भी उनको 'सुगति' कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। वे वास्तव में 'नरक' के ही अधिकारी हैं आर मरणोपरान्त वे कहीं भी क्यों न रहें उनको नारकीय कष्ट ही सहन करने पड़ेंगे।। 'गरुड़ पुराण' के लेखक ने रूपक और अलंकार युक्त 'नरक-वर्णन' द्वारा जो चेतावनी दी है, उस पर ध्यान देकर यदि वे दुराचरणों को त्याग कर सुमार्गगामी बन सकें तो यह उनके लिये कल्याणकारी ही होगा।

—०—

